रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं० ३२

ओ३म्

अष्टाध्यायी-भाष्य-प्रथमावृत्ति

(चतुर्थ-पञ्चमाध्यायात्मक द्वितीय भाग)

लेखक—

पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु

संशोधक—

युधिष्ठिर मीमांसक

प्रकाशक—

प्यारेलाल कपूर

मंत्री—श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर

प्रथम संस्करण १५०० } मार्गशीर्ष, संवत् २०२२ वि० दिसम्बर, सन् १९६५ ई० { मूल्य— सजिल्द १०-०० अजिल्द ९-००

ट्रस्ट के उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रसार
तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय
विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा

स्व० पूज्य गुरुवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत
अष्टाध्यायी भाष्य का यह भाग
धर्मानुरागी श्री बाबू देवीचन्दजी मेहरा (बम्बई)
द्वारा प्रदत्त ५००० पांच सहस्र रुपए की
सत्सहायता से प्रकाशित किया गया

मुद्रक—
तारा प्रिंटिङ्ग प्रेस,
वाराणसी।

सम्पादकीय

स्वर्गीय श्री पूज्य आचार्यवर ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ने ऋषि दयानन्द सरस्वती महाराज द्वारा प्रदर्शित आर्ष-पाठविधि से संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन करने की उत्कृष्ट लालसा से सन् १९१२ में गृह-त्याग किया। तदनन्तर आपने स्व० श्री स्वामी पूर्णानन्दजी से अष्टाध्यायी-महाभाष्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। इस अध्ययन काल में आप को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। निरन्तर मधूकरी-वृत्ति से निर्वाह करने के कारण कतिपय वर्षों के अनन्तर आप संग्रहणी रोग से ग्रस्त हो गए। अनेकविध चिकित्सा कराने पर भी जो महारोग दूर न हुआ था, वह दैवयोग से आगरा मथुरा के क्षेत्र में (सन् १९२३) मलकानों की शुद्धि कार्य करते हुए वहाँ के अनिच्छन् खारे जल के पीते रहने से दूर हो गया।

आप की आर्ष-पाठ विधि में आरम्भ काल से ही दृढ़ भक्ति थी। इस कारण अनेक विद्वानों के द्वारा 'अष्टाध्यायी पढ़ने से व्याकरण नहीं आयेगा' कहने पर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुये। आपने स्वयं लिखित संक्षिप्त परिचय[1] में लिखा—

महाविद्यालय ज्वालापुर वालों के अत्यन्त निराश करने पर भी कि, अष्टाध्यायी से व्याकरण नहीं आता, यह कहने पर भी अष्टाध्यायी मे पूर्ण निष्ठावान् था, उन्हें उत्तर दिया कि "अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में ३२ पाद हैं। यदि सारे जीवन में एक पाद भी पढ़ लिया तो [मैं अपना जीवन] सफल समझूँगा, शेष अगले जन्म मे करूँगा।"

अन्तःकरण की इस सुदृढ़ निष्ठा के कारण जहाँ आपने विविध कष्ट सह कर अष्टाध्यायी की आर्ष-पद्धति से व्याकरण का अध्ययन किया, वहाँ ऋषि दयानन्द महाराज के द्वारा प्रदर्शित आर्ष पाठ-विधि के क्रम से आजन्म अध्यापन कार्य भी किया। इस महान् कार्य में श्री पूज्य पं० शङ्करदेवजी का प्रमुख सहयोग रहा (आप पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के महान् पण्डित हैं)। आरम्भिक काल में धार (म० प्र०) के निवासी

१. इसे हम इसी भाग में आगे प्रकाशित कर रहे हैं।

श्री माननीय पण्डित बुद्धदेवजी उपाध्याय का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इन तीनों महानुभावों ने सन् १९२० में वीतराग स्वर्गीय पूज्य सर्वदानन्दजी महाराज के साधु आश्रम, पुल काली-नदी, जिला अलीगढ़ (उ० प्र०) में कार्य आरम्भ किया।

सन् १९२० से लेकर अन्तिम समय (२१ दि० ६४) तक ४५ वर्ष एक निष्ठा से आर्ष पाठ-विधि के समुद्धार और प्रसार में लगे रहे। न केवल आर्यसमाज के क्षेत्र में, अपितु भिन्न विचारधारा वाले पौराणिक विद्वानों (जो पाणिनि और पतञ्जलिकृत अष्टाध्यायी महाभाष्य को पढ़ना भी आर्य-समाजी होने का चिह्न मानते थे और उसे अछूत समझते थे) के सम्मुख भी अष्टाध्यायी के क्रम और आर्ष-पाठविधि की महत्ता प्रत्यक्ष-रूप में प्रमाणित कर दिखाई। इस अद्भुत सफलता से चकित होकर अनेक प्रतिष्ठित पौराणिक विद्वानों ने भी अष्टाध्यायी महाभाष्य के आर्ष-क्रम की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। आत्मकूर जिला करनूल (आन्ध्र प्रदेश) के माध्वसम्प्रदाय के आचार्य और वैयाकरण श्री पं० ब० ह० पद्मनाभ राव जी ने जिज्ञासावश काशी आकर कतिपय दिन प्रच्छन्नरूप[1] से आचार्यवर द्वारा पढ़ाये जा रहे अष्टाध्यायी महाभाष्य के पाठों को सुन कर अपने सुदूर से आने का वृत्तान्त कह कर आचार्यवर को व्याकरण का गुरु स्वीकार किया और अपने स्थान में जाकर पाणिनीय विद्यालय स्थापित कर अष्टाध्यायी महाभाष्य के क्रम से पाणिनीय व्याकरण का अध्यापन आरम्भ किया। उनके विद्यालय में प्राचीन परिपाटी के अनुसार प्रतिदिन पाठ आरम्भ करने से पूर्व व्याकरण शास्त्र के विशिष्ट विद्वानों की पंक्ति में पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि के साथ विरजानन्द, दयानन्द और ब्रह्मदत्त जिज्ञासु को नमस्कार करके व्याकरण का पाठ आरम्भ किया जाता है[2]।

---

१. अर्थात् अपना वास्तविक परिचय न देकर। काशी के भी अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने इसी प्रकार प्रच्छन्नरूप मे अध्यापन काल में उपस्थित होकर आचार्यवर की अध्यापन शैली को देखकर उस की उत्कर्षता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया।

२. निर्देश मित्रवर श्री पण्डित पद्मनाभ राव जी ने मेरे एक पत्र का उत्तर देते हुए इसी वर्ष अपने पत्र में किया था। यह पत्र इस समय (वाराणसी में) मेरे पास नहीं है अन्यथा उन्हीं के शब्द उद्धृत करता।

भला, इससे अधिक श्रीपूज्य आचार्यवर के कार्य की सफलता और ऋषि दयानन्द की आर्ष-पाठविधि की महत्ता का और क्या प्रमाण हो सकता है ?

आप ने केवल अपने ही आत्मबल पर सतत उद्योग द्वारा व्याकरण निरुक्त, दर्शन आदि विविध विषयों के बीसियों उत्कृष्ट प्रतिभाशाली विद्वान् उत्पन्न किए हैं जो आज विविध क्षेत्रों में सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं। आप के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाप तो आपके प्रायः सभी छात्रों पर पड़ी है, उनमें दो चार ही ऐसे हैं जो नौकरी कर रहे हैं।

इस प्रकार निरन्तर ४० वर्ष तक सफलता पूर्वक अष्टाध्यायी क्रम के उद्धार और प्रसार के अनन्तर अष्टाध्यायी के पठन-पाठन क्रम को चिर-स्थायी करने की दृष्टि से, जिस क्रम से स्वयं अष्टाध्यायी का अध्यापन कराते थे, उसी क्रम से अष्टाध्यायी की व्याख्या लिखने का संकल्प किया और सन् १९६० के अन्त में अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति[1] के लिखने का उपक्रम किया। विविध कार्यों में व्यासक्त रहने और अन्तिम दो वर्षों में अधिक रुग्ण रहने के कारण आप लगभग सवा पाँच अध्याय की ही व्याख्या लिख सके। रुग्णावस्था में ही आपने सन् १९६४ के पूर्वार्ध में अष्टाध्यायी भाष्य के मुद्रण का कार्य आरम्भ किया। अनेक विघ्न-बाधाओं विशेषकर अधिक अस्वस्थ[2] होने पर भी अष्टाध्यायी भाष्य का

---

१. ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में पाठविधि का निर्देश करते हुए अष्टाध्यायी की दो आवृत्ति पढ़ने पढ़ाने का संकेत किया है। प्रथमावृत्ति में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद विभक्ति समास अनुवृत्ति अर्थ उदाहरण और उसकी सिद्धि बताने का निर्देश किया है और द्वितीयावृत्ति मे सूत्र पद सम्बन्धी-शङ्का समाधान तथा विशिष्ट वार्त्तिक परिभाषा आदि पढ़ाने का। वस्तुतः अष्टाध्यायी को उक्त क्रम से प्रथमावृत्ति पढ़ाना हो सब से अधिक कठिन कार्य है। इस क्रम से न पढ़े हुए बड़े बड़े वैयाकरण भी इस क्रम से पाणिनीय व्याकरण पढ़ाने मे असमर्थ हैं, यह हमारा प्रत्यक्ष का अनुभव है।

२. नवम्बर १९६४ के आरम्भ में आपने विशिष्ट कार्य से अमृतसर जाना था, परन्तु अस्वस्थता के कारण न जा सके। २८ नवम्बर को दिल्ली में रा० ला० क० ट्रस्ट के विशिष्ट अधिवेशन में भी विशेष रुग्ण होने के कारण उपस्थित होने की असमर्थता प्रकट की थी।

तृतीय अध्यायान्त लगभग १००० पृष्ठों का प्रथम भाग स्वर्गवास से केवल ६ दिन पूर्व प्रकाशित किया।

अष्टाध्यायी भाष्य के प्रथम भाग के कार्य पूर्ति के अवसर पर अपने चिरकालीन स्वप्न की सफलता का प्रसाद जनता जनार्दन को बाँटने की इच्छा से आपने १५ दिसम्बर १९६४ को अपने स्थान मोतीझील में काशी के प्रमुख विद्वानों और गण्य-मान्य व्यक्तियों को निमन्त्रित करके एक विशिष्ट समारोह किया। यह आचार्यवर के जीवन की अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटना थी। स्वर्गवास से पूर्व आप नवम्बर के अन्त तक विशेष रुग्ण रहे, परन्तु उसके पश्चात् अचानक ही आपके स्वास्थ्य में सुधार हुआ, १५ दिन में ही पर्याप्त स्वस्थ हो गए। कानों की श्रवण-शक्ति जो कई वर्षों से उत्तरोत्तर क्षीण हो रही थी, अचानक ही लौट आई। समारोह के समय आपको स्वस्थ देखकर अभ्यागत महानुभावों ने प्रसन्नता व्यक्त की। परन्तु यह किसे विदित था कि यह अचानक प्राप्त हुई स्वस्थता बुझते हुए दीपक के क्षणिक तीव्र प्रकाश के समान भावी निर्वाण की द्योतिका है। इस समारोह के ६ दिन पश्चात् ही २१ दिसम्बर की रात्रि में लगभग २॥ ढाई बजे हृद्गत्यवरोध से आप का स्वर्गवास हो गया। घटनाक्रम को देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्यवर अष्टाध्यायी-भाष्य के प्रकाशन की तीव्र भावना से अति बलवान् मृत्यु से कई मास जूझते रहे। वेद के **अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन** (ऋ० १०।१८।४) के आदेशानुसार काय समाप्ति तक अपने आत्मबलरूपी पर्वत से मृत्यु को अपबाधित करते रहे और कार्य समाप्त होने के पश्चात् अचानक ही इहलीला को संवृत कर लिया। दैवेच्छा बलीयसी।

आपने श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट के आरम्भ काल सन् १९२८ से ट्रस्ट द्वारा आरम्भ किए गए प्रकाशन और अनुसन्धान कार्य में क्रियात्मकरूप से सहयोग देकर उसे एक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान और प्रकाशन संस्था का स्वरूप प्रदान किया। इस समय तक ट्रस्ट द्वारा छोटे-मोटे लगभग ३५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कतिपय ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

आचार्यवर के स्वर्गवास के पश्चात् रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रकाशन अनुसंधान कार्य तथा पाणिनीय महाविद्यालय के संचालन के लिए उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता हुई। यतः मैं ३ अगस्त १६२१ से १६५५ तक चौंतीस वर्ष के सुदीर्घ काल में प्रायः पूज्य गुरुवय के साथ रहा तथा १६५५ में अत्यन्त रुग्ण होने पर काशी से चले जाने पर भी बराबर सम्बन्ध बना रहा, अतः सभी महानुभावों की दृष्टि मुझ पर केन्द्रित हुई। मैं सन् १९५९ के अन्त से अनेक भीषण रोगों से निरन्तर आक्रान्त रहने के कारण प्रायः क्षीण-सामर्थ्य हो चुका था, इस कारण इस महान् कार्य का भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ था, परन्तु श्री पूज्य गुरुवर्य द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य में गत्यवरोध न हो जाए, इस उद्देश्य से असमर्थ होने पर भी मैंने इस असह्य भार को स्वीकार किया।

काशी का जलवायु मेरे लिए सदा ही प्रतिकूल रहा है। मैं तीन बार अध्ययन आदि के कार्य के लिए काशी में रहा और तीनों बार आत्यन्तिक अस्वस्थता के कारण ही मुझे काशी छोड़नी पड़ी। वर्तमान क्षीणावस्था में तो मेरा काशी में निरन्तर एक मास रहना भी कठिन हो गया है। अतः यहाँ के कार्य की व्यवस्था कैसे की जाए यह गम्भीर प्रश्न मेरे और आचार्यवर के स्वर्गवास के अवसर पर यहाँ आए हुए रामलाल कपूर परिवार के सदस्यों के सन्मुख उपस्थित हुआ। प्रत्येक शुभ कामना से आरम्भ किए गए कार्य में प्रभु सदा साथ देता है, इस लोकोक्ति के अनुसार दैवेच्छा से प्रेरित होकर श्री पं० विजयपाल जी, जिन्होंने पूज्य आचार्यवर से ही अध्ययन किया और ४-५ वर्ष से निरन्तर सभी कार्यों में पूज्य गुरुवर्य को सहयोग दे रहे थे, ने यहाँ विद्यालय, पुस्तकालय तथा वेदवाणी कार्यालय की व्यवस्था को यथापूर्व चालू रखने में अपना पूर्ववत् सहयोग देते रहने की सात्त्विक भावना प्रकट की। इस स्वीकृति से मैं विशिष्ट चिन्ता से मुक्त हो गया, पर अन्तिम उत्तरदायित्व और देखभाल का भार मेरे ऊपर ही रहा।

मैं दो चार मास के अन्तर से यहाँ की व्यवस्था देखने और नए कार्यों की व्यवस्था करने के लिए यहाँ आता रहा। लगभग एक वर्ष की अवधि में पं० विजयपाल जी ने जिस लगन और योग्यता से यहाँ के सभी कार्यों की व्यवस्था को यथावत् चालू रखने का प्रयत्न किया है उससे मुझे विश्वास हो गया है कि पूज्य आचार्य द्वारा लगाये गये और

उनके तप से पोषित इस पौधे के सूखने की आशंका दूर रही, सदा उत्तरोत्तर पुष्पित और फलित होगा। इस सारी व्यवस्था में आश्रम के ज्येष्ठ ब्रह्मचारियों का भी बड़ा योग रहा। इन सब के प्रति शुभकामना करता हूँ। आशा है कि भविष्य में भी ये सब इसी प्रकार सहयोग पूर्वक अध्ययन अध्यापन में लगे रहेंगे और पूज्य आचार्यवर द्वारा आरम्भ किए गए आर्षपाठविधि के क्रम का संसार में प्रसार करेंगे।

अष्टाध्यायी भाष्य की पूर्ति

श्री पूज्य गुरुवर्य द्वारा किए गए अष्टाध्यायी भाष्य की पूर्ति का भी एक महान् प्रश्न उपस्थित हुआ। यदि यह भाष्य पूरा न हो तो आचार्यवर का किया गया सारा परिश्रम ही व्यर्थ हो जाता है, यह सोचकर मैंने सर्वप्रथम इसे ही पूरा करने का संकल्प किया। पूज्य गुरुवर्य लगभग सवा पाँच अध्याय का भाष्य लिख पाए थे। उसमें भी चतुर्थ पञ्चम अध्याय का भाष्य पाण्डुलिपि (रफ कापी) के रूप में था और आगे पौने तीन का भाष्य लिखना शेष था।

इस महान् कार्य को पूरा करने के लिए विदुषी प्रज्ञाकुमारी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इन्होंने भी व्याकरण निरुक्त आदि शास्त्रों का अध्ययन पूज्य आचार्यवर से ही किया है और अष्टाध्यायी भाष्य की रचना तथा लेखन में पूर्ण सहयोग दिया है। यदि यह कहा जाय कि श्री प्रज्ञाकुमारी अष्टाध्यायी भाष्य के लेखन कार्य में आचार्यवर के साथ न लगतीं तो आचार्यपाद इस महान् कार्य को न कर पाते, अत्युक्ति न होगी। अवशिष्ट कार्य में इनका सहयोग प्राप्त होने से मेरा भार बहुत हल्का हो गया है।

द्वितीय भाग का मुद्रण

अष्टाध्यायी भाष्य के द्वितीय भाग के मुद्रण और प्रकाशन का प्रश्न मेरे सामने प्रमुख रूप से था। श्री पूज्य गुरुवर्य शेष ग्रन्थ के आकार की दृष्टि से द्वितीय भाग में चतुर्थ पञ्चम अध्यायों के साथ षष्ठाध्याय के तीन पाद भी रखना चाहते थे; परन्तु मैंने विषय विभाग की दृष्टि से चतुर्थ पञ्चम अध्याय ही इस भाग में रखना उचित समझा। चतुर्थ

पञ्चम अध्यायों में तद्धित प्रत्ययों का विधान है और अगले षष्ठ सप्तम अष्टम तीनों अध्याय प्रक्रिया प्रधान हैं।

इस भाग की श्री पूज्य आचार्यवर द्वारा लिखी गई पाण्डुलिपि का मैंने निरीक्षण किया। यत्र तत्र आवश्यक संशोधन किये और कई स्थानों पर कुछ उपयोगी टिप्पणियाँ भी दीं। इसकी पुनः प्रेस कापी लिखने का कार्य श्री प्रज्ञाकुमारी ने पूर्ण किया। मैंने अगस्त मास में वाराणसी आकर द्वितीय भाग के मुद्रण की तारा यन्त्रालय में व्यवस्था की कुछ फार्म मेरे काशी रहते हुए छप भी गये। मैं स्वास्थ्य के कारण काशी में अधिक न रह सकता था, अजमेर मुद्रणपत्र (प्रूफ) आने जाने में बहुत समय लगता, अतः कार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए आवश्यक था कि कि मुद्रण पत्रों (प्रूफों) के संशोधन की व्यवस्था काशी में ही की जाये। इस परिश्रम साध्य कार्य को श्री पं० विजयपाल जी, विदुषी प्रज्ञाकुमारी और ब्र० सुद्युम्न ने बहुत परिश्रम और पूर्ण सहयोग से सम्पन्न किया। इन्हीं के सहयोग से द्वितीय भाग इतना शीघ्र प्रकाशित करने में मैं समर्थ हो सका, अन्यथा बहुत विलम्ब हो जाता।

तृतीय भाग की पूर्ति

अष्टाध्यायी भाष्य के तृतीय भाग को पूर्ण करने का भार विदुषी प्रज्ञाकुमारी ने स्वीकार किया है और वे इसमें लगी हुई हैं। यह कार्य अधिक कठिन है इसमें पर्याप्त समय लगेगा। पुनरपि तृतीय भाग को अगले वर्ष के अन्त तक प्रकाशित करने की पूर्ण चेष्टा की जायेगी।

आर्थिक सहयोग

अष्टाध्यायी भाष्य के प्रथम भाग के लेखन और मुद्रण कार्य के लिए झरिया निवासी श्री श्रेष्ठिवर्य मदनलालजी अग्रवाल ने लगभग १०००० दस सहस्र रुपये की सहायता की थी।

द्वितीय भाग के मुद्रण के लिए श्री भ्राता महेन्द्रकुमार जी कपूर (बम्बई) की प्रेरणा से माननीय धर्मानुरागी श्री बा० देवीचन्द जी मेहरा बम्बई ने ५००० पाँच सहस्र रुपया "श्री जिज्ञासु स्मारक निधि" में दिया है। आपने इस सत्सहयोग से हमें इस भाग के मुद्रण व्यय की

महेन्द्रकुमार जी का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ और आशा करता हूँ आप इसी प्रकार आगे भी हमें सदा सहयोग देते रहेंगे।

बम्बई के सुरभारती के विशिष्ट अनुरागी राजा श्री गोविन्दलाल बंसीलाल जी (बम्बई) ने अष्टाध्यायी भाष्य के कार्य पूर्ति के लिए एक सहस्र रुपया देने का हमें आरम्भ में ही वचन दिया था। आपने ५००) पाँच सौ रुपया दे दिया है, और शेप पाँच सौ ग्रंथ मुद्रण के पश्चात् भेजेंगे, ऐसा कहा है। इतना ही नहीं, आपने अपने अनुज राजा श्री नारायणलाल जी को भी इस अष्टाध्यायी भाष्य के महान् कार्य के लिए सहयोग देने की प्रेरणा की है। आशा है आप की सहायता भी शीघ्र प्राप्त हो जायेगी। इस सत्कार्य के लिए श्री राजा जी का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ और आशा करता हूँ कि आप इसी प्रकार हमें उत्साहित करते रहेंगे।

श्री जिज्ञासुस्मारक निधि में ३० नवम्बर १९६५ तक ११६१२-०० ग्यारह सहस्र छ सौ बारह रुपये प्राप्त हुए हैं। इनमें श्री बा० देवीचन्द जी मेहरा के ५०००-०० पाँच सहस्र भी रुपये सम्मिलित हैं।

तृतीय भाग के तैयार करने और मुद्रण में न्यूनातिन्यून १०००० दस सहस्र रुपया लगेगा ऐसा हमारा अनुमान है। इससे अधिक लग सकता है कम नहीं। अतः उसके मुद्रण के लिए भी हमें धन की परम आवश्यकता है। प्रभु इस शुभ कार्य के लिए भी किसी के अन्तःकरण में अवश्य प्रेरणा करेंगे।

कृतज्ञता प्रकाशन

सबसे पूर्व मैं उन सभी महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने मेरी प्रार्थना पर स्वर्गीय श्री पूज्य गुरुवर्य की स्मृति में स्थापित "श्री जिज्ञासु स्मारक निधि" में अपनी शक्ति के अनुसार धन देने की कृपा की है तथा इस निधि के लिए धन देने की सत्प्रेरणा वा संग्रह का सत्कार्य किया है। आशा है श्री पूज्य आचर्यवर के शिष्य भक्त वा प्रेमीजन इस निधि में मुक्त-हस्त से दान देकर पूज्य गुरुवर्य के अवशिष्ट कार्यों को पूर्ण करने में हमारा इसी प्रकार सहयोग करेंगे।

तारा यन्त्रालय के अधिपति श्री आनन्दशंकर जी पाण्डेय प्रभृति महानुभावों का भी धन्यवाद करता हूँ कि जिन्होंने अन्य कार्यों में व्यासक्त होते हुए भी अत्यन्त प्रेम-उदारता-परिश्रम-और सौजन्यता से इस ग्रंथ को सुन्दर और यथासम्भव शीघ्र मुद्रण करने की कृपा की है।

श्री पं० विजयपाल जी, विदुषी प्रज्ञाकुमारी और ब्र० सुद्युम्न ने इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन आदि कार्य सुचारु रूप से किया है। इन सबके प्रति मैं शुभकामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी श्रीगुरुवर्य के कार्यों में इसी प्रकार सहयोग देते रहेंगे। वस्तुतः यह कार्य इन्हीं का है, मैं तो निमित्तमात्र हूँ।

पाणिनि महाविद्यालय
मोतीझील, वाराणसी–६

विदुषां वशंवदः—
युधिष्ठिर मीमांसक

आर्ष पाठ-विधि के उद्धारक और प्रसारक

स्वर्गीय आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु

का

स्वलिखित जीवन-परिचय

[आचार्यपाद के हम शिष्य तथा अनन्य भक्तजन आप से जन्मस्थान आदि के विषय में बराबर पूछते रहे, परन्तु आप ने कभी भी नहीं बताया। यह भी एक संयोग की बात है कि राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित होने के अवसर पर उन्होंने आप का परिचय माँगा और आप ने न चाहते हुए भी सन् १९६३ के आरम्भ में लिखकर उन्हें भेजा। उसी की प्रतिलिपि आपके स्वर्गवास के पश्चात् आपके कागजों में मिली। यदि राष्ट्रपति द्वारा परिचय न माँगा गया होता तो आर्य जनता इस संक्षित पूर्ववृत्त से भी अनभिज्ञ रहती। हम यह संक्षिप्त परिचय आचार्यपाद के शब्दों में ही उपस्थित कर रहे हैं। एक दो स्थान पर वाक्य-विन्यास मात्र ठीक किया गया है। यु० मी०]

जन्म—१४ अक्टूबर सन् १९८२ ई०।

जन्मस्थान—मल्लूपोता-थाना बंगा-जि० जालन्धर, पंजाब।

पितृनाम— रामदास। माता का नाम-परमेश्वरी। सारस्वत ब्राह्मण, पाठक गोत्र। पट्टी, जिला होशियारपुर से निकास। माता का गोत्र महजपाल।

पूर्वनाम—पिताजी का प्यार का नाम मौजगोविन्द, प्रचलित नाम कन्सुराम। गुरु द्वारा दिया नाम-ब्रह्मदत्त जिज्ञासु।

अध्ययन—माता पिता दोनों अनपढ़ थे, नाना संस्कृत के महाविद्वान् थे। महनपुर लहनी बलाचौर के निवासी थे। पिता गुरुमुखी में

हस्ताक्षर करना जानते थे । चक नं० ९६ बंगा जि० लायलपुर (पाकिस्तान) में ठेकेदार के मुंशी थे। उक्त ग्राम में निवास करते हुए चक नं० ९७ जौहल जि० लायलपुर (वर्तमान पाकिस्तान) में प्राइमरी स्कूल की प्रथम श्रेणी में उर्दू पढ़ना आरम्भ किया। बालकपन में खरबूजे को सूँघकर बता देता था कि कौन सा मीठा निकलेगा। दूसरी-तीसरी श्रेणी में गुरुदासपुर पंजाब में गवर्नमेंट हाईस्कूल में पढ़ने लगा। ९ वर्ष की आयु में माता पिता दोनों का देहान्त हो चुका था। अनाथ अवस्था में सरदार बहादुर जवाहरसिंह जी ठेकेदार ने १९०३ ई० तक पालन किया और पढ़ाया। १९०३ से १९१२ ई० तक जन्मभूमि के ग्राम में परिवार वालों ने गुरुदासपुर से बुलाकर मल्लूपोता में पढ़ाना और पालन आरम्भ किया। श्री छन्नूराम जी (ग्राम में सबसे बड़े धनी) रिश्ते में बाबा तथा उनकी विधवा पुत्री श्रीमती रली देवी (बुआ जी) ने अत्यन्त प्यार से पाला और पढ़ाया। गाँव के प्राइमरी स्कूल में उर्दू की ५ श्रेणी १९०५ में और वरनैकुलर मिडिल स्कूल बंगा में मार्च १९०८ में उर्दू मिडिल पास किया। तत्पश्चात् अनाथ होने से आगे पढ़ाई का कोई प्रबन्ध न था कि अकस्मात् छाना हाईस्कूल जालन्धर (जिसमें महात्मा मुंशीराम पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी मैनेजर थे) में मास्टर बंशीलाल तथा मास्टर शिवदयाल जी की असीम कृपा से आर्य बोर्डिंग हाउस कोट किशनचन्द में भोजन व्यय निःशुल्क हो जाने से तथा मास्टर सुन्दरसिंह जी हैडमास्टर द्वारा द्वाबा (आर्य) हाईस्कूल जालन्धर में निःशुल्क कर देने से जूनियर स्पेशल में पढ़ने लगा। सीनियर स्पेशल में विशेष प्रार्थना करके संस्कृत पढ़ने लगा। ९-१० श्रेणी में भी संस्कृत पढ़ी। जौहल गुरुदासपुर तथा गाँव में तो श्रेणी में प्रायः प्रथम रहा। पढ़ाई और व्यायाम का भी सदा मानीटर रहा। मिडिल में योग्यतम छात्रों में था। जूनियर सीनियर में भी अच्छा रहा। ९-१० श्रेणी में प्रायः सभी विषयों में सदा प्रथम रहा, संस्कृत में भी अंग्रेजी में भी। जितने भी अध्यापक रहे—जिनमें मौलवी, पण्डित, एवं मास्टर थे, प्रायः सबका ही अत्यन्त प्रेम तथा कृपा रही। मिडिल के पश्चात् हिन्दी का प्रारम्भ अपनी बड़ी विधवा बहिन कर्मदेवी (मेला देवी) से किया जो "**शन्नो देवी**" की सन्ध्या करती थीं जो मैं नहीं जानता था, जिसने बाल्यकाल में गोदी में खिलाया भी था। घर वाले सन्ध्यादि में सर्वथा

शून्य थे, पुरोहिताई थी, पर जाता न था न ही इसका [कोई] परिज्ञान था। घर के पीछे मस्जिद में बाँग होती थी और याद हो गई थी। पीछे भजनों द्वारा आर्य समाज का पता लगा जो आर्य स्कूल में दृढ़ हो गया। सत्यार्थप्रकाश हाथ लगा, जिसने मुझ पर अलौकिक प्रभाव किया।

गृहत्याग—सन् १९१२ में आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ-प्रकाश आदि की गहरी छाप पड़ी और श्रेणी में प्रथम रहने तथा अच्छी संगति के कारण संस्कृत पढ़ने, विशेषतया आर्ष ग्रन्थों (अष्टाध्यायी-महाभाष्य तथा वेदादि) के अध्ययन तथा ईश्वर प्राप्ति का दृढ़ संकल्प लेकर ५ जून १९१२ की रात्रि में ही जालन्धर से गृह त्याग किया। ५० वर्ष गुम रहा। बीच में लाहौर स्टेशन पर १८ वर्ष पीछे ग्राम के एक सज्जन ने गाड़ी में पहचान लिया। गाँव जाने का विशेष आग्रह किया, पर उसे पूरा पता नहीं बताया। चचेरे भाई वीरबल जी हरिद्वार घाट पर दीखे तो मुख पर कपड़ा कर लिया, जिससे वे पहिचान न सकें। सो बच गया। माता पिता थे नहीं, पीछा करता भी कौन? करता भी तो······। प्रभु ने पूरी कृपा की, नहीं तो वैनकोवर (अमेरिका) में चचेरे भाई के साथ सोना (वा रुपया) कमाता होता !!

संस्कृत अध्ययन—स्वर्गीय पूज्य स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती (भूतपूर्व मास्टर सुखदयाल जी) के पास ला० वैनीप्रसाद जी के यहाँ कनखल में पहुँचा। स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी के अध्यापन-काल में अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थ काशी के बड़े विद्वान् पं० काशीनाथजी से पढ़े थे। यह बड़े योग्य और त्यागी तपस्वी तीव्र-बुद्धि बाल-ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द तथा आर्ष ग्रन्थों के परमभक्त थे। गुरुकुल बदायूँ तथा काशी में भी पढ़े थे। अष्टाध्यायी के १०० सूत्र प्रतिदिन पेड़ पर चढ़कर याद किया करते थे। उन्होंने अपनी बहिन सुनीति देवी का विवाह स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मपुत्र धर्मपाल (अब्दुल गफ़ूर) के साथ करने का निश्चय किया था और उसके आचारहीन होने का पता लगने पर नहीं किया था। इन स्वामी पूर्णानन्द जी से संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। वेदांगप्रकाश, उपनिषद्, अष्टाध्यायी आदि पढ़ने लगा। महाविद्यालय ज्वालापुर वालों के अत्यन्त निराश करने पर भी कि अष्टाध्यायी से व्याकरण नहीं आता-अष्टाध्यायी नहीं हो सकती, यह

कहने पर भी अष्टाध्यायी में पूर्ण निष्ठावान् था, उन्हें उत्तर दिया कि **"अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में ३२ पाद हैं, यदि सारे जीवन में एक पाद भी पढ़ लिया तो सफल समझूँगा। शेष अगले जन्म में करूँगा।"** इतने दृढ़ संकल्प से आर्ष ग्रन्थों के पढ़ने का उद्देश्य लेकर उक्त स्वामी जी महाराज के चरणों में कनखल मुरादाबाद वृन्दावन लखनऊ रायबरेली अमेठी डलमऊ मसूरी देहरादून काश्मीर पठानकोट लखनौती गंगोह मुलतान, रघुराजगंज आदि नगरों-पहाड़ों की पैदल एवं रेलादि यात्रा में भिक्षावृत्ति से रहकर तथा अन्त में लगभग ३ वर्ष डलमऊ (जि० रायबरेली) गंगा तट पर एकान्त वास में रहकर उक्त स्वामी जी से अष्टाध्यायी महाभाष्य[1] निरुक्तादि पढ़ता रहा। अष्टाध्यायी एक दिन में एक पाद कण्ठस्थ कर लेता था। ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थों का गहरा अध्ययन एवं अनुशीलन उक्त स्वामीजी से किया। मेरे में जो अवगुण हैं वे मेरे हैं, यदि कोई गुण है वा जो ऋषि दयानन्द और आर्ष ग्रन्थों में गहरी भक्ति है वह सब उक्त स्वामी जी की ही देन है। इस प्रकार जून १९१२ से सितम्बर १९१८ तक लगभग ६ वर्ष उक्त स्वामी जी के चरणों में उत्तर भारत में रहा।

अज्ञातवास—सितम्बर १९१८ मे विशेष घटनावश ज्वरावस्था मे ही खुर्जा जि० बुलन्दशहर से उक्त स्वामी जी से पृथक् होकर ग्राम अरनिया जिला बुलन्दशहर में ठाकुर हरज्ञानसिंह जी चौहान राजपूत के चौपाल तथा बगीचे (जंगल) में भिक्षावृत्ति करते हुए बीमार रहा, उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की। ब्रह्म जिज्ञासु के नाम से अज्ञातवास में रहा। उस समय में तथा पीछे भी योगियों महात्माओं की खोज में गंगा तट पर विचरता रहा। कई मिले भी—उनसे लाभ उठाया। यह भूमि बहुत ही उपयुक्त प्रतीत हुई।

कार्यकाल १९२० से १९४७ तक—अध्यापन तथा अध्ययन—सन् १९२० ई० में साधु आश्रम (पुल काली नदी) हरदुआगंज जि० अलीगढ़

---

१. स्वर्गीय श्री स्वामी पूर्णानन्द जी ने आज से लगभग ४-५ वर्ष पूर्व महाभाष्य का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद किया था (यह श्री आचार्यवर के संग्रह में सुरक्षित है)। इससे पूज्य स्वामी जी महाराज का व्याकरण-शास्त्र का पाण्डित्य स्वतः प्रकट होता है। खेद है यह मुद्रित होकर प्रकाश में न आ सका। यु० मी०

में स्वर्गीय वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज से एक घटना घटी, जिसे जीवन की विशेष घटना कहा जा सकता है। उक्त आश्रम से लघु-कौमुदी सिद्धान्त-कौमुदी का सर्वथा बहिष्कार हुआ। अष्टाध्यायी की स्थापना होने से वहाँ अध्यापन कार्य आरम्भ किया। वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज से उपनिषद् पढ़ी और एक वर्ष पीछे धन की कमी के कारण गण्डासिंहवाला (अमृतसर) में विरजानन्द आश्रम में महाविद्वान् श्री पं० शंकरदेव जी के साथ अष्टाध्यायी का अध्यापन कार्य किया। स्वयं भी आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करता रहा। लगभग ४ वर्ष वहाँ काम किया। बीच में लगभग १० मास भरतपुर-मथुरा-आगरा आदि में स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में १९२३ ई० में मलकानों की शुद्धि का कार्य अपने सहपाठी पं० अखिला-नन्द जी झरिया के साथ बड़ी सफलता से किया। दूसरी बार सन् २६ से २८ तक स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर पूज्य गुरुवर तिवारी जी की प्रेरणा एवं माननीय पं० मदनमोहन मालवीयजी की पाँच सौ रुपये मासिक की सहायता से काशी के पण्डितों एवं सन्यासियों की अन्तरंग सभा द्वारा काशी हिन्दू शुद्धि सभा के मन्त्री रूप में पं० केदारनाथ सारस्वत, स्वामी रामानन्द, म० म० पं० देवीप्रसाद जी कविचक्रवर्ती आदि के सहयोग से कार्य किया। जब कि पं० गोपाल शास्त्रीजी जेल में थे। इन सबमें तथा आगे काशी में आचार्य श्री पं० शंकरदेव जी मेरे साथी रहे। काशी में पहिली बार हम लोग कुछ छात्रों सहित जनवरी सन् १९२६ से अप्रैल १९२८ तक रहे। क्षेत्रों में भोजन करते हुए अपने छात्रों को भोलाशाह के बगीचे (करणघण्टा) में पढ़ाते थे और स्वयं व्याकरण के सूर्य श्री पं० देवनारायण तिवारीजी से सम्पूर्ण महाभाष्यादि पढ़ते रहे। श्री पं० दुण्ढिराज जी शास्त्री, पं० गिरीशजी शुक्ल तथा गोस्वामी दामोदर लाल जी से प्राचीन दर्शनों का पूरा अध्ययन किया। सन २८ से ३१ तक राम भवन अमृतसर में युधिष्ठिर आदि छात्रों को सम्पूर्ण महाभाष्य तथा निरुक्तादि पढ़ाता रहा। वैदिक वाङ्मय तथा प्राचीन इतिहास के मर्मज्ञ पं० भगवद्दत्तजी से रिसर्च का ज्ञान प्राप्त हुआ। सन् १९३१ मे महात्मा हंसराज जी की विशेष प्रेरणा से उनके सभापतित्व मे पं० विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए०, पं० राजाराम शास्त्री तथा पं० चारुदेव शास्त्रीजी से 'निरुक्त और वेद में इतिहास' विषय पर

लाहौर में ५ दिन शास्त्रार्थ किया। जिसमें समाधानपक्ष में मुख्य नाम ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का था। दुबारा काशी में सन् १९३१ से ३५ तक शीतला घाट पर विरजानन्द आश्रम राजमन्दिर में पूर्ववत् छात्रों को महाभाष्यादि पढ़ाते हुए स्वयं भारत में अद्वितीय मीमांसक श्री चिन्न-स्वामी शास्त्रीजी से तथा उनके शिष्य पं० पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा सम्पूर्ण मीमांसा के सब ग्रन्थ, महान् वैदिक विद्वान् पं० रामभट्ट रटाटे जी से श्रौत, तथा अन्य विद्वानों से शेष सब दर्शन तथा साहित्य में मूल ग्रन्थों तथा वाक्यपदीय आदि का अध्ययन अनेक विद्वानों से काशी में किया। भर्तृहरि महाभाष्य की टीका छपनी आरम्भ हुई, उसका सम्पादन किया।

लाहौर रावी तट पर

सन् १९३६ से सन् १९४७ तक रावी तट शाहदरा लाहौर विरजानन्द आश्रम में छात्रों को अष्टाध्यायी महाभाष्य निरुक्त दर्शन तथा वेद के अध्यापन के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रन्थों का विशेष अनुशीलन, यजुर्वेदभाष्य विवरण प्रथम भाग की तैयारी तथा छपना, परोपकारिणी सभा अजमेर सम्बन्धी अनेक कार्य [करता रहा इसी समय में] देवतावाद विषय पर पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर जी के साथ कई मास तक लिखित शास्त्रार्थ हुआ। रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा विविध प्रकाशन कार्य हुआ। हैदराबाद सत्याग्रह में हमारे छात्र गये थे, कई मास तक आश्रम बन्द रहा। मार्च १९४७ से २३ अगस्त १९४७ तक, जब कि 'हिन्दू' लाहौर समाप्त हो चुका था हम सब रावी तट पर [ही] रहे, अन्त में हिन्दू सैनिकों द्वारा ट्रकों में भर कर लाहौर कैम्प में लाये गये और २८ अगस्त १९४७ को दैवयोग से बच कर अमृतसर पहुँचे। ५०-६० मन पुस्तकें जिनमें सैकड़ों हस्तलेख भी थे, वे सब भी जला दिये गये। लग-भग ९० मन पुस्तकें हम लोग ले आये थे।

१५ वर्ष से काशी में

सन् १९२५ से १९२८ ई० तक पहले काशी में रहे तथा सन् १९३१ से १९३५ तक दूसरी बार काशी में रहे। तीसरी बार १९४७ से २२ फरवरी सन् १९६३ ई० तक काशी मोतीझील में हैं, कल का पता नहीं। पाकिस्तान से निकलने को बाधित किये जाने पर अनेक स्थानों (गुरुकुल

कांगड़ी, गुरुकुल चित्तौड़गढ़, सरस्वती भवन अजमेर आदि) में (केवल पाँच वर्ष के लिए] स्थान मांगने पर भी सहयोग न मिलने पर मार्च सन् १६५० में पूरी तरह काशी में डेरा डाला। अक्टूबर सन् ४७ से फरवरी १९५० तक शुद्धि आदि कार्यों में समय लगाया। अन्त में मार्च १९५० में मोतीझील काशी में डेरा डाला गया कि जब तक अन्यत्र कोई स्थिर प्रबन्ध न हो, यहीं रहा जावे। यहाँ अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरुक्त-मीमांसा-श्रौत ब्राह्मण-वेदादि का अध्ययन अध्यापन विरजानन्द आश्रम के रूप में ५०) रु० मासिक किराये के मकान में चलता रहा। तत्पश्चात् अगस्त १६५३ से पाणिनि महाविद्यालय के रूप में पूर्ववत् चल रहा है जिसमें भारत के प्रायः सभी प्रान्तों से संस्कृत के एम० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, शास्त्री, बी० ए०, मैट्रिकादि डॉक्टरेट तथा व्यापारी आदि बहुत संख्या में शिविरों में तथा विद्यालय में पढ़ते रहे तथा इस समय भी पढ़ते हैं, जिनमें कोरिया-अमेरिकादि विदेशी छात्रों के अतिरिक्त मुसलमान आदि भी आकर निःशुल्क संस्कृत पढ़ते रहते हैं। जाति वा आयु का कोई प्रतिबन्ध नहीं। इस समय कई प्रौढ़ पठनार्थी बिना रटे अष्टाध्यायी पद्धति से संस्कृत तथा उसके व्याकरण का ज्ञान कर रहे हैं। कम से कम ४० दिन वा ६ मास में गीता-रामायणादि समझने वा साहित्य दर्शनादि के पढ़ने की सामर्थ्य हो जाती है। द्वादशसु वर्षेषु व्याकरणं श्रूयते (१२ वर्ष में व्याकरण होता है) के स्थान में चतुर्षु वर्षेषु व्याकरणं श्रूयते (चार वर्ष में व्याकरण पूरा होता है) कराया जाता है। काशी के प्रमुख विद्वान् म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आदि विद्वान् अष्टाध्यायी पद्धति पर मुग्ध हैं। काशी के विद्वान् चकित हैं और कहते हैं कि जिज्ञासु जी ने कोई देवी सिद्ध की हुई है। वह देवी "अष्टाध्यायी" ही तो है। साथ में महाभाष्य-निरुक्त-श्रौत-मीमांसा-दर्शनादि के पाठ भी चलते रहते हैं।

योग्यता—लोग योग्यता पूछते हैं। योग्यता क्या बताई जावे। परीक्षा तो कोई पास की नहीं। न ही किसी छात्र को (पढ़ाने पर भी) अपने नाम से परीक्षा देने दी। हाँ, दयानन्द विद्यापीठ की परीक्षायें दिलाते हैं और महायज्ञ एवं आर्ष गुरुकुल एटा के संचालक स्वामी ब्रह्मानन्द जी आदि के सहयोग से उसका संचालन १६३८ से बराबर कर रहे हैं, जिसमें अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरुक्त-दर्शन एवं साहित्य आदि

की परीक्षायें होती हैं। हाँ, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में जहाँ तक प्रतिकूल ग्रन्थ नहीं वहाँ तक की परीक्षा देने की (वह भी बाहिर) अनुमति अष्टाध्यायी समाप्त कर लेने पर दी जाने लगी है, जो पूर्णतया सम्मत नहीं।

कोई परीक्षा पास न होने पर भी लगभग ३० वर्ष से गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस—वर्त्तमान वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की व्याकरण वेद आदि परीक्षाओं के आचार्य शास्त्री मध्यमादि का परीक्षक रहता आ रहा हूँ। काशी के कार्यों में संस्कृत वाङ्मय के सुयोग्य विद्वान् श्री डा० मङ्गलदेव शास्त्री जी का अत्यन्त सहयोग सदा रहा। पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री के कई विषयों का परीक्षक रहा। गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन आदि अनेक संस्थाओं के विविध विषय का परीक्षक रहा। एम० ए० तथा आचार्यों को डाक्टरेट कराने में मार्ग प्रदर्शन, एवं पढ़ाना—पाणिनि महाविद्यालय द्वारा सैकड़ों प्रौढ़ पठनार्थियों को बिना रटे संस्कृत तथा संस्कृत व्याकरण की अष्टाध्यायी पद्धति द्वारा तैयार करना, निःशुल्क पढ़ाना आदि कार्य वर्षों से कर रहा हूँ।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की विद्वत् परिषत् (अकेडमिक कौंसिल) का निर्वाचित सदस्य, शिष्ट परिषत् (सिनेट) का सदस्य, कार्यकारिणी परिषत् (एक्जीक्यूटिव) का सदस्य हूँ। ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा अजमेर का सन् १९३६ ई० से सदस्य—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के अन्तर्गत धर्मार्य सभा का सदस्य हूँ। काशी विद्वन्मण्डल का सदस्य हूँ। रामलाल कपूर ट्रस्ट का प्रधान हूँ। मासिक पत्रिका 'वेदवाणी' का सम्पादक हूँ। अखिल भारतवर्षीय वेद सम्मेलन तथा विद्वत् सम्मेलन लाहौर-मेरठ-कलकत्ता-मथुरा-गुरुकुल-वृन्दावन तथा गुरुकुल काँगड़ी आदि, खुरजा गोरखपुर आदि वेद सम्मेलनों का अध्यक्ष रहा। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त श्री बदरी नारायण संस्कृत महाविद्यालय जोशीमठ (गढ़वाल) के अध्यापकों की नियुक्ति के लिये कमीशन का सदस्य रहा। आर्य समाज के प्रायः सभी प्रमुख विद्वानों-नेताओं के आदर तथा प्रेम का पात्र रहा और हूँ। मेरे द्वारा बनाये वा सम्पादन किये ग्रन्थों में यजुर्वेद भाष्य विवरण प्रथम भाग—[ऋषि दयानन्द कृत] अष्टाध्यायी भाष्य

अजमेर [के] तीसरे चौथे अध्याय का सम्पादन, संस्कृत सरलतम विधि तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित अनेक रिसर्च ग्रन्थ हैं। मेरे विषय में तथा शिष्यों का सामान्य परिज्ञान जनवरी १९६३ की मासिक टंकारा पत्रिका में मिल सकता है।

ये सब कार्य पाणिनि महाविद्यालय (मोतीझील) वाराणसी नं० ६ में रामलाल कपूर ट्रस्ट रिसर्च विभाग द्वारा हो रहे हैं। जहाँ लगभग ४० आलमारी (लगभग १८ हजार) पुस्तकें (पाकिस्तान लाहौर में ५०-६० मन नष्ट हो जाने पर भी) एक निजी[1] तथा ट्रस्ट का बृहत् पुस्तकालय है जिसमें अलभ्य पुस्तके भारी संख्या में हैं। पाणिनि महाविद्यालय बिना किसी सहायता-अपील वा धन माँगने के चल रहा है जिसे देखकर सब चकित हैं जिसमें अनेक पठनार्थी भी तैयार हुए हैं और हो रहे हैं। ऋषिदयानन्द प्रदर्शित आर्ष-पाठविधि के विद्वान् भी तैयार हो रहे हैं। कुछ पुत्रियाँ भी तैयार हुई हैं, जो महाभाष्य आदि पढ़ाती हैं। राजकीय सहायता कुछ नहीं।

यह अति संक्षिप्त परिचय गत पचास ५० वर्ष से छिपा ही रहा। महामान्य राष्ट्रपति द्वारा सम्मान दिये जाने पर, सरकार द्वारा परिचय माँगा गया, तब न चाहते हुए यह सब भेद खोलना पड़ा[2]। दैवेच्छा बलीयसी !!!

---

१. आचार्यवर के स्वर्गवास के अनन्तर उनका निजी पुस्तकालय भी रामलाल कपूर ट्रस्ट के पुस्तकालय का ही अङ्ग बन गया है।

२. यह परिचय सन् १९६३ के आरम्भ में राष्ट्रपति को भेजा गया था।

—युधिष्ठिर मीमांसक

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥४।१।१॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ५।१॥ स०—ङी च आप् च प्रातिपदिकं च, ङ्याप्प्रातिपदिकम् तस्मात्......समाहारो द्वन्द्वः ॥ ङी इत्यनेन ङीप्, ङीष्, ङीन् इत्येते प्रत्ययाः सामान्येन गृह्यन्ते, एवम् आप्शब्देनापि टाप्, डाप्, चाप् इत्येते प्रत्ययाः । अर्थः—अधिकारोऽयम्, आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः, इतोऽग्रे ङ्यन्तात्, आबन्तात्, प्रातिपदिकाच्च वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः भवन्ति ॥ उदाहरणान्यग्रिमसूत्रे द्रष्टव्यानि ॥

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है, इसकी अनुवृत्ति ५।४।१६० तक जायेगी ॥ यहाँ से आगे ५।४।१६० तक के कहे हुये प्रत्यय [ङ्याप्प्रातिपदिकात्] ङ्यन्त, आबन्त तथा प्रातिपदिक से हुआ करेंगे ॥ ङी से यहाँ ङीप्, ङीष्, ङीन् तथा आप् से टाप्, डाप्, चाप् का सामान्य करके ग्रहण है ॥

स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ॥४।१।२॥

स्वौ...ङ्योस्सुप् १।१॥ स०—सु च, औ च, जस् च, अम् च, औट् च शस् च टा च भ्यां च भिस् च ङे च भ्यां च भ्यस् च ङसि च भ्यां च भ्यस् च ङस् च ओस् च आम् च ङि च ओस् च सुप् च, स्वौजस०... सुप्, समाहारो द्वन्द्वः । अनु०—ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप्, इत्येते प्रत्ययाः ङ्याप्प्रातिपदिकाद् भवन्ति ॥ उदा०—ङीप्—कुमारी कुमार्यौ कुमार्यः । कुमारीम् कुमार्यौ कुमारीः । कुमार्या कुमारीभ्याम् कुमारीभिः । कुमार्यै कुमारीभ्याम् कुमारीभ्यः । कुमार्याः कुमारी-

भ्याम् कुमारीभ्यः । कुमार्याः कुमार्योः कुमारीणाम् । कुमार्याम् कुमार्योः कुमारीषु । हे कुमारि हे कुमार्यौ हे कुमार्यः ॥ ङीप्—गौरी गौर्यौ गौर्यः, एवं सप्तविभक्तिषु रूपाणि कुमारीवत् ज्ञेयानि । ङीन्—शार्ङ्गरवी, शिष्टं कुमारीवत् । टाप्—खट्वा खट्वे खट्वाः । खट्वाम् खट्वे खट्वाः । खट्वया खट्वाभ्याम् खट्वाभिः । खट्वायै खट्वाभ्याम् खट्वाभ्यः । खट्वायाः खट्वाभ्याम् खट्वाभ्यः । खट्वायाः खट्वयोः खट्वानाम् । खट्वायाम् खट्वयोः खट्वासु । हे खट्वे हे खट्वे हे खट्वाः ॥ डाप्—बहुराजा बहुराजे, एवं पूर्ववत् सप्तविभक्तिषु ज्ञेयानि । चाप्—कारीषगन्ध्या, शिष्टं खट्वावद् ज्ञेयम् ॥ प्रातिपदिकात्—दृषत् दृषदौ दृषदः । दृषदम् दृषदौ दृषदः । दृषदा दृषद्भ्याम् दृषद्भिः । दृषदे दृषद्भ्याम् दृषद्भ्यः । दृषदः दृषद्भ्याम् दृषद्भ्यः । दृषदः दृषदोः दृषदाम् । दृषदि दृषदोः दृषत्सु । हे दृषत् हे दृषद् हे दृषदौ हे दृषदः ॥

भाषार्थ.—[*स्वौज......स्सुप्*] सु, औ, जस् आदि २१ प्रत्यय सभी ङ्यन्त, आबन्त तथा प्रातिपदिकों से होते हैं ॥

स्त्रियाम् ॥४।१।३॥

स्त्रियाम् ७।१॥ *अर्थः*—अधिकारोऽयम्, *समर्थानां प्रथमाद्वा* (४।१।८२) इत्यस्मात् पूर्वं पूर्वम् ॥ इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः स्त्रियां = स्त्रीलिङ्गे भविष्यन्ति ॥ उदाहरणान्यग्रे द्रष्टव्यानि ॥

भाषार्थ.—[*स्त्रियाम्*] यह अधिकार सूत्र है, *समर्थानां प्रथमाद्वा* से पहले २ तक जायेगा । यहाँ से आगे के कहे हुये प्रत्यय प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग अर्थ में हुआ करेंगे ॥

विशेष—इस स्त्रियाम् के अधिकार में *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* सम्पूर्ण सूत्र का अधिकार होने पर भी केवल प्रातिपदिकात् का ही आगे के स्त्री प्रत्यय विधायक सूत्रों में सम्बन्ध बैठता है 'ङ्याप्' का नहीं, क्योंकि ङी आप् का विधान तो इन्हीं सूत्रों से होता है, यह बात स्त्री प्रकरण में सर्वत्र ध्यान में रखनी चाहिये ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥४।१।४॥

अजाद्यतः ५।१॥ टाप् १।१॥ *स०*—अज आदिर्येषां ते अजादयः, अजादयश्च अत् च, अजाद्यत्, तस्मात् अजाद्यतः, बहुव्रीहिगर्भसमाहारो

भाषार्थः—[*उगितः*] उगिदन्त प्रातिपदिक से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥

वनो र च ॥४।१।७॥

वनः ६।१॥ र लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, ङीप्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वन्नन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, रेफश्चान्तादेशो भवति ॥ *उदा०*—धीवरी, पीवरी, शर्वरी ॥ नान्तत्वान्ङीप् सिद्धः, रादेशार्थं वचनम् ।

भाषार्थः—[*वनः*] वन्नन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है, [च] तथा उस वन्नन्त प्रातिपदिक को [र] रेफ अन्तादेश भी हो जाता है ॥ *विशेषः*—वनः में प्रत्यय विधानकाल में पञ्चमी विभक्ति तथा रेफ अन्तादेश करने में षष्ठी विभक्ति वाक्य भेद से माननी पड़ेगी, जिससे *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्तिम अल् को ही रेफादेश हो ॥ *उदा०*—धीवरी (कर्म करने वाली) । पीवरी (मोटी स्त्री) । शर्वरी (रात, या हल्दी) ॥ धीवन् पीवन् तथा शर्वन् शब्द नान्त हैं, सो ङीप् प्रत्यय पूर्वसूत्र (४।१।५) से सिद्ध है नकार को इस सूत्र से रेफादेश होकर धीवरी आदि बन गया ॥

पादोऽन्यतरस्याम् ॥४।१।८॥

पादः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, ङीप्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पादन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ *उदा०*—द्विपदी, द्विपात्, त्रिपदी, त्रिपात्, चतुष्पदी, चतुष्पात् ॥

भाषार्थः—[*पादः*] पादन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥ *संख्यासुपूर्वस्य* (५।४।१४०) सूत्र से समासान्त अकार लोप करके हलन्त पाद् शब्द का ग्रहण इस सूत्र में किया गया है, अतः इस सूत्र से समासान्त अकार लोप किये हुये पाद् शब्द से ही ङीप् विकल्प से होता है ।

यहाँ से *पादः* की अनुवृत्ति ४।१।९ तक जायेगी ॥

टाबृचि ॥४।१।९॥

टाप् १।१॥ ऋचि ७।१॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, पादः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—ऋचि वाच्यायां पादन्तात् प्रातिपदिकात्

द्वन्द्वः ॥ अनु०—प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्तेभ्यश्च स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अजा एडका कोकिला। अदन्तेभ्यः—देवदत्ता कृष्णा ॥

भाषार्थः—[*अजाद्यतः*] अजादि गण पठित प्रातिपदिकों से तथा अदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [*टाप्*] टाप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अजा (बकरी), एडका (भेड़), कोकिला (कोयल), देवदत्ता (देवदत्ता नाम की स्त्री), कृष्णा (कृष्णा नामक स्त्री) ॥ पूर्ववत् खट्वा के समान (४।१।२) सिद्धि जानें। अज टाप् = अजा ॥

यहाँ से 'अतः' की अनुवृत्ति सम्पूर्ण स्त्री प्रकरण में जायेगी, जो कि सामर्थ्य से ही आगे के सूत्रों में बैठेगी। जहाँ हलन्त प्रातिपदिकों से स्त्री-प्रत्यय का विधान किया होगा, ऐसे स्थलों में असामर्थ्य होने से 'अतः' का संबन्ध न होगा।

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥४।१।५॥

ऋन्नेभ्यः ५।३॥ ङीप् १।१॥ स०—ऋच्च नश्च ऋन्नाः, तेभ्यः = ऋन्नेभ्यः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऋकारान्तेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऋकारान्तेभ्यः—कर्त्री, हर्त्री। नकारान्तेभ्यः—दण्डिनी, छत्रिणी ॥

भाषार्थ—[*ऋन्नेभ्यः*] ऋकारान्त तथा नकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [*ङीप्*] ङीप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*ङीप्*' की अनुवृत्ति ४।१।२४ तक जायेगी ॥

उगितश्च ॥४।१।६॥

उगितः ५।१॥ च अ० ॥ स०—उक् (प्रत्याहार) इत् यस्य सोऽयमुगित् तस्मात्...... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—स्त्रियाम्, ङीप्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भवती, अतिभवती, पचन्ती, यजन्ती ॥

स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्विपदा ऋक्, त्रिपदा ऋक्, चतुष्पदा ऋक् ॥

भाषार्थः—कृत समासान्त पादन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में [*ऋचि*] ऋचा वाच्य हो तो [*टाप्*] टाप् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से ङीप् विकल्प से प्राप्त था टाप् विधान कर दिया। उदा०—द्विपदा ऋक् (दो पाद वाली ऋचा)। त्रिपदा ऋक् (तीन पाद वाली ऋचा) ॥ परि० ४।१।८ के समान ही सिद्धि जानें, केवल टाप् ही विशेष है ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥४।१।१०॥

न अ० ॥ षट्स्वस्रादिभ्यः ५।३॥ *स०*—स्वसा आदिर्येषां ते स्वस्रादयः, षट् च स्वस्रादयश्च, षट्स्वस्रादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*–स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य स्त्रियां प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—पञ्च ब्राह्मण्यः सप्त, नव, दश। स्वस्रादिभ्यः—स्वसा, दुहिता, ननान्दा, याता ॥

भाषार्थः—[*षट्स्वस्रादिभ्य*] षट् संज्ञक प्रातिपादिकों से तथा स्वस्रादि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विहित प्रत्यय [*न*] नहीं होता है ॥ यहाँ जिस शब्द से *ऋन्नेभ्यो०* (४।१।५) से ङीप्, तथा *अजाद्यतष्टाप्* से टाप् जो भी स्त्री प्रत्यय प्राप्त होते हैं, उन सबका यह निषेध है ॥

यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति ४।१।१२ तक जायेगी ॥

मनः ॥४।१।११॥

मनः ५।१॥ *अनु०*—न, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मन्नन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—दामा दामानौ दामानः। पामा पामानौ पामानः। सीमा सीमानौ सीमानः ॥

भाषार्थः—[*मनः*] मन्नन्त प्रातिपादिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहीं होता ॥ नकारान्त होने से *ऋन्नेभ्यो ङीप्* से ङीप् प्राप्त था उसका निषेध कर दिया है ॥

अनो बहुव्रीहेः ।।४।१।१२।।

अनः ५।१।। बहुव्रीहेः ५।१।। अनु०—न, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ।। *अर्थः*—अन्नन्तात् बहुव्रीहेः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति ।। *उदा०*—शोभनं पर्व अस्या इति सुपर्वा सुपर्वाणौ सुपर्वाणः । शोभनं चर्म अस्याः, सुचर्मा सुचर्माणौ सुचर्माणः ।।

भाषार्थः—[*बहुव्रीहेः*] बहुव्रीहि समास में जो [*अनः*] अन्नन्त प्रातिपदिक है उससे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहीं होता ।। पूर्ववत् ङीप् प्रत्यय प्राप्त था उसका निषेध कर दिया ।। *उदा०*—सुपर्वा (जिसके अच्छे जोड़ हैं) । सुचर्मा (जिसका सुन्दर चमड़ा है) ।। यहाँ अस्वपद विग्रह समास है । *अनेकमन्य०* (२।२।२४) से समास आदि होकर नान्त होने से सुपर्वन् सुचर्मन् से ङीप् (४।१।५) प्रत्यय प्राप्त था, प्रकृतसूत्र ने उसका निषेध कर दिया है, तो दामा के समान ही सुचर्मा आदि बन गया ।।

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ।।४।१।१३।।

डाप् १।१।। उभाभ्याम् ५।२।। अन्यतरस्याम् ७।१।। *अनु०*—स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उभाभ्याम् = मन्नन्तात् प्रातिपदिकादन्नन्ताच्च बहुव्रीहेः प्रातिपदिकात् विकल्पेन स्त्रियाम् डाप् प्रत्ययो भवति । *उदा०*—मन्नन्तात् पामा पामे पामाः, सीमा सीमे सीमाः । न च भवति—पामा पामानौ पामानः, सीमा सीमानौ सीमानः । अन्नन्ताद् बहुव्रीहेः—बहवः राजानः सन्ति यस्यां सभायां, बहुराजा, बहुराजे बहुराजाः, बहुतक्षा बहुतक्षे बहुतक्षाः, सुपर्वा सुपर्वे सुपर्वाः । न च भवति-बहुराजा बहुराजानौ बहुराजानः । बहुतक्षा बहुतक्षाणौ बहुतक्षाणः । सुपर्वा सुपर्वाणौ सुपर्वाणः ।।

भाषार्थः—[*उभाभ्याम्*] दोनों से अर्थात् ऊपर कहे गये मन्नन्त प्रातिपादिकों से तथा बहुव्रीहि समास में जो अन्नन्त प्रातिपदिक उनसे स्त्रीलिङ्ग में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*डाप्*] डाप् प्रत्यय होता है ।।

उदा०—मन्नन्त से—पामा पामे पामाः (खुजली) । सीमा सीमे सीमाः (हद मर्यादा) । पक्ष में जब डाप् नहीं हुआ तो मनः से ङीप्

का भी निषेध होकर पामा, पामानौ पामानः बना। अन्नन्त बहुव्रीहि से—बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः (बहुत राजाओं वाली सभा)। बहु-तक्षा, बहुतक्षे, बहुतक्षाः (बहुत बढ़ई हैं जिस नगरी में)। पक्ष में जब डाप् नहीं हुआ तो *अनो बहुव्रीहेः* से ङीप् का भी निषेध होकर—बहु-राजानौ बहुराजानः आदि प्रयोग बनेंगे॥ पामन् सीमन् आदि शब्दों से डाप् तथा टेः (६।४।१४३) से टि भाग (अन्) का लोप होकर पाम् आ = पामा बना, शेष सिद्धि डाप् पक्ष में परि० ४।१।२ के खट्वा के समान जानें। जब डाप् नहीं हुआ तो परि० ४।१।११ के दामा के समान सिद्धि जानें। शेष द्विवचन बहुवचन में पामन् औ = पामानौ, पामन् जस् = पामानः आदि में कुछ भी विशेष नहीं है॥

अनुपसर्जनात् ॥४।१।१४॥

अनुपसर्जनात् ५।१॥ *स०*—न उपसर्जनम् अनुपसर्जनम्, तस्मात्....नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, प्रत्ययः॥ *अर्थः*—अधिकारोऽयम्। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः स्त्रीप्रत्ययाः *दैवयज्ञिशौचि०* (४।१।८१) इति यावद् अनुपसर्जनात् भवन्ति॥ उपसर्जनं गौणम् अनुपसर्जनं = प्रधानम्॥ *उदा०*—कुरुषु चरतीति कुरुचरी, मद्रचरी॥

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है। *दैवयज्ञिशौचि०* (४।१।८१) सूत्र तक जायेगा। यहाँ से आगे के प्रत्यय [*अनुपसर्जनात्*] अनुपसर्जन प्रातिपदिक से हुआ करेंगे उपसर्जन से नहीं॥

यहाँ *प्रथमानिर्दिष्टं०* (१।२।४३) से विहित उपसर्जन संज्ञा का ग्रहण नहीं किया गया, किन्तु उपसर्जन का अर्थ यहाँ गौण है, एवं अनुपसर्जन का अर्थ है प्रधान॥ उदाहरण में कुरु उपपद रहते चर धातु से चरेष्टः (३।२।१६) से ट प्रत्यय होकर कुरुचर बना है। अब यह कुरुचर शब्द अनुपसर्जन = प्रधान है क्योंकि कुरुचर में तत्पुरुष (२।२।१९) समास हुआ है, और तत्पुरुष समास उत्तरपद प्रधान होता है, अतः टित् लक्षण *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर कुरुचरी बना है॥ इसके विपरीत जहाँ टित् प्रत्ययान्त उपसर्जन अर्थात् गौण हैं यथा बहुकुरुचर शब्द है, उससे टित्लक्षण ङीप् नहीं होता। 'बहवः कुरुचराः सन्ति यस्याम् नगर्याम्' इति बहुकुरुचरा यहाँ बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहि

समास अन्य पदार्थ प्रधान होता है, समासगत पद उपसर्जन होते हैं, अतः टित् प्रत्ययान्त होते हुये भी अनुपसर्जन न होने से बहुकुरुचर शब्द से ङीप् नहीं होता, किन्तु *अजाद्यतष्टाप्* से टाप् होकर बहुकुरुचरा बनता है। यही बात आगे सर्वत्र स्त्रीप्रकरण में समझनी चाहिये ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥४।१।१५॥

टिड्ढाण०......क्वरपः ५।१॥ *स०*—ट् इत् यस्य स टित्, बहुव्रीहिः। टित् च ढश्च अण् च अञ्च द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च तयप् च ठक् च ठञ् च कञ्च क्वरप् चेति टिड्ढाणञ्...क्वरप्, तस्मात्...समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—अतः, ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप् इत्येवमन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—टित्-कुरुचरी, मद्रचरी। ढ—सौपर्णेयी, वैनतेयी। अण्—कुम्भकारी, नगरकारी, औपगवी। अञ्—औत्सी, औदपानी। द्वयसच्—उरुद्वयसी, जानुद्वयसी। दघ्नच्—उरुदघ्नी, जानुदघ्नी। मात्रच्—उरुमात्री, जानुमात्री। तयप्—पञ्चतयी, दशतयी। ठक्—आक्षिकी, शालाकिकी। ठञ्—लावणिकी। कञ्-यादृशी, तादृशी। क्वरप्—इत्वरी, नश्वरी, जित्वरी॥

भाषार्थः—[*टिड्ढा०...क्वरपः*] टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप् प्रत्ययान्त अदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है॥

यञश्च ॥४।१।१६॥

यञः ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—अतः, ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अनुपसर्जनाद् यञन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—गार्गी, वात्सी॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन [*यञः*] यञन्त प्रातिपदिक से [*च*] भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'यञः' की अनुवृत्ति ४।१।१८ तक जायेगी॥

प्राचां ष्फस्तद्धितः ॥४।१।१७॥

प्राचाम् ६।३॥ ष्फः १।१॥ तद्धितः १।१॥ *अनु०*—अतः, यञः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनुपसर्जनेभ्यो यञन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राचामाचार्याणां मतेन स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—गार्ग्यायणी वात्स्यायनी। अन्येषां मते—गार्गी वात्सी ॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन यञन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [*प्राचाम्*] प्राचीन आचार्यों के मत में [*ष्फः*] ष्फ प्रत्यय होता है और वह [*तद्धितः*] तद्धित संज्ञक होता है ॥ *उदा०*—गार्ग्यायणी (गर्ग की पौत्री) वात्स्यायनी। दूसरों के मत में—गार्गी, वात्सी। गार्ग्य यञन्त प्रातिपदिक से ष्फ होकर, 'फ' को आयन् तथा णत्व होकर गार्ग्यायण बना, अब ष्फ की तद्धित संज्ञा होने से *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर *षिद्गौरादिभ्यश्च* (४।१।४१) से ङीप् हो गया तो गार्ग्यायणी बन गया ॥

यहाँ से '*ष्फस्तद्धितः*' की अनुवृत्ति ४।१।१९ तक जायेगी।

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥४।१।१८॥

सर्वत्र अ० ॥ *लोहितादिकतन्तेभ्यः* ५।३॥ *स०*—लोहित आदिर्येषां ते लोहितादयः, बहुव्रीहिः। कत अन्ते येषां ते कतन्ताः[1] बहुव्रीहिः। लोहितादयश्च ते कतन्ताश्च लोहितादिकतन्ताः, तेभ्यः ''कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—ष्फस्तद्धितः, अतः, यञः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यञन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः कतपर्यन्तेभ्यो लोहितादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सर्वत्र = सर्वेषां मते स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—लौहित्यायनी, शांसित्यायनी, बाभ्रव्यायणी ॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन यञन्त [*लोहितादिकतन्तेभ्यः*] लोहित से लेकर कत पर्यन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग विषय में ष्फ प्रत्यय होता है

---

१. कत+अन्त यहाँ '*शकन्ध्वादिषु पररूपं वक्तव्यम्*' (वा० ६।१।९४) वार्त्तिक के नियम से पररूप होता है ॥

[*सर्वत्र*] सब आचार्यों के मत में, और वह तद्धित संज्ञक होता है ॥ लोहितादि गण गर्गादि गण के अन्तर्गत पढ़ा है, अतः यञ् प्रत्यय ४।१।१०५ से होकर प्रकृत सूत्र से ष्फ प्रत्यय हो जाता है। यहाँ भी तद्धित संज्ञा करने का पूर्वसूत्रोक्त फल ही है ॥ *उदा०*—लौहित्यायनी (लोहित की पौत्री)। शांसित्यायनी (शंसित की पौत्री)। बाभ्रव्यायणी (बभ्रु की पौत्री) ॥ लौहित्य शांसित्य यञन्त प्रातिपदिकों से यहाँ ष्फ हुआ है। बभ्रु शब्द से *मधुबभ्र्वो०* (४।१।१०६) से यञ् हुआ है। *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण होकर बभ्रो बना, *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) वान्तादेश होकर बाभ्रव्य बना, अब ष्फ होकर बाभ्रव्यायणी पूर्ववत् बन गया ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥४।१।१९॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *स०*—कौरव्यश्च माण्डूकश्च कौरव्यमाण्डूकौ ताभ्यां ...... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ष्फस्तद्धितः, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कौरव्य, माण्डूक इत्येताभ्याम् अनुपसर्जनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—कौरव्यायणी, माण्डूकायनी ॥

भाषार्थः—[*कौरव्यमाण्डूकाभ्याम्*] कौरव्य तथा माण्डूक अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय होता है, और वह तद्धित संज्ञक होता है ॥ *कुर्वादिभ्यो ण्यः* (४।१।१५१) से कुरु शब्द से ण्य प्रत्यय होकर, *ओर्गुणः* (६।४।१४६) *वान्तो यि०* (६।१।७६) लगाकर कौरव्य बना है, सो यहाँ टाप् प्राप्त था, इसी प्रकार मण्डूक शब्द से ढक् च *मण्डूकात्* (४।१।११९) से अण् होकर माण्डूक बना है, सो *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् प्राप्त था, ष्फ विधान कर दिया है, शेष सिद्धि पूर्ववत् ही जानें ॥

वयसि प्रथमे ॥४।१।२०॥

वयसि ७।१॥ प्रथमे ७।१॥ *अनु०*—ङीप्, अतः, अनुपसर्जनात् स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमे वयसि वर्त्तमानेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यो ऽदन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुमारी, किशोरी, बर्करी ॥

भाषार्थः—[*प्रथमे*] प्रथम [*वयसि*] वयः = अवस्था में वर्त्तमान अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कुमारी किशोरी (१६ वर्ष तक की लड़की)। बर्करी (तरुण बकरी)॥ सिद्धि ४।१।२ के परि० में कर आये हैं ॥

द्विगोः ॥४।१।२१॥

द्विगोः ५।१॥ *अनु०*—ङीप्, अतः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्विगुसंज्ञकादनुपसर्जनाददन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पञ्चपूली[1], दशपूली ॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन अदन्त [*द्विगोः*] द्विगु संज्ञक प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ *संख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा होती है। सिद्धि परि० २।१।५० (भाग १, पृष्ठ ८४२) में देखें ॥

यहाँ से '*द्विगोः*' की अनुवृत्ति ४।१।२४ तक जायेगी ॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥४।१।२२॥

अपरिमाण.....ल्येभ्यः ५।३॥ न अ० ॥ तद्धितलुकि ७।१॥ *स०*—न परिमाणम्=अपरिमाणम्, नञ्तत्पुरुषः। अपरिमाणञ्च बिस्ता च आचितश्च कम्बल्यञ्च अपरि.....कम्बल्यानि, तेभ्यः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक्, तस्मिन्.....षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—द्विगोः, ङीप्, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अकारान्ताद् अपरिमाणान्तात् द्विगोः बिस्ताचितकम्बल्यान्ताच्च द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् तद्धितलुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति ॥ बिस्तादयः परिमाणवाचिनः शब्दास्तदर्थमत्र ग्रहणम् ॥ उदा०—अपरिमाणान्तात्—पञ्चाश्वा दशाश्वा, द्विवर्षा त्रिवर्षा, द्विशता त्रिशता। बिस्तादिभ्यः—द्विबिस्ता त्रिबिस्ता, द्व्याचिता त्र्याचिता, द्विकम्बल्या त्रिकम्बल्या ॥

---

१. पञ्चानां पूलानां समाहारः पञ्चपूली। 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते' नियम से स्त्रीलिङ्ग होने पर इस सूत्र से ङीप् होता है।

भाषार्थः—अदन्त [*अपरि·····ल्येभ्यः*] अपरिमाण, तथा बिस्ता, आचित और कम्बल्य अन्तवाले द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिकों से [*तद्धितलुकि*] तद्धित के लुक् हो जाने पर स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय [*न*] नहीं होता ॥ बिस्ता आचित आदि परिमाणवाची शब्द हैं, अतः इनमें भी निषेध प्राप्त कराने के लिये इनका ग्रहण है ॥ पूर्व सूत्र का ही यह अपवाद सूत्र है ॥

यहाँ से '*न तद्धितलुकि*' की अनुवृत्ति ४।१।२४ तक जायेगी ॥

काण्डान्तात् क्षेत्रे ॥४।१।२३॥

काण्डान्तात् ५।१॥ क्षेत्रे ७।१॥ *अनु*०—न, तद्धितलुकि, द्विगोः, ङीप्, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *स*०—काण्डः अन्ते यस्य स काण्डान्तस्तस्मात्·····बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—काण्डशब्दान्तादनुपसर्जनात् द्विगोः तद्धितलुकि सति क्षेत्रे वाच्ये स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा*०—[*काण्डान्तात्*] द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः क्षेत्रभक्तेः द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः, त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः ॥

भाषार्थः—[*काण्डान्तात्*] काण्ड शब्दान्त अनुपसर्जन द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से तद्धित का लुक् हो जाने पर स्त्रीलिङ्ग में [*क्षेत्रे*] क्षेत्र वाच्य होने पर पर ङीप् प्रत्यय नहीं होता है ॥ *उदा*०—द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः (दो काण्ड = १६ हाथ[1] के बराबर भूमि भाग)। त्रिकाण्डा ॥ द्विकाण्डा में *प्रमाणे द्वयस*० (५।२।३७) से द्वयसजादि प्रत्यय हुये थे, सो उनका *प्रमाणे लो वक्तव्यः* (*वा*० ५।२।३७) इस वार्त्तिक से लुक् हुआ है, अतः *द्विगोः* से प्राप्त ङीप् का प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया, तब *अजाद्यतष्टाप्* से टाप् हो गया, शेष सब कार्य परि० ४।१।२२ की सिद्धियों के समान ही हैं ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥४।१।२४॥

पुरुषात् ५।१॥ प्रमाणे ७।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु*०—न, तद्धितलुकि, द्विगोः, ङीप्, अतः स्त्रियाम्, अनुपसर्जनात्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—प्रमाणेऽर्थे वर्त्तमानोऽनुपसर्जनो यः पुरुषशब्द-

१. देखो 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' पृ० २४८ ॥

स्तदन्तात् द्विगोः तद्धितलुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति विकल्पेन ॥ उदा०—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः द्विपुरुषा द्विपुरुषी, त्रिपुरुषा त्रिपुरुषी ॥

भाषार्थः—[*प्रमाणे*] प्रमाण अर्थ में वर्त्तमान जो अनुपसर्जन [*पुरुषात्*] पुरुष शब्द, तदन्त द्विगु संज्ञक प्रातिपादिक से तद्धित का लुक् होने पर स्त्रीलिङ्ग में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ङीप् प्रत्यय नहीं होता ॥ यहाँ "विकल्प से नहीं होता" का अर्थ होगा विकल्प से हो जाता है, अतः ङीष् तथा पक्ष में *अजाद्यतष्टाप्* से टाप् भी होता है ॥ उदा०—द्विपुरुषा (दो पुरुष के बराबर), द्विपुरुषी । त्रिपुरुषा (तीन पुरुष के बराबर) त्रिपुरुषी ॥ सिद्धि सारी पूर्व सूत्र ४।१।२३ के समान है ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥४।१।२५॥

बहुव्रीहेः ५।१॥ ऊधसः ५।१॥ ङीष् १।१॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊधस्शब्दान्तात् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुण्डोध्नी, घटोध्नी ॥

भाषार्थः—[*बहुव्रीहेः*] बहुव्रीहि समास में वर्त्तमान [*ऊधसः*] ऊधस् शब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में [*ङीष्*] ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ङीप् आते हुये भी ङीष् का विधान स्वर भेद के लिये ही है । ङीप् के निषेध (४।१।१२) तथा डाप् (४।१।१३) का अपवाद यह सूत्र है । यहाँ 'अनुपसर्जनात्' की अनुवृत्ति होने पर भी उसका सम्बन्ध नहीं लगता क्योंकि बहुव्रीहि समास होता ही उपसर्जन है ॥

यहाँ से '*बहुव्रीहेः*' की अनुवृत्ति ४।१।२९ तथा '*ऊधसः*' की अनुवृत्ति ४।१।२६ तक जायेगी ॥

संख्याव्ययादेर्ङीप् ॥४।१।२६॥

संख्याव्ययादेः ५।१॥ ङीप् १।१॥ *स०*—संख्या च अव्ययञ्च, सङ्ख्याव्यये, संख्याव्यये आदिनी यस्य स संख्याव्ययादिः, तस्मात्..... द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । *अनु०*—बहुव्रीहेरूधसः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यादेः; अव्ययादेः ऊधस्शब्दान्तात् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वसूत्रस्यापवादोऽयम् ॥ उदा०—संख्यादेः—द्व्यूध्नी त्र्यूध्नी । अव्ययादेः—अत्यूध्नी निरूध्नी ॥

भाषार्थः—[*संख्याव्ययादेः*] संख्या आदि वाले तथा अव्यय आदि वाले ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि समास वाले प्रातिपदिक से [*ङीप्*] प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से ङीप् की प्राप्ति में यह अपवाद सूत्र है ॥

यहाँ से '*संख्यादेः*' की अनुवृत्ति ४।१।२७ तक तथा '*ङीप्*' की ४।१।२९ तक जायेगी ॥

दामहायनान्ताच्च ॥४।१।२७॥

दामहायनान्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—दामा च हायनश्च दामहायनौ, दामहायनौ, अन्ते यस्य स दामहायनान्तः, तस्मात् द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—संख्यादेः, ङीप्, बहुव्रीहेः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—संख्यादेर्दामहायनान्ताच्च बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वे दामनी यस्याः द्विदाम्नी त्रिदाम्नी। द्वौ हायनौ यस्याः द्विहायनी त्रिहायणी चतुर्हायणी ॥

भाषार्थः—सङ्ख्या आदि वाले [*दामहायनान्तात्*] दाम और हायन शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ द्विदामन् बहुव्रीहि समास वाला शब्द है, अतः अनो *बहुव्रीहेः* (४।१।१२) से ङीप् निषेध तथा डाप् का (४।१।१३) *अन उपधालोपिनः* (४।१।२८) से ङीप् को विकल्प प्राप्त था, सो नित्य ङीप् के लिये वचन है, हायनान्त से टाप् (४।१।४) प्राप्त था ॥ *उदा०*—द्विदाम्नी (दो रस्से वाली गाय)। त्रिदाम्नी। द्विहायनी चतुर्हायणी ॥ सिद्धि पूर्ववत् परिशिष्ट के अनुसार जानें। द्विदामन् के 'म' के 'अ' का लोप *अल्लोपोनः* (६।४।१३४) से हो ही जायेगा। चतुर्हायणी में णत्व *त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य* वचन से हो गया है। चतुर् शब्द *चतेरुरन्* (*उणा० ५।५८*) से उरन् प्रत्ययान्त है सो *ञ्नित्यादि०* (६।१।१९१) से आद्युदात्त है।

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥४।१।२८॥

अनः ५।१॥ उपधालोपिनः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—उपधाया लोपः उपधालोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। उपधालोपोऽस्यास्तीति उपधालोपी, तस्मात् उपधालोपिनः, *अत इनिठनौ* (५।२।११५) इति इनि-प्रत्ययः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहेः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—अन्नन्तो य उपधालोपी बहुव्रीहिस्तस्मात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ *उदा०*—बहवः राजानोऽस्यां सभायां, बहुराज्ञी सभा । पक्षे डाप्—बहुराजे सभे । डाप्ङीप्प्रतिषेधपक्षे—बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः ॥

भाषार्थः—[*अनः*] अन्नन्त जो [*उपधालोपिन*] उपधालोपी बहुव्रीहि समास उससे स्त्रीलिङ्ग में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ 'अन्यतरस्याम्' कहने से *डाबुभाभ्या०* (४।१।१३) तथा *अनो बहुव्रीहेः* (४।१।१२) से कहे हुये डाप् तथा ङीप् का प्रतिषेध भी उपधालोपी प्रातिपदिकों से पक्ष में हो जाता है, जिससे सर्वत्र उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि समास वाले प्रातिपदिकों के तीन रूप बनेंगे । एक ङीप् वाला, दूसरा डाप् वाला, तथा तीसरा ङीप् (तथा डाप्) के प्रतिषेध वाला । डाप् तथा ङीप् प्रतिषेध वाले रूप प्रथमा के एकवचन में एक जैसे ही बनते हैं अतः भेद दर्शाने के लिये डाप् का रूप प्रथमा के द्विवचन में दिखाया है ॥ सिद्धि में कोई विशेष नहीं है ॥

यहाँ से '*अन उपधालोपिनः*' की अनुवृत्ति ४।१।२८ तक जायेगी ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥४।१।२९॥

नित्यम् १।१॥ संज्ञाछन्दसोः ७।२॥ *स०*— संज्ञा च छन्दश्च, संज्ञाछन्दसी, तयोः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अन उपधालोपिनः, बहुव्रीहेः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—अन्नन्तात् उपधालोपिनो बहुव्रीहेः संज्ञायां विषये छन्दसि च नित्यं स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सुराज्ञी अतिराज्ञी नाम ग्रामः । छन्दसि—गौः पञ्चदाम्नी । एकदाम्नी । द्विदाम्नी । एकमूर्ध्नी । समानमूर्ध्नी ॥

भाषार्थः—अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि समास से [*संज्ञाछन्दसोः*] संज्ञा तथा छन्द विषय में [*नित्यम्*] नित्य ही स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि ४।१।२७ सूत्र के समान ही जानें ॥

यहाँ से '*संज्ञाछन्दसोः*' की अनुवृत्ति ४।१।३१ तक जायेगी ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृत-सुमङ्गलभेषजाच्च ॥४।१।३०॥

केवल···भेषजात् ५।१॥ च अ० ॥ स०—केवलश्च भागधेयश्च पापश्च अपरश्च समानश्च आर्यकृतश्च सुमङ्गलश्च भेषजश्च केवल···भेषजं, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—संज्ञाछन्दसोः, ङीप्, स्त्रियाम् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल, भेषज इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संज्ञायां छन्दसि च विषये स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—केवली, केवला इति भाषायाम्। मामकी, मामका इति भाषायाम्। मित्रावरुणयोर्भागधेयी, भागधेया इति भाषायाम्। पापी त्वियम्। पापा इति भाषायाम्। उतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये, अपरा इति भाषायाम्। आर्यकृती। आर्यकृता इति भाषायाम्। समानी, समाना इति भाषायाम्। आर्यकृती। आर्यकृता, इति भाषायाम्। सा नो अस्तु सुमंगली (अथ० २।१९।२), सुमंगला इति भाषायाम्। भेषजी, भेषजा इति भाषायाम्॥

भाषार्थ—[केवल···भेषजात्] केवल मामकादि शब्दों से [च] संज्ञा तथा छन्द विषय में स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है॥ अन्यत्र लौकिक प्रयोग विषय में इन शब्दों से *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४) से टाप् ही होगा।

रात्रेश्चाजसौ ॥४।१।३१॥

रात्रेः ५।१॥ च अ० ॥ अजसौ ७।१॥ स०—न जसिः अजसिः, तस्मिन् अजसौ, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—संज्ञाछन्दसोः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च। अर्थः—रात्रिशब्दात् स्त्रियां संज्ञायां छन्दसि विषये जस् विषयादन्यत्र ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—या रात्री सृष्टा। रात्रीभिः ॥

भाषार्थः—[रात्रे.] रात्रि शब्द से [च] भी स्त्रीलिंग विवक्षित होने पर संज्ञा तथा छन्द विषय में, [अजसौ] जस् विषय से अन्यत्र ङीप् प्रत्यय होता है॥ 'रात्रि ङीप्' यहाँ यस्येति च (६।४।१४८) से लोप होकर रात्री बना॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥४।१।३२॥

अन्तर्वत्पतिवतोः ॥६।२॥ नुक् १।१॥ स०—अन्तर्वत् च पतिवत् च अन्तर्वत्पतिवतौ, तयोः ''इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च। अर्थः—अन्तर्वत् पतिवत् शब्दाभ्यां स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति तयोश्च नुक् आगमो भवति ङीप् सन्नियोगेन॥ उदा०—अन्तर्वत्नी, पतिवत्नी॥

भाषार्थः—[*अन्तर्वत्पतिवतोः*] अन्तर्वत् पतिवत् शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है, तथा ङीप् के साथ २ [नुक्] नुक् आगम भी हो जाता है॥ उदा०—अन्तर्वत्नी (गर्भवती) पतिवत्नी (जिसका पति जीवित है)॥ अन्तर्वत् नुक् ङीप् = अन्तर्वन् न् ई = अन्तर्वत्नी बन गया। इसी प्रकार पतिवत्नी भी जानें॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥४।१।३३॥

पत्युः ६।१॥ नः १।१॥ यज्ञसंयोगे ७।१॥ स०—यज्ञेन संयोगः, यज्ञसंयोगस्तस्मिन् '''''तृतीयातत्पुरुषः॥ अनु०—ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—पतिशब्दात् स्त्रीलिङ्गे ङीप् प्रत्ययो, नकारश्चान्तादेशो भवति[1] यज्ञसंयोगे गम्यमाने॥ उदा०—यजमानस्य पत्नी। पत्नि वाचं यच्छ॥

भाषार्थः—[*पत्युः*] पति शब्द से स्त्रीलिङ्ग में [*यज्ञसंयोगे*] यज्ञसंयोग गम्यमान होने पर ङीप् प्रत्यय होता है, और [*नः*] नकार अन्तादेश भी हो जाता है॥ पत्युः में वाक्यभेद से पञ्चमी षष्ठी दोनों हैं सो षष्ठी मानकर *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्त्य अल् इकार को नकारादेश हो गया है, तथा पञ्चमी मानकर ङीप् प्रत्यय होता है॥ उदा०—यजमानस्य पत्नी (यजमान की स्त्री)। पत्नि वाचं यच्छ॥

---

१. अनेक वैयाकरण इस और अगले सूत्र मे केवल नकारादेश का विधान मानते हैं, नकारादेश करने पर नान्त हो जाने से ४।१।५ से ङीप् प्रत्यय होता है ऐसा कहते हैं। वस्तुतः ङीप् के प्रकरण में सूत्र का पाठ होने से ङीप् का विधान मुख्य है, उसी के साथ नकारादेश का विधान किया है।

'पत् न् ङीप्' = पत्न् ई = पत्नी बन गया। 'न' में अकार उच्चारणार्थ है। हे पत्नि यहाँ *अम्बार्थनद्यो०* (७।३।१०७) से ह्रस्व होता है॥

यहाँ से '*पत्युर्नः*' की अनुवृत्ति ४।१।३५ तक जायेगी॥

विभाषा सपूर्वस्य ॥४।१।३४॥

विभाषा १।१॥ सपूर्वस्य ६।१॥ *स०*—सह = विद्यमानः पूर्वः = अवयवो यस्य, तत् सपूर्वं तस्य···बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—पत्युर्नः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, अनुपसर्जनात्, परश्च॥ *अर्थः*—सपूर्वस्य = विद्यमानपूर्वस्य पतिशब्दान्तस्यानुपसर्जनस्य प्रातिपदिकस्य स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, नकारादेशश्च॥ वृद्धः पतिरस्याः = वृद्धपत्नी, वृद्धपतिः, स्थूलपत्नी, स्थूलपतिः॥

भाषार्थः—[*सपूर्वस्य*] जिसके पूर्व में कोई शब्द विद्यमान हो ऐसे पति शब्दान्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक को स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प से हो जाता है तथा नकारादेश भी हो जाता है॥ जिस पक्ष में ङीप् नहीं होगा उस पक्ष में नकारादेश भी नहीं होगा॥ *उदा०*—वृद्धपत्नी (वृद्ध है पति जिसका, वह) वृद्धपतिः, स्थूलपत्नी (जिसका मोटा पति है, वह) स्थूलपतिः॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥४।१।३५॥

नित्यम् १।१॥ सपत्न्यादिषु ७।३॥ *स०*—सपत्नी आदिर्येषां ते सपत्न्यादयः, तेषु······बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—पत्युर्नः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सपत्न्यादिषु यः पतिशब्दस्तस्मात् स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति, नकारश्चान्तादेशः॥ पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम्॥ *उदा०*—समानः पतिरस्याः सपत्नी, एकपत्नी॥

भाषार्थः—[*सपत्न्यादिषु*] सपत्न्यादियों में जो पति शब्द उसको ङीप् प्रत्यय तथा नकारादेश [*नित्यम्*] नित्य ही स्त्रीलिंग में हो जाता है॥ पूर्व सूत्र से विकल्प प्राप्त था नित्यार्थ यहाँ वचन है॥ *उदा०*—सपत्नी (जिस स्त्री का समान पति है, अर्थात् दो स्त्रियों का एक ही पति है, वह स्त्री)। एकपत्नी (जिसका एक ही पति है)॥

पूतक्रतोरै च ॥४।१।३६॥

पूतक्रतोः ६।१॥ ऐ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥च अ०॥ अनु०—ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्जनात् पूतक्रतोः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, ऐकारश्चान्तादेशो भवति ॥ उदा०—पूतक्रतोः स्त्री = पूतक्रतायी ॥

भाषार्थ.—अनुपसर्जन [*पूतक्रतोः*] पूतक्रतु प्रातिपादिक से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है [च] तथा [ऐ] ऐकारान्तादेश भी हो जाता है ॥ वाक्य भेद से यहाँ भी पूतक्रतोः में षष्ठी पञ्चमी दोनों मानी जायेंगी ॥

उदा०—पूतक्रतायी (पूतक्रतु नामक पुरुष की स्त्री)। पूतक्रत् ऐ ङीप् = पूतक्रतै, यहाँ *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) लगकर पूतक्रतायी बन गया ॥

यहाँ से 'ऐ' की अनुवृत्ति ४।१।३८ तक जायेगी।

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥४।१।३७॥

वृषा……नाम् ६।३॥ उदात्तः १।१॥ स०—वृषाकपिश्च अग्निश्च कुसितश्च कुसीदश्च वृषा……कुसीदाः, तेषां……इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ऐ, ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्जन वृषाकप्यादिप्रातिपदिकानाम् उदात्त ऐकारादेशो भवति स्त्रियां ङीप् च प्रत्ययः ॥ उदा०—वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी', अग्नायी', कुसितायी', कुसीदायी' ॥

भाषार्थः—[*वृषा…… नाम्*] वृषाकपि अग्नि कुसित कुसीद इन अनुपसर्जन प्रातिपदिकों को [*उदात्तः*] उदात्त ऐकारादेश हो जाता है, तथा स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—वृषाकपायी (वृषाकपि की स्त्री)। अग्नायी (अग्नि की स्त्री)। कुसितायी (कुसित की स्त्री)। कुसीदायी (कुसीद की स्त्री) ॥

यहाँ से '*उदात्तः*' की अनुवृत्ति ४।१।३८ तक जायेगी।

मनोरौ वा ॥४।१।३८॥

मनोः ६।१॥ औ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ वा अ० ॥ अनु०—उदात्तः, ऐ, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—

मनुशब्दात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, औकारश्चान्तादेशो भवति, ऐकारश्चापि, स च उदात्तः। तेन त्रैरूप्यं भवति॥ उदा०— मनोः स्त्री मनावी,[1] मनायी, मनुः॥

भाषार्थः—[*मनोः*] मनु शब्द से स्त्रीलिंग में [*वा*] विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा [*औ*] औकार अन्तादेश एवं ऐकार अन्तादेश भी हो जाता है, और वह ऐकार उदात्त भी होता है। विकल्प कहने से एक बार औकारादेश तथा ङीप् होकर रूप बना, दूसरा ऐकार तथा ङीप् होकर रूप बना, तथा तीसरा जब ङीप् एवं ऐकार औकार नहीं हुये तब मनुः रूप बना॥ उदा०— मनावी (मनु की स्त्री), मनायी, मनुः॥ मन् औ ङीप् = मनावी बना। मन् ऐ ङीप् = मनायी बना है॥ उणादि १।१० से मनु शब्द आद्युदात्त है, सो ऐकार को उदात्त कहने से मनायी में ना का आ उदात्त हुआ, तथा औकारादेश एवं ङीप् के विकल्प पक्ष में आद्युदात्त ही रहा॥

यहाँ से '*वा*' की अनुवृत्ति ४।१।३९ तक जायेगी॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥४।१।३९॥

वर्णात् ५।१॥ अनुदात्तात् ५।१॥ तोपधात् ५।१॥ तः ६।१॥ नः १।१॥ *स०*—तकार उपधा यस्य स तोपधः तस्मात्...... बहुव्रीहिः॥ *अनु०*— वा, ङीप्, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*— वर्णवाचिनोऽदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकादनुदात्तान्तात् तोपधात् विकल्पेन स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति तकारस्य च नकारादेशो भवति॥ उदा०— एनी, एता। श्येनी श्येता। हरिणी हरिता॥

भाषार्थः—[*वर्णा... धात्*] वर्णवाची (रंगवाची) अदन्त अनुपसर्जन अनुदात्तान्त तकार उपधा वाले प्रातिपदिकों से विकल्प से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय तथा [*तः*] तकार को [*नः*] नकारादेश हो जाता है॥ जिस पक्ष में ङीप् नहीं हुआ उस पक्ष में तकार को नकार भी नहीं हुआ, सो टाप् होकर श्येता आदि रूप बने हैं॥ उदा०— एनी एता (चितकबरी)। श्येनी (उजली)। श्येता। हरिणी (हरे रंगवाली)। हरिता॥ *वर्णानां तणति-*

---

१. शतपथे (१।१।४।१६) तु अन्तोदात्त उपलभ्यते। तेन ङीष् प्रत्ययोऽपि भवतीति विज्ञायते।

नितान्तानाम् (फिट् ३३) इस फिट् सूत्र से एत, श्येत, हरित शब्द आद्युदात्त हैं, सो अनुदात्तं पद० (६।१।१५२) लगकर ये सब अनुदात्तान्त शब्द हैं ॥

यहाँ से '*वर्णादनुदात्तात्*' की अनुवृत्ति ४।१।४० तक जायेगी ॥

अन्यतो ङीष् ॥४।१।४०॥

अन्यतः ५।१॥ ङीष् १।१॥ अनु०—वर्णादनुदात्तात्, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तोपधादन्यतः वर्णवाचिनोऽदन्ताद् अनुदात्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सारंगी, कल्माषी, शबली ॥

भाषार्थः—[*अन्यतः*] तोपध वर्णवाची प्रातिपदिकों से अन्य जो वर्णवाची अदन्त अनुदात्तान्त प्रातिपदिक उनसे स्त्रीलिंग में [*ङीष्*] ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ङीप् तथा ङीप् में स्वर का ही भेद है, जो हम पूर्व दर्शा आये हैं। यहाँ तोपध की अपेक्षा से अन्य ग्रहण किया है ॥ *उदा०*—सारंगी (चितकबरी)। कल्माषी (काली, चितकबरी)। शबली (चितकबरी) ॥

यहाँ से '*ङीष्*' की अनुवृत्ति ४।१।६५ तक जायेगी।

षिद्गौरादिभ्यश्च ॥४।१।४१॥

षिद्गौरादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—ष् इत् यस्य स षित्, बहुव्रीहिः। गौर आदिर्येषां ते गौरादयः, बहुव्रीहिः। षित् च गौरादयश्च, षिद्गौरादयस्तेभ्यः ...... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—ङीष्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षिद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः, स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—षिद्भ्यः—नर्तकी, खनकी, रजकी, गार्ग्यायणी, वात्स्यायनी। गौरादिभ्यः—गौरी, मत्सी ॥

भाषार्थः—[*षिद्गौरादिभ्यः*] षित् प्रातिपदिकों से तथा गौरादि प्रातिपदिकों से [*च*] भी स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ नर्तकी आदि की सिद्धि भाग १ परि० १।३।६ पृ०८०१ में देखें, तथा गार्ग्यायणी की सिद्धि ४।१।१७ सूत्र में देखें ॥ गौर ई यहाँ यस्येति लोप होकर गौरी (गौर वर्ण

वाली) बना। 'मत्स्य ई' यहाँ *सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां०* (६।४।१४९) से उपधा यकार तथा यस्येति च (६।४।१४८) से अकार का लोप होकर मत्सी (मछली) बना है॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥४।१।४२॥

जान······कबरात् ५।१॥ वृत्त्य···वेशेषु ७।३॥ *स०*—जानपद० इत्यत्र, समाहारो द्वन्द्वः। वृत्त्यमत्रा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—ङीष्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थ*—जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक, कवर इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं वृत्ति, अमत्र, आवपन, अकृत्रिमा, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा, केशवेश इत्येतेष्वर्थेषु स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—जानपदी भवति वृत्त्यभिधेये। अन्यत्र जानपदी एव। स्वरे विशेषः। कुण्डी भवत्यमत्रे वाच्ये। अन्यत्र कुण्डा एव। गोणी भवति आवपने ऽर्थे, गोणाऽन्यत्र। स्थली भवत्यऽकृत्रिमा चेत्, अन्यत्र स्थला। भाजी भवति श्राणावाच्ये। अन्यत्र भाजा। नागी भवति स्थौल्येऽर्थे, नागाऽन्यत्र। काली भवति वर्णेऽभिधेये, अन्यत्र काला। नीली भवति, अनाच्छादने वाच्ये, नीलाऽन्यत्र। कुशी भवति अयोविकारश्चेत्, अन्यत्र कुशा एव। कामुकी भवति मैथुनेच्छायाम्, अन्यत्र कामुका। कबरी भवति केशवेशेऽर्थे। अन्यत्र कबरा॥

भाषार्थः—[*जानपद······कबरात्*] जानपद इत्यादि ११ प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*वृत्त्यमत्रा···वेशेषु*] वृत्ति अमत्रादि ११ अर्थों में, स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—जानपदी (आजीविका)। कुण्डी (पात्र)। गोणी (बोरी)। स्थली (प्राकृतिक ऊँची जगह)। भाजी (पकी हुई)। नागी (मोटी)। काली (काले रंग वाली)। नीली (औषधि)। कुशी (लोहे की फाली)। कामुकी (वासना युक्त स्त्री)। कबरी (चित्र विचित्र केशविन्यास वाली)॥

वृत्ति अर्थ में वर्त्तमान जानपद शब्द से ङीष् होकर जानपदी शब्द अन्तोदात्त बनता है, जब वृत्ति अर्थ नहीं होता, तब जनपद शब्द का

उत्सादि गण में पाठ होने से भवादि अर्थ में *उत्सादिभ्योऽञ्* (४।१।८६) से अञ् होकर *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् हो गया तो *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (६।१।१९१) से जानपदी शब्द आद्युदात्त होता है। यही विशेष है। ङीप् ङीष् के स्वर का भेद हमने पहिले दिखा ही दिया है। कुण्डी आदि में अमत्रादि अर्थ होने पर ही ङीष् होगा यदि अमत्रादि अर्थ नहीं होगा तो टाप् प्रत्यय (४।१।४) होगा॥

शोणात् प्राचाम् ॥४।१।४३॥

शोणात् ५।१॥ प्राचाम् ६।३॥ *अनु०*—ङीप्, अनुपसर्जनात् स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अनुपसर्जनात् शोणात् प्रातिपदिकात् प्राचाम् आचार्याणां मतेन ङीष् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—शोणी, शोणा॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन [*शोणात्*] शोण प्रातिपदिक से [*प्राचाम्*] प्राचीन आचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। पाणिनि मुनि के मत में टाप् ही होगा॥ *उदा०*—शोणी (लाल घोड़ी)। शोणा॥ ङीष् परे रहते यस्येति लोप होकर शोणी बनेगा, ऐसा आगे भी समझते जाना चाहिये॥

वोतो गुणवचनात् ॥४।१।४४॥

वा अ०॥ उतः ५।१॥ गुणवचनात् ५।१॥ *स०*—गुणम् उक्तवान् गुणवचनः, तस्मात्..... तत्पुरुषः॥ *अनु०*—ङीप्, अनुपसर्जनात् स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—उकारान्तात् गुणवचनादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—पट्वी, पटुः। मृद्वी मृदुः॥

भाषार्थः—[*उतः*] उकारान्त [*गुणवचनात्*] गुणवचन (गुण को कहने वाले) प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में [*वा*] विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—पट्वी (चतुर स्त्री) पटुः। मृद्वी (कोमल स्वभाव वाली)। मृदुः॥ पटु+ई यहाँ यणादेश होकर पट्वी मृद्वी बना है। जिस पक्ष में ङीप् प्रत्यय नहीं हुआ, उस पक्ष में पटुः, मृदुः ही रहा॥

यहाँ से '*वा*' की अनुवृत्ति ४।१।४५ तक जायेगी।

बह्वादिभ्यश्च ॥४।१।४५॥

बह्वादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—बहुरादिर्येषां ते बह्वादयः, तेभ्यः·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—वा, ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बह्वादिभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बह्वी, बहुः ॥

भाषार्थः—[*बह्वादिभ्यः*] बह्वादि प्रातिपदिकों से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*बह्वादिभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।१।४६ तक जायेगी ॥

नित्यं छन्दसि ॥४।१।४६॥

नित्यम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—बह्वादिभ्यः, ङीष्, अनुपसर्जनात्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—बह्वादिभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि विषये स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम् ॥ *उदा०*—बह्वीषु (७।३) हित्वा प्रपिबन् ॥

भाषार्थः—बह्वादि अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से [*छन्दसि*] वेद विषय में [*नित्यम्*] नित्य ही स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ पूर्वसूत्र से विकल्प की प्राप्ति में यह नित्यार्थ वचन है ॥

यहाँ से '*नित्य छन्दसि*' की अनुवृत्ति ४।१।४७ तक जायेगी ॥

भुवश्च ॥४।१।४७॥

भुवः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—नित्यं छन्दसि, ङीष्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियां, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—छन्दसि विषये स्त्रियाम् अनुपसर्जनाद् भुवः प्रातिपदिकात् नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विभ्वी च, प्रभ्वी च, सम्भ्वी च ॥

भाषार्थः—वेद विषय में अनुपसर्जन [*भुवः*] भु शब्दान्त प्रातिपदिकों से [च] भी, स्त्रीलिंग में नित्य ही ङीष् प्रत्यय होता है ॥ विभु प्रभु सम्भु शब्द *विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम्* (३।२।१८०) सूत्र से डुप्रत्यय होकर

सिद्ध होते हैं, तत्पश्चात् प्रकृत सूत्र से ङीप् होकर, विभ्वी आदि की सिद्धि पूर्ववत् जानें ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥४।१।४८॥

पुंयोगात् ५।१॥ आख्यायाम् ७।१॥ अत्र पञ्चम्यर्थे सप्तमी ॥ *अनु०*—ङीष्, अतः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *स०*—पुंसा योगः (सम्बन्धः) पुंयोगः, तस्मात्''''तृतीयातत्पुरुषः ॥ *अर्थः*—पुंयोगात् = पुरुषसम्बन्धकारणात् यद् अनुपसर्जनम्, अदन्तं प्रातिपदिकं स्त्रियाम् वर्तते पुंस आख्याभूतं, तस्मात् ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गणकस्य स्त्री गणकी, प्रष्ठी, महामात्री, प्रचरी ॥

भाषार्थः—[*पुंयोगात्*] पुरुष के साथ सम्बन्ध होने के कारण जो प्रातिपादिक स्त्रीलिंग में वर्तमान हो तथा पुँलिंग को [*आख्यायाम्*] पहले कहा हो, ऐसे अदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—गणकी (ज्योतिषी की स्त्री) । प्रष्ठी (नेता की स्त्री) । महामात्री (प्रधान मन्त्री की स्त्री) । प्रचरी (नेता की स्त्री) ॥

गणकी आदि शब्द पुरुष के सम्बन्ध से स्त्रीलिंग में हैं क्योंकि गणक की स्त्री होने के कारण वह गणकी कही जा रही है, अतः पुंयोग है एवं गणक आदि शब्द पहले पुँल्लिंग की आख्यावाले ही थे, अतः ङीष् प्रत्यय हो गया है । जो स्वयमेव ज्योतिषी स्त्री होगी या प्रधान मन्त्रिणी होगी, वह गणिका महामात्रा कहलायेगी, अर्थात् उनसे ङीष् न होकर टाप् होगा ॥

यहाँ से '*पुंयोगात्*' की अनुवृत्ति ४।१।४९ तक जायेगी ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ॥४।१।४९॥

इन्द्र''''''चार्याणाम् ६।३॥ आनुक् १।१॥ *स०*—इन्द्र० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—पुंयोगात्, ङीष्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियां, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इन्द्र, वरुण, भव शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, आचार्य इत्येतेभ्यः पुंयोगात् स्त्रियां वर्त्तमानेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ङीष् प्रत्ययो भवत्यानुक्

चागमः ॥ उदा०—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, हिमानी, अरण्यानी, यवानी, यवनानी, मातुलानी, आचार्यानी ॥

भाषार्थः—[*इन्द्र......र्याणाम्*] इन्द्र वरुण आदि प्रातिपदिक पुंल्लिङ्ग के हेतु से स्त्रीत्व में वर्त्तमान हों तो, उनसे ङीष् प्रत्यय तथा [*आनुक्*] आनुक् का आगम होता है ॥ उदा०—इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री)। वरुणानी (वरुण की स्त्री)। भवानी (शिव नामक राजा की स्त्री)। शर्वाणी (महादेव की स्त्री)। रुद्राणी (रुद्र की स्त्री)। मृडानी (मृड नामक व्यक्ति की स्त्री)। हिमानी वह हिम जो सदा बर्फ रूप ही रहती है[1], कभी पिघलती नहीं। अरण्यानी (घना जंगल[2])। यवानी (खराब जौ)। यवनानी (यवनों की लिपि)। मातुलानी (मामी)। आचार्यानी (आचार्य की स्त्री) ॥

आद्यन्तौ टकितौ (१।१।४५) से आनुक् आगम अन्त में होकर, इन्द्र आनुक् ङीप्, = इन्द्रान् ई = इन्द्रानी बना, *अट्कुवाङ्०* (८।४।२) से णत्व होकर इन्द्राणी बना। आगे भी जहाँ-जहाँ णत्व कार्य करना हो तो, इसी सूत्र से होगा। सिद्धियां सब इसी प्रकार हैं ॥ *हिमारण्ययोर्महत्त्वे* इस वार्त्तिक से सदा विद्यमान रहने वाली हिम, वा घने जंगल को कहने में ही ङीष् होगा। *यवाद्दोषे* इस वार्त्तिक से दुष्ट यव[3] को कहने में ही प्रकृत सूत्र से ङीष् होगा। *यवनाल्लिप्याम्* इस वार्त्तिक से लिपि को कहने में ही ङीष् होगा, अतः इन शब्दों में पुंयोग का सम्बन्ध नहीं है। आचार्यानी यहाँ *आचार्यादणत्वं च* इस वार्त्तिक से णत्व नहीं होता ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥४।१।५०॥

क्रीतात् ५।१॥ करणपूर्वात् ५।१॥ स०—करणं पूर्वमस्मिन् इति करणपूर्वः, तस्मात्......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ङीष्, अतः, अनुपसर्जनात्

---

१. हिमानी में हिम का महत्त्व घनत्त्व विवक्षित है, वैपुल्य नहीं।

२. निरुक्तकार यास्क ने 'अरण्यस्य पत्नी अरण्यानी' (९।२९) कहा है। यहाँ पत्नी का अर्थ पालयित्री मात्र है। अरण्य का केन्द्रीभूत घना जंगल ही सिंहादि का आश्रय स्थान होने से बाह्य जंगल का रक्षक होता है।

३. यवानी अजवायन को कहते हैं। दुष्टत्व यहां किंनिमित्तक है, यह विचारणीय है।

स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—करणपूर्वात् क्रीत-शब्दान्तादनुपसर्जनाददन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती, वसनक्रीती ॥

भाषार्थः—[*करणपूर्वात्*] करण कारक पूर्व वाले [*क्रीतात्*] क्रीत शब्दान्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—वस्त्रक्रीती (वस्त्र के द्वारा खरीदी हुई) वसनक्रीती ॥ उदाहरण में *कर्तृकरणे कृता०* (२।१।३१) से समास होकर ङीप् हो गया है ॥

यहाँ से '*करणपूर्वात्*' की अनुवृत्ति ४।१।५१ तक जायेगी ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥४।१।५१॥

क्तात् ५।१॥ अल्पाख्यायाम् ७।१॥ *स०*—अल्पस्य आख्या, अल्पाख्या, तस्याम्‥षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—करणपूर्वात्, अतः, अनुपसर्जनात्, ङीप्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—करणपूर्वात् क्तान्ताद-नुपसर्जनात् प्रातिपदिकादल्पाख्यायां गम्यमानायां स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अभ्रविलिप्ती द्यौः, सूपविलिप्ती पात्री ॥

भाषार्थः—करणपूर्व अनुपसर्जन [*क्तात्*] क्तान्त प्रातिपदिक से [*अल्पाख्यायाम्*] अल्प = थोड़े की आख्या = कथन गम्यमान हो तो स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—अभ्रविलिप्ती द्यौः (छिटपुट बादलों वाला आकाश) सूपविलिप्ती पात्री (थोड़ी सी दाल लगा हुआ बर्तन) ॥ 'अभ्रविलिप्त' आदि करण पूर्व वाले क्तान्त प्रातिपदिक हैं, अल्प की आख्या होने से ङीप् हो गया है ॥

यहाँ से '*क्तान्तात्*' की अनुवृत्ति ४।१।५३ तक जायेगी ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥४।१।५२॥

बहुव्रीहेः ५।१॥ च अ० ॥ अन्तोदात्तात् ५।१॥ *अनु०*—क्तान्तात्, अतः, ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बहु-व्रीहेः क्तान्ताद् अन्तोदात्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शङ्खं भिन्नमस्याः = शङ्खभिन्नी, ऊरुभिन्नी । गलम् उत्कृत्त-मस्याः = गलोत्कृत्ती । केशाः लूना अस्याः = केशलूनी ॥

भाषार्थः—[*बहुव्रीहेः*] बहुव्रीहि समास में [*च*] भी जो क्तान्त [*अन्तोदात्तात्*] अन्तोदात्त प्रातिपदिक, उनसे स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—शङ्खभिन्नी (जिसका ललाट क्षत गया हो, ऐसी स्त्री)। ऊरुभिन्नी (जंघा जिसकी क्षत हो गयी ऐसी स्त्री)। गलोत्कृत्ती (गला जिसका क्षत हो गया हो)। केशलूनी (केश जिसके कट गये हों)॥ 'भिन्नः' की सिद्धि हम प्रथम भाग परि० १।१।५ में दिखा चुके हैं। *जातिकालसुखा०* (६।२।१६९) से शङ्खभिन्नादि शब्द अन्तोदात्त हैं सो ङीप् हो गया है॥ केशलूनी में लूनः के निष्ठा को नत्व *ल्वादिभ्यः* (८।२।४४) से हुआ है। *निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम्* (*वा०* २।२।३६) इस वार्त्तिक से निष्ठा का परनिपात होता है॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।१।५३ तक जायेगी॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥४।१।५३॥

अस्वाङ्गपूर्वपदात् ५।१॥ वा अ०॥ *स०*—न स्वाङ्गम्, अस्वाङ्गम्, नञ् तत्पुरुषः। अस्वाङ्गं पूर्वपदं यस्य, तदस्वाङ्गपूर्वपदं, तस्मात्.....बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्, क्तात्, ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च॥ *अर्थः*—अस्वाङ्गपूर्वपदादन्तोदात्तात् क्तान्तात् बहुव्रीहेः स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—शार्ङ्गजग्धी, शार्ङ्गजग्धा, पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता, सुरापीती, सुरापीता॥

भाषार्थः—[*अस्वाङ्गपूर्वपदात्*] अस्वाङ्ग जिनके पूर्वपद में है, ऐसे अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि समास वाले प्रातिपदिक से [*वा*] विकल्प से स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से '*वा*' की अनुवृत्ति ४।१।५५ तक जायेगी॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥४।१।५४॥

स्वाङ्गात् ५।१॥ च अ०॥ उपसर्जनात् ५।१॥ असंयोगोपधात् ५।१॥ *स०*—संयोगः उपधा यस्य स संयोगोपधः, बहुव्रीहिः। न संयोगोपधः असंयोगोपधः, तस्मात्.....नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—वा, अतः, ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—स्वाङ्गं यदुपसर्जनमसंयोगोपधं तदन्ताद् अदन्ताद् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष्

प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चन्द्र इव मुखमस्याः = चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। अतिक्रान्ता केशान् = अतिकेशी, अतिकेशा माला ॥

भाषार्थः—[*स्वाङ्गात्*] स्वाङ्गवाची जो [*उपसर्जनात्*] उपसर्जन [*असंयोगोपधात्*] असंयोग उपधा वाले अदन्त प्रातिपदिक उनसे स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—चन्द्रमुखी (चन्द्रमा के समान मुख है जिसका)। चन्द्रमुखा। मृदुहस्ती (कोमल हाथ वाली)। मृदुहस्ता। अतिकेशी माला (जो माला केशों का उल्लङ्घन कर गई हो)। अतिकेशा ॥ चन्द्रमुख में बहुव्रीहि समास होने से मुख उपसर्जन है ही (उपसर्जन का अर्थ अप्रधान है) असंयोगोपध तथा स्वाङ्गवाची भी है सो ङीप् तथा पक्ष में टाप् भी हो गया है। अतिकेशी में अन्य पदार्थ की प्रधानता होने से केश उपसर्जन है, यहाँ *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से समास हुआ है ॥

यहाँ से '*स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्*' की अनुवृत्ति ४।१।५८ तक जायेगी ॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ॥४।१।५५॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—नासिका च उदरं च ओष्ठश्च जङ्घा च दन्तश्च कर्णश्च शृङ्गञ्च, नासिको···शृङ्गम्, तस्मात्···समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्, वा, ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण, शृङ्ग इत्येवमन्तात् स्वाङ्गवाचिन उपसर्जनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—तुङ्गा नासिका यस्याः = तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका, तिलोदरी तिलोदरा, बिम्बमिवौष्ठौ यस्याः बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा, दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा, समदन्ती, समदन्ता, चारुकर्णी, चारुकर्णा, तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा ॥

भाषार्थः—[*नासि·····शृङ्गात्*] नासिका उदर इत्यादि अन्त वाले स्वाङ्गवाची उपसर्जन प्रातिपदिकों से [च] भी विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। पक्ष में टाप् भी होगा ॥ *न क्रोडादिबह्वचः* (४।१।५६) से बह्वच् लक्षण तथा पूर्व सूत्र में कहे असंयोगोपध लक्षण ङीष् के प्रतिषेध की प्राप्ति में यह सूत्र ङीप् विधान करने के लिये है ॥

उदा०---तुङ्गनासिकी (ऊँची नासिका वाली) तुङ्गनासिका, तिलोदरी (तिल है पेट पर जिसके) तिलोदरा, बिम्बोष्ठी (बिम्बा फल के समान हैं ओठ जिसके) बिम्बोष्ठा, दीर्घजङ्घी (दीर्घ हैं जङ्घा जिसकी) दीर्घजङ्घा, समदन्ती (बराबर हैं दाँत जिसके) समदन्ता, चारुकर्णी (सुन्दर कान वाली) चारुकर्णा, तीक्ष्णशृङ्गी (तीक्ष्ण सींग वाली) तीक्ष्णशृङ्गा ॥ तुङ्गनासिकी दीर्घजङ्घी में तुङ्गा को पुंवद्भाव (६।३।३२) से हुआ है, बिम्बोष्ठी में विकल्प से पररूप (वा० ६।१।९१) होता है। सर्वत्र बहुव्रीहि समास होने से ये सब उपसर्जन हैं ॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥४।१।५६॥

न अ० ॥ क्रोडादिबह्वचः ५।१॥ स०—क्रोड आदिर्येषां ते क्रोडादयः, बहुव्रीहिः। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, बहुव्रीहिः। क्रोडादयश्च बह्वच् च क्रोडादिबह्वच्, तस्मात्.......समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्, ङीष्, अतः, स्त्रियाम् प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—स्वाङ्गवाचिन उपसर्जनात् अदन्तान् क्रोडाद्यन्तात् प्रातिपदिकात् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति ॥ उदा०—कल्याणक्रोडा, कल्याणखुरा। बह्वचः—पृथुजघना महाललाटा ॥

भाषार्थः—[क्रोडादिबह्वचः] क्रोडाद्यन्त स्वाङ्गवाची उपसर्जन प्रातिपदिकों से तथा बह्वजन्त अदन्त स्वाङ्गवाची उपसर्जन प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय [न] नहीं होता है ॥ स्वाङ्गवाची होने से ४।१।५४ से ङीष् प्राप्त था, यहाँ निषेध कर दिया है ॥ उदा०—कल्याणक्रोडा (उत्तम है गोद जिसकी) कल्याणखुरा (अच्छे खुर वाली, बकरी)। बह्वचः—पृथुजघना (मोटी जङ्घा वाली) महाललाटा (बड़े ललाट वाली) ॥ यहाँ ङीष् का प्रतिषेध होने से टाप् हो गया है ॥

यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति ४।१।५८ तक जायेगी ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥४।१।५७॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वात् ५।१॥ च अ० ॥ स०—सह च नञ् च विद्यमानञ्च, सहनञ्विद्यमानम्, सहनञ्विद्यमानं पूर्वं यस्य स सहनञ्विद्यमानपूर्वः, तस्मात्.......द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०—न, स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्, ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—सह, नञ्, विद्यमान इत्येवं पूर्वात् स्वाङ्गवाचिन उपसर्जनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति ॥ *स्वाङ्गाच्चोप०* (४।१।५४) *नासिकोदरौष्ठ०* (४।१।५५) इत्येताभ्यां ङीप् प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥ *उदा०*— सह केशैर्वर्त्तते = सकेशा, अविद्यमानाः केशाः अस्याः = अकेशा, विद्यमानाः केशाः अस्याः = विद्यमानकेशा । सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका ॥

भाषार्थः—[*सह*······*पूर्वात्*] सह, नञ् विद्यमान ये शब्द पूर्व में हों तो स्वाङ्गवाच उपसर्जन प्रातिपदिक से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय नहीं होता ॥ *स्वाङ्गाच्चोपसर्जना०* तथा *नासिकोदरौष्ठ०* सूत्रों से जो ङीष् प्राप्त था, उसी का यह निषेध है ॥ ङीप् का निषेध होने से टाप् हो जाता है ॥ *उदा०*—सकेशा (केशों वाली) अकेशा (जिसके बाल नहीं हैं) विद्यमानकेशा (केशों वाली)। सनासिका (नासिका वाली)। अनासिका (जिसकी नासिका नहीं है)। विद्यमाननासिका (नासिका वाली) ॥ सकेशा सनासिका में *तेन सहेति तु०* (२।२।२८) से समास तथा *वोपसर्जनस्य* (६।३।८०) से 'सह' को 'स' भाव हुआ है। अकेशा अनासिका में *नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः* (*वा०* २।२।२४) इस वार्त्तिक से नञ् का अस्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास हुआ है। शेष सर्वत्र *अनेकमन्य०* (२।२।२४) से समास हुआ है ॥

नखमुखात् संज्ञायाम् ॥४।१।५८॥

नखमुखात् ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—नखञ्च मुखञ्च नखमुखं, तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०* न, स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् ङीष्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये स्वाङ्गवाचिन उपसर्जनात् नखान्तात् मुखान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—शूर्पमिव नखमस्याः शूर्पणखा, वज्रणखा, गौरमुखा, कालमुखा ॥

भाषार्थः—स्वाङ्गवाची उपसर्जन [*नखमुखात्*] नख शब्दान्त तथा मुख शब्दान्त प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय नहीं होता है ॥ *स्वाङ्गाच्चोप०* (४।१।५४) से ङीप् की प्राप्ति

का यह प्रतिषेध है ॥ उदा०—शूर्पणखा (सूप के समान नाखून वाली) वज्रणखा (वज्र के समान हैं नख जिसके) गौरमुखा (गोरे मुख वाली)। कालमुखा (काले मुख वाली) ॥ *पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः* (८।४।३) से शूर्पणखा आदि में णत्व हुआ है ॥

दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥४।१।५९॥

दीर्घजिह्वी १।१॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—'दीर्घजिह्वी' शब्दो ङीपन्तः स्त्रियां छन्दसि विषये निपात्यते ॥ जिह्वा शब्दः स्वाङ्गवाची संयोगोपधः, तस्मात् *स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्* इत्यनेन ङीपि अप्राप्ते वचनम् ॥ *उदा०*—दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट् (मै० सं० ३।१०।६)

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*दीर्घजिह्वी*] दीर्घजिह्वी शब्द [*च*] भी ङीप् प्रत्ययान्त निपातन है ॥ जिह्वा शब्द स्वाङ्गवाची संयोग उपधा वाला है, अतः ङीष् प्राप्ति नहीं था, अप्राप्त में विधान कर दिया है ॥

यहाँ से '*छन्दसि*' की अनुवृत्ति ४।१।६१ तक जायेगी ॥

दिक्पूर्वपदात् ङीप् ॥४।१।६०॥

दिक्पूर्वपदात् ५।१॥ ङीप् १।१॥ *स०*—दिक् पूर्वपदं यस्य तत् दिक्पूर्वपदं, तस्मात् ...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्येवमादिविधिप्रतिषेधविषयः सर्वो ऽप्यपेक्ष्यते तेन *स्वाङ्गाच्चोप०* (४।१।५४) इत्यादिना यत्र विषये ङीप् विहितस्तत्रैव ङीप् विधेयः, यत्र तु विषये ङीप् प्रतिषिद्धस्तत्र ङीबपि न भवति ॥ *उदा०*—प्राङ् मुखं यस्याः सा प्राङ्मुखी, प्राङ्मुखा। प्राङ्नासिकी, प्राङ्नासिका। संयोगोपधत्वाद् इह न भवति—प्राग्गुल्फा। *न क्रोडादि०* (४।१।५६) इति निषेधेन इह च न भवति—प्राक्क्रोडा, प्राग्जघना ॥

भाषार्थः—[*दिक्पूर्वपदात्*] दिशा पूर्वपद में है जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में [*ङीप्*] ङीप् प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में

स्वाङ्गाच्चोप० (४।१।५४) इत्यादि सूत्रों से किये हुये विधि या प्रतिषेध सबकी अपेक्षा की गई है, अतः दिशा वाचक पूर्वपद में रहते प्राङ्मुखी प्राङ्मुखा आदि में विकल्प से ङीप् हुआ है, क्योंकि *स्वाङ्गाच्चोप० नासिकोद०* (४।१।५४,५५) से विकल्प से ङीप् कहा है, तथा असंयोगोपध निषेध कहने से प्राग्गुल्फा में ङीप् की प्राप्ति न होने से ङीप् भी नहीं होता, एवं *न क्रोडादिबह्वचः* से ङीष् का निषेध कहने से प्राक्क्रोडा आदि में ङीप् भी नहीं होता ॥ 'प्राक्' दिशावाची शब्द है, उसकी सिद्धि प्रथम भाग पृ० ८९२ परि० ३।२।५९ में देखें। ङीष् एवं ङीप् में स्वर का ही भेद है ॥

वाहः ॥४।१।६१॥

वाहः ५।१॥ *अनु०*—छन्दसि, ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वाहन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् छन्दसि विषये स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दित्यौही च मे (य० १८।१६) प्रष्ठौही (तुलना-पष्ठौही य० १८, २७ मै० सं० २।६।४ । का० १२।८, ११।२ । तै० ५।६।१७।१) ॥

भाषार्थः—*वहश्च* (३।२।६४) से ण्वि प्रत्यय करके 'वाहः' निर्देश यहाँ सूत्र में किया गया है ॥ [*वाह*] वाहन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में वेद विषय में ङीप् प्रत्यय होता है ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥४।१।६२॥

सखी १।१॥ अशिश्वी १।१॥ इति अ० ॥ भाषायाम् ७।१॥ *अनु०*—ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थ*—सखी अशिश्वी इत्येतौ शब्दौ ङीपन्तौ भाषायां विषये स्त्रियां निपात्येते ॥ *उदा०*—सखीयं मे ब्राह्मणी । नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी ॥

भाषार्थः—[*सख्यशिश्वी*] सखी तथा अशिश्वी [*इति*] ये शब्द [*भाषायाम्*] भाषा विषय में स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ *उदा०*—सखीयं मे ब्राह्मणी (यह ब्राह्मणी मेरी सहेली है) । अशिश्वी (जिसके शिशु नहीं हैं, ऐसी स्त्री) ॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥४।१।६३॥

जातेः ५।१॥ अस्त्रीविषयात् ५।१॥ अयोपधात् ५।१॥ *स०*—स्त्री विषयो यस्य स स्त्रीविषयः, बहुव्रीहिः । न स्त्रीविषयः, अस्त्रीविषयः,

तस्मात्……नञ्तत्पुरुषः। य उपधा यस्य स योपधः, न योपधः अयोपधस्तस्मात् बहुव्रीहिगर्भनञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थ—जातिवाचि यत् प्रातिपदिकं न च स्त्रियामेव नियतमस्त्रीविषयमयकारोपधञ्च तस्मात् स्त्रीलिङ्गे ङीप् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—कुक्कुटी, सूकरी, ब्राह्मणी, वृषली, नाडायनी।

भाषार्थः—[*अस्त्रीविषयात्*] जो नित्य ही स्त्री विषय में न हो तथा [*अयोपधात्*] यकार उपधा वाला न हो ऐसे [*जातेः*] जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—कुक्कुटी (मुर्गी)। सूकरी (सूअरी)। ब्राह्मणी। वृषली (नीच स्त्री)। नाडायनी (नड की पौत्री)॥

कुक्कुट आदि शब्द नियत रूप से स्त्रीविषयक नहीं हैं, एवं अयकारोपध तथा जातिवाची भी हैं सो ङीप् हो गया है। नाडायनी में नड शब्द से *नडादिभ्यः* (४।१।९९) से फक् प्रत्यय तथा फ को आयन करके नाडायन बना, तत्पश्चात् ङीप् होकर नाडायनी बन गया है॥

यहाँ से '*जातेः*' की अनुवृत्ति ४।१।६४ तक जायेगी॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ॥४।१।६४॥

पाक……पदात् ५।१॥ च अ०॥ *स०*—पाकश्च कर्णश्च पर्णञ्च पुष्पञ्च फलञ्च मूलञ्च वालश्च पाक……वालाः इत्येते शब्दाः उत्तरपदं यस्य तत् पाक……वालोत्तरपदम्, तस्मात्…… बहुव्रीहिः॥ अनु०—जातेः, ङीप्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थ—पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—ओदनस्य पाक इव पाको यस्याः ओदनपाकी, शङ्कुरिव कर्णौ यस्याः सा शङ्कुकर्णी, शालपर्णी, शङ्ख इव पुष्पमस्याः शङ्खपुष्पी, दासीफली, दर्भमूली, गोवाली॥

भाषार्थः—[*पाक……पदात्*] पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल, वाल ये शब्द [*च*] भी यदि उत्तरपद में हों तो जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—ओनपाकदी (नीलझिण्टी, ओषधि विशेष) शङ्कुकर्णी (गधी) शालपर्णी (शाल वृक्ष के समान पत्तों वाली,

ओषधि विशेष) शङ्खपुष्पी (एक प्रकार की ओषधि) दासीफली (ओषधि विशेष) दर्भमूली (एक प्रकार का क्षुप) गोवाली (ओषधि विशेष) ॥

इतो मनुष्यजातेः ॥४।१।६५॥

इतः ५।१॥ मनुष्यजातेः ५।१॥ स०—मनुष्यस्य जातिः मनुष्यजातिः तस्याः .... षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—ङीप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मनुष्यजातिवाचिनोऽनुपसर्जनाद् इकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अवन्ती, कुन्ती, दाक्षी, साक्षी ॥

भाषार्थः—[*इतः*] इकारान्त जो [*मनुष्यजातेः*] मनुष्य जातिवाची अनुपसर्जन शब्द उनसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*मनुष्यजातेः*' की अनुवृत्ति ४।१।६६ तक जायेगी ॥

ऊङुतः ॥४।१।६६॥

ऊङ् १।१॥ उतः ५।१॥ अनु०—मनुष्यजातेः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उकारान्ताद् मनुष्यजातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुरूः । ब्रह्मा विप्रो बन्धुरस्याः सा ब्रह्मबन्धूः[1] । वीरो बन्धुरस्याः = वीरबन्धूः[2] ॥

भाषार्थः—[*उतः*] उकारान्त मनुष्य जातिवाची प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [*ऊङ्*] प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—कुरूः । ब्रह्मबन्धूः ब्राह्मण जिसका बन्धु हो अर्थात् स्वयं ब्राह्मणाचार वाली न हो ऐसी स्त्री) । वीरबन्धूः (स्वयं वीर = क्षत्रिय आचार से रहित स्त्री) ॥ कुरु + ऊङ् *अक: सवर्णे०* (६।१।९७) से सर्वत्र दीर्घ होकर कुरूः आदि की सिद्धि जाने ॥

यहाँ से '*ऊङ्*' की अनुवृत्ति ४।१।७२ तक जायेगी ॥

बाह्वन्तात् संज्ञायाम् ॥४।१।६७॥

बाह्वन्तात् ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ स०—बाहुः अन्ते यस्य तद् बाह्वन्तस्तस्मात् ..... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ऊङ्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्,

---

१. स्वयं ब्राह्मणाचाररहिता इत्यर्थः । २. स्वयं क्षत्रियाचाररहिता इत्यर्थः ।

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बाह्वन्तात् प्रातिपदिकात् संज्ञायां विषये स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भद्रबाहूः, जालबाहूः ॥

भाषार्थः—[*बाह्वन्तात्*] बाहु शब्द अन्त वाले प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—भद्रबाहूः (भद्रबाहू नाम की स्त्री) । जालबाहूः (जालबाहू नाम की स्त्री) ॥

पङ्गोश्च ॥४।१।६८॥

पङ्गोः ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—ऊङ्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनुपसर्जनात् पङ्गुशब्दात् स्त्रियां ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पङ्गूः ॥

भाषार्थः—[*पङ्गोः*] पङ्गु शब्द से [*च*] भी स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पङ्गूः (लँगड़ी स्त्री) ॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥४।१।६९॥

ऊरूत्तरपदात् ५।१॥ औपम्ये ७।१॥ *स०*—ऊरुः उत्तरपदं यस्य तदूरूत्तरपदं तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ऊङ्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् औपम्ये गम्यमाने ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कदलीस्तम्भ इव ऊरू यस्याः सा कदलीस्तम्भोरूः, नागनासोरूः ॥

भाषार्थः—[*ऊरूत्तरपदात्*] ऊरु शब्द उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से [*औपम्ये*] औपम्य गम्यमान होने पर ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—कदलीस्तम्भोरूः (केले के खम्भे के समान हैं मोटी मोटी जङ्घायें जिसकी) । नागनासोरूः (हाथी के सूँड के समान गोल हैं जङ्घा जिसकी, वह स्त्री) ॥

यहाँ से '*ऊरूत्तरपदात्*' की अनुवृत्ति ४।१।७० तक जायेगी ॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥४।१।७०॥

संहितशफलक्षणवामादेः ५।१॥ च अ०॥ *स०*—संहितश्च शफश्च लक्षणश्च वामश्च संहित.....वामाः, संहितशफलक्षणवामाः आदौ यस्य स संहित.....वामादिस्तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ऊरूत्तर-

पदात्, ऊङ्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—संहित शफ लक्षण वाम इत्येवमादेर् ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*:—संहितौ ऊरू यस्याः सा संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः ॥

भाषार्थ—[*संहित*.....*वामादे*.] संहित, शफ, लक्षण, वाम आदि वाले ऊरूत्तरपद प्रातिपदिकों से [च] स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा*.—संहितोरूः (जिसकी जङ्घाये आपस में मिली हुई हैं)। शफोरूः (जिसकी जङ्घाये आपस में गौ के खुर के समान पृथक् हुई हैं, ऐसी स्त्री)। लक्षणोरूः (चिह्नित जङ्घा वाली)। वामोरूः (सुन्दर जङ्घा वाली) ॥ सर्वत्र उदाहरणों में बहुव्रीहि समास है, अतः इन प्रकृत सूत्रों में '*अनुपसर्जनात्*' अधिकार आते हुये भी नहीं बैठता ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥४।१।७१॥

कद्रुकमण्डल्वोः ६।२॥ छन्दसि ७।१॥ *स*:—कद्रुश्च कमण्डलुश्च कद्रुकमण्डलू तयोः.....इतरेतर द्वन्द्वः ॥ *अनु*०—ऊङ्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कद्रु कमण्डलु इत्येताभ्यां छन्दसि विषये स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—कद्रूश्च वै सुपर्णी च (तै० सं० ६।१।६।१) मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् ॥

भाषार्थः—[*कद्रुकमण्डल्वो*] कद्रु और कमण्डलु शब्दों से [*छन्दसि*] वेद विषय में स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*कद्रुकमण्डल्वो*.' की अनुवृत्ति ४।१।७२ तक जायेगी ॥

संज्ञायाम् ॥४।१।७२॥

संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु*०—कद्रुकमण्डल्वोः, ऊङ्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—कद्रु, कमण्डलु इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां संज्ञायां विषये स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—कद्रूः, कमण्डलूः ॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय हो तो (लोक में भी) कद्रु कमण्डलु शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ 'छन्दसि' पद

की यहाँ अनुवृत्ति नहीं आती, सो यह सूत्र भाषा विषयक ही है ॥ उदा०—कद्रूः (इस नाम वाली विनता की पुत्री)। कमण्डलूः। यहाँ कमण्डलु के समान इस अर्थ में संज्ञा में उत्पन्न 'क' प्रत्यय का 'लुम्मनुष्ये' ५।३।९८ से लोप होकर कमण्डलु संज्ञा वाचक होता है, उससे स्त्री अर्थ में ऊङ् कहा है) ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥४।१।७३॥

शार्ङ्गरवाद्यञः ५।१॥ ङीन् १।१॥ स०—शार्ङ्गरव आदिर्येषां ते शार्ङ्गरवादयः, शार्ङ्गरवादयश्च अञ् च, शार्ङ्गरवाद्यञ्, तस्मात्...बहुव्रीहिगर्भ समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च। जातेः इत्यपि मण्डूकप्लुतगत्या *जातेर०*(४।१।६३) इत्यतोऽनुवर्त्तते ॥ *अर्थः*—जातिवाचिभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः शार्ङ्गरवादिभ्योऽञन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शार्ङ्गरवी कापटवी। अञन्तेभ्यः—बैदी, और्वी ॥

भाषार्थ—[*शार्ङ्गरवाद्यञः*] अनुपसर्जन जातिवाची शार्ङ्गरवादि तथा अञन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [ङीन्] ङीन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—शार्ङ्गरवी (शृङ्गरव की पुत्री, कण्व की शिष्या)। कापटवी (कपटु नाम वाले की पुत्री)। बैदी (बिद गोत्र वाली स्त्री)। और्वी (उर्व गोत्र वाली स्त्री)। शार्ङ्गरवी आदि में ङीन् होने से *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (६।१।१९१) से आद्युदात्त हुआ है ॥ बिद, उर्व शब्दों से *अनृष्यानन्तर्ये०* (४।१।१०४) से अञ् प्रत्यय हुआ है, सो वृद्धि आदि होकर बैद और्व शब्द बने हैं। पुनः प्रकृत सूत्र से ङीन् हुआ है ॥

यङश्चाप् ॥४।१।७४॥

यङः ५।१॥ चाप् १।१॥ अनु०—स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यङन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति ॥ यङ् इत्यनेन ञ्यङ्ष्यङौ सामान्येन गृह्येते ॥ *उदा०*—आम्बष्ठ्या। सौवीर्या। ष्यङ्—कारीषगन्ध्या, वाराह्या, बालाक्या ॥

भाषार्थः—[*यङः*] यङन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में [*चाप्*] चाप् प्रत्यय होता है ॥ यङ् से यहाँ ञ्यङ् ष्यङ् का सामान्य रूप से ग्रहण है ॥

यहाँ से 'चाप्' की अनुवृत्ति ४।१।७५ तक जायेगी।

आवट्याच्च ॥४।१।७५॥

आवट्यात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—चाप्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*- अनुपसर्जनाद् आवट्य प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अवाट्या॥

भाषार्थः—अनुपसर्जन [*आवट्यात्*] आवट्य शब्द से [*च*] भी स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय होता है ॥ अवट शब्द गर्गादि गण में पढ़ा है, सो उससे यञ् करने के पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में *यञश्च* (४।१।१६) से ङीप् प्राप्त था चाप् विधान कर दिया है ॥ *उदा०*—आवट्या (अवट की पौत्री) ॥

तद्धिताः ॥४।१।७६॥

तद्धिताः १।३॥ *अर्थः*—अधिकारोऽयम् । इतोऽग्रे आपञ्चमाध्याय-परिसमाप्तेः (५।४।१६०) वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तद्धितसंज्ञका भवन्ति ॥ अग्रे उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है। यहाँ से आगे पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो भी प्रत्यय कहेंगे उन सबकी [*तद्धिताः*] तद्धित संज्ञा होती है ॥ तद्धित संज्ञा होने से *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है ॥ यहाँ से आगे तद्धिताः 'प्रत्ययः' का विशेषण बनता जायेगा, अतः सर्वत्र ऐसा अर्थ होगा "अमुक प्रत्यय होता है, और वह तद्धित संज्ञक होता है" सो इसी प्रकार आगे के सूत्रों के अर्थ स्वयं समझ लेने चाहिएँ ॥

यूनस्तिः ॥४।१।७७॥

यूनः ५।१॥ तिः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—युवन् प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति ॥ *उदा०*—युवतिः ॥

भाषार्थः—[*यूनः*] युवन् प्रातिपदिक से [*तिः*] ति प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में होता है, और वह तद्धित संज्ञक होता है ॥ 'युवन् ति' यहाँ *स्वादिष्वस०* (१।४।१७) से पदसंज्ञा तथा *नलोपः०* (८।२।७) से नकार लोप होकर 'युवति' बना। 'ति' की तद्धित संज्ञा होने से प्रातिपदिक

(१।२।४६) संज्ञा होकर स्वाद्युत्पत्ति हो जाती है, यही तद्धित संज्ञा का फल है ॥ उदा०—युवतिः (युवा स्त्री) ॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥४।१।७८॥

अणिञोः ६।२॥ अनार्षयोः ६।२॥ गुरूपोत्तमयोः ६।२॥ ष्यङ् १।१॥ गोत्रे ७।१॥ स०—अण् च इञ् च अणिञौ, तयोः……इतरेतरद्वन्द्वः ॥ न आर्षौ अनार्षौ तयोः नञ्तत्पुरुषः । गुरुः उपोत्तमं ययोः तौ गुरूपोत्तमौ तयोः……बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात् ॥ त्र्यादीनामन्त्यमुत्तमं, तस्य समीपम् उपोत्तमम् ॥ अर्थः—गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङ् आदेशो भवति ॥ उदा०—कारीषगन्ध्या, कौमुदगन्ध्या । इञ्—वाराह्या, बालाक्या ॥

भाषार्थः—[*गोत्रे*] गोत्र में विहित जो [*अनार्षयोः*] ऋष्यपत्य से भिन्न [*अणिञोः*] अण् और इञ् प्रत्यय अन्त वाले [*गुरूपोत्तमयोः*] उपोत्तम गुरु वाले प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में [ष्यङ्] ष्यङ् आदेश होता है ॥ उत्तम तीन और तीन से अधिक वर्णों वाले शब्द के अन्तिम वर्ण को कहते हैं, उस अन्त्य वर्ण अर्थात् उत्तम के समीप जो वर्ण वह उपोत्तम कहाता है, सो अभिप्राय यह हुआ कि जिस प्रातिपदिक में कम से कम तीन वर्ण होंगे वहीं पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी, दो या एक वर्ण वाले प्रातिपदिक में नहीं ॥ जिसका उपोत्तम गुरु होगा उससे यहाँ प्रत्यय होगा ॥ कारीषगन्ध कौमुदगन्ध में पाँच पाँच वर्ण हैं । इनमें 'ध' अन्त्यवर्ण है । उससे पूर्व 'ग' का अकार संयोग परे होने से गुरु संज्ञक है अतः यहाँ ष्यङ् हो गया है, पूरी सिद्धि तो परि० ४।१।७४ में ही देखें ॥ वाराहि बालाकि में 'रा' तथा 'ला' उपोत्तम हैं, एवं दीर्घञ्च (१।४।१२) से इनकी गुरु संज्ञा भी है ॥

यहाँ से 'ष्यङ्' की अनुवृत्ति ४।१।८१ तक, 'गोत्रे' की ४।१।८० तक तथा 'अणिञोः की ४।१।७९ तक जायेगी ॥

गोत्रावयवात् ॥४।१।७९॥

गोत्रावयवात् ५।१॥ स०—गोत्रञ्च तदवयवश्च गोत्रावयवः[1], तस्मात्… कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अणिञोः, ष्यङ्, गोत्रे,

१. निपातनात् विशेषणस्य परनिपातः ।

तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात् ॥ अगुरूपोत्तमार्थोऽयमारम्भः ॥ *अर्थः*—गोत्राभिमता गोत्ररूपेण स्वीकृताः = प्रख्याता ये शब्दास्ततो विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशो भवति ॥ *उदा०*—पौणिक्या भौणिक्या ॥

भाषार्थः—[*गोत्रावयवात्*] गोत्रावयव = अर्थात् गोत्र रूप से लोक में स्वीकृत कुल संज्ञा रूप से प्रख्यात जो प्रातिपदिक उनसे विहित जो अनार्ष अण् और इञ् प्रत्यय उनको ष्यङ् आदेश होता है ॥ पूर्व सूत्र गुरूपोत्तम से ष्यङादेश करता था, यहाँ अगुरूपोत्तम से भी ष्यङ् विधान करने के लिये यह सूत्र बनाया है ॥ गोत्रावयव से यहाँ तात्पर्य गोत्र रूप से स्वीकृत शब्दों से है, अर्थात् *अपत्यं पौत्रप्रभृति०* (४।१।१६२) से जो गोत्र संज्ञा होती है, ऐसे पौत्रप्रभृति के अपत्य में वर्त्तमान न होने पर भी जिन्हें व्यवहार में गोत्र ही मान लिया गया है, जैसे कि— श्रुतिशील सम्पन्न श्रेष्ठतम, यशस्वी कुल के आदिपुरुषों को गोत्र रूप से ही व्यवहार किया जाता है, यथा भरत इत्यादि, उन्हीं का गोत्रावयव कहने से यहाँ ग्रहण है ॥

पुणिकस्यापत्यं स्त्री, ऐसा विग्रह करके *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय आकर पौणिकि बना है, तथा भुणिक शब्द से *अवृद्धाभ्यो नदी०* (४।१।११३) से अण् प्रत्यय होकर भौणिक बना है, अब यह इञन्त एवं अणन्त शब्द हैं सो प्रकृत सूत्र से स्त्री अर्थ में इञ् एवं अण् के स्थान में ष्यङ् तथा पूर्ववत् चाप् होकर पौणिक्या, भौणिक्या बना है ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥४।१।८०॥

क्रौड्यादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—क्रौडि आदिर्येषां ते क्रौड्यादयस्तेभ्यः......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, गोत्रे, ष्यङ्, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोत्रे वर्त्तमानेभ्यः क्रौड्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— क्रौड्या, लाड्या ॥

भाषार्थः—गोत्र में वर्त्तमान [*क्रौड्यादिभ्यः*] क्रौड्यादि प्रातिपदिकों से [च] भी स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् प्रत्यय होता है ॥ क्रौड्यादि गण में पढ़े

हुये कुछ शब्द इञन्त एवं अणन्त होते हुये भी गुरूपोत्तम नहीं य क्रौडि चौपयत आदि, तथा कुछ गुरूपोत्तम होते हुये भी इञन्त अणन्त नहीं हैं सो यह सूत्र अगुरूपोत्तमार्थ तथा अनणिञर्थं दोनों लिये आरम्भ किया है ॥ *उदा०*—क्रौड्या (क्रुड की पुत्री) । लाड्या (ल की पुत्री) ॥ ष्यङ् परे रहते, क्रौडि लाडि के इकार का लोप *यस्येति* (६।४।१४८) से हो जाता है ॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्य-तरस्याम् ॥४।१।८१॥

दैव ····· विद्धिभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—दैव० इत्य तरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ष्यङ्, अनुपसर्जनात्, स्त्रियाम् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—अनुपसर्जनेभ्यः दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि काण्ठेविद्धि इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रिय विकल्पेन ष्यङ् प्रत्ययो भवति । *उदा०*—दैवयज्ञ्या दैवयज्ञी । शौचि वृक्ष्या शौचिवृक्षी । सात्यमुग्र्या, सात्यमुग्री । काण्ठेविद्ध्या काण्ठेविद्धी

भाषार्थ—[*दैवय····· द्धिभ्यः*] दैवयज्ञि आदि शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है ॥

दैवयज्ञि आदि शब्द इञन्त (४।१।९५) हैं सो गोत्र विवक्षा होने प *अणिञोरनार्षयो०* (४।१।७८) से ही ष्यङादेश प्राप्त था, विकल्प से करने के लिये यह सूत्र है । अनन्तरापत्य विवक्षा में जब इञ् प्रत्यय होगा तो यह अप्राप्त विभाषा होगी सो यह विभाषा प्राप्ताप्राप्त है । जिस पक्ष में इञ् के स्थान में ष्यङ् आदेश नहीं हुआ, उस पक्ष में *इतो मनुष्यजातेः* (४।१।६५) से ङीप् हो गया है, सो दैवयज्ञी आदि बन गया ॥ *उदा०* - दैवयज्ञ्या (देवयज्ञ की पुत्री या पौत्री), दैवयज्ञी । शौचिवृक्ष्या (शुचिवृक्ष की पुत्री या पौत्री), शौचिवृक्षी । सात्यमुग्र्या (सत्यमुग्र की पुत्री), सात्यमुग्री । काण्ठेविद्ध्या (कण्ठेविद्ध की पुत्री), काण्ठेविद्धी ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ॥४।१।८२॥

समर्थानाम् ६।३॥ प्रथमात् ५।१॥ वा अ० ॥ समर्थानामित्यत्र निर्द्धारणे (२।३।४१) षष्ठी ॥ *अर्थः*—अधिकारोऽयम्, *प्राग्दिशो*

विभक्तिरिति (५।३।१) यावत्। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः तद्धिताः समर्थानां मध्ये यः प्रथमः (सूत्रे प्रथमोच्चारितः) प्रकृतिस्तस्मात् विकल्पेन भवन्ति॥ *यथा*—उपगोः अपत्यं, औपगवः, अत्रोपगुरपि समर्थप्रकृतिः, अपत्यमपि, परं प्रथमप्रकृतिस्तु उपगुरेव, अतः सैव प्रत्ययमुत्पादयति न त्वपत्यम् समर्थानां ग्रहणेन इह न भवति—कम्बलमुपगोः, अपत्यं देवदत्तस्य। अत्रोपगोः प्रकृतेः सामर्थ्यं कम्बलं प्रति वर्त्तते, नापत्यं प्रति, अतः सामर्थ्याभावात् उपगोः प्रातिपदिकाद् अपत्ये प्रत्ययो नोत्पद्यते।

भाषार्थ.—यह परिभाषा रूप से अधिकार सूत्र है॥ यहाँ से लेकर प्राग्दिशो विभक्तिः तक कहे जाने वाले प्रत्यय [*समर्थानाम्*] समर्थों में जो [*प्रथमात्*] प्रथम प्रकृति उससे [*वा*] विकल्प करके होते हैं॥ समर्थ शब्द का अर्थ *समर्थः पदविधिः* (२।१।१) के समान ही सम्बद्धार्थः समर्थः = जिसका आपस में सम्बद्ध अर्थ हो, संश्लिष्टार्थः समर्थः आदि जाने॥ समर्थानाम् यहाँ निर्द्धारण में षष्ठी है॥

उपगोः अपत्यम्, औपगवः यहाँ उपगोः तथा अपत्यं परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले हैं, अतः प्रत्यय उत्पन्न करने में दोनों ही समर्थ हैं, सो उपगोः से प्रत्यय हो अथवा अपत्यम् से? यह प्रश्न हुआ, तो इस सूत्र ने कहा कि समर्थों में जो प्रथम प्रकृति उससे प्रत्यय हो, अतः प्रथम प्रकृति 'उपगोः' थी सो उसी से *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) से अण् प्रत्यय होकर औपगवः बन गया॥ यहाँ प्रथम पद से सूत्र में जो प्रथमोच्चारित प्रकृति वह लेनी है, जैसा कि *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) में तस्य षष्ठ्यन्त प्रथमोच्चारित है, अपत्यम् नहीं अतः षष्ठ्यन्त जो भी प्रकृति होगी उससे प्रत्यय होगा। हम चाहें 'अपत्यम् उपगोः' यहाँ अपत्यं प्रथम उच्चारित कर दें तो भी उससे प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि सूत्र में निर्दिष्ट ही प्रथम लेना है॥ 'वा' = विकल्प से इसलिये कहा कि पक्ष में उपगोरपत्यं ऐसा विग्रह वाक्य भी बना रहे॥ यहाँ 'समर्थ' इसलिए कहा है कि 'कम्बलम् उपगोः, अपत्यं देवदत्तस्य' (कम्बल उपगु का तथा अपत्य देवदत्त का) यहाँ उपगु तथा अपत्य परस्पर सम्बद्धार्थ अर्थात् समर्थ नहीं हैं, अतः उपगु से प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि उपगु का सामर्थ्य कम्बल के साथ तथा अपत्य का देवदत्त के साथ है। यद्यपि यहाँ प्रत्युदाहरण देना द्वितीयावृत्ति का विषय है तो भी बिना प्रत्यु-

दाहरण बताये सूत्र का तात्पर्यार्थ समझ में नहीं आ सकता, अतः बता दिया गया है ॥ यह सूत्र परिभाषा रूपेण अधिकार सूत्र है, *प्राग्दिशो विभक्तिः* तक सर्वत्र बैठेगा, तो भी हम इसका अधिकार औत्सर्गिक सूत्रों में ही दिखायेंगे ऐसा पाठक सर्वत्र समझे ॥

यहाँ से आगे समर्थानां *प्रथमाद्वा* तथा प्रातिपदिकात् दोनों का अधिकार चलता है, अतः प्रश्न यह होता है कि समर्थ तो सुबन्त ही हो सकता है, और सुबन्त प्रातिपदिक है नहीं, तब किस प्रकार आगे सूत्रार्थ करने में समर्थ एवं प्रातिपदिक दोनों का सम्बन्ध लगे ? इसका उत्तर यह है, कि आगे आगे "षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से प्रत्यय हो" ऐसा कहने का अभिप्राय यह होगा कि 'ऐसा प्रातिपदिक जिसमें षष्ठी विभक्ति आई हो, उस (षष्ठ्यन्त) से प्रत्यय हो'। इस प्रकार समर्थ एवं प्रातिपदिक दोनों का ही अधिकार इस प्रकरण में आवश्यक है। केवल प्रातिपदिक से प्रत्यय न हों समर्थ (सुबन्त) से हों, इसलिये समर्थ का अधिकार आवश्यक है, एवं सूत्रों में जो पञ्चम्यन्त पद हैं, वे प्रातिपदिक के विशेषण बनें, समर्थ के नहीं, इसलिए प्रातिपदिक का अधिकार आवश्यक है। यथा—'*अत इञ्*' में 'अतः' पद पञ्चम्यन्त है, सो वह प्रातिपदिक का विशेषण बनेगा। इस प्रकार 'अदन्तत्व' प्रातिपदिक में देखना होगा, समर्थ सुबन्त में नहीं। सुबन्त से तो केवल प्रत्ययोत्पत्ति होगी। अन्यथा 'ज्ञस्यापत्यं' यहाँ ज्ञस्य समर्थ एवं अदन्त है, सो इससे ही प्रत्यय हो सकता है, 'ज्ञानाम् अपत्यं यहाँ अदन्त का विघात हो जाने से प्रत्यय नहीं हो सकता था, किन्तु जब 'अतः' प्रातिपदिक का विशेषण बनेगा तो प्रातिपदिक 'ज्ञ' तो अदन्त है ही समर्थ सुबन्त अदन्त हो या न हो तो भी प्रत्यय होगा। इसी प्रकार यह बात अन्यत्र भी समझ लेनी चाहिये ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥४।१।८३॥

प्राक् १।१॥ दीव्यतः ५।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दीव्यतः इत्यनेन *तेन दीव्यति खनति* (४।४।२) इति परिगृह्यते ॥ *तेन दीव्यति खनति०* इत्येतस्मात् प्राक् अण् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ वक्ष्यति *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) तत्र अण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—औपगवः कापटवः ॥

भाषार्थः—[*दीव्यतः*] *तेन दीव्यति खनति०* से [*प्राक्*] पहले-पहले [*अण्*] अण् प्रत्यय का अधिकार जायेगा, अर्थात् वहाँ तक के सब सूत्रों में अण् प्रत्यय हुआ करेगा ॥ इसमें यह बात ध्यान में रखनी है, कि अण् प्रत्यय का अधिकार यद्यपि ४।४।२ तक के सब सूत्रों में जायेगा, तो भी अण् प्रत्यय की उत्पत्ति उत्सर्ग सूत्रों में ही होगी, अपवाद सूत्रों में नहीं, सो अपवाद सूत्रों से तो जहाँ जो २ प्रत्यय अपवाद रूप में कहे हैं वही होंगे । यथा—*तस्यापत्यम्*, *तेन रक्तं रागात्* (४।२।१) आदि औत्सर्गिक सूत्र हैं, सो इनमें अण् प्रत्यय ही होगा, पर *अत इञ्* (४।१।९५) *लाक्षारोचनाट्ठक्* (४।२।२) आदि इनके अपवाद हैं, इनसे अण् के बाधक इञ् ठक् आदि प्रत्यय ही होंगे ॥

विशेषः—यहां से *प्राग्दीव्यतः* और *अण्* इन तीन पदों की अनुवृत्ति चलती है । आगे संख्या ८४, ८५ के सूत्रों में 'अण्' का संबन्ध नहीं होता क्योंकि उनमें प्राग्दीव्यति पर्यन्त अर्थों में प्रकृति विशेषों से 'ण्य' और 'अञ्' सामान्य (औत्सर्गिक) प्रत्ययों का विधान किया है । संख्या ८७ के सूत्र में 'दीव्यतः' का भी संबन्ध नहीं होता, क्योंकि उसमें 'भवनात्' अवधि का विधान किया है । इसी प्रकार संख्या ८८, ८९, ९०, ९१ सूत्रों में केवल 'प्राग्दीव्यतः' का सम्बन्ध होता है । इसी प्रकार अगले सूत्रों म अनुवृत्ति का निर्देश करेंगे, और उत्सर्ग सूत्रों के अर्थों में 'यथाविहित' शब्दों का प्रयोग करेंगे । उससे उस उस अर्थ विशेष में सामान्यरूप से अण् प्रत्यय, और दिति आदि प्रकृतियों से सम्भावना होने पर ण्य आदि प्रत्ययों का विधान जानना चाहिए यथा देखो *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) की व्याख्या ।

अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥४।१।८४॥

अश्वपत्यादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—अश्वपतिरादिर्येषां ते अश्वपत्यादयस्तेभ्यः ···बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—प्राग्दीव्यतोऽण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—अश्वपत्यादिभ्यः समर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वण् प्रत्ययो भवति॥ *दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः* (४।१।८५) इत्यनेन ण्यप्रत्यये प्राप्तेऽण् विधीयते ॥ *उदा०* आश्वपतम् शातपतम् ॥

भाषार्थः—[*अश्वपत्यादिभ्य.*] अश्वपति आदि समर्थ प्रातिपदिकों से [च] भी प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् प्रत्यय होता है ॥ अश्वपति आदि शब्दों में पत्युत्तरपद होने से *दित्यदित्या०* (४।१।८५) से ण्य की प्राप्ति थी यहाँ अण् विधान कर दिया है। प्रकृत सूत्र में अश्वपति आदि शब्दों से अण् प्रत्यय कहा है, परन्तु किस अर्थ में यह नहीं बताया अतः यह अण् प्रत्यय 'प्राग्दीव्यतः' तक कहे हुए सारे अर्थों में होगा, इस प्रकार आश्वपतम् 'अश्वपति का अपत्य' (सन्तान) 'अश्वपतियों का समूह' आदि उन सभी अर्थों को कहेगा, जिनका सम्बन्ध अश्वपति शब्द से हो सकता है ॥ प्राग्दीव्यतः तक जितने अर्थों में प्रत्यय कहे हैं, उन में मुख्य २ अर्थ निर्देशक सूत्रों को हम यहाँ पाठकों की सुविधा के लिये गिना देते हैं—*तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *तेन रक्तं रागात्* (४।२।१) *संस्कृतं भक्षा* (४।२।१५) *सास्य देवता* (४।२।२३) *तस्य समूहः* (४।२।३६) *तदधीते तद्वेद* (४।२।५८) *तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि* (४।२।६६) *तेन निर्वृत्तम्* (४।२।६७) *तस्य निवासः* (४।२।६८) *अदूरभवश्च* (४।२।६९) *तत्र जातः* (४।३।२५) *तत्र भवः* (४।३।५३) *तस्य व्याख्यान इति च०* (४।३।६६) *तेन प्रोक्तम्* (४।३।१०१) *तस्येदम्* (४।३।१२०) *तस्य विकारः* (४।३।१३२) ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥४।१।८५॥

दित्य·····पदात् ५।१॥ ण्यः १।१॥ *स०*—पतिरुत्तरपदं यस्य तत् पत्युत्तरपदं, दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदञ्च, दित्य·····पदं, तस्मात्·····बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्राग्दीव्यतः, *तद्धिताः*, ङ्याप् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दिति अदिति आदित्य इत्येतेभ्यः समर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः, पत्युत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दैत्यः, आदित्यः, आदित्यम्। पत्युत्तरपदात्—प्राजापत्यम् सैनापत्यम् ॥

भाषार्थः—[*दित्य·····दात्*] दिति, अदिति, आदित्य तथा पति उत्तरपद वाले समर्थ प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय = *तेन दीव्यति* (४।४।२) तक कहे हुए सारे अर्थों में [*ण्यः*] ण्य प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—दैत्यः (दिति का अपत्य, आदि) आदित्यः (अदिति का अपत्य, आदि) आदित्यम् (आदित्य का अपत्य आदि) प्राजापत्यम् (प्रजापति का अपत्य

आदि) सैनापत्यम् (सेनापति का अपत्य आदि) ॥ उदाहरण में यस्येति लोप तथा *तद्धितेष्वचा०* (७।२।११७) से वृद्धि सर्वत्र हो ही जायेगी आदित्य शब्द से ण्य प्रत्यय करने पर एक यकार का लोप *हलो यमां यमि लोपः* (८।४।६३) से विकल्प से हो जायेगा। पक्ष में 'आदित्य्य' दो यकार भी रहेंगे ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥४।१।८६॥

उत्सादिभ्यः ५।३॥ अञ् १।१॥ *स०*—उत्स आदिर्येषां ते उत्साद-यस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—प्राग्दीव्यतः, तद्धिताः, ङ्याप्-प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उत्सादिभ्यः समर्थेभ्यः प्राति-पदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—औत्सः, औदपानः ॥

भाषार्थः—[*उत्सादिभ्यः*] उत्सादि समर्थ प्रातिपदिकों से प्राग्दी-व्यतीय अर्थों में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—औत्सः (उत्स का पुत्र आदि)। औदपानः (उदपान का पुत्र आदि) ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥४।१।८७॥

स्त्रीपुंसाभ्याम् ५।२॥ नञ्स्नञौ १।२॥ भवनात् ५।१॥ *स०*—स्त्री च पुमांश्च, स्त्रीपुंसौ इतरेतरद्वन्द्वः। नञ् च स्नञ् च नञ्स्नञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्राक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भवनात् = *धान्यानां भवने०* (५।२।१) इत्येतस्मात् प्राक् येऽर्था विहितास्तेषु स्त्री पुंस् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं नञ्स्नञौ प्रत्ययौ भवतः ॥ भवनाच्छब्देन *धान्यानां भवने०* इत्युपलक्ष्यते ॥ *उदा०*—स्त्रीषु भवं स्त्रैणम्, एवं पौंस्नम्। स्त्रीभ्यो हितं स्त्रैणम् पौंस्नम् ॥

भाषार्थः—[*भवनात्*] *धान्यानां भवने०* (५।२।१) तक जिन जिन अर्थों में प्रत्यय कहे हैं उन सब अर्थों में [*स्त्रीपुंसाभ्याम्*] स्त्री तथा पुंस् शब्द से यथासङ्ख्य करके [*नञ्स्नञौ*] नञ् तथा स्नञ् प्रत्यय होते हैं ॥

प्राग्दीव्यतः का अधिकार होने से दीव्यत् पर्यन्त जो जो अर्थ गिना आये हैं, उन्हीं अर्थों में नञ् स्नञ् प्रत्ययों की प्राप्ति थी, भवनात् कहने से उसके आगे कहे हुए अर्थों में भी दोनों प्रत्यय हो गये। यथा स्त्रीभ्यो हितं स्त्रैणम्, पौंस्नम् ॥ 'पुंस् स्नञ्' इस अवस्था में *संयोगान्तस्य०*

(८।२।२३) से अन्त 'स्' का लोप हुआ है, सो वृद्धि होकर पौंस्नम् बन गया ॥ इसी प्रकार 'स्त्री नञ्' = स्त्रैन णत्व होकर स्त्रैणम् बन गया है ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥४।१।८८॥

द्विगोः ६।१॥ लुक् १।१॥ अनपत्ये ७।१॥ *स०*— न अपत्यम् अनपत्यम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*— प्राग्दीव्यतः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः ॥ *अर्थः*— प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु विहितो द्विगोर्यः सम्बन्धी निमित्तं तद्धितप्रत्ययस्तस्य लुक् भवत्यपत्यप्रत्ययं वर्जयित्वा ॥ *उदा०*— पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः = पञ्चकपालः, दशकपालः । द्वौ वेदौ अधीते = द्विवेदः, त्रिवेदः ॥

भाषार्थः— प्राग्दीव्यतीय अर्थों में विहित [*अनपत्ये*] अपत्य अर्थ से भिन्न [*द्विगोः*] द्विगु सम्बन्धी = द्विगु का निमित्त जो तद्धित प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् होता है ॥ पञ्चकपालः की सिद्धि प्रथम भाग पृ० ८४० परि० २।१।५० में द्विवेदः त्रिवेदः की सिद्धि भी इसी प्रकार है । यहाँ *तदधीते तद्वेद* (४।२।५८) से जो अण् आया था, उसी का लुक् हो गया ॥

गोत्रेऽलुगचि ॥४।१।८९॥

गोत्रे ७।१॥ अलुक् १।१॥ अचि ७।१॥ *स०* - न लुक् अलुक्, नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*— प्राग्दीव्यतः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः ॥ *अर्थः* - प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये विवक्षिते सति गोत्र उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति ॥ *यस्कादिभ्यो गोत्रे* (२।४।६३) इत्यनेन गोत्रप्रत्ययानां लुगुक्तः, स प्रतिषिध्यते ॥ *उदा०*- गर्गाणां छात्राः गार्गीयाः, वात्सीयाः, आत्रेयीयाः, खारपायणीयाः ॥

भाषार्थ—यहाँ अचि में विषय सप्तमी है ॥ प्राग्दीव्यतीय [*अचि*] अजादि प्रत्यय की विवक्षा हो तो [*गोत्रे*] गोत्र में उत्पन्न प्रत्यय का [*अलुक्*] लुक् नहीं होता ॥ *यस्कादिभ्यो गोत्रे* (२।४।६३) से जो लुक् की प्राप्ति थी उसका यह प्रतिषेध है ॥

यहाँ से '*अचि*' की अनुवृत्ति ४।१।९१ तक जायेगी ॥

यूनि लुक् ॥४।१।९०॥

यूनि ७।१॥ लुक् १।१॥ *अनु०*— अचि, प्राग्दीव्यतः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये विवक्षिते यून्यु-

त्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति ॥ उदा०—फाण्टाहृताः, भागवित्ता, तैकायनीयाः, कापिञ्जलादाः, ग्लौचुकायनाः ॥

भाषार्थ—प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा में [*यूनि*] युवा अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का [लुक्] लुक् हो जाता है ॥

यहाँ से '*यूनि लुक्*' की अनुवृत्ति ४।१।९१ तक जायेगी ॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम् ॥४।१।९१॥

फक्फिञोः ६।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स०- फक् च फिञ् च फक्फिञौ, तयोः ... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—यूनि लुक्, अचि, प्राग्दीव्यतः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः ॥ अर्थ—प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये विवक्षिते फक्फिञोर्युवप्रत्यययोर्विकल्पेन लुक् भवति ॥ पूर्वेण नित्यं लुकि प्राप्ते, विकल्प्यते ॥ उदा०- फक्—गार्गीयाः, गार्ग्यायणीयाः, वात्सीयाः, वात्स्यायनीयाः । फिञ्—यास्कीयाः, यास्कायनीयाः ॥

भाषार्थ—प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य [*फक्फिञोः*] फक् और फिञ् का [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से लुक् होता है ॥

तस्यापत्यम् ॥४।१।९२॥

तस्य ६।१॥ अपत्यम् १।१॥ अनु०—समर्थानां प्रथमाद्वा, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तस्य = षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकादपत्यमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा० – औपगवः । अश्वपतेरपत्यं आश्वपतः, दैत्यः, औत्सः, स्त्रैणः पौंस्नः ॥

भाषार्थ. - [*तस्य*] षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से [*अपत्यम्*] अपत्य = सन्तान अर्थ को कहना हो तो यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

यथाविहित का अभिप्राय यह है कि जो प्रत्यय जिस प्रकृति से कहा हो वह प्रत्यय उसी प्रकृति से हो जाये ॥

यह उत्सर्ग सूत्र है आगे के सूत्र इसके अपवाद हैं ॥ षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से प्रत्यय कहे हैं अतः इस अपत्य प्रकरण में प्रातिपदिक के आगे ङस् विभक्ति लाकर सुबन्त से प्रत्यय की उत्पत्ति करनी चाहिये । सुबन्त से प्रत्यय की उत्पत्ति का ढङ्ग हम प्रथम भाग पृ० ६६०

परि० १।१।१ में शालीयः की सिद्धि में दिखा चुके हैं ॥ आश्वपतः में ४।१।८४ से अण्, दैत्यः में ४।१।८५ से ण्य, औत्सः में ४।१।८६ से अञ्, तथा स्त्रैणः पौंस्नः में क्रमशः ४।१।८७ से नञ् स्नञ् प्रत्यय हुये हैं ॥

यहाँ से '*तस्यापत्यम्*' की अनुवृत्ति ४।१।१७६ तक जायेगी ॥

एको गोत्रे ॥४।१।९३॥

एकः १।१॥ गोत्रे ७।१॥ *अनु०*—ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—गोत्र एक एव प्रत्ययो भवति, सर्वेऽपत्येन युज्यन्ते ॥ *अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्* (४।१।१६२) इत्यनेन पौत्रप्रभृत्यपत्यस्य गोत्रसंज्ञा क्रियते, गोत्रापत्यवाचिभ्यः पदेभ्यः पुनस्तस्यापत्यं पुनस्तस्यापत्यमित्येवं नानापत्यसम्बन्धे नानाप्रत्ययानामुत्पत्तिसम्भवेऽनेन सूत्रेण नियमः क्रियते, गोत्रे एक एव प्रत्ययः स्यादिति । स एव च सर्वाणि पौत्रप्रभृत्यपत्यान्यभिधास्यतीति भावः । द्विविधश्चात्र नियमः । प्रत्ययनियमः प्रकृतिनियमश्च । तत्र प्रत्ययनियमपक्षे सूत्रार्थः प्रदर्शितः । प्रकृतिनियमपक्षे त्वेवं सूत्रार्थो भविष्यति - गोत्रापत्ये विवक्षिते प्रथमा प्रकृतिः (एक एव शब्दः) प्रत्ययमुत्पादयति, न तु द्वितीयातृतीयेत्यादिः ॥ *उदा०*—गर्गस्य गोत्रापत्यं = गार्ग्यः । (गर्गस्यानन्तरापत्यं गार्गिः । गार्गेरपत्यं गार्ग्यः) गार्ग्यस्य पुत्रोऽपि गार्ग्यः, तत्पुत्रोऽपि गार्ग्यः, एवमग्रे सर्वत्र ॥

भाषार्थः—[*गोत्रे*] गोत्र में [*एक*] एक ही प्रत्यय होता है ॥ यह नियम सूत्र है ॥ *अपत्यं पौत्रप्रभृति०* से पौत्र से लेकर आगे के (चौथे पाँचवे आदि) सब अपत्यों की गोत्र संज्ञा कही है सो पौत्र (तीसरे) से आगे चौथे पाँचवे छठे आदि अपत्यों का अभिधान कराने के लिये अलग-अलग प्रत्ययमाला प्राप्त थी, वह न होकर एक ही प्रत्यय होता है ॥ गर्ग का जो गोत्र अपत्य वह गार्ग्य, तीसरा = पौत्र होता है । यहाँ गर्ग से ही यञ् प्रत्यय होगा ॥ यह सूत्र प्रत्यय नियम तथा प्रकृति नियम दोनों करता है । प्रत्यय नियम पक्ष में सूत्रार्थ दिखा ही दिया है । प्रकृति नियम को आगे लिखते हैं—गोत्रापत्य विवक्षित होने पर प्रथम प्रकृति अर्थात् परम प्रकृति से ही प्रत्यय होता है, दूसरी तीसरी प्रत्ययान्त प्रकृतियों से नहीं । गर्ग जो प्रथम = परम प्रकृति है, उससे ही गोत्रापत्य विवक्षित होने पर यञ् होगा, यही यञन्त शब्द आगे के

सम्पूर्ण गोत्रापत्यों का अभिधान करायेगा। वस्तुतः प्रत्यय नियम करें या प्रकृति नियम करें तात्पर्य एक ही रहता है॥ यहाँ यह ध्यान रहे कि गर्गस्यापत्यं गार्गिः, गार्गेरपत्यं गार्ग्यः यहाँ इस विग्रह को देख कर यह नहीं समझना चाहिये कि गार्गि से यञ् प्रत्यय हुआ है, क्योंकि गार्गि तो परम प्रकृति है नहीं, अतः परम प्रकृति 'गर्ग' से ही गोत्रापत्य यञ् होता है, 'गार्गेरपत्यं' यह विग्रह अर्थ दिखाने के लिये किया है॥ इस सूत्र में जब प्रत्यय नियम मानते हैं तो 'एकः' 'प्रत्ययः' का विशेषण बनेगा, जब प्रकृति नियम मानेंगे तो एक प्रकृति का विशेषण बनेगा॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥४।१।९४॥

गोत्रात् ५।१॥ यूनि ७।१॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ *स०*—न स्त्री अस्त्री, तस्याम्, नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः॥ *अर्थः*—यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रादेव प्रत्ययो भवत्यस्त्रियाम्॥ अयमपि नियमः, अर्थात् गोत्रप्रत्ययान्तादेव युवप्रत्ययः स्यात् न त्वनन्तरापत्यात्, न परमप्रकृतेः॥ *उदा०*—गार्ग्यस्यापत्यं युवा गार्ग्यायणः, दाक्षेरपत्यं युवा दाक्षायणः॥

भाषार्थः—[*यूनि*] युवापत्य की विवक्षा होने पर [*गोत्रात्*] गोत्र से ही (युवापत्य में) प्रत्यय हो अनन्तरापत्य या परम प्रकृति से नहीं [*अस्त्रियाम्*] स्त्री अपत्य को छोड़कर॥ यह भी नियम सूत्र है, अर्थात् परम प्रकृति या अनन्तरापत्य से युवापत्य में प्रत्यय न हो, गोत्र से ही हो॥

जीवति तु वंश्ये युवा (४।१।१६३) से गोत्रापत्य की युवा संज्ञा की है, उसी की प्रत्ययोत्पत्ति का यह नियम सूत्र है॥

गार्ग्यः तथा दाक्षिः (इञ् प्रत्ययान्त) गोत्र प्रत्ययान्त हैं, सो उनसे युवापत्य में *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से फक् हुआ है॥

अत इञ् ॥४।१।९५॥

अतः ५।१॥ इञ् १।१॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अकारान्तात् प्रातिपदिकात् षष्ठीसमर्थाद् अपत्यमित्येतस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—दक्षस्यापत्यं दाक्षिः, प्लाक्षिः, दाशरथिः॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*अत*] अकारान्त प्रातिपदिक से अपत्य मात्र को कहने में [*इञ्*] इञ् प्रत्यय होता है ।। ये सब आगे के सूत्र *तस्यापत्यम्* (४।१।६२) के अपवाद हैं ।। *उदा०*— दाक्षिः (दक्ष की सन्तान) । लाक्षिः (लक्ष की सन्तान) । दाशरथिः (रामचन्द्र) ।।

विशेषः—इस अपत्याधिकार में जिस सूत्र में सामान्य प्रत्यय का विधान किया हो, अर्थात् यह न कहा हो कि अनन्तरापत्य में या गोत्रापत्य में, अथवा युवापत्य में प्रत्यय हो, वहाँ वह प्रत्यय सामान्य करके सभी अपत्यों में (गोत्रापत्य, अनन्तरापत्य में) हुआ करेगा । जैसे प्रकृत सूत्र से इञ् सभी अपत्यों को कहने में होता है ।।

यहाँ से 'इञ्' की अनुवृत्ति ४।१।९७ तक जायेगी ।।

बाह्वादिभ्यश्च ।।४।१।९६।।

बाह्वादिभ्यः ५।३।। च अ० ।। *स०* - बाहु आदिर्येषां ते बाह्वादयस्तेभ्यः ······ बहुव्रीहिः ।। *अनु०*—इञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः* - बाह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—बाहविः, औपबाहविः ।।

भाषार्थ - [*बाह्वादिभ्य*] बाह्वादि प्रातिपदिकों से [*च*] भी तस्यापत्यम् इस अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है ।। बाहु शब्द से इञ् परे रहते *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा अवादेश होकर बाहविः आदि की सिद्धि जाने ।।

सुधातुरकङ् च ।।४।१।९७।।

सुधातुः ६।१।। अकङ् १।१।। च अ० ।। *अनु०*—इञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः* - सुधातृप्रातिपदिकात् तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन चाकङ् आदेशो भवति ।। *उदा०* सुधातुरपत्यं = सौधातकिः ।।

भाषार्थः—[*सुधातुः*] सुधातृ शब्द से तस्यापत्यम् इस अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है [*च*] तथा सुधातृ शब्द को [*अकङ्*] अकङ् आदेश भी होता है ।। वाक्यभेद से सुधातृ में पञ्चमी षष्ठी दोनों विभक्ति मानी जायेंगी सो *ङिच्च* (१।१।५२) से अन्त्य अल् 'ऋ' को अकङ् आदेश

होगा। 'सुधातृ अकङ् इञ्' = सुधातक् इ, वृद्धि होकर सौधातकिः (सुधातृ की सन्तान) बन गया ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ॥४।१।९८॥

गोत्रे ७।१॥ कुञ्जादिभ्यः ५।३॥ च्फञ् १।१॥ *स०*—कुञ्ज आदिर्येषां ते कुञ्जादयस्तेभ्यः ·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोत्रापत्ये वाच्ये षष्ठीसमर्थेभ्यः कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः च्फञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ कुञ्जायनाः ॥

भाषार्थः—[*गोत्रे*] गोत्रापत्य में [*कुञ्जादिभ्यः*] कुञ्जादि षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से [*च्फञ्*] च्फञ् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि प्रथम भाग पृ० ८०२ परि० १।३।७ में देखें ॥ *तद्राजस्य* बहुषु० (२।४।६२) से कुञ्जायनाः में ञ्य प्रत्यय का लुक् हो गया है ॥

यहाँ से '*गोत्रे*' की अनुवृत्ति ४।१।१११ तक जायेगी ॥

नडादिभ्यः फक् ॥४।१।९९॥

नडादिभ्यः ५।३॥ फक् १।१॥ *स०*—नड आदिर्येषां ते नडादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोत्रापत्ये वाच्ये षष्ठीसमर्थेभ्यो नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः फक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः चारायणः ॥

भाषार्थः—[*नडादिभ्यः*] नडादि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में [*फक्*] फक् प्रत्यय होता है ॥ *किति* च (७।२।११८) से वृद्धि तथा फ को आयन होकर नाडायनः (नड का पौत्र) पूर्ववत् बनेगा ॥

यहाँ से '*फक्*' की अनुवृत्ति ४।१।१०३ तक जायेगी ॥

हरितादिभ्योऽञः ॥४।१।१००॥

हरितादिभ्यः ५।३॥ अञः ५।१॥ *स०*—हरित आदिर्येषां ते हरितादयः, तेभ्यः····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—फक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो हरिता-

दिभ्योऽञन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्येतस्मिन्नर्थे फक् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—हारितस्यापत्यम् हारितायनः कैदासायनः॥

भाषार्थः—[*अञः*] अञन्त [*हरितादिभ्यः*] हरितादि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है॥ हरितादि प्रातिपदिक बिदादि गण के अन्तर्गत पढ़े हैं, सो *अनृष्यानन्तर्ये*० (४।१।१०४) से अञ् होगा तत्पश्चात् अञन्तों से फक् होगा॥ यद्यपि इस सूत्र में 'गोत्रे' का अधिकार है, तो भी हरितादि शब्दों से जो अञ् हुआ है वह गोत्र में ही हुआ है (४।१।१०४, में भी गोत्रे की अनुवृत्ति है) अतः यहाँ *एको गोत्रे* (४।१।९३ के नियम के कारण पुनः गोत्र में फक् नहीं हो सका, इस प्रकार सामर्थ्य से यह प्रत्यय युवापत्य में (४।१।९४) ही होगा इस लिए यहाँ 'गोत्रे' की अनुवृत्ति नहीं दिखाई॥ *उदा०*—हारितायनः (हरित का प्रपौत्र)। कैदासायनः॥

यञिञोश्च ॥४।१।१०१॥

यञिञोः ६।२॥ च अ०॥ *स०*—यञ् च इञ् च यञिञौ, तयोः... ...इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—फक्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—गोत्रे विहितौ यौ यञिञौ प्रत्ययौ तदन्ताद् अपत्ये फक् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः। इञ्—दाक्षायणः, प्लाक्षायणः॥

भाषार्थ—गोत्र में विहित जो [*यञिञोः*] यञ् और इञ् प्रत्यय तदन्त से [च] भी तस्यापत्यम् अर्थ में फक् प्रत्यय होता है॥

यहाँ भी *गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्* के नियम के कारण फक् प्रत्यय युवापत्य में ही होगा॥ यहाँ '*गोत्रे*' जो ऊपर से आ रहा है, वह '*यञिञोः*' का विशेषण बनेगा॥

शरद्वच्छुनकदर्भात् भृगुवत्साग्रायणेषु ॥४।१।१०२॥

शरद्वच्छुनकदर्भात् ५।१॥ भृगुवत्साग्रायणेषु ७।३॥ स०—शरद्वत् च शुनकश्च, दर्भश्च, शरद्वत्... ...दर्भम्, तस्मात्... ...समाहारो द्वन्द्वः। भृगुश्च वत्सश्च आग्रायणश्च, भृगु... ...यणास्तेषु... ...इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—फक्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शरद्वत्, शुनक, दर्भ इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति यथासङ्ख्यं भृगु, वत्स, आग्रायण इत्येतेष्वपत्यविशिष्टेष्वर्थेषु ॥ उदा०—शारद्वतायनो भवति भार्गवगोत्रे वाच्ये, अन्यत्र शारद्वत एव। शौनकायनो भवति वात्स्यगोत्रे वाच्ये, अन्यत्र शौनक एव। दार्भायणो भवति आग्रायणगोत्रे वाच्ये, अन्यत्र दार्भिरेव ॥

भाषार्थ—[*शरद्वच्छुनकदर्भात्*] शरद्वत, शुनक, दर्भ इन प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*भृगुवत्साग्रायणेषु*] भृगु, वत्स, आग्रायण गोत्र वाच्य हों तो फक् प्रत्यय होता है ॥

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ॥४।१।१०३॥

द्रोणपर्वतजीवन्तात् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—द्रोणश्च पर्वतश्च जीवन्तश्च, द्रोण.....वन्तम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—फक्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो द्रोण, पर्वत, जीवन्त इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये वाच्ये विकल्पेन फक् प्रत्ययो भवति ॥ इञोऽपवादः ॥ *उदा०*—द्रौणायनः द्रौणिः, पार्वतायनः पार्वतिः, जैवन्तायनः जैवन्तिः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*द्रोण...न्तात्*] द्रोणादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से फक् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र *अत* इञ् (४।१।९५) का अपवाद है अतः पक्ष में इञ् ही हुआ है ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ॥४।१।१०४॥

अनृषि, लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ आनन्तर्ये ७।१॥ बिदादिभ्यः ५।३॥ अञ् १।१॥ *स०*—न ऋषिः अनृषिः, तेभ्यः, अनृषि, *सुपां सुलुक्०* (७।१।३९ इत्यनेन विभक्तेर्लुक्) नञ्तत्पुरुषः। बिद आदिर्येषां ते बिदादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ अनन्तर एव आनन्तर्यम्, अत्र स्वार्थे ष्यञ् ॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बिदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रेऽञ् प्रत्ययो भवति अनृषिवाचिभ्यस्त्वनन्तरापत्ये। अयं भावः—बिदादिषु ये ऋषिवाचकाः

शब्दास्तेभ्यस्तु गोत्रापत्य एवाञ् प्रत्ययो भवति नत्वनन्तरापत्ये अनृषिभ्यो ऽनन्तरापत्य एव न तु गोत्रे ॥ विदादिषु ऋषिवाचिनोऽनृषिवाचिनश्च द्विविधाः शब्दाः पठ्यन्ते तत्र यथायोगं द्वयोरर्थयोर्योजना कर्त्तव्या ॥ उदा०—अनृषिभ्यः—पुत्रस्यापत्यं पौत्रः, दौहित्रः। ऋषिवाचिभ्यस्तु गोत्रापत्ये—विदस्य गोत्रापत्यं बैदः, और्वः, काश्यपः, भारद्वाजः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*विदादिभ्यः*] विदादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है, परन्तु इनमें जो [*अनृषि*] अनृषिवाची हैं उनसे [आनन्तर्ये] अनन्तरापत्य में अञ् होता है ॥ अर्थात् विदादि गण में ऋषिवाची तथा अनृषिवाची दोनों प्रकार के शब्द पढ़े हैं, सो अनृषिवाचियों से अनन्तरापत्य में ही प्रत्यय हो गोत्रापत्य में नहीं यह कहा है, अनृषिवाचियों से अनन्तरापत्य में प्रत्यय कहने से अर्थापत्ति से यह अर्थ निकला कि बिदादि गण के अन्तर्गत जो ऋषिवाची शब्द हैं, उनसे गोत्र में प्रत्यय होगा अनन्तरापत्य में नहीं, एवं अनृषिवाचियों से अनन्तरापत्य में ही होगा ॥ उदा०—अनृषिवाचियों से अनन्तरापत्य में—पौत्रः (पुत्र का अपत्य), दौहित्र (पुत्री का अपत्य) । ऋषिवाचियों से गोत्रापत्य में—बैदः (बिद का पौत्र), और्वः (उर्व का पौत्र), काश्यपः (कश्यप का पौत्र), भारद्वाजः (भरद्वाज का पौत्र) ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ॥४।१।१०५॥

गर्गादिभ्यः ५।३॥ यञ् १।१॥ स०—गर्ग आदिर्येषां ते गर्गादयः, तेभ्यः····· बहुव्रीहि. ॥ *अनु०*—गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*.—गर्गादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, वात्स्यः ॥

भाषार्थः—[*गर्गादिभ्यः*] गर्गादि षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में [*यञ्*] यञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'यञ्' की अनुवृत्ति ४।१।१०९ तक जायेगी ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः ॥४।१।१०६॥

मधुबभ्र्वोः ६।२॥ ब्राह्मणकौशिकयोः ७।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—यञ्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ—मधु, बभ्रु इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं ब्राह्मणे कौशिके च गोत्रे वाच्ये यञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—माधव्यो भवति ब्राह्मणे गोत्रे वाच्येऽन्यत्र माधव एव । बाभ्रव्यो भवति कौशिके गोत्रे वाच्ये अन्यत्र बाभ्रव एव ॥

भाषार्थः—[*मधुबभ्र्वोः*] मधु तथा बभ्रु शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*ब्राह्मणकौशिकयोः*] ब्राह्मण तथा कौशिक गोत्र वाच्य हों तो यञ् प्रत्यय होता है ॥ ब्राह्मण तथा कौशिक गोत्र को न कहना हो तो *तस्यापत्यम्* से अण् ही होगा ॥ माधव्यः आदि में यञ् परे रहते *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण होकर 'मधो य' बन कर *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से वान्तादेश तथा पूर्ववत् *तद्धितेष्व०* (७।२।११७) से वृद्धि होकर माधव्यः बाभ्रव्यः बनेगा ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे ॥४।१।१०७॥

कपिबोधात् ५।१॥ आङ्गिरसे ७।१॥ स०—कपिश्च बोधश्च कपिबोधम्, तस्मात् ... समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—यञ्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कपि, बोध इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामङ्गिरसे गोत्रविशेषे वाच्ये यञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कपेः गोत्रापत्यं = काप्यः, बौध्यः ॥

भाषार्थः—[*कपिबोधात्*] कपि तथा बोध प्रातिपदिकों से [*आङ्गिरसे*] आङ्गिरस गोत्र को कहना हो तो यञ् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धियां यस्येति लोपादि होकर पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से '*आङ्गिरसे*' की अनुवृत्ति ४।१।१०९ तक जायेगी ॥

वतण्डाच्च ॥४।१।१०८॥

वतण्डात् ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—आङ्गिरसे, यञ्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वतण्डप्रातिपदिकाद् आङ्गिरसे गोत्रे वाच्ये यञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वतण्डस्य गोत्रापत्यं पुमान् वातण्ड्यः ॥

[1] पाणिनि के गोत्र प्रकरण तथा उसके विशिष्ट नियमों को समझने के लिए श्रौत सूत्रों में पठित गोत्र प्रवराध्याय से विशेष सहायता मिलती है ।

भाषार्थः—[*वतण्डात्*] वतण्ड शब्द से [*च*] भी आङ्गिरस गोत्र को कहना हो तो यञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*वतण्डात्*' की अनुवृत्ति ४।१।१०९ तक जायेगी ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥४।१।१०९॥

लुक् १।१॥ स्त्रियाम् ७।१॥ *अनु०*—वतण्डात्, आङ्गिरसे, यञ्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—वतण्डशब्दादुत्पन्नस्य यञ्प्रत्ययस्याङ्गिरसे गोत्रे स्त्रियां अभिधेयायां लुक् भवति ॥ *उदा०*—वतण्डस्य गोत्रापत्यं कन्या = वतण्डी ॥

भाषार्थः—आङ्गिरस गोत्रापत्य में उत्पन्न जो यञ् प्रत्यय उसका [*स्त्रियाम्*] स्त्री अभिधेय हो तो [*लुक्*] लुक् हो जाता है ॥ स्त्री गोत्रापत्य का अभिप्राय पौत्रप्रभृति स्त्री अपत्य = कन्या से है ॥ *उदा०*—वतण्डी (आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न वतण्ड नामक पुरुष की पौत्री) ॥ यञ् का लुक् हो जाने पर *शार्ङ्गरवाद्यञो०* (४।१।७३) से स्त्री प्रत्यय ङीन् हो जाता है ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥४।१।११०॥

अश्वादिभ्यः ५।३॥ फञ् १।१॥ *स०*—अश्व आदिर्येषां ते अश्वादयस्तेभ्यः ····· बहुव्रीहिः ॥*अनु०*—गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्योऽश्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये वाच्ये फञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आश्वायनः, आश्मायनः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*अश्वादिभ्यः*] अश्वादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में [फञ्] फञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*फञ्*' की अनुवृत्ति ४।१।१११ तक जायेगी ॥

भर्गात् त्रैगर्त्ते ॥४।१।१११॥

भर्गात् ५।१॥ त्रैगर्त्ते ७।१॥ *अनु०*—फञ्, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भर्गप्रातिपदिकात् गोत्रापत्ये वाच्ये फञ् प्रत्ययो भवति त्रैगर्त्ते वाच्ये ॥ *उदा०*—भार्गायणो भवति त्रैगर्त्तश्चेत् ॥

भाषार्थः—[*भर्गात्*] भर्ग शब्द से गोत्र में फञ् प्रत्यय होता है [*त्रैगर्त्ते*] त्रिगर्त देश में उत्पन्न अर्थ वाच्य हो तो ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥४।१।११२॥

शिवादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—शिव आदिर्येषां ते शिवादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शिवादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शिवस्यापत्यं शैवः, प्रौष्ठः ॥

भाषार्थः—[*शिवादिभ्यः*] शिवादि प्रातिपदिकों से तस्यापत्यम् इस अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ गोत्र की निवृत्ति हो गई है अतः आगे सामान्यापत्य में ही प्रत्यय होंगे ॥ *उदा०*—शैवः (शिव का जो पुत्र अथवा पौत्र) प्रौष्ठः (प्रौष्ठ का पुत्र) ॥ वृद्धि (७।२।११७) तथा यस्येति लोप पूर्ववत् हो ही जायेंगे ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ४।१।११९ तक जायेगी ॥

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥४।१।११३॥

अवृद्धाभ्यः ५।३॥ नदीमानुषीभ्यः ५।३॥ तन्नामिकाभ्यः ५।३॥ *स०*—न वृद्धा अवृद्धास्ताभ्यः······नञ्तत्पुरुषः नद्यश्च मानुष्यश्च नदीमानुष्यस्ताभ्यः ···इतरेतरद्वन्द्वः । तत् नाम यस्याः सा तन्नामिका, ताभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवृद्धाभ्यो नदीमानुष्यर्थेभ्यः तन्नामिकाभ्यः = नदीमानुषीवाचकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नदीवाचिभ्यः—यमुनायाः अपत्यं यामुनः । इरावत्याः अपत्यम् ऐरावतः । वैतस्तः, नार्मदः । मानुषीभ्यः—शिक्षितायाः अपत्यं = शैक्षितः, संस्कृतायाः अपत्यं सांस्कृतः, चैन्तितः ॥

भाषार्थः—[*अवृद्धाभ्यः*] अवृद्ध अर्थात् जिनकी वृद्ध संज्ञा न हो ऐसे [*नदीमानुषीभ्यः*] नदी तथा मानुषी अर्थवाले [*तन्नामिकाभ्यः*] नदी मानुषी नाम वाले प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ नदी से यहाँ नदी वाचक यमुना आदि नाम जो किसी स्त्री के हों उन्हें

लेना है न कि नदी संज्ञक शब्द। शिक्षिता संस्कृता आदि शब्द किसी स्त्री में ही संबद्ध हो सकते हैं, वे यदि किसी स्त्री के नाम भी हों उन्हीं का यहाँ ग्रहण होता है, नदी मानुषी नामधेय यदि द्व्यच् होंगे तो उनसे द्व्यच (४।१।१२१) से ढक् होगा॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥४।१।११४॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—ऋषिश्च अन्धकश्च वृष्णिश्च कुरुश्च ऋष्य····· कुरवस्तेभ्यः ··· इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऋषिवाचिभ्योऽन्धकवृष्णिकुरुवंशाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ऋषिवाचिभ्यः—वासिष्ठः, वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः, रान्धसः। वृष्णिभ्यः—वासुदेवः, आनिरुद्धः। कुरुभ्यः—नाकुलः, साहदेवः॥

भाषार्थ—[*ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः*] ऋषिवाची, तथा अन्धक, वृष्णि और कुरु वंश वाले समर्थ प्रातिपदिकों से [च] भी अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है॥ ऋषि से अभिप्राय वसिष्ठादि ऋषियों से है तथा अन्धकादि वंश लिये गये हैं॥

मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः ॥४।१।११५॥

मातुः ६।१॥ उत् १।१॥ संख्यासंभद्रपूर्वायाः ६।१॥ *स०*—सङ्ख्या च सञ्च भद्रश्च संख्या·····भद्राः, संख्यासंभद्रा पूर्वा यस्याः, सा सङ्ख्यासंभद्रपूर्वा, तस्याः ·····द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—संख्यापूर्वात् सम्पूर्वात् भद्रपूर्वाच्च मातृशब्दाद् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति उकारश्चान्तादेश॥ *उदा०*—संख्यापूर्वात्—द्वयोः मात्रोरपत्यं = द्वैमातुरः, षाण्मातुरः, साम्मातुरः, भद्रमातुरपत्यं = भाद्रमातुरः॥

भाषार्थ—[*संख्यासभद्रपूर्वायाः*] संख्या (एक द्वि त्रि आदि) सम् तथा भद्र पूर्व वाले [*मातुः*] मातृ शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, साथ ही मातृ शब्द को [उत्] उकार अन्तादेश भी हो जाता है॥ वाक्य भेद से मातृ शब्द में पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति मानकर *अलोऽन्त्य-*

स्य (१।१।५१) से मातृ के ऋकार के स्थान में 'उ' होगा ॥ उदा०—द्वैमातुरः (दो माताएँ चाची व माता जिसे पुत्र मानती हैं ऐसा पुत्र) षाण्मातुरः (छः माताएँ = चाची ताई आदि भी जिसे पुत्रवत् मानती हैं) सांमातुर (श्रेष्ठ माता हो जिसकी ऐसा पुत्र) भाद्रमातुरः (कल्याण करने वाली जिसकी माता हो ऐसा पुत्र) ॥ 'द्वि ओस् मातृ ओस्' यहाँ *तद्धितार्थोत्तरपद* (२।१।५०) से तद्धितार्थ में पहले समास हुआ है, पश्चात् द्विमातृ शब्द बनकर प्रकृत सूत्र से अण् तथा उत् एवं रपरत्व (१।१।५०) होकर 'द्विमात् उर् अण् रहा'। वृद्धि आदि होकर द्वैमातुरः बन गया। सांमातुरः में *कुगतिप्रादयः* (२.२।१८) से पहले सम् तथा मातृ शब्द का समास हुआ है, पश्चात् तद्धित हुआ है ॥ भद्रा चासौ माता च यहाँ भी *विशेषण०* (२।१।५६) से पहिले विशेषण समास हुआ है, तत्पश्चात् 'भद्रमाता का अपत्य' ऐसा विग्रह करके तद्धित हुआ है ॥

कन्यायाः कनीन च ॥४।१।११६॥

कन्यायाः ६।१॥ कनीन लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कन्याशब्दाद् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन च 'कनीन' आदेशो भवति ॥ *उदा०*—कन्यायाः अपत्यं = कानीनः ॥

भाषार्थ—[*कन्यायाः*] कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है [च] तथा अण् परे रहते कन्या शब्द को [*कनीन*] कनीन आदेश भी हो जाता है ॥ पाणिग्रहण से पूर्व ही जो लड़की पुरुष संयोग को प्राप्त हो, उसमें पुत्र उत्पन्न होने पर भी कन्या शब्द का व्यवहार होता है, अतः कन्या का अपत्य यह प्रयोग बन गया ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥४।१।११७॥

विकर्ण...लात् ५।१॥ वत्स...त्रिषु ७।३॥ *स०*—विकर्णश्च शुङ्गश्च छगलश्च, विकर्ण...छगलम्, तस्मात्......समाहारो द्वन्द्वः । वत्सश्च भारद्वाजश्च अत्रिश्च वत्स......त्रयः, तेषु ...... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विकर्ण, शुङ्ग, छगल इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं वत्स, भरद्वाज, अत्रि इत्येतेष्वपत्यविशेषेषु वाच्येष्वण्

प्रत्ययो भवति ।। *अत इञ्* इत्यस्यापवादः ।। *उदा०*—वैकर्णो भवति वात्स्यश्चेत्, अन्यत्र वैकर्णिः । शौङ्गो भवति भारद्वाजश्चेत्, अन्यत्र शौङ्गिः । छागलो भवति आत्रेयश्चेत्, अन्यत्र छागलिः ।।

भाषार्थः—[*विकर्ण·····लात्*] विकर्ण, शुङ्ग, छगल शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*वत्स·····त्रिषु*] वत्स, भरद्वाज और अत्रि अपत्य विशेष को कहना हो तो अण् प्रत्यय होता है ।। यह सूत्र *अत इञ्* (४।१।९५) का अपवाद है, सो जब इन अपत्य विशेषों को नहीं कहना होगा तो इञ् ही होगा ।। *उदा०*—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णः (वत्स कुलोत्पन्न विकर्ण नामक पुरुष की सन्तान) शौङ्गः (भरद्वाजकुलोत्पन्न शुङ्ग नामक पुरुष की सन्तान) । छागलः (अत्रि कुलोत्पन्न छगल की सन्तान) ।।

पीलाया वा ।।४।१।११८।।

पीलायाः ५।१।। वा अ० ।। *अनु०*—अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—पीलाया अपत्येऽर्थे अण् प्रत्ययो वा भवति ।। *द्व्यचः* (४।१।१२१) इति ढकि प्राप्तेऽण् विधीयते पक्षे सोऽपि भवति ।। *उदा०*—पीलाया अपत्यं = पैलः, पैलेयः ।।

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पीलायाः*] पीला प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में [*वा*] विकल्प से अण् प्रत्यय होता है । *द्व्यचः* से ढक् प्राप्त था सो पक्ष में ढक् ही होगा । यस्येति लोप तथा ढ को एय होकर पैलेयः बनेगा ।।

यहाँ से '*वा*' की अनुवृत्ति ४।१।११९ तक जायेगी ।।

ढक् च मण्डूकात् ।।४।१।११९।।

ढक् १।१।। च अ० ।। मण्डूकात् ५।१।। *अनु०*—वा, अण्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—मण्डूकशब्दादपत्येऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति चकारादण् च भवति विकल्पेन ।। तेन त्रैरूप्यं भवति ।। *उदा०*—ढक्—मण्डूकस्यापत्यं माण्डूकेयः । चकारादण् च—माण्डूकः । पक्षे इञ्—माण्डूकिः ।।

भाषार्थः—[*मण्डूकात्*] मण्डूक प्रातिपदिक से [*ढक्*] ढक् प्रत्यय होता है [*च*] चकार से अण् भी विकल्प करके होता है, अतः तीन रूप बनते हैं ।। पक्ष में अदन्त होने से (४।१।९५) इञ् होगा ।। *उदा०*—

माण्डूकेयः (मण्डूक नामक पुरुष का अपत्य)। माण्डूकः। माण्डूकिः॥ (४।१।८२) से महाविभाषा का अधिकार होने से सर्वत्र विग्रह वाक्य रहता ही है॥

स्त्रीभ्यो ढक्॥४।१।१२०॥

स्त्रीभ्यः ५।३॥ ढक् १।१॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—सुपर्णाया अपत्यं सौपर्णेयः, वैनतेयः, गार्गेयः, वात्सेयः, द्रौपदेयः।

भाषार्थः—[*स्त्रीभ्यः*] स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [ढक्] ढक् प्रत्यय होता है॥ स्त्रीभ्यः से यहाँ स्त्री प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों का ग्रहण है॥

यहाँ से '*स्त्रीभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।१।१२१ तक तथा 'ढक्' की ४।१।१२७ तक जायेगी॥

द्व्यचः॥४।१।१२१॥

द्व्यचः ५।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन्, स द्व्यच् तस्मात्..... बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—स्त्रीभ्यो ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*- द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति॥ *अवृद्धाभ्यो नदी०* (४।१।११३) इत्यस्यायमपवादः॥ *उदा०*—गंगाया अपत्यम् गाङ्गेयः। दत्ताया अपत्यं दात्तेयः। गौपेयः सैतेयः॥

भाषार्थः—[*द्व्यचः*] दो अच् वाले जो स्त्री प्रत्ययान्त प्रातिपदिक उनसे अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है॥ *स्त्रीभ्यो ढक्* से ढक् सिद्ध ही था पुनर्विधान इसलिए है कि जो द्व्यच् स्त्री प्रत्ययान्त नदी मानुषी नामधेय प्रातिपदिक हैं, उनसे *अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्त०* से प्राप्त अण् को बाधकर ढक् ही हो॥ गङ्गा नदी नामधेय और दत्ता गोपा तथा सीता मानुषी नामधेय द्व्यच् प्रातिपदिक हैं सो उनसे ढक् हो गया है॥ सर्वत्र यहाँ *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि होगी॥

यहाँ से '*द्व्यचः*' की अनुवृत्ति ४।१।१२२ तक जायेगी॥

इतश्चानिञः ॥४।१।१२२॥

इतः ५।१॥ च अ० ॥ अनिञः ५।१॥ स०—न इञ् अनिञ्, तस्मात् ······ नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०- द्व्यचः, ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इकारान्ताद् द्व्यचः अनिञन्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्येऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०— अत्रेरपत्यम् आत्रेयः, निधेरपत्यं नैधेयः ॥

भाषार्थः—[*इतः*] इकारान्त [*अनिञः*] अनिञन्त द्व्यच् प्रातिपदिकों से [च] भी अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ॥ निधि शब्द *उपसर्गे घोः किः* (३।३।९२) से 'कि' प्रत्ययान्त है ॥ अत्रि एवं निधि इञन्त प्रातिपदिक नहीं हैं, अतः ढक् प्रत्यय हो गया है ॥

शुभ्रादिभ्यश्च ॥४।१।१२३॥

शुभ्रादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—शुभ्र आदिर्येषां ते शुभ्रादय-स्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ अनु०— ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्-प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ—शुभ्रादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०- शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः, वैष्टपुरेयः ॥

भाषार्थ—[*शुभ्रादिभ्यः*] शुभ्रादि प्रातिपदिकों से [च] भी अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥४।१।१२४॥

विक··कात् ५।१॥ काश्यपे ७।१॥ स०—विकर्णश्च कुपीतकश्च विकर्ण-कुपीतकम्, तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ.—विकर्ण-शब्दात् कुपीतकशब्दाच्च काश्यपेऽपत्यविशेषे वाच्ये ढक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा० वैकर्णेयः, कौपीतकेयः ॥ काश्यपादन्यत्र वैकर्णिः, कौषीतकिः ।

भाषार्थः—[*विकर्णकुषीतकात्*] विकर्ण तथा कुपीतक शब्दों से [*काश्यपे*] काश्यप अपत्य विशेष को कहने में ढक् प्रत्यय होता है ॥ काश्यप गोत्र से अन्यत्र वैकर्णिः कौपीतकिः में इञ् ही होता है ।

भ्रुवो वुक् च ॥४।१।१२५॥

भ्रुवः ६।१॥ वुक् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भ्रूप्रातिपदिकाद् अपत्येऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च भ्रुवो वुक् आगमो भवति ॥ उदा०—भ्रुवोरपत्यं भ्रौवेयः ॥

भाषार्थः—[*भ्रुवः*] भ्रू प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है [च] तथा भ्रू को [वुक्] वुक् का आगम भी होता है ॥ *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) से वुक् आगम भ्रू के अन्त में बैठेगा । 'भ्रू वुक् ढक्' = भ्रूव् एय = भ्रौवेयः बन गया । वाक्यभेद से भ्रुवः में पञ्चमी है ॥ भ्रू किसी स्त्री का नाम है ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् ॥४।१।१२६॥

कल्याण्यादीनाम् ६।३॥ इनङ् १।१॥ स०—कल्याणी आदिर्येषां ते कल्याण्यादयस्तेषां ....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—ढक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कल्याण्यादिभ्योऽपत्येऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन च तेषाम् इनङ् आदेशो भवति ॥ उदा०—काल्याणिनेयः, सौभागिनेयः, दौर्भागिनेयः ॥

भाषार्थः—[*कल्याण्यादीनाम्*] कल्याण्यादि शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है, तथा कल्याण्यादियों को [*इनङ्*] इनङ् आदेश भी हो जाता है ॥ उदा०—काल्याणिनेयः (कल्याणी नाम की स्त्री का अपत्य) सौभागिनेयः (सुभगा का अपत्य) दौर्भागिनेयः (दुर्भगा का अपत्य) ॥ *ङिच्च* (१।१।५२) से अन्त्य अल् को इनङ् होकर 'कल्याण् इनङ् ढक्' = काल्याणिनेयः बन गया । सौभागिनेयः आदि में *हृद्भगसिन्ध्वन्ते०* (७।३।१९) से दोनों पदों (सु तथा भग) में वृद्धि हुई है ॥

यहाँ से 'इनङ्' की अनुवृत्ति ४।१।१२७ तक जायेगी ॥

कुलटाया वा ॥४।१।१२७॥

कुलटायाः ६।१॥ वा अ० ॥ अनु०—ढक्, इनङ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ कुलान्यटतीति कुलटा ॥ अर्थः—कुलटाया अपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च

कुलटाशब्दस्य वा इनङ् आदेशो भवति ॥ उदा०—कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः, कौलटेयः ॥

भाषार्थ.—[*कुलटायाः*] कुलटा शब्द से ढक् प्रत्यय अपत्यार्थ में होता है, तथा कुलटा को [*वा*] विकल्प से इनङ् आदेश भी होता है ॥ पूर्ववत् यहाँ भी अन्त्य अल् को इनङ् आदेश का विकल्प है, सो ढक् प्रत्यय नित्य ही होता है ॥

चटकाया ऐरक् ॥४।१।१२८॥

चटकायाः ५।१॥ ऐरक् १।१॥ *अनु*०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चटकाशब्दात् ऐरक् प्रत्ययो भवत्यपत्येऽर्थे ॥ *उदा*०—चटकाया अपत्यं पुमान् चाटकैरः ॥

भाषार्थ—[*चटकायाः*] चटका शब्द से अपत्य अर्थ में [*ऐरक्*] ऐरक् प्रत्यय होता है ॥ *उदा*०—चाटकैरः (चिड़िया का नर अपत्य, अथवा चटका नामक स्त्री का लड़का) ॥

गोधाया ढ्रक् ॥४।१।१२९॥

गोधायाः ५।१॥ ढ्रक् १।१॥ *अनु*०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोधाशब्दाद् अपत्येऽर्थे ढ्रक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—गोधाया अपत्यं गौधेरः ॥

भाषार्थ.—[*गोधायाः*] गोधा शब्द से अपत्य अर्थ में [*ढ्रक्*] ढक् प्रत्यय होता है ॥ गौधेरः की सिद्धि प्रथम भाग पृ० ७५३ परि० १।१।५९ में देखें ॥

यहाँ से '*गोधायाः*' की अनुवृत्ति ४।१।१३० तक तथा ढ्रक् की ४।१।१३१ तक जायेगी ॥

आरगुदीचाम् ॥४।१।१३०॥

आरक् १।१॥ उदीचाम् ६।३॥ *अनु*०—गोधायाः, तस्यापत्यम्, तद्धिताः,ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उदीचामाचार्याणां मतेन गोधाप्रातिपदिकादपत्येऽर्थे आरक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—गौधारः ॥

भाषार्थ—गोधा प्रातिपदिक से [*आरक्*] आरक् प्रत्यय [*उदीचाम्*] उदीच्य आचार्यों = उत्तरदेश निवासी आचार्यों के मत में होता है ॥

यहाँ आरक् प्रत्यय कहा है सो ढ्रक् की अनुवृत्ति आते हुये भी सम्बद्ध नहीं होती है ॥

क्षुद्राभ्यो वा ॥४।१।१३१॥

क्षुद्राभ्यः ५।३॥ वा अ० ॥ *अनु*:—ढ्रक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्षुद्राभ्यः प्रकृतिभ्योऽपत्येऽर्थे वा ढ्रक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—काणेरः, काणेयः, दासेरः, दासेयः ॥ ढकि प्राप्ते आरम्भ इति पक्षे सोऽपि भवति ॥

भाषार्थः—[*क्षुद्राभ्यः*] क्षुद्रवाची प्रकृतियों से अपत्य अर्थ में [*वा*] विकल्प से ढ्रक् प्रत्यय होता है ॥ ढक् की प्राप्ति में यह सूत्र है, अतः पक्ष में ढक् ही होगा ॥ क्षुद्रा उसे कहते हैं जो अङ्ग से या धर्म से हीन हो ॥ काणा शब्द कानी का वाचक है अर्थात् अङ्गहीना है, दासी शब्द धर्महीना कर्मकरी (नौकरानी) का वाचक है, अतः ये सब क्षुद्रवाची हैं ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥४।१।१३२॥

पितृष्वसुः ५।१॥ छण् १।१॥ *अनु*०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पितृष्वसृप्रातिपदिकादपत्येऽर्थे छण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—पितृष्वसुरपत्यं, पैतृष्वस्रीयः ॥

भाषार्थः—[*पितृष्वसुः*] पितृष्वसृ शब्द से अपत्य अर्थ में [*छण्*] छण् प्रत्यय होता है ॥ सामान्य अण् (४।१।९२) की प्राप्ति थी, उसका यह अपवाद सूत्र है। पितृष्वसृ बुआ = फूफी को कहते हैं ॥ पितृष्वसृ छण् = पैतृष्वसृ ईय यहाँ यणादेश (६।१।७४) होकर पैतृष्वस्रीयः (बुआ का लड़का) बन गया है ॥

यहाँ से '*पितृष्वसु*' की अनुवृत्ति ४।१।१३४ तक जायेगी ॥

ढकि लोपः ॥४।१।१३३॥

ढकि ७।१॥ लोपः १।१॥ *अनु*०— पितृष्वसुः, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अपत्येऽर्थे ढकि प्रत्यये परतः पितृष्वसुर्लोपो भवति ॥ *उदा*०—पैतृष्वसेयः ॥

भाषार्थ—अपत्यार्थ में आये हुये [*ढकि*] ढक् प्रत्यय के परे रहते पितृष्वसृ शब्द का [*लोपः*] लोप हो जाता है ॥ यहाँ *अलोन्त्यस्य*

(१।१।५१) लगकर पितृष्वसृ के ऋकार का ही लोप होता है ॥ यहाँ यह प्रश्न होता है कि पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय किसी सूत्र से कहा ही नहीं तो ढक् के परे लोप कैसे विधान कर दिया ? अतः इसी ज्ञापक से ढक् का भी विधान माना जाता है, तभी लोप विधान की सार्थकता होती है ॥

यहाँ से '*ढकि लोपः*' की अनुवृत्ति ४।१।१३४ तक जायेगी ॥

मातृष्वसुश्च ॥४।१।१३४॥

मातृष्वसुः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ढकि लोपः, पितृष्वसुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मातृष्वसुः प्रातिपदिकादपि छण् प्रत्ययः ढकि परतो मातृष्वसुर्लोपश्च भवति ॥ *उदा०*—मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः ॥

भाषार्थः—पितृष्वसृ प्रातिपदिक को जो कुछ कहा है वह [*मातृष्वसुः*] मातृष्वसृ शब्द को [च] भी हो जाता है ॥ चकार से यह सूत्र पितृष्वसृ की अपेक्षा करता है । पितृष्वसृ शब्द से छण् प्रत्यय तथा ढक् प्रत्यय परे रहते ऋकार का लोप कहा है, सो यहाँ भी उसी प्रकार पूर्ववत् होगा ॥ मातृष्वसृ = मौसी को कहते हैं ॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥४।१।१३५॥

चतुष्पाद्भ्यः ५।३॥ ढञ् १।१॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुष्पाद्वाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कामण्डलेयः, शौन्तिवाहेयः, जाम्बेयः ॥

भाषार्थः—[*चतुष्पाद्भ्यः*] चतुष्पाद् अभिधायी प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—कामण्डलेयः (कमण्डलु नामक पशु जातिविशेष की सन्तान) शौन्तिवाहेयः (शुन्तिबाहु नामक पशु जाति का अपत्य) जाम्बेयः (जम्बु = श्रृगाल का अपत्य) *ढे लोपोऽकद्र्वाः* (६।४।१४७) से कमण्डलु इत्यादि के उकार का लोप हो जाता है, शेष कार्य 'ढ को एय' आदि पूर्ववत् हो ही जायेंगे ॥

यहाँ से '*ढञ्*' की अनुवृत्ति ४।१।१३६ तक जायेगी ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥४।१।१३६॥

गृष्ट्यादिभ्यः ५।३॥ च अ०॥ स०—गृष्टिरादिर्येषां ते गृष्ट्यादयस्तेभ्यः''''बहुव्रीहिः ॥ अनु०—ढञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—गृष्ट्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गृष्टेरपत्यं गार्ष्टेयः, हार्ष्टेयः ॥

भाषार्थः—[*गृष्ट्यादिभ्यः*] गृष्ट्यादि प्रातिपदिकों से [च] भी अपत्य अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥४।१।१३७॥

राजश्वशुरात् ५।१॥ यत् १।१॥ स०—राजा च श्वशुरश्च राजश्वशुरं, तस्मात्''''''समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—राजन्, श्वशुर इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्येऽर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—राज्ञोऽपत्यं राजन्यः, श्वशुर्यः ॥

भाषार्थः—[*राजश्वशुरात्*] राजन् तथा श्वशुर प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥ यत् प्रत्यय परे रहते राजन् की भ संज्ञा (१।४।१८) होती है, सो *नलोपः प्राति०* (८।२।७) से नकार लोप नहीं हुआ ॥ उदा०—राजन्यः (क्षत्रिय), श्वशुर्यः (श्वशुर का पुत्र) ॥

क्षत्राद् घः ॥४।१।१३८॥

क्षत्रात् ५।१॥ घः १।१॥ अनु०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्षत्रप्रातिपदिकादपत्येऽर्थे घः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—क्षत्रस्यापत्यं क्षत्रियः ॥

भाषार्थः—[*क्षत्रात्*] क्षत्र शब्द से अपत्यार्थ में [*घः*] घ प्रत्यय होता है । उदा०—क्षत्रियः (क्षत्रिय) ॥

कुलात्खः ॥४।१।१३९॥

कुलात् ५।१॥ खः १।१॥ अनु०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कुलशब्दान्तात् केवलाच्च प्रातिपदिकादपत्येऽर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आढ्यकुलीनः, श्रोत्रियकुलीनः, कुलीनः ॥

भाषार्थः—[*कुलात्*] कुल शब्द अन्त वाले तथा केवल कुल प्रातिपदिक से भी अपत्य अर्थ में [*खः*] ख प्रत्यय होता है। अगले सूत्र में अपूर्वपद अर्थात् केवल कुल शब्द से विकल्प से प्रत्ययान्तरों का विधान किया है, इससे ज्ञात होता है कि यहाँ कुलान्त तथा केवल कुल शब्द दोनों से प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*कुलात्*' की अनुवृत्ति ४।१।१४० तक जायेगी ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ॥४।१।१४०॥

अपूर्वपदात् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ यड्ढकञौ १।२॥ *स०*—अविद्यमानं पूर्वपदं यस्य तदपूर्वपदं तस्मात्...... बहुव्रीहिः। यच्च ढकञ् च यड्ढकञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कुलात्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अपूर्वपदात् कुलशब्दाद्विकल्पेन यत्, ढकञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे खोऽपि भवति ॥ *उदा०*—कुल्यः, कौलेयकः, कुलीनः ॥

भाषार्थः—[*अपूर्वपदात्*] अविद्यमान पूर्वपद वाले कुल शब्द से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*यड्ढकञौ*] यत् और ढकञ् प्रत्यय होते हैं। पक्ष में पूर्व सूत्र से प्राप्त 'ख' प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति ४।१।१४२ तक जायेगी ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥४।१।१४१॥

महाकुलात् ५।१॥ अञ्खञौ १।२॥ *स०*—अञ् च खञ् च अञ्खञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—महाकुलप्रातिपदिकादपत्येऽर्थे विकल्पेन अञ्, खञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—महाकुलस्यापत्यं माहाकुलः, माहाकुलीनः। पक्षे खः—महाकुलीनः ॥

भाषार्थः—[*महाकुलात्*] महाकुल प्रातिपदिक से [*अञ्खञौ*] अञ् और खञ् प्रत्यय विकल्प से होते हैं, पक्ष में ४।१।१३९ से प्राप्त ख प्रत्यय होगा ॥ खञ् तथा ख में वृद्धि एवं स्वर का ही भेद है ॥

दुष्कुलाड्ढक् ॥४।१।१४२॥

दुष्कुलात् ५।१॥ ढक् १।१॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दुष्कुलप्रातिपदि-

ात् तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—
ष्कुलेयः, दुष्कुलीनः ॥

भाषार्थ—[*दुष्कुलात्*] दुष्कुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में
कल्प से [*ढक्*] ढक् प्रत्यय होता है। पक्ष में पूर्ववत् ख होता है।
क् पक्ष में *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि होगी, शेष पूर्ववत् ढ को
गादि होगा ॥

स्वसुश्छः ॥४।१।१४३॥

स्वसुः ५।१॥ छः १।१॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-
ङ्कान्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—स्वसृप्रातिपदिकादपत्येऽर्थे छः
प्रयो भवति ॥ *उदा०*—स्वसुरपत्यं स्वस्रीयः ॥

भाषार्थः—[*स्वसुः*] स्वसृ प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में [*छः*] छ
यय होता है। स्वसृ बहिन को कहते हैं। स्वसृ + छ = स्वसृ + ईय,
ाँ यणादेश होकर स्वस्रीयः (बहिन का अपत्य) बन गया है ॥

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ४।१।१४४ तक जायेगी ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥४।१।१४४॥

भ्रातुः ५।१॥ व्यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—छः, तस्यापत्यम्,
ताः, ङ्याप्प्रातिपदिकान्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भ्रातृ शब्दाद्-
ऽर्थे व्यत् प्रत्ययो भवति चकाराच्छश्च ॥ *उदा०*—भ्रातुरपत्यं
तृव्यः, भ्रात्रीयः ॥

भाषार्थ—[*भ्रातुः*] भ्रातृ शब्द से अपत्य अर्थ में [*व्यत्*] व्यत्
| तथा चकार से छ प्रत्यय होता है ॥ भ्रातृ भाई को कहते हैं,
ृव्य अर्थात् भाई का लड़का ॥

यहाँ से '*भ्रातुः*' की अनुवृत्ति ४।१।१४५ तक जायेगी ॥

व्यन्त्सपत्ने ॥४।१।१४५॥

व्यन् १।१॥ सपत्ने ७।१॥ *अनु०* भ्रातुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-
ान्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भ्रातृशब्दात् सपत्ने वाच्ये व्यन्
यो भवति ॥ अपत्यार्थोऽत्र न सम्बध्यते। सपत्नशब्दः शत्रुपर्यायः।
०—भ्रातृव्यः कण्टकः ॥

भाषार्थः—भ्रातृ शब्द से [*सपत्ने*] सपत्न अर्थात् शत्रुवाच्य हो तो [*व्यन्*] व्यन् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ *तस्यापत्यम्* का अधिकार आते हुए भी सम्बद्ध नहीं होता है । व्यन्, व्यत् में स्वर का ही भेद है । व्यन् होने पर *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर रहेगा तथा व्यत् में *तित्स्वरितम्* (६।१।१७९) से अन्त स्वरित होगा ॥

रैवत्यादिभ्यष्ठक् ॥४।१।१४६॥

रैवत्यादिभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *स०*—रैवती आदिर्येषां ते रैवत्यादयः, तेभ्यः.......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ.*—रैवत्यादिभ्योऽपत्येऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—रैवत्या अपत्यं रैवतिकः, अश्वपाल्या अपत्यं आश्वपालिकः ॥

भाषार्थः—[*रैवत्यादिभ्यः*] रैवत्यादि शब्दों से अपत्य अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ *ठस्येकः* (७।३।५०) से ठ् को इक्, यस्येति लोप तथा ७।२।११८ से वृद्धि होकर रैवतिकः आदि की सिद्धि जाने ॥

यहाँ से 'ठक्' की अनुवृत्ति ४।१।१४७ तक जायेगी ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥४।१।१४७॥

गोत्रस्त्रियाः ५।१॥ कुत्सने ७।१॥ ण लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—गोत्रं च सा स्त्री गोत्रस्त्री, तस्याः.....कर्मधारयतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—ठक्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ.*—गोत्रं या स्त्री तदभिधायिनः शब्दात् कुत्सने गम्यमानेऽपत्यार्थे णः प्रत्ययो भवति, चकाराट्ठक् च ॥ *उदा०*—गार्ग्या अपत्यं गार्गो जाल्मः, गार्गिकः । ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लौचुकायनः, ग्लौचुकायनिकः ॥

भाषार्थः—[*गोत्रस्त्रियाः*] गोत्र में वर्तमान जो स्त्री तद्वाची प्रातिपदिक से [*कुत्सने*] कुत्सन गम्यमान होने पर [*ण*] ण प्रत्यय होता है, [*च*] तथा चकार से ठक् भी होता है ॥ यहाँ गोत्र *अपत्यं पौत्र०* (४।१।१६२) वाला लिया है, सो गोत्र में वर्तमान स्त्रीवाची से ण तथा ठक्, *गोत्राद्यून्य०* (४।१।९४) के नियम से युवापत्य में ही होगा । गार्गी गोत्रप्रत्ययान्त शब्द है, सो उससे प्रकृत सूत्र से ण तथा ठक् हुए

हैं। गार्गी की सिद्धि परि० ४।१।१६ में देखें। ग्लुचुक शब्द से *प्राचामवृद्धात् फिन्०* (४।१।१६०) से गोत्र में फिन् प्रत्यय तथा *इतो मनुष्यजातेः* (४।१।६५) से ङीप् होकर ग्लुचुकायनी शब्द (गोत्र स्त्री वाची) बना है, पुनः प्रकृत सूत्र से ण एवं ठक् हो गया। पिता का पता न चलने पर माता से पुत्र का व्यपदेश किया जाए, अर्थात् अमुक माता का पुत्र है, यही यहाँ कुत्सा है[1] ॥

यहाँ से '*कुत्सने*' की अनुवृत्ति ४।१।१४९ तक तथा 'गोत्र' की ४।१।१५० तक जायेगी।

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥४।१।१४८॥

वृद्धात् ५।१॥ ठक् १।१॥ सौवीरेषु ७।३॥ बहुलम् १।१॥ *अनु०*— कुत्सने, गोत्रे, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः* – वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् कुत्सने गम्यमाने सौवीरगोत्रापत्ये बहुलं ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०* – भागवित्तेः सौवीरगोत्रापत्यं भागवित्तिको जाल्मः। पक्षे *यञिञोश्च* (४।१।१०१) इत्यनेन यथाप्राप्तं फक्-भागवित्तायनः। तार्णबिन्दवस्य गोत्रापत्यं तार्णबिन्दविकः, पक्षे *इञ्* (४।१।९५) प्रत्ययः—तार्णबिन्दविः। आकशापेयस्य गोत्रापत्यं आकशापेयिकः, पक्षे इञ्प्रत्ययः आकशापेयिः ॥

भाषार्थः– [*वृद्धात्*] वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से [*सौवीरेषु*] सौवीर गोत्रापत्य में [*बहुलम्*] बहुल करके [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है, कुत्सन गम्यमान होने पर ॥

---

१. यह बात साम्प्रतिक व्याख्याओ के अनुसार है। बृहदारण्यक मे मातृवंश का उल्लेख उसी प्रकार मिलता है, जैसे पितृवंश का। अतः केवल माता से व्यपदेश होना कुत्सा का कारण नहीं होता है। अन्यथा जाबालि को पिता के अज्ञात होने पर उसके आचार्य उसके सत्यभाषण से प्रभावित होकर ब्राह्मण स्वीकार न करते। अत कुत्सा का वास्तविक कारण पुत्र का अपना बुरा आचरण ही है। इस प्रकार गार्गी, गार्गिक वह होगा जो गार्गी के उत्कृष्ट कुल मे उत्पन्न होकर भी दुराचारी हो। हिन्दी के मुहावरे के अनुसार 'माता की कोख को लजाने वाला काम करे'। उत्तर सूत्रों में पितृनाम से व्यपदेश होने पर भी कुत्सन अर्थ में जैसे प्रत्यय का विधान होता है वैसे ही यहाँ भी मातृनाम से व्यपदेश में भी जानना चाहिये। दोनों स्थानो मे समानकारण ही मानना चाहिये।

यहाँ से 'वृद्धात् ठक्' की अनुवृत्ति ४।१।१४६ तथा 'सौवीरेषु बहुलम्' की ४।१।१५० तक जायेगी ॥

फेश्छ च ॥४।१।१४९॥

फेः ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—वृद्धाट्ठक्, सौवीरेषु बहुलम्, गोत्रे, कुत्सने, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ वृद्धाधिकारात् फेरित्यनेन फिञो ग्रहणं न तु फिनः ॥ अर्थः—फिञन्तात् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् सौवीरगोत्रादपत्ये कुत्सने गम्यमाने छः प्रत्ययो बहुलम् भवति चकाराट्ठक् च ॥ उदा०—यमुन्दस्यापत्यं यामुन्दायनिः, यामुन्दायनेरपत्यं यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः ॥

भाषार्थः—वृद्धसंज्ञक [फेः] फिञन्त प्रातिपदिक सौवीर गोत्रापत्य से कुत्सित युवापत्य को कहने में [छ] छ [च] तथा चकार से ठक् प्रत्यय बहुल करके होता है ॥

यद्यपि इस सूत्र में 'फेः' सामान्यनिर्देश है, अतः फिञ् फिन् दोनों का ही ग्रहण हो सकता है, तथापि यहाँ वृद्धात् की अनुवृत्ति होने से फिञ् का ही ग्रहण होगा फिन् का नहीं ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥४।१।१५०॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् ५।२॥ णफिञौ १।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—सौवीरेषु, बहुलम्, गोत्रं, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ फाण्टाहृतिमिमतशब्दाभ्यां सौवीरविषयाभ्यामपत्ये णफिञौ प्रत्ययौ भवतः ॥ यथासङ्ख्यमत्र न भवति ॥ उदा०—फाण्टाहृतस्य सौवीरगोत्रस्यापत्यं फाण्टाहृतः । फिञ्—फाण्टाहृतायनिः । मैमतः, मैमतायनिः ॥

भाषार्थ—सौवीर विषय वाले [*फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्*] फाण्टाहृति तथा मिमत शब्दों से अपत्यार्थ में [*णफिञौ*] ण तथा फिञ् प्रत्यय होते हैं ॥ इस सूत्र में यथासङ्ख्य नहीं लगता अतः दोनों प्रकृतियों से दोनों प्रत्यय होते हैं ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥४।१।१५१॥

कुर्वादिभ्यः ५।३॥ ण्यः १।१॥ स०—कुरु आदिर्येषां ते कुर्वादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुर्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुरोरपत्यं कौरव्यः, गार्ग्यः ॥

भाषार्थः—[*कुर्वादिभ्यः*] कुर्वादि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में [*ण्यः*] ण्य प्रत्यय होता है ॥ *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा *वान्तो यि०* (६।१।७६) से वान्तादेश होकर कौरव्यः बना है ॥

यहाँ से '*ण्यः*' की अनुवृत्ति ४।१।१५२ तक जायेगी ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥४।१।१५२॥

सेना.....कारिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—सेना अन्ते यस्य स सेनान्तः, सेनान्तश्च लक्षणञ्च कारिश्च सेनान्तलक्षणकारयस्तेभ्यः ..... बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ण्यः, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सेनान्तात् प्रातिपदिकात् लक्षणशब्दात् कारिवाचिभ्यश्चापत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कारिषेणस्यापत्यं = कारिषेण्यः, हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कारिवाचिभ्यः—कौम्भकार्यः तान्तुवाय्यः, नापित्यः ।

भाषार्थः—[*सेना.....भ्यः*] सेना अन्त वाले प्रातिपदिकों से, लक्षण शब्द से, तथा कारिवाची = शिल्पीवाची प्रातिपदिकों से [च] भी अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय होता है ॥ यहाँ लक्षण शब्द का स्वरूप से ग्रहण है तथा कारि से कारिवाची लिया है । कुम्भकार = कुम्हार, तन्तुवाय = जुलाहा, नापित = नाई आदि शब्द कारि = शिल्पीवाची हैं ॥ कारिषेण्यः में षत्व *एति सञ्ज्ञाया०* (८।३।९९) से हुआ है, तथा णत्व *अट्कुप्वाङ्०* (८।४।२) से हुआ है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।१।१५३ तक जायेगी ॥

उदीचामिञ् ॥४।१।१५३॥

उदीचाम् ६।३॥ इञ् १।१॥ *अनु०*—सेनान्तलक्षणकारिभ्यः, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सेनान्तलक्षणकारिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन ॥ *उदा०*—कारिषेणिः, हारिषेणिः; लाक्षणिः । कौम्भकारिः, तान्तुवायिः ॥

भाषार्थः—[*उदीचाम्*] उदीच्य आचार्यों के मत में सेनान्त, लक्षण तथा कारिवाची प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*इञ्*] इञ् प्रत्यय होता है ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥४।१।१५४॥

तिकादिभ्यः ५।३॥ फिञ् १।१॥ *स०*—तिक आदिर्येषां ते तिकादयस्तेभ्यः''' बहुव्रीहि ॥ *अनु०*—तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०* तिकस्यापत्यं तैकायनिः, कैतवायनिः ॥

भाषार्थः—[*तिकादिभ्य*] तिकादि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*फिञ्*] फिञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से *फिञ्* की अनुवृत्ति ४।१।१५९ तक जायेगी ॥

कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥४।१।१५५॥

कौसल्यकार्मार्याभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *स०*—कौस० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—फिञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कौसल्य, कार्मार्य इत्येताभ्यां शब्दाभ्यामपत्येऽर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कौसल्यस्यापत्यं कौसल्यायनिः, कार्मार्यायणिः ॥

भाषार्थः—[*कौसल्यकार्मार्याभ्याम्*] कौसल्य तथा कार्मार्य शब्दों से [च] भी अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है ॥

अणो द्व्यचः ॥४।१।१५६॥

अणः ५।१॥ द्व्यचः ५।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच् तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—फिञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अणन्ताद्द्व्यचः प्रातिपदिकादपत्येऽर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कार्त्रस्यापत्यं कार्त्रायणिः, हार्त्रायणिः ॥

भाषार्थः—[*अणः*] अणन्त [*द्व्यच*] दो अच् वाले प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय होता है ॥ कर्तृ हर्तृ शब्दों से *तस्येदम्* (४।३।१२०) अर्थ में अण् होकर कार्त्र, हार्त्र बना, अब यह कार्त्र शब्द अणन्त है, अतः अपत्य अर्थ में फिञ् हो गया ॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥४।१।१५७॥

उदीचाम् ६।३॥ वृद्धात् ५।१॥ अगोत्रात् ५।१॥ *स०*—अगोत्रादित्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—फिञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अगोत्रं यद्वृद्धसंज्ञकं प्रातिपदिकं, तस्मात् तस्यापत्यमर्थे उदीचामाचार्याणां मतेन फिञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आम्रगुप्तस्यापत्यं आम्रगुप्तायनिः । ग्रामरक्षस्यापत्यं ग्रामरक्षायणिः ॥

भाषार्थ—[*अगोत्रात्*] गोत्र से भिन्न जो [*वृद्धात्*] वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक उनसे [*उदीचाम्*] उदीच्य आचार्यों के मत में फिञ् प्रत्यय होता है ॥ आम्रगुप्त तथा ग्रामरक्ष प्रातिपदिकों की *वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्* (१।१।७२) से वृद्ध संज्ञा है ॥

यहां से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।१।१५९ तक जायेगी ॥

वाकिनादीनां कुक्च ॥४।१।१५८॥

वाकिनादीनाम् ६।३॥ कुक् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—वाकिन आदिर्येषां ते वाकिनादयः, तेषां बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—उदीचां वृद्धादगोत्रात, फिञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वाकिनादिभ्योऽगोत्रेभ्यः वृद्धसंज्ञकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन, तत्सन्नियोगेन च वाकिनादीनां कुगागमो भवति ॥ *उदा०*—वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः, गारेधस्यापत्यं गारेधकायनिः । अन्येषां मते—वाकिनिः, गारेधिः ॥

भाषार्थ—गोत्र भिन्न वृद्धसंज्ञक [*वाकिनादीनाम्*] वाकिनादि प्रातिपदिकों से उदीच्य आचार्यों के मत में अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय [*च*] तथा [*कुक्*] कुक् का आगम होता है ॥ वाकिन कुक् फिञ् = वाकिनक् आयन् इ = वाकिनकायनिः । अन्यों के मत में इञ् होकर वाकिनिः रूप बनेगा ॥

यहाँ से 'कुक्' की अनुवृत्ति ४।१।१५९ तक जायेगी ॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥४।१।१५९॥

पुत्रान्तात् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—पुत्रः अन्ते यस्य स पुत्रान्तः तस्मात् ····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—कुक्, उदीचां वृद्धादगोत्रात्,

फिञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अगोत्राद् वृद्धसंज्ञकात् पुत्रान्तात् प्रातिपदिकात् यः पूर्वसूत्रेण (४।१।१५७) फिञ् प्रत्ययो विहितस्तस्मिन् परभूते विकल्पेन कुगागमो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन। तेन त्रैरूप्यं भवति ॥ *उदा०*—गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः, वात्सीपुत्रकायणिः, वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिः ॥

भाषार्थः - गोत्र भिन्न वृद्ध संज्ञक [*पुत्रान्तात्*] पुत्रान्त प्रातिपदिक से पूर्व सूत्र (४।१।१५७) से विहित जो फिञ् प्रत्यय, उसके परे रहते [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से कुक् आगम होता है ॥ पूर्वसूत्र *उदीचा०* (४।१।१५७) में फिञ् प्रत्यय का विकल्प से विधान है, तथा यहाँ फिञ् परे रहते कुक् आगम का भी विकल्प कहा है, सोती न रूप बनते हैं, प्रथम कुक् आगम तथा फिञ् प्रत्यय का, यथा—गार्गीपुत्त्रकायणिः। द्वितीय जब पक्ष में कुक् आगम नहीं हुआ केवल फिञ् प्रत्यय हुआ, यथा—गार्गीपुत्त्रायणिः। तृतीय जब पक्ष में फिञ् प्रत्यय न होकर इञ् हुआ। इस पक्ष में कुक् आगम भी नहीं होगा क्योंकि कुक् आगम का फिञ् के सन्नियोग में विधान है, तब 'गार्गीपुत्त्रिः' प्रयोग बना ॥

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥४।१।१६०॥

प्राचाम् ६।३॥ अवृद्धात् ५।१॥ फिन् १।१॥ बहुलम् १।१॥ *अनु०* – तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकादपत्येऽर्थे बहुलं फिन् प्रत्ययो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन ॥ *उदा०*—ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः, अहिचुम्बकायनिः ॥ पक्षे इञ्—ग्लौचुकिः, आहिचुम्बकिः ॥

भाषार्थः—[*अवृद्धात्*] अवृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में [*बहुलम्*] बहुल करके [*फिन्*] फिन् प्रत्यय होता है [*प्राचाम्*] प्राच्य आचार्यों के मत में ॥ बहुल कहने से पक्ष में फिन् नही हुआ तो *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् हो गया। ग्लुचुक अहिचुम्बकादि अवृद्ध प्रातिपदिक हैं ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥४।१।१६१॥

मनोः ५।१॥ जातौ ७।१॥ अञ्यतौ १।२॥ षुक् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—अञ् च यत् च अञ्यतौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अर्थः*—मनुप्रातिपदिकाद्

अञ्, यत् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, तत्सन्नियोगेन च तस्य षुक् आगमो भवति, जातौ गम्यमानायाम्॥ उदा०—अञ्—मानुषः। यत्—मनुष्यः॥

भाषार्थ—[*मनो*] मनु शब्द से [*जातौ*] जाति को कहना हो तो [*अञ्यतौ*] अञ् तथा यत् प्रत्यय होते हैं [च] तथा मनुशब्द को [षुक्] षुक् आगम भी हो जाता है॥ यहाँ *तस्यापत्यम्* का अधिकार आते हुए भी सम्बद्ध नहीं होता, यह जानना चाहिये[1]॥ मनुशब्द से षुक् आगम होकर तथा *आद्यन्तौ*० (१।१।४५) से अन्त में बैठकर 'मनु षुक् अञ्' रहा, *वृद्धि* (७।२।११७) होकर मानुषः बना, यत् में मनुष्यः बनेगा॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्॥४।१।१६२॥

अपत्यम् १।१॥ पौत्रप्रभृति १।१॥ गोत्रम् १।१॥ *स०*- पौत्रः प्रभृतिर्यस्य तत् पौत्रप्रभृति, बहुव्रीहिः॥ *अर्थः*—पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद्गोत्रसंज्ञं भवति॥ संज्ञासूत्रमिदम्॥ *उदा०*—गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः, वात्स्यः॥

भाषार्थः—यह संज्ञासूत्र है। [*पौत्रप्रभृति*] पौत्र (नाती) से लेकर जो [*अपत्यम्*] अपत्य = सन्तान उसकी [*गोत्रम्*] गोत्र संज्ञा होती है, अर्थात् पौत्र की तथा उससे आगे के अपत्यों की गोत्र संज्ञा होती है॥

यहाँ से '*अपत्यं पौत्रप्रभृति*' की अनुवृत्ति ४।१।१६५ तक जायेगी॥

जीवति तु वंश्ये युवा॥४।१।१६३॥

जीवति ७।१॥ तु अ०॥ वंश्ये ७।१॥ युवा १।१॥ *अनु०*- अपत्यं पौत्रप्रभृति॥ वंशः = सन्ततिप्रबन्धः। वंशे भवः वंश्यः तस्मिन्

---

१. यह अभिप्राय साम्प्रतिक वैयाकरणो का है। वस्तुतः यहां अपत्यार्थ का सम्बन्ध भी जानना चाहिये। अन्यथा 'मनुष्यः कस्मात् मनोरपत्यं मनुषो वा' यह निरुक्तकार यास्क का वचन (३।२) उपपन्न नही होगा। अतः जैसे अन्यत्र कुत्सादि विशिष्ट अर्थ गम्यमान होने पर अपत्यार्थ में प्रत्यय होते हैं, वैसे ही यह भी जातिविशिष्ट अर्थ गम्यमान होने पर मनु से अपत्यार्थ में ही प्रत्यय होता है अन्यथा अपत्यप्रकरण मे सूत्र का पाठ भी निष्प्रयोजन होगा॥

दिगादित्वात् (४।३।५४) यत् प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—वंश्ये = पित्रादौ जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं (चतुर्थादारभ्य) तद् युवसंज्ञं भवति । पूर्वसूत्राद्यत् पौत्रप्रभृति इत्यनुवर्तते, तदत्र षष्ठ्या विपरिणम्यते, तेन चतुर्थादारभ्य युवसंज्ञा भवति ॥ *उदा०*—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः ॥

भाषार्थः—वंश का अर्थ यहाँ सन्तति का नैरन्तर्य है । उस वंश में होने वाले जो पिता चाचादि वह वंश्य कहलाएंगे ॥ ऊपर सूत्र से जो प्रथमान्त पौत्रप्रभृति आ रहा है, वह यहाँ षष्ठी विभक्ति में बदल जाएगा, तो अर्थ होगा—

पौत्रप्रभृति का जो अपत्य उसकी [*वंश्ये*] पिता इत्यादि के [जीवति] जीवित रहते [*युवा*] युवा संज्ञा [*तु*] ही होती है ॥ पौत्रप्रभृति के षष्ठी में विपरिणाम होने से पौत्रप्रभृति का जो अपत्य अर्थात् चौथे की युवसंज्ञा होती है, तीसरे की नहीं, ऐसा अर्थ हुआ ॥ *गोत्राद्यून्य०* (४।१।९४) के नियम से गार्ग्य से फक् (४।१।१०१) होकर गार्ग्यायणः बना है ॥

यहां से '*जीवति युवा*' की अनुवृत्ति ४।१।१६५ तक जायेगी ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥४।१।१६४॥

भ्रातरि ७।१॥ च अ० ॥ ज्यायसि ७।१॥ *अनु०*– जीवति युवा, अपत्यं पौत्रप्रभृति ॥ *अर्थः*—ज्यायसि भ्रातरि जीवति सति, पौत्रप्रभृतेरपत्यं कनीयान् भ्राता युवसंज्ञो भवति ॥ अवंश्यार्थोऽयमारम्भः, यथा - गार्ग्यस्य द्वौ पुत्रौ तयोः कनीयान् भ्राता मृते पित्रादौ वंश्ये ज्यायसि भ्रातरि जीवति सति युवसंज्ञको भवति ॥ गार्ग्यायणोऽस्य कनीयान् भ्राता, गार्ग्ये जीवति ॥

भाषार्थः—वंश्य पिता इत्यादियों को कहते हैं । भाई वंश्य में नहीं आ सकता, सो अवंश्य होने के कारण (पिता इत्यादि के मर जाने पर) पूर्वसूत्र से बड़े भाई के जीवित रहते छोटे भाई की युवसंज्ञा प्राप्त नहीं थी, गोत्र संज्ञा ही प्राप्त थी अतः विधान कर दिया । [*भ्रातरि ज्यायसि*] बड़े भाई के जीवित रहते (पित्रादिकों के मर जाने पर भी) पौत्र प्रभृति का जो अपत्य छोटा भाई उसकी [च] भी युवा संज्ञा हो जाती है ॥ *अपत्यं पौत्र०* (४।१।१६२) से गोत्र संज्ञा ही प्राप्त थी, युवसंज्ञा का विधान कर

दिया है ।। उदाहरण के लिये यदि गार्ग्य (पौत्र) के दो पुत्र हों, उनके पित्रादिकों की मृत्यु हो चुकी हो केवल दोनों भाई जीवित हों तो उनमें से जो छोटा भाई होगा, उसकी युवा संज्ञा होगी, सो वह गार्ग्यायण कहा जायेगा, पर बड़े भाई की गोत्रसंज्ञा ही होगी, सो वह गार्ग्य कहा जायेगा ।।

वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ।।४।१।१६५।।

वा अ० ।। अन्यस्मिन् ७।१।। सपिण्डे ७।१।। स्थविरतरे ७।१।। जीवति ७।१।। स०—समानं पिण्डं यस्य स सपिण्डः, बहुव्रीहिः ।। सप्तमपुरुषावधिः सपिण्डता भवति ।। *अनु०*—जीवति युवा, अपत्यम्, पौत्र प्रभृति ।। *अर्थः*—भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे = वृद्धतरे जीवति सति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसंज्ञं वा भवति ।। *उदा०*—गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः, पक्षे गोत्रसंज्ञैव—गार्ग्यः । वात्स्यायनः, वात्स्यो वा ।।

भाषार्थः—सपिण्ड = सात पीढ़ी में होने वाले ।। ऊपर सूत्र में कहे गए भ्रातरि की अपेक्षा से यहां 'अन्यस्मिन्' कहा है ।। [*अन्यस्मिन्*] भाई से अन्य [*सपिण्डे*] सात पीढ़ियों में से कोई [*स्थविरतरे*] पद तथा आयु दोनों से बूढ़ा व्यक्ति जीवित हो, तो पौत्रप्रभृति का जो अपत्य (अर्थात् चौथे की) [*जीवति*] उसके जीते ही [*वा*] विकल्प से युवा संज्ञा होती है । पक्ष में यथा प्राप्त गोत्रसंज्ञा ही होगी ।।

स्थविर में तरप् इसलिये लगाया है कि पद तथा आयु दोनों में जो बूढ़ा हो वही लिया जाए ।। प्रकृत सूत्र में जो 'जीवति' कहा है वह संज्ञी का विशेषण बनता है, तथा जो जीवति अनुवृत्ति से आ रहा है वह सपिण्ड का विशेषण बन जाता है ।।

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ।।४।१।१६६।।

जनपदशब्दात् ५।१।। क्षत्रियात् ५।१।। अञ् १।१।। स० जनपदं शब्दयतीति जनपदशब्दस्तस्मात्.....तत्पुरुषः ।। *अनु०*—तस्यापत्यम् तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—जनपदशब्दो यः क्षत्रियवाची, तस्मादपत्येऽर्थे अञ् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—पञ्चालस्यापत्यं = पाञ्चालः, ऐक्ष्वाकः, वैदेहः ।।

भाषार्थ—[*जनपदशब्दात्*] जनपद को कहने वाले [*क्षत्रियात्*] क्षत्रिय अभिधायक प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ पञ्चाल क्षत्रियवाची शब्द है, उससे *तस्य निवासः* (४।२।६८) से पञ्चालानां निवासो जनपदः, ऐसा विग्रह करके अण् प्रत्यय किया, तो पञ्चाल अण् बना पीछे उस अण् का *जनपदे लुप्* (४।२।८०) से लुप् हो गया, तो पञ्चालाः ही रह गया। अब यह पञ्चाल शब्द जनपदवाची भी है, तथा क्षत्रियाभिधायी भी, सो प्रकृत सूत्र से अपत्य अर्थ में अञ् हो गया। यही बात और उदाहरणों में भी जाने ॥ *उदा०*—पाञ्चालः (पञ्चाल क्षत्रियों की सन्तान), ऐक्ष्वाकः, वैदेहः ॥

यहाँ से '*जनपदशब्दात् क्षत्रियात्*' की अनुवृत्ति ४।१।१७६ तक तथा 'अञ्' की ४।१।१६७ तक जायेगी ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥४।१।१६७॥

साल्वेयगान्धारिभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *स०*—साल्वेयश्च गान्धारिश्च साल्वेयगान्धारी, ताभ्यां ... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—जनपदशब्दात्-क्षत्रियादञ्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्षत्रियाभिधायिभ्यां जनपदवाचिभ्यां साल्वेय गान्धारि इत्येताभ्यां शब्दाभ्यामपत्येऽर्थे अञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—साल्वेयानामपत्यं साल्वेयः, गान्धारः ॥

भाषार्थ—जनपदवाची क्षत्रियाभिधायी [*साल्वेयगान्धारिभ्याम्*] साल्वेय तथा गान्धारि शब्दों से [च] भी अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ॥ साल्वेय तथा गान्धारि शब्दों के क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची होने से पूर्वसूत्र से ही अञ् प्राप्त था, पुनर्विधान *वृद्धेत्कोसला०* (४।१।१६९) से जो ञ्यङ् वृद्धसंज्ञक होने से प्राप्त था, उसको बाधकर अञ् ही हो इसलिये है ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥४।१।१६ ॥

द्व्य...मसात् ५।१॥ अण् १।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, बहुव्रीहिः। द्व्यच् च मगधश्च कलिङ्गश्च सूरमसश्च द्व्यञ्.....मसं, तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—जनपदशब्दात् क्षत्रियात् तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—

जनपदवाचिक्षत्रियाभिधायिभ्यः, द्व्यच्, मगध, कलिङ्ग, सूरमस इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—द्व्यच्:-अङ्गानामपत्यं आङ्ग, वाङ्गः, सौह्मः, पौण्ड्रः। मगधानामपत्यं मागधः। कालिङ्गः, सौरमसः॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची [*द्व्यज्......मसात्*] दो अचों वाले शब्दों से तथा मगध, कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है॥ अङ्ग वङ्ग आदि प्रातिपदिकों से *जनपदश०* (४।१।१६६) से अञ् प्राप्त था, अण् विधान कर दिया है। अण् तथा अञ् में स्वर का ही भेद है॥

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥४।१।१६९॥

वृद्धे...जादात् ५।१॥ ञ्यङ् १।१॥ *स०*—वृद्धश्च, इत् च, कोसलश्च, अजादश्च, वृद्धेत्कोसलाजादम्, तस्मात् ......समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—क्षत्रियाभिधायिभ्यो जनपदवाचिभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्य इकारान्तेभ्यः कोसल, अजाद इत्येताभ्यां शब्दाभ्याञ्चापत्येऽर्थे ञ्यङ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—वृद्धसंज्ञकेभ्यः—आम्बष्ठानामपत्यम् आम्बष्ठ्य, सौवीर्यः। इकारान्तात—आवन्त्यः, कौन्त्यः, कौसल्यः, आजाद्यः॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची [*वृद्धे......दात्*] वृद्धसंज्ञक, इकारान्त तथा कोसल और अजाद प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*ञ्यङ्*] ञ्यङ् प्रत्यय होता है॥ यह सूत्र भी पूर्ववत् अञ् का अपवाद है॥ आम्बष्ठ तथा सौवीर शब्द *वृद्धिर्यस्या०* (१।१।७२) से वृद्धसंज्ञक हैं, तथा अवन्ति, कुन्ति शब्द इकारान्त हैं तथा, कोसल अजाद शब्द वृद्धसंज्ञक नहीं हैं, अतः इनको अलग से कह दिया। ये सब शब्द जनपदवाची तथा क्षत्रियाभिधायी भी हैं, सो ञ्यङ् हो गया है। सर्वत्र सिद्धि में पूर्ववत् वृद्धि (७।२।११७) तथा यस्येति लोप ही विशेष है॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥४।१।१७०॥

कुरुनादिभ्यः ५।३॥ ण्यः १।१॥ *स०*—नकार आदिर्येषां ते नादयः, कुरुश्च नादयश्च कुरुनादयः, तेभ्यः...बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—

जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—क्षत्रियाभिधायिनो जनपदवाचिनः कुरुशब्दात्, नादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुरूणामपत्यं = कौरव्यः । नादिभ्यः—नैषध्यः, नैपथ्यः ॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची [*कुरुनादिभ्यः*] कुरु तथा नकार आदि वाले प्रादिपदिकों से अपत्य अर्थ में [*ण्यः*] ण्य प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि में कुरु शब्द को *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा ६।१।७६ से वान्तादेश होता है । निषध तथा निपथ नकार आदि वाले शब्द हैं सो ण्य प्रत्यय हो गया है । कुरु शब्द के द्व्यच् होने से अञ् (४।१।१६६) का अपवाद अण् प्राप्त था, उसका यह अपवाद सूत्र है ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥४।१।१७१॥

साल्वा.....मकात् ५।१॥ इञ् १।१॥ *स०*—साल्वस्य अवयवः साल्वावयवः षष्ठीतत्पुरुषः । साल्वावयवश्च, प्रत्यग्रथश्च, कलकूटश्च, अश्मकश्च साल्वा.....कम्, तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, तस्यापत्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—साल्वो नाम जनपदः तस्यावयवाः उदुम्बरादयस्तेभ्यः क्षत्रियवृत्तिभ्यः प्रत्यग्रथ, कलकूट, अश्मक इत्येतेभ्यश्च क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यः प्रादिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थे इञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—साल्वावयवेभ्य—औदुम्बरिः, तैलखलिः, माद्रकारिः, यौगन्धरिः, भौलिङ्गिः, शारदण्डिः, प्रात्यग्रथिः, कालकूटिः, आश्मकिः ॥

भाषार्थ.—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची [*साल्वा.....कात्*] साल्व के अवयववाची तथा प्रत्यग्रथ, कलकूट एवं अश्मक प्रातिप्रदिकों से [*इञ्*] इञ् प्रत्यय होता है ॥ साल्व नाम (विशेष) क्षत्रियों का है । उनके रहने का जो जनपद वह भी साल्व (पूर्वोक्त ४।१।१६६ सूत्र में कही रीति से) कहा जायेगा, उस साल्व जनपद के भी जो भिन्न २ नाम वाले अवयव होंगे वे साल्वावयव कहे जायेंगे । साल्व जनपद के अवयव उदुम्बर, तिलखल, मद्रकर, युगन्धर, भुलिङ्ग तथा शरदण्ड माने गए हैं, अतः इनसे इञ् हुआ है । सिद्धि में वृद्धि तथा यस्येति लोप पूर्ववत् है ॥

ते तद्राजाः ॥४।१।१७२॥

ते १।३॥ तद्राजाः १।३॥ *अनु०*—जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः॥ 'ते' इत्यनेन पूर्वोक्ताः जनपदशब्देभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो विहिता अञादयः प्रत्यया गृह्यन्ते॥ *अर्थः*—ते पूर्वोक्ता अञादयः प्रत्ययास्तद्राजसंज्ञका भवन्ति॥ तद्राजसंज्ञकत्वात् बहुवचने '*तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्* (२।४।६२) इत्यनेन प्रत्ययस्य लुग्भवति॥ *उदा०*—(पाञ्चालः, पाञ्चालौ) पञ्चालाः। (आङ्गः, आङ्गौ), अङ्गाः॥

भाषार्थः—'ते' से यहाँ *जनपदशब्दात्०* (४।१।१६६) से लेकर जो अपत्य प्रत्यय अञ्, अण्, ञ्यङ् आदि कहे हैं, वे लिए जाते हैं॥ [*ते*] उन अञादि प्रत्ययों की [*तद्राजाः*] तद्राज संज्ञा होती है॥ तद्राज संज्ञा होने से बहुवचन में *तद्राजस्य बहुषु०* से प्रत्यय का लुक् होगा तो बहुवचन में पञ्चालाः, अङ्गाः ऐसा बनेगा॥ प्रत्यय के लुक् होने से *न लुमताङ्गस्य* (१।१।६२) से प्रत्ययलक्षण न होने से वृद्धि भी नहीं होगी॥

यहाँ से '*तद्राजाः*' की अनुवृत्ति ४।१।१७६ तक जायेगी॥

कम्बोजाल्लुक् ॥४।१।१७३॥

कम्बोजात् ५।१॥ लुक् १।१॥ *अनु०*—जनपदशब्दात क्षत्रियात्, तद्राजाः, प्रत्ययः॥ *अर्थः*—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची यः कम्बोजशब्दस्तस्मादपत्ये विहितो यस्तद्राजसंज्ञकः प्रत्ययस्तस्य लुग्भवति॥ *उदा०*—कम्बोजानामपत्यं = कम्बोजः॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची जो [*कम्बोजात्*] कम्बोज शब्द उससे अपत्यार्थ में विहित जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् हो जाता है॥ कम्बोज शब्द से *जनपदशब्दात् क्षत्रियात्०* (४।१।१६६) से अञ् हुआ है, उसीका यहाँ लुक् हो गया है, लुक् होने से वृद्धि भी नहीं हुई॥

यहाँ से '*लुक्*' की अनुवृत्ति ४।१।१७६ तक जायेगी॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥४।१।१७४॥

स्त्रियाम् ७।१॥ अवन्ति.....कुरुभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ अवन्तिश्च, कुन्तिश्च, कुरुश्च अवन्तिकुन्तिकुरवः, तेभ्यः......इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—लुक्, जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, तद्राजाः, प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—क्षत्रियाभिधायिभ्यो जनपदवाचिभ्योऽवन्ति, कुन्ति, कुरु इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उत्पन्नस्य तद्राजसंज्ञकप्रत्ययस्य स्त्रियां लुग्भवति ॥ *उदा०*—अवन्तीनामपत्यं स्त्री = अवन्ती, कुन्ती, कुरूः ॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची जो [*अव...भ्यः*] अवन्ति, कुन्ति तथा कुरु शब्द उनसे [च] भी उत्पन्न जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उनका [*स्त्रियाम्*] स्त्रीलिङ्ग अभिधेय हो तो लुक् हो जाता है ॥ अवन्ति, कुन्ति शब्द से इकारान्त मानकर *वृद्धेत्कोसला०* (४।१।१६९) से ञ्यङ् हुआ था, तथा कुरु से ण्य हुआ था, उसी का यहाँ लुक् हो गया है ॥ लुक् होने के पश्चात् *इतो मनुष्य०* (४।१।६५) से ङीष् हो गया, तथा कुरु से *ऊङुतः* (४।१।६६) से ऊङ् हो गया है ॥

यहाँ से *'स्त्रियाम्'* की अनुवृत्ति ४।१।१७६ तक जायेगी ॥

अतश्च ॥४।१।१७५॥

अतः ६।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—स्त्रियाम्, जनपदशब्दात् क्षत्रियात् लुक्, तद्राजाः, प्रत्ययः ॥ *अर्थः*—जनपदशब्दात् क्षत्रियाद्विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्याकारप्रत्ययस्य स्त्रियामभिधेयायां लुग्भवति ॥ *उदा०*—शूरसेनस्यापत्यं स्त्री शूरसेनी, मद्री, दरद् ॥

भाषार्थः—स्त्रीलिङ्ग अभिधेय हो तो तद्राजसंज्ञक [*अत*] अकारप्रत्यय का [च] भी लुक् हो जाता है ॥ शूरसेन शब्द से *जनपदशब्दात्०* (४।१।१६६) से अञ् प्रत्यय तथा मद्र दरद् शब्दों से द्व्यच् (४।१।१६८) लक्षण जो अण् हुआ था उसका लुक् हुआ है। अण् तथा अञ् दोनों का 'अ' शेष रहता है, सो अकार प्रत्यय है ही।

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥४।१।१७६॥

न अ० ॥ प्राच्य... दिभ्यः ५।३॥ *स०*—भर्ग आदिर्येषां ते भर्गादयः बहुव्रीहिः। यौधेय आदिर्येषां ते यौधेयादयः, बहुव्रीहिः। प्राच्यश्च,

भर्गादयश्च, यौधेयादयश्च, प्राच्य···यौधेयादयस्तेभ्यः··· इतरेतरद्वन्द्वः ॥
अनुः—स्त्रियाम्, तद्राजाः, लुक्, जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः ॥
अर्थः—क्षत्रियाभिधायिभ्यो जनपदशब्देभ्यः प्राच्येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः, भर्गादिभ्यः, यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य स्त्रियामभिधेयायां लुङ् न भवति ॥ *उदा*ः—प्राच्येभ्यः—पञ्चालस्यापत्यं स्त्री = पाञ्चाली, वैदेही, आङ्गी, वाङ्गी, मागधी। भर्गादिभ्यः—भार्गी, कारूषी, कैकेयी। यौधेयादिभ्यः— यौधेयी, शौभ्रेयी, शौक्रेयी ॥

भाषार्थः—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची [*प्राच्य···दिभ्यः*] प्राग्देशीय शब्द तथा भर्गादि, यौधेयादि शब्दों से उत्पन्न जो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उसका स्त्रीत्व अभिधेय हो तो लुक् [*न*] नहीं होता ॥

पञ्चाल, विदेह शब्दों से जो अञ् ४।१।१६६ से प्राप्त था उसका *अतश्च* (४।१।१७५) से लुक् प्राप्त था, स्त्रीत्व अभिधेय होने पर उस लुक् का निषेध हो गया तब *शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्* (४।१।७३) से ङीन् होकर 'पाञ्चाली' आदि बन गया। आङ्गी वाङ्गी भार्गी में भी पूर्ववत् (४।१।१६८) से उत्पन्न हुए अण् प्रत्यय का लुक् प्राप्त था, नहीं हुआ, तब *जातेरस्त्री०* (४।१।६३) से ङीष् हो गया। कारूषी, कैकेयी में ४।१।१६६ से अञ् हुआ है उसी का लुक् प्राप्त था सो प्रकृत सूत्र से नहीं हुआ, तब पूर्ववत् *जातेरस्त्री०* से ङीष् हो गया ॥

यौधेय, शौभ्रेय, शौक्रेय शब्दों से *पर्श्वादियौधेयादिभ्यो०* (५।३।११७) से अण् हुआ है, उस अण् की *ञ्यादयस्तद्राजाः* (५।३।११९) से तद्राज संज्ञा है सो उसका भी *अतश्च* (४।१।१७५) से लुक् प्राप्त था, निषेध हो गया ॥ इस सूत्र से *अतश्च* से प्राप्त लुक् का निषेध होता है ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

—:०:—

द्वितीयः पादः

तेन रक्तं रागात् ॥४।२।१॥

तन ३।१॥ रक्तम् १।१॥ रागात् ५।१॥ अनु०—समर्थानां प्रथमाद्वा, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ रज्यते अनेनेति रागः ॥

अर्थः—समर्थानां मध्ये यत् प्रथमं तृतीयासमर्थं, रागवाचि प्रातिपदिकं तस्मान् रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं=कौसुम्भम्। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायाम्। माञ्जिष्ठम् ॥

भाषार्थः—समर्थों में जो प्रथम [*तेन*] तृतीया समर्थ [*रागात्*] राग विशेषवाची=रङ्गविशेषवाची प्रातिपदिक उससे [*रक्तम्*] रँगा गया इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ यथाविहित कहने से यहाँ उदाहरणों में *अण्* (४।१।८३) हो गया है ॥ कुसुम्भ (कुसुंभिया पीला रङ्ग), कषाय (मटमैला रङ्ग) मञ्जिष्ठा (मजीठ का रङ्ग) यह सब रङ्गवाची प्रातिपदिक हैं, सो 'कुसुम्भ टा' इस अवस्था में सुबन्त से तद्धित अण् की उत्पत्ति हुई है, शेष पूर्ववत् है। आगे भी जिस समर्थ प्रातिपदिक से प्रत्यय विधान करेंगे, वही विभक्ति प्रातिपदिक के आगे रखकर प्रत्ययोत्पत्ति हुआ करेगी। यथा चतुर्थी समर्थ कहेंगे तो 'ङे', पञ्चमी समर्थ कहेंगे तो 'ङसि' आदि विभक्तियां आयेंगी, और उनका लुक् पूर्ववत् होता जायेगा, यह ध्यान रहे ॥ *उदा०*—कौसुम्भम् (कुसुंभिया रङ्ग से रंगा हुआ जो वस्त्र), माञ्जिष्ठम् ॥

यहाँ से '*तेन*' की अनुवृत्ति ४।२।१२ तक तथा 'रक्तं *रागात्*' की ४।२।२ तक जायेगी ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ॥४।२।२॥

लाक्षारोचनात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—लाक्षा च रोचना च लाक्षारोचनं तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तेन रक्तं रागात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां लाक्षारोचनारागविशेषवाचिप्रातिपदिकाभ्यां रक्तार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ अणोऽपवादः ॥ *उदा०*—लाक्षया रक्तं वस्त्रं=लाक्षिकम्, रोचनया रक्तं वस्त्रं=रौचनिकम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ रागविशेषवाची [*लाक्षारोचनात्*] लाक्षा तथा रोचना प्रातिपदिकों से 'रङ्गा गया' इस अर्थ में [ठक्] ठक् प्रत्यय होता है ॥ अण् का अपवाद यह सूत्र है ॥ 'ठ' को इक् ठस्येकः

(७।३।५०) से हुआ है॥ *उदा०*—लाक्षिकम् (लाख से रङ्गा हुआ वस्त्र) रौचनिकम् (गौ के मस्तक से निकले हुए पीले रङ्ग से रङ्गा हुआ वस्त्र)॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥४।२।३॥

नक्षत्रेण ३।१॥ युक्तः १।१॥ कालः १।१॥ *अनु०*—तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थान्नक्षत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्तः काल इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—पुष्येण नक्षत्रेण युक्तः कालः = पौषी रात्रिः, पौषमहः। माघी रात्रिः, माघमहः॥

भाषार्थः—[*नक्षत्रेण*] नक्षत्रविशेषवाची तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से उन नक्षत्रों से [*युक्तः कालः*] युक्त जो काल इस अर्थ को कहने में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है॥ *उदा०* - पौषी रात्रिः (पुष्य नक्षत्र का जिसमें योग हो ऐसी रात्रि) पौषमहः (पुष्य नक्षत्र से युक्त जो दिन) माघी रात्रिः (मघा नक्षत्र से युक्त जो रात्रि) माघमहः॥

उदाहरण में *सूर्यतिष्यागस्त्य०* (६।४।१४९) से पुष्य शब्द के 'य' का लोप; तथा *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् हुआ है। शेष पूर्ववत् जानें॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।२।६ तक जायेगी॥

लुबविशेषे ॥४।२।४॥

लुप् १।१॥ अविशेषे ७।१॥ *स०*—न विशेषोऽविशेषस्तस्मिन् ...... नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—तेन, नक्षत्रेण युक्तः कालः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पूर्वसूत्रेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवत्यविशेषे गम्यमाने, अर्थात् यावान् कालो नक्षत्रेण युज्यतेऽहोरात्रस्तस्याऽविशेषे गम्यमाने॥ *उदा०* पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः। अद्य कृत्तिका। अद्य रोहिणी॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से नक्षत्रवाची शब्दों से विधान किये गये प्रत्यय का यहाँ [*अविशेषे*] अविशेष गम्यमान होने पर अर्थात् सामान्यतया नक्षत्रयोग कहना हो तो [*लुप्*] लुप् होता है॥ 'अद्य पुष्यः' यहाँ

आज का काल पुष्य नक्षत्र से युक्त है यह कहा है, परन्तु आज कब? रात्रि में या दिन में, ऐसा कुछ नहीं कहा, अर्थात् दिन या रात्रि के अवान्तरविभागों की यहाँ विवक्षा नहीं है, अतः अण् प्रत्यय जो कि पूर्व सूत्र से आया था उसका लुप् हो गया। प्रत्यय के लुप् हो जाने पर वृद्धि आदि भी *न लुमताङ्गस्य* (१।१।६२) से प्रत्यय लक्षण का निषेध होने से नहीं हुईं, तो 'पुष्यः' बन गया॥

यहाँ से 'लुप्' की अनुवृत्ति ४।२।५ तक जायेगी॥

संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ॥४।२।५॥

संज्ञायाम् ७।१॥ श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ५।२॥ *स०*—श्रवणश्च अश्वत्थश्च श्रवणाश्वत्थौ, ताभ्यां······इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—लुप्, तेन नक्षत्रेण युक्तः कालः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अविशेषे पूर्वेण लुब्विहितो विशेषार्थमिदमुच्यते॥*अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां श्रवण, अश्वत्थ इत्येताभ्यां नक्षत्रवाचिशब्दाभ्यां विहितस्य प्रत्ययस्य संज्ञायां विषये सर्वत्र (विशेषे, अविशेषे वा) लुब् भवति॥ *उदा०*—श्रवणेन युक्ता रात्रिः = श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थो मुहूर्त्तः॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ नक्षत्रवाची [*श्रवणाश्वत्थाभ्याम्*] श्रवण तथा अश्वत्थ शब्दों से 'युक्तः कालः' इस अर्थ में विहित प्रत्यय का [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में सर्वत्र (विशेष को कहना हो या अविशेष को) लुप् होता है॥ पूर्व सूत्र से अविशेष में ही लुप् प्राप्त था, विशेषार्थ यह आरम्भ है॥ ४।२।३ सूत्र से जो अण् प्रत्यय उत्पन्न हुआ था, उसका इस सूत्र से लुप् हो गया है॥ *उदा०*—श्रवणा रात्रिः (श्रवण नक्षत्र विशेष से युक्त जो रात्रि, उसकी यह संज्ञा है), अश्वत्थो मुहूर्त्तः॥

द्वन्द्वाच्छः ॥४।२।६॥

द्वन्द्वात् ५।१॥ छः १।१॥ *अनु०*—तेन, नक्षत्रेण युक्तः कालः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थान्नक्षत्रद्वन्द्वात् प्रातिपदिकाद् युक्तः काल इत्येतस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, विशेषे चाविशेषे च॥ *उदा०*—तिष्यश्च पुनर्वसुश्च तिष्यपुनर्वसू ताभ्यां युक्तः कालः अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्, अद्य राधानुराधीयम्। विशेषे—राधानुराधीया रात्रिः। तिष्यपुनर्वसवीया रात्रिः॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ नक्षत्र [*द्वन्द्वात्*] द्वन्द्ववाची शब्दों से (विशेष अविशेष दोनों को कहने में) युक्त काल इस अर्थ में [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥ पुनर्वसु को *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा छ को 'ईय' होकर 'पुनर्वसो ईय' बना। पुनः अवादेश होकर पुनर्वसवीयम् बना है ॥

दृष्टं साम ॥४।२।७॥

दृष्टम् १।१॥ साम १।१॥ *अनु०*—तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ दृष्टमित्यर्थनिर्देशः, साम इत्यस्य विशेषणम् ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् दृष्टं साम इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वसिष्ठेन दृष्टं साम = वासिष्ठम्। क्रुञ्चेन दृष्टं साम क्रौञ्चम्। वैश्वामित्रम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से [*दृष्टं साम*] साम (वेद) को देखा इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है। *उदा०*—वासिष्ठम् (वसिष्ठ ऋषि के द्वारा जो देखा गया साम = गान) क्रौञ्चम् ॥

यहाँ से '*दृष्टं साम*' की अनुवृत्ति ४।२।८ तक जायेगी।

वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ ॥४।२।८॥

वामदेवात् ५।१॥ ड्यड्ड्यौ १।२॥ *स०*—ड्यत् च ड्यश्च ड्यड्ड्यौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तेन, दृष्टं साम, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः* तृतीयासमर्थात् वामदेवप्रातिपदिकाड् ड्यत्, ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, दृष्टं साम इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०* वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्। ड्य-वामदेव्यम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*वामदेवात्*] वामदेव प्रातिपदिक से 'देखा गया साम' इस अर्थ में [*ड्यड्ड्यौ*] ड्यत् तथा ड्य प्रत्यय होते हैं ॥ ड्यत् तथा ड्य में केवल स्वर का ही भेद है। ड्यत् पक्ष में *तित्स्वरितम्* (६।१।१७९) से अन्त स्वरित तथा ड्य पक्ष में *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से अन्तोदात्त स्वर होगा। डित् होने से *टेः* (६।४।१४३) से टि भाग (अ) का लोप होता है। पूर्व सूत्र से प्राप्त अण् का यह अपवाद सूत्र है ॥

परिवृतो रथः ॥४।२।९॥

परिवृतः १।१॥ रथः १।१॥ *अनु०*—तेन, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ परि = परितः सर्वतः, वृतः = आच्छादितः। परिवृत इत्यर्थनिर्देशः। रथशब्दः, प्रत्ययार्थविशेषणम् ॥ *अर्थः*— तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् परिवृत आच्छादित इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति ॥ *उदा०*—वस्त्रेण परिवृतो रथः = वास्त्रो रथः। कम्बलेन परिवृतो रथः = काम्बलो रथः। वासनः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*परिवृतः*] ढका हुआ इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह ढका हुआ [*रथः*] रथ हो तो ॥ *उदा०*—वास्त्रः (वस्त्र से ढका हुआ जो रथ), काम्बलः (कम्बल से ढका हुआ जो रथ), वासनः ॥

यहाँ से '*परिवृतो रथः*' की अनुवृत्ति ४।२।११ तक जायेगी ॥

पाण्डुकम्बलादिनिः ॥४।२।१०॥

पाण्डुकम्बलात् ५।१॥ इनिः १।१॥ *अनु०*—परिवृतो रथः, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् पाण्डुकम्बलात् प्रातिपदिकात् परिवृतो रथ इत्येतस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पाण्डुकम्बलेन परिवृतो रथः = पाण्डुकम्बली, पाण्डुकम्बलिनौ, पाण्डुकम्बलिनः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*पाण्डुकम्बलात्*] पाण्डुकम्बल प्रातिपदिक से 'ढका हुआ जो रथ' इस अर्थ में [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है ॥ 'पाण्डुकम्बलिन् सु' इस अवस्था में *सौ च* (६।४।१३) से दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप तथा ८।२।७ से नकार लोप होकर पाण्डुकम्बली बना है ॥ पाण्डुकम्बल सफेद ऊनी कम्बल को कहते हैं ॥

द्वैपवैयाघ्रादञ् ॥४।२।११॥

द्वैपवैयाघ्रात् ५।१॥ अञ् १।१॥ *स०*—द्वैपञ्च वैयाघ्रञ्च द्वैपवैयाघ्रं तस्मात्...समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—परिवृतो रथः, तेन, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ द्वीपिनो विकारः = द्वैपं चर्म। व्याघ्रस्य विकारः = वैयाघ्रं चर्म, *प्राणिरजतादिभ्योऽञ्* (४।३।१५४) इत्यनेनाऽञ् ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां द्वैपवैयाघ्रशब्दाभ्यां परिवृतो रथ इत्येतस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वैपेन परिवृतो रथः = द्वैपम्। वैयाघ्रेण परिवृतो रथः = वैयाघ्रः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*द्वैपवैयाघ्रात्*] द्वैप तथा वैयाघ्र प्रातिपदिकों से 'आच्छादित हुआ रथ' इस अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है। यह भी अण् का अपवाद सूत्र है। अण् तथा अञ् में स्वर का ही भेद है ॥ द्वीप तथा व्याघ्र शब्द से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होकर द्वैपम् (चीते का विकार अर्थात् उसका चमड़ा) तथा वैयाघ्रम् (व्याघ्र का चमड़ा) बना है, इनसे प्रकृत सूत्र से 'अञ्' होता है ॥ *उदा०*—द्वैपः (चीते के चमड़े से ढका हुआ जो रथ), वैयाघ्रः (व्याघ्र के चमड़े से ढका हुआ जो रथ) ॥

कौमारापूर्ववचने ॥४।२।१२॥

कौमार लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अपूर्ववचने ७।१॥ *स०*—न पूर्वोऽपूर्वः, नञ्तत्पुरुषः। तस्य वचनम्, अपूर्ववचनं, तस्मिन् षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कौमार इत्येतदण् प्रत्ययान्तं निपात्यते, अपूर्ववचने द्योत्ये ॥ *उदा०*—अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः = कौमारो भर्त्ता। अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या ॥

भाषार्थः—[*कौमार*] कौमार शब्द [*अपूर्ववचने*] अपूर्ववचन द्योतित हो रहा हो तो अण् प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है। यह निपातन पुँल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में स्त्री का अपूर्वत्व कहना हो तो होगा ॥ जिसका पाणिग्रहण पहिले न हुआ हो वह अपूर्ववचन कहाता है ॥ *उदा०*—पुँल्लिङ्ग में—अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः = कौमारो भर्ता (जिसका पहले पति नहीं था, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पति) स्त्रीलिङ्ग में—अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना = कौमारी भार्या (जिसका पहले पति नहीं था, ऐसी कुमारी पति को प्राप्त हुई) ॥ जब पुँल्लिङ्ग में कौमारः बनेगा तो कुमारी द्वितीया समर्थ से उपयन्ता = पति को कहने में अण्

होगा। जब 'कौमारी' स्त्रीलिङ्ग में बनाना होगा, तो प्रथमा समर्थ कुमारी शब्द से स्वार्थ में अण् होगा, पश्चात् *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होगा।

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥४।२।१३॥

तत्र अ० ॥ उद्धृतम् १।१॥ अमत्रेभ्यः ५।३॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ उद्धृतमिति प्रत्ययार्थनिर्देशः। अमत्रशब्दः पात्रपर्यायः। भुक्तोच्छिष्टमुद्धृतमुच्यते ॥ *अर्थ*—तत्रेति सप्तमीसमर्थेभ्योऽमत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उद्धृतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शरावेषूद्धृत ओदनः = शारावः। माल्लिकः। कार्परः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ [*अमत्रेभ्यः*] अमत्र—पात्रवाची प्रातिपदिकों से [*उद्धृतम्*] भोजन के पश्चात् अवशिष्ट[1] बचा हुआ इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—शारावः (कुल्हड़ में खाने के पश्चात् बचा हुआ अन्न), माल्लिकः (मल्लिका पुष्प के वर्ण के समान वर्ण वाला जो पात्र, उसमें रखा हुआ अन्न), कार्परः (खप्पर में रखा गया अन्न) ॥

यहाँ से '*तत्र*' की अनुवृत्ति ४।२।१९ तक जायेगी ॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ॥४।२।१४॥

स्थण्डिलात् ५।१॥ शयितरि ७।१॥ व्रते ७।१॥ *अनु०*—तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्थण्डिलप्रातिपदिकात् सप्तमीसमर्थात् शयितरि = शयनकर्त्तर्यभिधेये व्रते गम्यमाने यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य = स्थाण्डिलो यतिः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*स्थण्डिलात्*] स्थण्डिल प्रातिपदिक से [*शयितरि*] शयन का कर्त्ता = सोने वाला अभिधेय हो तो [*व्रते*] व्रत गम्यमान होने पर यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—स्थाण्डिलो यतिः (चबूतरे पर सोने का जिसका व्रत हो, ऐसा यति) ॥

---

१. यहाँ शेष बचे शुद्ध अन्न से अभिप्राय है। जिसे रसोई के पात्रों में से निकाल कर अन्य पात्रो में रखते हैं ॥

संस्कृतं भक्षाः ॥४।२।१५॥

संस्कृतम् १।१॥ भक्षाः १।३॥ अनु०—तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तत्रेति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत् संस्कृतं, भक्षश्चेत् स भवति ॥ उदा०—घृते संस्कृतं = घार्तम्। तक्रे संस्कृतं = ताक्रम्। भ्राष्ट्रे संस्कृता अपूपाः = भ्राष्ट्रा अपूपाः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*संस्कृतम्*] संस्कार किया गया इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह संस्कृत [*भक्षाः*] भक्ष पदार्थ हो तो ॥ उदा०—घार्तम् (घी में संस्कृत की गई अर्थात् बनाई गई वस्तु), ताक्रम् (मट्ठे में बनाई गई वस्तु), भ्राष्ट्रा अपूपाः (भाड़ में पकाये गये पुए) ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।२।१९ तक जायेगी ॥

शूलोखाद्यत् ॥४।२।१६॥

शूलोखात् ५।१॥ यत् १।१॥ स०—शूलञ्च उखा च शूलोखम् तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—संस्कृतं भक्षाः, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थाभ्यां शूलोखाप्रातिपदिकाभ्यां संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम्। उख्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*शूलोखात्*] शूल तथा उखा प्रातिपदिकों से सस्कृतं भक्षाः इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥ अण् का अपवाद यह सूत्र है ॥ शूल कबाब बनाने की लोहे की छड़ को कहते हैं। उखा बटलोई पात्र विशेष को कहते हैं ॥

दध्नष्ठक् ॥४।२।१७॥

दध्नः ५।१॥ ठक् ॥ १।१॥ अनु०—संस्कृतं भक्षाः, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थात् दधिशब्दात् संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दधनि संस्कृतं दाधिकम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*दध्न*] दधि प्रातिपदिक से संस्कृतं भक्षाः इस अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है॥ यह भी अण् का अपवाद सूत्र है॥ *उदा०* - दाधिकम् (दही में बनाई गई जो वस्तु)॥

यहाँ से 'ठक्' की अनुवृत्ति ४।२।१८ तक जायेगी॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ॥४।२।१८॥

उदश्वितः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—ठक्, संस्कृतं भक्षाः, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सप्तमी-समर्थाद् उदश्विन् प्रातिपदिकात् सस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—उदश्विति संस्कृतमौदश्वित्कम्, औदश्वितम्॥

भाषार्थः— सप्तमी समर्थ [*उदश्वितः*] उदश्वित् प्रातिपदिक से संस्कृतं भक्षाः इस अर्थ में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ठक् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—औदश्वित्कम् (कढ़ी), औदश्वितम्॥ उदाहरण में *इसुसुक्तान्तात् कः* (७।३।५१) से 'ठ' को 'क' हुआ है, शेष पूर्ववत् है॥

क्षीराड्ढञ् ॥४।२।१९॥

क्षीरात् ५।१॥ ढञ् १।१॥ *अनु०*—संस्कृतं भक्षाः, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् क्षीरप्रातिपदिकात् संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—क्षीरे संस्कृता क्षैरेयी यवागूः॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*क्षीरात्*] क्षीर प्रातिपदिक से संस्कृतं भक्षाः इस अर्थ में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है॥ ढ को एय तथा पूर्ववत् आदि अच् को वृद्धि एवं *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर क्षैरेयी (दूध में पकाई गई यवागू = दलिया) बनेगा॥

सास्मिन् पौर्णमासीति ॥४।२।२०॥

सा १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ पौर्णमासी १।१॥ इति अ०॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सेति प्रथमासमर्थात् पौर्णमासीविशेषवाचिनः प्रातिपदिकादस्मिन्नित्यधिकरणेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—पुष्यनक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी = पौषी पौर्णमासी। *नक्षत्रेण युक्तः कालः* (४।२।३) इत्यनेनाण्

प्रत्ययः । सा पौषी पौर्णमास्यस्मिन् मासे = पौषो मासः, पौषोऽर्द्धमासः । एवं माघी पौर्णमास्यस्मिन् मासे माघो मासः ॥

भाषार्थः—[*सा*] प्रथमा समर्थ [*पौर्णमासीति*] पौर्णमासी विशेषवाची प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ = अधिकरण अभिधेय होने पर यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है ॥

पुष्य नक्षत्र से योग है जिस पौर्णमासी का, वह पौषी पौर्णमासी कहाती है । वह पौषी पौर्णमासी है, जिस मास में ऐसा विग्रह करके पौषी से अण् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हुआ, पश्चात् यस्येति लोप होकर पौषः बना है । इसी प्रकार माघो मासः में भी समझें ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।२।२२ तक जायेगी ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥४।२।२१॥

आग्रहायण्यश्वत्थात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—आग्रहायणी च अश्वत्था च आग्रहायण्यश्वत्थं तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सास्मिन् पौर्णमासीति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पौर्णमासीसमानाधिकरणाभ्यां प्रथमासमर्थाभ्यामाग्रहायण्यश्वत्थशब्दाभ्यां सप्तम्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मास आग्रहायणिको मासः, अर्द्धमासः । एवमाश्वत्थिकः[1], आश्विनमासः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ पौर्णमासी शब्द के साथ समानाधिकरण वाले [*आग्रहायण्यश्वत्थात्*] आग्रहायणी तथा अश्वत्थ शब्दों से सप्तम्यर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आग्रहायणिकः (आग्रहायणी नक्षत्र है जिस पौर्णमासी में ऐसा मास), आश्वत्थिकः (अश्वत्थ = आश्विन नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी है जिस मास में वह, आश्विन मास) ॥

यहाँ से 'ठक्' की अनुवृत्ति ४।२।२२ तक जायेगी ॥

---

१. अश्वत्थशब्देन आश्विननक्षत्रमुच्यते । अश्वत्थेन नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी अश्वत्था निपातनादणो लुक् । साऽस्मिन् मास आश्वत्थिको मासः ॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः ॥४।२।२२॥

विभाषा १।१॥ फाल्गु·····त्रीभ्यः ५।३॥ *स०*—फाल्गु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—ठक्, सास्मिन् पौर्णमासीति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यः पौर्णमासीसमानाधिकरणेभ्यः फाल्गुनी. श्रवणा, कार्त्तिकी, चैत्री इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सप्तम्यर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति॥ नित्यमपि प्राप्ते (४।२।२०) पक्षे ठक् विधीयते॥ *उदा०*—फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे = फाल्गुनिको मासः। पक्षे अण्—फाल्गुनो मासः। श्रावणिको मासः। श्रावणः। कार्त्तिकिकः। कार्त्तिकः। चैत्रिकः। चैत्रः॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ पौर्णमासी शब्द से समानाधिकरण वाले जो [*फाल्गु·····त्रीभ्यः*] फाल्गुनी आदि शब्द उनसे [*विभाषा*] विकल्प से सप्तम्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है, पक्ष में अण् होगा॥

सास्य देवता ॥४।२।२३॥

सा १।१॥ अस्य ६।१॥ देवता १।१॥ *अनु०*—समर्थानां प्रथमाद्वा, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सेति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं देवता चेन् सा भवति॥ *उदा०*—इन्द्रो देवताऽस्य = ऐन्द्रं हविः। ऐन्द्रो मन्त्रः। ऐन्द्री ऋक्। बृहस्पतिर्देवताऽस्य बार्हस्पत्यं हविः॥

भाषार्थः—[*सा*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा समर्थ [*देवता*] देवता विशेषवाची प्रातिपदिक हो तो॥ *उदा०*—ऐन्द्रं हविः (इन्द्र है देवता जिस हवि का), बार्हस्पत्यम् (बृहस्पति देवता है जिस हवि का, मन्त्र[1] का

---

१. यहाँ देवता शब्द से मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय लिया गया है। इस विषय मे निरुक्तकार ने ७।१ में कहा है "*यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति*" अर्थात् जिस कामना को लेकर ऋषि जिस देवता की स्तुति करते हैं, वह उस देवता वाला मन्त्र कहाता है। ऋक्सर्वानुक्रमणी में कहा है "*या तेनोच्यते सा देवता*" अर्थात् मन्त्र के द्वारा जो कहा गया वह उस मन्त्र का देवता होता है। इन दोनों वचनों के आधार पर मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को देवता कहते हैं। अब ये देवता चेतन अचेतन के

या ऋचा का)॥ इन्द्र शब्द से अण् होकर पश्चात् *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर 'ऐन्द्री' बना है। बृहस्पति शब्द से *दित्यदित्यादित्य०* (४।१।८५) से ण्य प्रत्यय होकर बार्हस्पत्यम् बना है॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।२।३४ तक जायेगी॥

कस्येत् ॥४।२।२४॥

कस्य ६।१॥ इत् १।१॥ अनु०—सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ पूर्वेणैवाण् सिद्ध इकारादेशार्थं वचनम्॥ *अर्थः*—कशब्दः प्रजापतेर्वाचकः। प्रथमासमर्थाद् देवतावाचिनो कशब्दात् षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन चेकारादेशो भवति॥ *उदा०*—को देवताऽस्य कायं हविः॥

भाषार्थः—[*कस्य*] 'क' देवतावाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में अण् प्रत्यय होता है, तथा 'क' को प्रत्यय के साथ-साथ [*इत्*] इकारान्तादेश भी होता है॥ क शब्द प्रजापति का वाचक है॥

क् इ अण् = कि + अ, वृद्धि आयादेश होकर कायं हविः बन गया॥

शुक्राद्घन् ॥४।२।२५॥

शुक्रात् ५।१॥ घन् १।१॥ अनु०—सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् शुक्रशब्दात् घन् प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्येतस्मिन्नर्थे॥ *उदा०*—शुक्रो देवताऽस्य शुक्रियं हविः, शुक्रियो मन्त्रः, शुक्रिया ऋक्।

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*शुक्रात्*] शुक्र शब्द से षष्ठ्यर्थ में [*घन्*] घन् प्रत्यय होता है, सास्य देवता इस अर्थ में॥ 'घ्' को ७।१।२ से इय् आदेश हो ही जायेगा॥

अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ॥४।२।२६॥

अपो᳀᳀भ्याम् ५।२॥ घः १।१॥ अनु०—सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अपोनपात्, अपांनपात् तकारान्तौ

भेद से दो प्रकार के होते हैं। चेतन में आत्मा परमात्मा लिये जायेंगे तथा अचेतन में भौतिक पदार्थ लिये जाते हैं। अर्थात् जब अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवतावाची शब्द अध्यात्म प्रक्रिया में अन्वित होते हैं, तब ये देव आत्मा परमात्मा के वाचक होते हैं, और जब ये आधिदैविक प्रक्रिया में भौतिक पदार्थों के वाचक होते हैं, तब ये अचेतन देवों के वाचक होते हैं॥

शब्दौ तयोः प्रत्ययसन्नियोगेनास्मादेव सूत्रनिर्देशाद् ऋकारान्तत्वं निपात्यते, असति प्रत्यये तु तकारान्तत्वमेव दृश्यते ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थदेवतावाचिभ्याम् अपोनपाद् अपांनपाद् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां घः प्रत्ययो भवति, प्रत्ययसन्नियोगेन च अपोनप्तृ अपांनप्तृ इति रूपं निपात्यते ॥ *उदा०*—अपोनपादपांनपाद् वा देवताऽस्य = अपोनप्त्रियं हविः, अपांनप्त्रियं हविः ॥

भाषार्थः—अपोनपात् अपांनपात् तकारान्त देवतावाची शब्द हैं, सो इनको प्रत्यय के साथ-साथ इसी सूत्र से अपोनप्तृ अपांनप्तृ ऐसा रूप निपातन किया जाता है ॥ [*अपो······भ्याम्*] अपोनपात्, अपांनपात् देवतावाची शब्दों से षष्ठ्यर्थ में [*घः*] घ प्रत्यय होता है, और घ प्रत्यय के सन्नियोग से इन शब्दों को अपोनप्तृ और अपांनप्तृ रूप का आदेश भी होता है ॥

यहाँ से '*अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्याम्*' की अनुवृत्ति ४।२।२७ तक जायेगी ॥

छ च ॥४।२।२७॥

छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां, सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां देवतावाचिभ्यामपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अपोनप्त्रीयं हविः । अपांनप्त्रीयं हविः ॥

भाषार्थ.—प्रथमासमर्थ देवतावाची अपोनप्तृ अपांनप्तृ शब्दों से [छ] छ प्रत्यय [च] भी होता है ॥ सिद्धि में छ को 'ईय' आदेश तथा ईय परे रहते ऋकार को यणादेश ही विशेष है ॥

यहाँ से 'छ' की अनुवृत्ति ४।२।२८ तक जायेगी ॥

महेन्द्राद् घाणौ च ॥४।२।२८॥

महेन्द्रात् ५।१॥ घाणौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*—घश्च अण् च घाणौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छ, सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाद् देवतावाचिनो महेन्द्रप्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे घ, अण् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतश्छश्च ॥ उदा०—महेन्द्रो देवताऽस्य महेन्द्रियं हविः । अण्—माहेन्द्रम् । छ—महेन्द्रीयम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*महेन्द्रात्*] महेन्द्र प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [*घाणौ*] घ, अण् [च] तथा छ प्रत्यय भी होते हैं ॥

सोमाट् ट्यण् ॥४।२।२९॥

सोमात् ५।१॥ ट्यण् १।१॥ *अनु०*—सास्य देवता, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थदेवता-वाचिनः प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ट्यण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*सोमात्*] सोम शब्द से षष्ठ्यर्थ में [*ट्यण्*] ट्यण् प्रत्यय होता है ॥ अनुबन्ध हटकर ट्यण् का 'य' शेष रहता है । सिद्धि में वृद्धि आदि पूर्ववत् हुये हैं ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥४।२।३०॥

वाय्वृतुपित्रुषसः ५।१॥ यत् १।१॥ *स०*—वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषश्च, वाय्वृ ··· षः, तस्मात् ··· समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सास्य देवता, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यः वायु-ऋतु-पितृ-उषस् इत्येतेभ्यः देवतावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्, ऋतव्यम्, पित्र्यम् उषस्यम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*वाय्वृतुपित्रुषसः*] वायु, ऋतु पितृ तथा उषस् प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ४।२।३१ तक जायेगी ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ॥४।२।३१॥

द्यावा ····· मेधात् ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—द्यावापृथिव्यौ च शुनासीरौ च मरुत्वत् च अग्नीषोमौ च वास्तोष्पतिश्च गृहमेधश्च द्यावा ····· मेधं, तस्मात् ····· समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—

यत्, सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यो द्यावापृथिव्यादिदेवतावाचिभ्यः शब्देभ्यः षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति चकारात् यत् च ॥ *उदा०*—द्यावा च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ, तौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्। शुनश्च सीरश्च शुनासीरौ तौ देवते अस्य शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्। मरुत्वान् देवताऽस्य मरुत्वतीयम्, मरुत्वत्यम्। अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ, तौ देवते अस्य अग्नीषोमीयम्, अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*द्यावा*·····*मेधात्*] द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति, गृहमेध प्रातिपदिकों से [छ] छ [च] तथा यत् प्रत्यय होता है। वास्तुनः पतिः वास्तोष्पतिः यहाँ निपातन से षष्ठी का अलुक् तथा पुँल्लिङ्गत्व हुआ है। *षष्ठ्याः पतिपुत्र०* (८।३।५३) से वास्तोस् के स् को षत्व हो गया है। द्यावापृथिवी में दिव् को द्याव् आदेश *दिवो द्यावा* (६।३।२७) से होगा। शुनासीर में शुन को आनङ् आदेश *देवताद्वन्द्वे च* (६।३।२४) से होकर शुनासीरीयम् बनता है। शुन वायु एवं सीर आदित्य को कहते हैं। अग्नीषोमीयम् में *ईदग्नेः सोमवरुणयोः* (६।३।२५) से अग्नि को ईत्व तथा *अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः* (८।३।८२) से सोम को षत्व होता है ॥

अग्नेर्ढक् ॥४।२।३२॥

अग्नेः ५।१॥ ढक् १।१॥ *अनु०*—सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाद् देवतावाचिनोऽग्निशब्दात् षष्ठ्यर्थे ढक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अग्निर्देवताऽस्य आग्नेयो मन्त्रः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*अग्नेः*] अग्नि प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [ढक्] ढक् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि में ढ को 'एय', *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि तथा यस्येति लोपादि पूर्ववत् होंगे ॥

कालेभ्यो भववत् ॥४।२।३३॥

कालेभ्यः ५।३॥ भववत् अ० ॥ भव इव भववत्, तत्र तस्येव (५।१।११५) इत्यनेन सप्तमीसमर्थाद्वतिः ॥ *अनु०*—सास्य देवता, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भववत् प्रत्यया भवन्ति सास्यदेवतेत्येतस्मिन् विषये ॥ भववदित्येतस्याऽयमर्थः शैषिकान्तर्गतभवाधिकारे (४।३।५३) कालवाचिभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन ये प्रत्यया विधीयन्ते तेनैव विशेषणेन ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्ते प्रत्ययाः सास्य देवतेत्येतस्मिन्नर्थेऽपि भवन्ति ॥ उदा०—मासो देवताऽस्य मासिकम्। आर्द्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्। वासन्तम्। प्रावृट् देवताऽस्य = प्रावृषेण्यम् ॥

भाषार्थः—[*कालेभ्य*] कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से सास्य देवता इस विषय में [*भववत्*] भववत् अर्थात् शैषिक (शेषे ४।२।९१ से ४।३।१३२ तक) के अन्तर्गत भवाधिकार में कालवाची जिन प्रकृतियों से जिस विशेषण को लेकर जो जो प्रत्यय कहे हैं, उन्हीं विशेषणों सहित उन्हीं प्रकृतियों से वही प्रत्यय सास्य देवता इस अर्थ में भी हो जायें। जैसे शैषिक अधिकार में *तत्र भवः* आदि अर्थों में कालवाची प्रातिपदिकों से *कालाट्ठञ्* (४।३।११) सूत्र से ठञ् प्रत्यय कहा है, सो सास्य देवता इस अर्थ में भी मासिकम्, आर्द्धमासिकम्, सांवत्सरिकम् में ठञ् प्रत्यय हुआ है। तथा *कालाट्ठञ्* के अधिकार में कहे हुए कालवाची वसन्त शब्द से *सन्धिवेलाद्यृतु०* (४।३।१६) से अण् एवं प्रावृष् शब्द से एण्य प्रत्यय हुआ है ॥

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ॥४।२।३४॥

महाराजप्रोष्ठपदात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ *स०*—महाराजश्च प्रोष्ठपदश्च, महा·····दं, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां महाराजप्रोष्ठपददेवतावाचिशब्दाभ्यां षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— माहाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम् ॥

भाषार्थ.—प्रथमा समर्थ देवतावाची [*महाराजप्रोष्ठपदात्*] महाराज तथा प्रोष्ठपद प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥४।२।३५॥

पितृ·····महाः १।३॥ *स०*—पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च पितृ·····महाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्या-

ड्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह इत्येते शब्दा निपात्यन्ते। पितृमातृशब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं व्यत् डुलच् इत्येतौ प्रत्ययौ भ्रातर्यभिधेये निपात्येते। एवं मातृपितृशब्दाभ्यां पितर्यभिधेये डामहच् प्रत्ययो निपात्यते॥ उदा०—पितुर्भ्राता = पितृव्यः। मातुर्भ्राता = मातृव्यः। मातुः पिता = मातामहः। पितुः पिता = पितामहः॥

भाषार्थः—[*पितृव्य*......*महाः*] पितृव्यादि शब्द निपातन किये जाते हैं। पितृ मातृ शब्दों से यथासङ्ख्य करके व्यत्, डुलच् प्रत्यय भ्राता अभिधेय होने पर निपातन किये जाते हैं, तथा डामहच् प्रत्यय भी मातृ पितृ शब्दों से पिता अभिधेय होने पर निपातन किया जाता है। डुलच् का अनुबन्ध हटकर 'उल' रहेगा, तथा डामहच् का आमह शेष रहेगा। डित् होने से टेः (६।४।१४३) से पितृ, मातृ के टि भाग (ऋ) का लोप होगा॥ *उदा०*—पितृव्यः (चाचा) मातुलः (मामा) मातामहः (नाना) पितामहः (बाबा)॥

तस्य समूहः ॥४।२।३६॥

तस्य ६।१॥ समूहः १।१॥ *अनु०*—समर्थानां प्रथमाद्वा, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—समर्थानां मध्ये यः प्रथमः षष्ठीसमर्थस्तस्माद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—काकाना समूहः = काकम्, शौकम्, बाकम्, आश्वपतम्, स्त्रैणं, पौंस्नम्॥

भाषार्थः—समर्थों में जो प्रथम [*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक उससे [*समूहः*] समूह अर्थ को कहना हो तो यथाविहित प्रत्यय होता है॥ 'काक आम् अण्' यहाँ *सुपो धातु०* (२।४।७१) से आम् विभक्ति का लुक् होकर काकम् बना है। शौकं, बाकम् भी इसी प्रकार जानें। आश्वपतम् में *अश्वपत्या०* (४।१।८४) से अण् तथा स्त्रैणं पौंस्नम् में *स्त्रीपुंसाभ्यां०* (४।१।८७) से क्रमशः नञ् तथा स्नञ् प्रत्यय हुए हैं॥

यहाँ से '*तस्य*' की अनुवृत्ति ४।२।५३ तक तथा '*समूहः*' की अनुवृत्ति ४।२।५० तक जायेगी॥

भिक्षादिभ्योऽण् ॥४।२।३७॥

भिक्षादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—भिक्षा आदिर्येषां ते भिक्षादयस्तेभ्यः......बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्।

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*भिक्षादिभ्यः*] भिक्षादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ गर्भिणी ङस् अण्= गर्भिणी अण् यहाँ *भस्याऽढे तद्धिते* (*वा०* ६।३।३३) से पुंवद्भाव होने से 'गर्भिन् अ' रहा। पुनः *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग का लोप प्राप्त हुआ, जिसका *इनण्यनपत्ये* (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव हो जाने से नहीं हुआ। शेष वृद्धि आदि पूर्ववत् होकर गार्भिणम् बन गया ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥४।२।३८॥

गोत्रो.....जात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *स०*—गोत्र० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्र, उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र, राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य, अज इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्येतस्मिन् अर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रं गृह्यते न तु पौत्रप्रभृत्येव ॥ *उदा०*—गोत्र—औपगवानां, समूहः=औपगवकम्, कापटवकम्। उक्षन्—औक्षकम्। उष्ट्र—औष्ट्रकम्। औरभ्रकम्। राजकम्। राजन्यकम्। राजपुत्रकम्। वात्सकम्। मानुष्यकम्। आजकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*गोत्रो.....जात्*] गोत्रवाची शब्दों से तथा उक्षन्, उष्ट्र आदि शब्दों से समूह अर्थ में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ वुञ् में ञकार वृद्ध्यर्थ है। 'वु' को अक ७।१।१ से हो ही जायेगा ॥ यहाँ गोत्र से लौकिक गोत्र अपत्यमात्र लिया गया है, न कि पौत्रप्रभृति शास्त्रीय गोत्र, अतः अनन्तरापत्य से भी वुञ् होता है ॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ४।२।३९ तक जायेगी ॥

केदाराद्यञ्च ॥४।२।३९॥

केदारात् ५।१॥ यञ् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—वुञ्, तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात्

केदारशब्दाद् यञ् प्रत्ययो भवति वुञ् च ॥ *उदा०*—केदाराणां समूहः = कैदारकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*केदारात्*] केदार शब्द से [*यञ्*] यञ् प्रत्यय होता है तथा [च] चकार से वुञ् भी होता है ॥

ठञ् कवचिनश्च ॥४।२।४०॥

ठञ् १।१॥ कवचिनः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् कवचिन्प्रातिपदिकात् समूहार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*- कवचिनां समूहः = कावचिकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*कवचिनः*] कवचिन् शब्द से समूह अर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय [च] भी होता है ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥४।२।४१॥

ब्राह्मणमाणववाडवात् ५।१॥ यन् १।१॥ *स०*–ब्राह्मणश्च माणवश्च वाडवश्च ब्राह्म.....वम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो ब्राह्मण, माणव, वाडव इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थे यन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्, माणव्यम्, वाडव्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*ब्राह्मणमाणववाडवात्*] ब्राह्मण, माणव, तथा वाडव प्रातिपदिकों से [*यन्*] यन् प्रत्यय होता है ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥४।२।४२॥

ग्राम...भ्यः ५।३॥ तल् १।१॥ *स०*—ग्राम० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो ग्राम, जन, बन्धु इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थे तल् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ग्रामाणां समूहो ग्रामता, जनानां समूहो जनता । बन्धुता ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*ग्राम...भ्यः*] ग्राम, जन, बन्धु इन प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में [*तल्*] तल् प्रत्यय होता है ॥ तल् प्रत्ययान्त

शब्द *तलन्तः* (*लिङ्गा० स्त्री० १६*) इस लिङ्गानुशासन के सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, अतः इन शब्दों से 'टाप्' प्रत्यय हो गया है ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥४।२।४३॥

अनुदात्तादेः ५।१॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थादनुदात्तादेः प्रातिपदिकात् समूहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कपोतानां समूहः = कापो॑तम्, मायूरम्, तैत्तिरम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [अनुदात्तादेः] अनुदात्तादि शब्दों से समूहार्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ क॒पो॑तं, म॒यू॑रं शब्द '*लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः*' (*फिट्० ४२*) इस फिट् सूत्र से मध्योदात्त हैं, शेष को *अनुदात्तं पदमेक०* (६।१।१५२) से अनुदात्त हो जाने से ये शब्द अनुदात्तादि हैं। ति॒त्ति॒रि शब्द भी *फिषोऽन्तोदात्त.* (*फिट्० १*) से अन्तोदात्त है अतः अनुदात्तादि है ही ॥

यहाँ से '*अञ्*' की अनुवृत्ति ४।२।४४ तक जायेगी ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥४।२।४४॥

खण्डिकादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—खण्डिका आदिर्येषां ते खण्डिकादयस्तेभ्यः—बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अञ्, तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः खण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—खण्डिकानां समूहः—खाण्डिकम् वाडवम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*खण्डिकादिभ्यः*] खण्डिकादि प्रातिपदिकों से [च] भी समूहार्थ को कहने में अञ् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि में वृद्धि आदि पूर्ववत् ही होंगी ॥

चरणेभ्यो धर्मवत् ॥४।२।४५॥

चरणेभ्यः ५।३॥ धर्मवत् अ० ॥ धर्म इव धर्मवत्, सप्तमीसमर्थाद्वतिः। अतिदेशोऽयम् ॥ चरणशब्दाः शाखाप्रवर्त्तकवाचकाः, कठकलापादयः ॥ *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यश्चरणवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थे धर्मवत् प्रत्यया भवन्ति ॥ *गोत्रचरणाद्वुञ्* (४।३।१२६) इत्यत्र "*चरणाद्धर्माम्नाययोः*" इति वार्त्तिकं वर्त्तते तत्र धर्मे चरणवाचिभ्यो यथा प्रत्यया विधीयन्ते, तथैव चरणवाचिभ्यः समूहार्थेऽपि भवन्तीत्यर्थः ॥ *उदा०*— यथा कठानां धर्मः काठकम् तथैव कठानां समूहः काठकम्, कालापकम्, छान्दोग्यम्, औक्थिक्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*चरणेभ्यः*] चरणवाची[1] प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में [*धर्मवत्*] धर्मवत् प्रत्यय होते हैं ॥ *गोत्रचरणाद्वुञ्* इस सूत्र में *चरणाद्धर्माम्नाययोः* यह वार्त्तिक पढ़ी है। इस वार्तिक में धर्म अर्थ में चरणवाचियों से प्रत्यय कहे हैं, उन्हीं का यहाँ अतिदेश है, अर्थात् *गोत्रचरणाद्वुञ्* से लेकर जिस विशेषण सहित जिन प्रकृतियों से जो प्रत्यय कहे हैं वे सब यहाँ समूह अर्थ में अतिदेश किये जाते हैं।

काठकं कालापकं में *गोत्रचरणाद्वुञ्* से वुञ् तथा छान्दोग्यं औक्थिक्यं में *छन्दोगौक्थिक०* (४।३।१२९) से ञ्य प्रत्यय हुआ है ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥४।२।४६॥

अचित्तहस्तिधेनोः ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—अविद्यमानं चित्तं यस्मिन् तत् अचित्तम्, बहुव्रीहिः। अचित्तञ्च हस्ती च धेनुश्च अचित्तहस्तिधेनु तस्मात् ··· समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*— तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्योऽचित्तार्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हस्तिधेनुभ्याञ्च समूहार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— अचित्तार्थेभ्यः—अपूपानां समूहः = आपूपिकम्, शाष्कुलिकम्। हास्तिकम्, धैनुकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*अचि···धेनोः*] अचित्त = अचेतनवाची तथा हस्तिन् और धेनु शब्दों से समूहार्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ धैनुकं में *इसुसुक्तान्तात् कः* (७।३।५१) से 'ठ' को 'क' हुआ है, अन्यत्र ठ को इक *ठस्येकः* (७।३।५०) से हुआ है। हस्तिकं में *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टिलोप हुआ है ॥

---

१. चरण शाखा के प्रवर्त्तक आदि ग्रन्थ का वाचक है। उसके निमित्त से उन शाखाओं के अध्येताओं में भी प्रयुक्त होता है। दे० अ० भा० प्र० प्रथम भाग सूत्र २।४।३ की टिप्पणी।

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ।।४।२।४७।।

केशाश्वाभ्याम् ५।२।। यञ्छौ १।२।। अन्यतरस्याम् ७।१।। *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—केश, अश्व इत्येताभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समूहार्थे यथासङ्ख्यं यञ्, छ इत्येतौ प्रत्ययौ विकल्पेन भवतः ।। केशशब्दादचित्तत्वात् ठक् प्राप्तस्तेन पक्षे सोऽपि भवति । अश्वशब्दादपि पक्ष औत्सर्गिकोऽण् भवति ।। *उदा०*—केशानां समूहः कैश्यम् । पक्षे ठक्—कैशिकम् । अश्वानां समूहः अश्वीयम् । पक्षेऽण्—आश्वम् ।।

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*केशाश्वाभ्याम्*] केश अश्व प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*यञ्छौ*] यञ् तथा छ प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प करके समूह अर्थ में होते हैं ।। केश शब्द अचित्तवाची है अतः पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त था सो पक्ष में ठक् होगा, तथा अश्व शब्द से औत्सर्गिक अण् पक्ष में होगा ।।

पाशादिभ्यो यः ।।४।२।४८।।

पाशादिभ्यः ५।३।। यः १।१।। *स०*—पाश आदिर्येषां ते पाशादयस्तेभ्यः... बहुव्रीहिः ।। *अनु०*—तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः पाशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति ।। पाशादीनामचित्तत्वात् ठक् प्राप्तस्तद्बाधनार्थं यविधानम् ।। *उदा०*—पाशानां समूहः = पाश्या, तृण्या ।। स्त्रीलिङ्गत्वं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति नियमेन भवति ।।

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पाशादिभ्यः*] पाशादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में [*यः*] य प्रत्यय होता है ।। पाश्या, तृण्या में य प्रत्यय कर लेने पर स्वभाव से ही स्त्रीलिङ्ग में इन शब्दों के होने के कारण टाप् (४।१।४) हो गया है ।। पाशादि शब्द अचेतनवाची हैं, अतः ठक् प्राप्त था 'य' विधान कर दिया है ।।

यहाँ से '*यः*' की अनुवृत्ति ४।२।४९ तक जायेगी ।।

खलगोरथात् ।।४।२।४९।।

खलगोरथात् ५।१।। *स०*—खलश्च गौश्च रथश्च, खलगोरथम् तस्मात्... समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—यः, तस्य समूहः तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरथेभ्यः प्राति पदिकेभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०* - खलानां समूहः खल्या, गव्या, रथ्या ॥ स्त्रीत्वं पूर्ववत् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*खलगोरथात्*] खल, गो तथा रथ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ को कहने में य प्रत्यय होता है ॥ गो शब्द से औत्सर्गिक अण्, तथा खल एवं रथ शब्द से अचेतन होने के कारण ठक् प्राप्त था, य विधान कर दिया ॥

यहाँ से "*खलगोरथात्*" की अनुवृत्ति ४।२।५० तक जायेगी ॥

इनित्रकट्यचश्च ॥४।२।५०॥

इनित्रकट्यचः १।३॥ *स०*—इनिश्च त्रश्च कट्यच् च, इनित्रकट्यचः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—खलगोरथात्, तस्य समूहः, तद्धिताः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरथ इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यम् इनि, त्र, कट्यच् इत्येते प्रत्ययाः, समूहार्थे भवन्ति ॥ *उदा०*—खलानां समूहो खलिनी । गोत्रा । रथकट्या ॥ अत्रापि स्त्रीत्वं पूर्ववत् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ खल, गो, रथ, प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथासङ्ख्य करके [*इनित्रकट्यचः*] इनि, त्र तथा कट्यच् प्रत्यय [*च*] भी होते हैं ॥ 'खल इन्' = खलिन् यहाँ ऋन्नेभ्यो *ङीप्* (४।१।५) से ङीप् होकर खलिनी बना है, अन्यत्र 'टाप्' हुआ है ॥

विषयो देशे ॥४।२।५१॥

विषयः १।१॥ देशे ७।१॥ *अनु०*—तस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् विषय इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, देशे गम्यमाने ॥ *उदा०*—वृषलानां विषयो देशः वार्षलः । यवनानां विषयो देशः यावनः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*विषयः*] विषय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है [*देशे*] देश अर्थ गम्यमान होने पर ॥ *उदा०*—वार्षलः (वृषलों का विषय = रहने का जो देश), यावनः (यवनों के रहने का देश) ॥

यहाँ से '*विषयो देशे*' की अनुवृत्ति ४।२।५३ तक जायेगी ॥

राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥४।२।५२॥

राजन्यादिभ्यः ५।३॥ वुञ् १।१॥ स०—राजन्य आदिर्येषां ते राजन्यादयः, तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०– विषयो देशे, तस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः– राजन्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विषयो देशे इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—राजन्यानां विषयो देशः, राजन्यकः, दैवयानकः ॥

भाषार्थः– षष्ठी समर्थ [*राजन्यादिभ्यः*] राजन्यादि प्रातिपदिकों से विषयो देशे इस अर्थ में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥

भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥४।२।५३॥

भौ.....भ्यः ५।३॥ वि.....लौ १।२॥ स०—भौरिकि आदिर्येषां ते भौरिक्यादयः, ऐषुकारि आदिर्येषां ते ऐषुकार्यादयः, भौरिक्यादयश्च ऐषुकार्यादयश्च, भौ.....दयस्तेभ्यः ...बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—विषयो देशे, तस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः विषयो देश इत्येतस्मिन्नर्थे यथासङ्ख्य विधल् भक्तल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—भौरिकीणां विषयो देशः भौरिकिविधः, वैपेयविधः। ऐषुकार्यादिभ्यः—ऐषुकारीणां विषयो देश ऐषुकारिभक्तः, सारस्यायनभक्तः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*भौ.....दिभ्यः*] भौरिकि आदि तथा ऐषुकारि आदि शब्दों से विषयो देशे इस अर्थ में यथासङ्ख्य करके [*विधल्भक्तलौ*] विधल् और भक्तल् प्रत्यय होते हैं ॥ अन्तिम 'ल्' की इत् संज्ञा होकर 'विध' 'भक्त' प्रत्यय शेष रहेंगे ॥

सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु ॥४।२।५४॥

सः १।१॥ अस्य ६।१॥ आदिः १।१॥ इति अ० ॥ छन्दसः ५।१॥ प्रगाथेषु ७।३॥ अनु०– तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ स इति प्रथमासमर्थनिर्देशः आदिः इति प्रकृतिविशेषणम्। इतिकरणो विवक्षार्थः। छन्दस इति प्रकृतिनिर्देशः। प्रगाथेषु इति प्रत्ययार्थविशेषणम्। छन्दः शब्देन गायत्र्यादिछन्दसां ग्रहणम् ॥ अर्थः—स इति प्रथ-

मासमर्थात् छन्दोवाचिनः प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति प्रगाथेष्वभिधेयेषु यत्तत् प्रथमासमर्थं छन्दश्चेत् तदादिर्भवति इतिकरणस्ततश्चेद् विवक्षा भवति ॥ *उदा०*—पङ्क्तिरादिरस्य = पाङ्क्तः प्रगाथः, आनुष्टुभः, बार्हतः ॥

भाषार्थः—'सः' यह पद प्रथमासमर्थ का बोधक है। 'आदिः' पद प्रकृति का विशेषण है। 'इति' विवक्षा के लिये है[1]। प्रगाथेषु यह प्रत्ययार्थ है। 'छन्दः' शब्द से यहाँ गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है॥ [*सः*] प्रथमा समर्थ [*छन्दसः*] छन्दोवाची प्रातिपदिकों से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है [*प्रगाथेषु*] प्रगाथों के अभिधेय होने पर [*आदिरिति*] यदि वह प्रथमा समर्थ छन्दः, (प्रगाथ के) आदि = आरम्भ में हो तो॥ *उदा०*—पाङ्क्तः (पङ्क्ति = ४० अक्षरों का छन्द आदि में है जिस प्रगाथ के),आनुष्टुभः (अनुष्टुप् = ३२ अक्षरों वाला छन्द है आदि में जिस प्रगाथ के), बार्हतः (बृहती = ३६ अक्षरों का छन्द जिसके आरम्भ में है)॥ जहाँ विभिन्न छन्दों की दो वा तीन ऋचाओं का ग्रथन किया जाता है वह प्रगाथ कहाता है[2]। उस प्रगाथ का नामकरण प्रायः आदि मन्त्र के छन्दोनाम[3] पर होता है। जब दो ऋचाओं के प्रगाथों में किसी साम का गान करना होता है तो *एकं साम तृचे क्रियते स्तोत्रियम्* इस नियम के अनुसार दो ऋचाओं के किन्हीं अंशों का पुनः पाठ करके तीन बनाकर उस साम का गान किया जाता है[4]। यह विशिष्ट प्रग्रथन या गान भी प्रगाथ कहाता है। पाणिनि के

---

१. जिस आदि छन्दः से प्रगाथ के नाम की विवक्षा नहीं होती वहाँ प्रकृत सूत्र से प्रत्यय नही होता। यथा बृहती = विपरीतापङ्क्तिछन्दः के प्रगाथ का नाम रखने में प्रत्यय नही होता, अर्थात् इस प्रगाथ के लिये बार्हत प्रयोग नहीं होता।

२. इन विभिन्न प्रगाथों के स्वरूप ज्ञान के लिये 'वैदिक स्वर मीमांसा' ग्रन्थ का १२वां अध्याय देखना चाहिये। यह ग्रन्थ भी इसी ट्रस्ट से प्रकाशित हुआ है।

३. कभी-कभी प्रगाथ के अन्तिम छन्द के नाम पर, कभी-कभी दोनों छन्दों के नाम पर भी प्रगाथ का नामकरण देखा जाता है। यथा—विपरीतान्तः (बृहती+विपरीतापङ्क्ति) गायत्रबार्हतः (गायत्री + बृहती) यह सब इतिकरण से होता है।

४. इस का विशेष वर्णन ताण्ड्य ब्राह्मण में मिलता है॥

इस नियम में विभिन्न छन्दःप्रगथन रूपी प्रगाथ का उल्लेख है सामगान सम्बन्धी प्रगाथ का नहीं है ॥

यहाँ से *'सोऽस्य'* की अनुवृत्ति ४।२।५५ तक जायेगी ॥

सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥४।२।५५॥

सङ्ग्रामे ७।१॥ प्रयोजनयोद्धृभ्यः ५।३॥ *स०*—प्रयोजनानि च योद्धारश्च, प्रयोजनयोद्धारस्तेभ्यः''' इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सोऽस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यः प्रयोजनयोद्धृसमानाधिकरणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे सङ्ग्रामेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भद्रा प्रयोजनमस्य सङ्ग्रामस्य भाद्रः सङ्ग्रामः, सौभद्रः, गौरिमित्रः[1] । योद्धृभ्यः—अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य आहिमालः, स्यान्दनाश्वः, भारतः[2] ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*प्रयो''''''भ्यः*] प्रयोजन और योद्धा के साथ समानाधिकरण वाले प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*सङ्ग्रामे*] संग्राम अभिधेय हो तो यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—भाद्रः (भद्रा है प्रयोजन जिस युद्ध का) सौभद्रः, गौरिमित्रः । योद्धा समानाधिकरण वालों से—आहिमालः (अहिमाल हैं योद्धा इस युद्ध के) स्यान्दनाश्वः, भारतः ॥

तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ॥४।२।५६॥

तत् १।१॥ अस्याम् ७।१॥ प्रहरणम् १।१॥ इति अ० ॥ क्रीडायाम् ७।१॥ णः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

---

१. भद्रा सुभद्रा गौरिमित्री को प्राप्त करना जिन सग्रामो का प्रयोजन था वे संग्राम इस नाम से कहे जाते हैं ॥

२. भरताः (कौरवाः पाण्डवाश्च) क्षत्रिया योद्धारोऽस्य संग्रामस्य स भारतः । कौरव पाण्डवों के संग्राम का नाम भारत है महाभारत नहीं है । अतः 'महाभारत युद्ध' प्रयोग अशुद्ध है । भरतान् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः (४।३।११६) भारतः । नियम से कौरव पाण्डवों का वर्णन करने वाले ग्रन्थ का नाम भी भारत है । उसी के बृहद् रूपान्तर का नाम महाभारत है । दोनो का रचयिता कृष्ण द्वैपायन व्यास है । पाणिनि ने (६ २।३८) में महाभारत का उल्लेख किया है ॥

परश्च ॥ अर्थः—तदिति प्रथमासमर्थात् प्रहरणसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकात् सप्तम्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत्तदस्यामिति निर्दिष्टं क्रीडा चेत्सा भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः ॥ उदा०—दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा, मौष्टा ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ [*प्रहरणमिति*] प्रहरण समानाधिकरण वाले प्रातिपदिकों से [*अस्याम्*] सप्तम्यर्थ में [*णः*] ण प्रत्यय होता है, यदि अस्यां से निर्दिष्ट [*क्रीडायाम्*] क्रीडा हो तो ॥ इतिकरण विवक्षा के लिये है ॥ *उदा०*—दाण्डा (डण्डा है आयुध जिस क्रीडा में, ऐसी क्रीडा), मौष्टा ॥ दाण्डा आदि में *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४) से टाप् होगा ॥

घञः सास्यां क्रियेति ञः ॥४।२।५७॥

घञः ५।१॥ सा १।१॥ अस्याम् ७।१॥ क्रिया १।१॥ इति अ० ॥ ञः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सेति प्रथमासमर्थात् घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्यां सप्तम्यर्थे ञः प्रत्ययो भवति ॥ इतिकरणो विवक्षार्थः । *उदा०*—श्येनपातोऽस्यां क्रियायां वर्त्तते श्यैनम्पाता = मृगया । तिलपातोऽस्यां क्रियायां वर्त्तते तैलम्पाता = स्वधा ॥ *श्येनतिलस्य पाते ञे* (६।३।६६) इति मुमागमः ॥

भाषार्थः—[*सा*] प्रथमासमर्थ [*क्रियेति*] क्रियावाची [*घञ*] घञन्त प्रातिपदिक से [*अस्याम्*] सप्तम्यर्थ में [*ञः*] ञ प्रत्यय होता है ॥

पतॢ धातु से घञन्त पात शब्द बना है अतः श्येनपात तिलपात शब्द से ञ प्रत्यय हो गया ॥ *श्येनतिलस्य पाते ञे* (६।३।६६) से मुम् आगम तथा वृद्धि आदि पूर्ववत् होकर श्यैनम्पाता आदि की सिद्धि जानें ॥ *उदा०*—श्यैनम्पाता (जिस क्रिया में बाज गिराया जाता है, आखेट, मृगया), तैलम्पाता (जिस क्रिया में तिल डाले जाते हैं = स्वधा) ॥

तदधीते तद्वेद ॥४।२।५८॥

तत् २।१॥ अधीते क्रियापदम् ॥ तत् २।१॥ वेद क्रियापदम् ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् अध्ययनकर्त्तर्यभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति,

एवं द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकान् वेदनकर्त्तर्यभिधेयेऽपि ॥ अध्ययन केवलं पाठमात्रस्याभ्यासः । वेदनं तदर्थज्ञानम्, तत्त्वज्ञानम् ॥ उदा०— छन्दोऽधीते = पठति छान्दसः, एवं छन्दो वेत्ति = जानाति छान्दसः । व्याकरणमधीते वेत्ति वा वैयाकरणः, नैरुक्तः ॥

भाषार्थः—[*तद्*] द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*अधीते*] अध्ययन करता है इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है। इसी प्रकार [*तद्*] द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*वेद*] जानता है अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है ॥ उदा०—छान्दसः (छन्द को जो पढ़ता है, या जानता है), वैयाकरणः, नैरुक्तः । *न य्वाभ्यां पदान्ताभ्याम्०* (७।३।३) से वृद्धि का निषेध होकर एवं आदि को ऐच् आगम होकर वैयाकरणः बना है ॥

यहाँ से '*तदधीते तद्वेद*' की अनुवृत्ति ४।२।६५ तक जायेगी ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥४।२।५९॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् ५।१॥ ठक् १।१॥ स०—उक्थ आदिर्येषां ते उक्थादयः, बहुव्रीहिः । सूत्रमन्ते यस्य स सूत्रान्तः, बहुव्रीहिः । क्रतुश्च, उक्थादिश्च सूत्रान्तश्च क्रतूक्थादिसूत्रान्तम्, तस्मात्''''समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रतुविशेषवाचिभ्यः उक्थादिभ्यः सूत्रान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः अध्ययनवेदनयोः कर्त्तर्यभिधेये ठक् प्रत्ययो भवति ॥ अणोऽपवादः ॥ उदा०—क्रतुविशेषवाचिभ्यः[1]—अश्वमेधमधीते वेद वा आश्वमेधिकः आग्निष्टोमिकः वाजपेयिकः । उक्थादिभ्यः— औक्थिकः लौकायतिकः । सूत्रान्तात्—योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः, गौभिलीयगृह्यसूत्रिकः, श्रौतसूत्रिकः ॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ [*क्रतू''''त्*] क्रतु (यज्ञ) विशेषवाची, उक्थादि तथा सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अध्ययन तथा जानने का कर्त्ता अभिधेय हो तो [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ साम के किसी लक्षण

---

१ यद्यपि 'क्रतु' शब्द यज्ञ सामान्य के लिये भी प्रयुक्त होता है तथापि क्रतु शब्द प्राधान्य रूप से उन्हीं यज्ञो के लिये प्रयुक्त होता है जो सोम हवि वाले (सोमयाग) होते हैं ॥

ग्रन्थ को यहाँ उक्थ[1] कहा है न कि सामवेद, उस लक्षण ग्रन्थ को जो पढ़ता है वह औक्थिक कहा जायेगा ॥

क्रमादिभ्यो वुन् ॥४।२।६०॥

क्रमादिभ्यः ५।३॥ वुन् १।१॥ *स०*—क्रम आदिर्येषां ते क्रमादयस्तेभ्यः''' बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽध्ययनवेदनकर्त्तर्यभिधेये वुन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—क्रममधीते वेद वा क्रमकः, पदकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*क्रमादिभ्यः*] क्रमादि प्रातिपदिकों से अध्ययन तथा जानने का कर्त्ता अभिधेय होने पर [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है। मन्त्र संहिता के पदच्छेद को पदपाठ कहते हैं। यथा—अग्निम्। ईळे। पुरः हितम्। यज्ञस्य। देवम् इत्यादि। इनका अध्ययन करने वाला पदकः कहाता है। दो-दो पदों को क्रमशः मिलाकर जो पाठ होता है वह क्रमपाठ कहाता है। यथा—अग्निमीळे। इळे पुरः हितम्। पुरः हितं यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम् इत्यादि। इसका अध्ययन करने वाला 'क्रमकः' कहा जाता है ॥

अनुब्राह्मणादिनिः ॥४।२।६१॥

अनुब्राह्मणात् ५।१॥ इनिः १।१॥ *अनु०*—तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ ब्राह्मणसदृशोऽयं ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम् ॥ *अर्थः*—अनुब्राह्मणात् प्रातिपदिकात् तदधीते तद्वेद इत्येतस्मिन् विषये इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनुब्राह्मणमधीते वेद वा, अनुब्राह्मणी, अनुब्राह्मणिनौ ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*अनुब्राह्मणात्*] अनुब्राह्मण प्रातिपदिक से अधीते या वेद इन अर्थों में [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है ॥

वसन्तादिभ्यष्ठक् ॥४।२।६२॥

वसन्तादिभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *स०*—वसन्त आदिर्येषां ते वसन्तादयस्तेभ्यः''' बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

---

१. देखो 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' प्र० सं० पृ० ३२८ ॥

पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वसन्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तदधीते तद्वेद इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वसन्तसहचरितोऽयं ग्रन्थः वसन्तस्तमधीते वेद वा वासन्तिकः, वार्षिकः ॥

भाषार्थः—[*वसन्तादिभ्यः*] वसन्तादि प्रातिपदिकों से तदधीते तद्वेद इस अर्थ में [ठक्] ठक् प्रत्यय होता है ॥ वसन्त इत्यादि शब्द ऋतुवाची हैं। इनसे तदधीते तद्वेद इस अर्थ में प्रत्यय सम्भव नहीं है पुनरपि विधान किया है, अतः विधानसामर्थ्य से वसन्त शब्द से यहाँ वसन्त ऋतु सहचरित अर्थात् जिसमें वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है वह ग्रन्थ यहाँ अभिप्रेत है, उसको जो पढ़े या जाने वह वासन्तिक कहा जायेगा ॥

प्रोक्ताल्लुक् ॥४।२।६३॥

प्रोक्तात् ५।१॥ लुक् १।१॥ *अनु०*—तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् अध्येतृवेदित्रोरुत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति ॥ *उदा०*—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तमधीते यः सोऽपि पाणिनीयः, पाणिनीया कन्या। आपिशलः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*प्रोक्तात्*] प्रोक्त प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अध्येतृ वेदितृ अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का [*लुक्*] लुक् होता है ॥ प्रोक्त प्रत्ययान्त का अर्थ है कि जिस प्रातिपदिक से *तेन प्रोक्तम्* (४।३।१०१) अर्थ में प्रत्यय हुआ है तदन्त प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्द। उस शब्द से तदधीते तद्वेद अर्थ में जो प्रत्यय होगा उसका यहाँ लुक् विधान कर दिया है ॥

पाणिनीयम्—यद्यपि इसका विग्रह सामान्यतया 'पाणिनिना प्रोक्तम्' ऐसा किया जाता है परन्तु यह अर्थप्रदर्शनमात्र है। पाणिनि इञन्त और पाणिन अकारान्त दोनों समानार्थक शब्द हैं। पाणिनि शब्द से प्रोक्त अर्थ में '*इञश्च*' (४।२।११२) के नियम से अण् होता है। उससे 'पाणिनः' प्रयोग बनता है, जैसे इञन्त आपिशलि से आपिशलः, काशकृत्स्नि से काशकृत्स्नः। पाणिन अणन्त शब्द से *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ होता है—पाणिनीयः। उसको जो पढ़े वा जाने इस अर्थ में

तदधीते तद्वेद (४।२।५८) से अण् होता है, उसका इस सूत्र से लुक् कर दिया अतः पाणिन = (पाणिनि) द्वारा प्रोक्त जो ग्रन्थ वह पाणिनीय और उसको जो पढ़े वा जाने वह भी पाणिनीय होगा। इसी प्रकार आपिशलम् काशकृत्स्नम् में समझना चाहिये। जब आपिशलि समानार्थक आपिशल और काशकृत्स्नि समानार्थक काशकृत्स्न अणन्त से तेन प्रोक्तं अर्थ में प्रत्यय होगा तब आपिशलीय काशकृत्स्नीय प्रयोग बनेंगे॥

यहाँ से '*लुक्*' की अनुवृत्ति ४।२।६४ तक, और '*प्रोक्तात्*' की अनुवृत्ति ४।२।६५ में ही जायेगी॥

सूत्राच्च कोपधात् ॥४।२।६४॥

सूत्रात् ५।१॥ च अ०॥ कोपधात् ५।१॥ *स०*—ककार उपधा यस्य स कोपधस्तस्मात्, बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—लुक्, तदधीते तद्वेद, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् सूत्रवाचिनः कोपधात् प्रातिपदिकादध्येतृवेदित्रोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति॥ अप्रोक्तार्थोऽयमारम्भः॥ *उदा०*—अष्टौ अध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य (५।१।५७) तद् अष्टकम् (पाणिनीयम्) तदधीते वेद वा अष्टकाः पाणिनीयाः। पञ्चकं गौतमसूत्रमधीते वेद वा पञ्चकाः गौतमाः। त्रिकाः काशकृत्स्नाः॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*कोपधात्*] ककार उपधा वाले [*सूत्रात्*] सूत्रवाची प्रातिपदिकों से [*च*] भी तदधीते तद्वेद अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् होता है॥ अप्रोक्तार्थ इस सूत्र का आरम्भ है॥

अष्टक, पञ्चक, त्रिक शब्द सूत्रवाची तथा ककारोपध हैं सो तदधीते तद्वेद से उत्पन्न अण् का लुक् हो गया है। 'अष्टक' में *सख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु* (५।१।५७) से 'अष्टौ अध्यायाः परिमाणम् अस्य सूत्रस्य' अर्थ में क प्रत्यय होता है। यह सूत्र ग्रन्थ का वाचक है। इसी प्रकार पञ्चक और त्रिक शब्दों में भी जानना चाहिये॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥४।२।६५॥

छन्दोब्राह्मणानि १।३॥ च अ०॥ तद्विषयाणि १।३॥ *स०*—स (अध्येतृवेदितृप्रत्ययः) विषयो येषां तानि तद्विषयाणि, बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—प्रोक्तात्, तदधीते तद्वेद, ङ्याप्प्रातिपदिकात्॥ *अर्थः*—प्रोक्तप्रत्ययान्तानि

छन्दांसि ब्राह्मणानि च तद्विषयाण्येव = अध्येतृवेदितृप्रत्ययविषयाण्येव भवन्ति ।। अन्यत्राऽभावो विषयशब्दार्थः ।। *उदा०*—कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः, तित्तिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते तैत्तिरीयाः, वारतन्तवीयाः । ब्राह्मणानि—ताण्डिनः, भाल्लविनः, शाट्यायनिनः, ऐतरेयिणः ।।

भाषार्थः—प्रोक्त प्रत्ययान्त [*छन्दोब्राह्मणानि च*] छन्द और ब्राह्मणवाची शब्द [*तद्विषयाणि*] अध्येतृ वेदितृप्रत्यय विषयक होते हैं, अर्थात् अध्येतृ वेदितृ अर्थ के बिना छन्द और ब्राह्मण का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता ।। अन्य प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्दों का केवल प्रोक्त अर्थमात्र में भी प्रयोग होता है, जैसे 'पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्। जिन प्रोक्त प्रत्ययान्तों का स्वतन्त्र प्रयोग होता है उनका विग्रह वाक्य के रूप में प्रयोग होता है यथा 'पाणिनीयमधीते' । इसी प्रकार छन्द और ब्राह्मण प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्दों का स्वतन्त्र प्रयोग न हो, अध्येतृ वेदितृ प्रत्यय विषयक ही हो, इसलिए यह सूत्र बनाया है ।।

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ।।४।२।६६।।

तत् १।१।। अस्मिन् ७।१।। अस्ति क्रियापदम् ।। इति अ० ।। देशे ७।१।। तन्नाम्नि ७।१।। *स०*—यस्य नाम स तन्नामा, तस्मिन्...... बहुव्रीहिः ।। तन्नाम शब्दो देशस्य विशेषणम् ।। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च । *अर्थः*—अस्ति समानाधिकरणात् तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन् सप्तम्यर्थे तन्नाम्नि देशेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति । इतिकरणो विवक्षार्थः, अर्थात् प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन देशस्य नाम गम्यते ।। *उदा०*—उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्तीति औदुम्बरः, शैरीषः, बाल्वजः, बार्बुरः, खादिरः, पालाशः ।।

भाषार्थः तन्नाम पद देश का विशेषण है । [*अस्ति*] अस्तिसमानाधिकरण वाले [*तत्*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि सप्तम्यर्थ से निर्दिष्ट [*देशे तन्नाम्नि*] उस नाम वाला देश हो तो [*इति*] इतिकरण विवक्षार्थ है अर्थात् प्रकृति प्रत्यय समुदाय से देश कहा जा रहा हो ।।

उदुम्बर (गूलर) जिस देश में है वह औदुम्बर नाम वाला देश होगा । उदाहरण में उदुम्बर प्रथमासमर्थ 'अस्ति' (है) समानाधिकरण

शब्द है, अस्मिन् (जिसमें) से निर्दिष्ट तन्नामक देश है ही, सो अण् हो गया है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी जानें। सिद्धि में कोई विशेष नहीं।

यहाँ से '*देशे तन्नाम्नि*' की अनुवृत्ति ४।२।६९ तक जायेगी ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥४।२।६७॥

तेन ३।१॥ निर्वृत्तम् १।१॥ *अनु०*—देशे तन्नाम्नि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात्, प्रातिपदिकात् निर्वृत्तमित्येतस्मिन्नर्थे देशनामधेये गम्यमाने यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सहस्रेण निर्वृत्तो दुर्गः, साहस्रो दुर्गः, कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी ॥ तेन इति हेतौ कर्त्तरि वा तृतीया। प्रथमोदाहरणे हेतौ तृतीया सहस्रसंख्यातेन धनेन निर्वृत्त इति। उत्तरोदाहरणे कर्त्तरि तृतीया ज्ञेया ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से [*निर्वृत्तम्*] निर्वृत्त = बनाया गया इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि उस शब्द से देश का नाम गम्यमान हो तो ॥ *उदा०*—साहस्रो दुर्गः (हजार रुपयों से बनाया गया दुर्ग), कौशाम्बी (कुशाम्ब नाम के मनुष्य के द्वारा बनाई गई नगरी) ॥ *टिड्ढाणञ्०*(४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् हो जाता है ॥

तस्य निवासः ॥४।२।६८॥

तस्य ६।१॥ निवासः १।१॥ *अनु०*—देशे तन्नाम्नि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति देशनामधेये गम्यमाने ॥ *उदा०*—उत्सानां निवासो ग्राम औत्सो ग्रामः। कुरूणां निवासो ग्रामः कौरवः, आम्बष्ठः। जनपदेऽभिधेये लुपं वक्ष्यति (४।२।८१) तदा उत्साः कुरव आम्बष्ठा इत्येव भवन्ति ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से [*निवासः*] निवास इस अर्थ में देश का नाम गम्यमान होने पर यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—औत्सः (उत्सों के रहने का जो ग्राम), कौरवः (कौरवों के रहने का जो ग्राम), आम्बष्ठः ॥ जनपद (ग्राम समुदाय = देश)

अर्थ विवक्षित होने पर ४।२।८० से प्रत्यय का लुप् कहेंगे, उस अर्थ में उत्साः कुरवः आम्बष्ठाः ये ही प्रयोग बनेंगे।

यहाँ से 'तस्य' की अनुवृत्ति ४।२।६९ तक जायेगी॥

अदूरभवश्च ॥४।२।६९॥

अदूरभवः १।१॥ च अ० ॥ स०—न दूरम् अदूरं, नञ्तत्पुरुषः ॥ अदूरे भवः अदूरभवः ॥ अनु०—तस्य, देशे तन्नाम्नि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् अदूरभव इत्येतस्मिन्नर्थे देशनामधेये गम्यमाने यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विदिशाया नद्या अदूरभवं नगरं वैदिशम्। हिमवतोऽदूरभवं नगरं हैमवतम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*अदूरभवः*] पास = निकट होने अर्थ में [च] भी यथाविहित (अण् आदि) प्रत्यय होते हैं॥ *उदा०*—वैदिशम् (विदिशा नदी के समीप जो नगर)। हैमवतम् (हिमालय के निकट जो नगर)॥ *तदस्मिन्नस्तीति०* (४।२।६६) से लेकर *अदूरभवश्च* तक कहे गये इन चारों (चातुरर्थिक) सूत्रों का अधिकार *शेषे* (४।२।९१) से पहिले तक जाता है। इन चारों सूत्रों का अधिकार हम सर्वत्र अनुवृत्ति में नहीं दिखायेंगे, पाठक स्वयं इन अर्थों की योजना सर्वत्र यथासम्भव कर लें॥

ओरञ् ॥४।२।७०॥

ओः ५।१॥ अञ् १।१॥ चत्वारोऽर्था अनुवर्त्तन्ते ॥ *अर्थ*—प्रथमातृतीयाषष्ठीसमर्थाद् उवर्णान्तात् प्रातिपदिकात् चतुर्ष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परशुना निर्वृत्तं पारशवम्, परशूनां निवासो देशः पारशवः। रुरवः (मृगविशेषाः) सन्त्यस्मिन् देशे रौरवः। अरड्डु = आरडवम्। कक्षतु—काक्षतवम्। कर्कटेलु—कार्कटेलवम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा-तृतीया तथा षष्ठी समर्थ [*ओः*] उवर्णान्त प्रातिपदिकों से चारों अर्थों में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है॥ नदी अर्थ वाच्य होने पर मतुप् प्रत्यय होता है (दे० ४।२।८४)। ये अञ् आदि प्रत्यय सामान्यतया चारों अर्थों में विहित होने के कारण चातुरर्थिक कहाते हैं॥

यहाँ से '*अञ्*' की अनुवृत्ति ४।२।७५ तक जायेगी॥

मतोश्च बह्वजङ्गात् ॥४।२।७१॥

मतोः ५।१॥ च अ० ॥ बह्वजङ्गात् ५।१॥ स०—बह्वच् अङ्गं यस्य स बह्वजङ्गस्तस्मात् बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मतौ यस्मिन् बह्वजङ्गं तदन्तं यत् प्रातिपदिकं तस्मात् चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—इषुकाः (सरकण्डे) सन्ति अस्यां नद्याम् इषुकावती नदी, तस्या अदूरभवं नगरम् ऐषुकावतम्। सिध्रकाः=वृक्षविशेषाः सन्ति अस्मिन् वने तत् सिध्रकावत् वनम्, तस्यादूरभवं नगरं सैध्रकावतम्।

भाषार्थः—जिस मतुप् के परे रहते [*बह्वजङ्गात्*] बहुत अच् वाला अङ्ग हो [*मतोः*] उस मत्वन्त प्रातिपदिक से [*च*] भी अञ् प्रत्यय होता है। *उदा०*—इषुक (सरकण्डे) हैं जिस नदी में वह इषुकावती। नदी हुई इषुकावती, जो नदी के समीप नगर वह ऐषुकावतम् हुआ। सिध्रक नाम वाले वृक्ष हैं जिस वन में वह सिध्रकावत्, उस वन के समीप जो नगर वह सैध्रकावतम् हुआ॥ ऐषुकावतम् में *नद्याम् मतुप्* (४।२।८४) से मतुप् हुआ है तथा *उगितश्च* (४।१।६) से ङीप् हुआ है, तत्पश्चात् प्रकृत सूत्र से अञ् एवं आदि अच् को वृद्धि होकर रूप बना है। सैध्रकावतम् में *तदस्यास्त्यस्मि०* (५।२।९४) से मतुप् हुआ है॥

बह्वचः कूपेषु ॥४।२।७२॥

बह्वचः ५।१॥ कूपेषु ७।३॥ *अनु०*—अञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—बह्वचः प्रातिपदिकात् कूपेष्वभिधेयेषु चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः दैर्घवरत्रः, कापिलवरत्रः॥

भाषार्थः—[*बह्वचः*] बहुत अच् वाले प्रातिपदिकों से [*कूपेषु*] कुऐं को कहना हो तो चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—दैर्घवरत्रः (दीर्घवरत्र नामक मनुष्य के द्वारा बनाया गया जो कुआँ), कापिलवरत्रः (कपिलवरत्र मनुष्य के द्वारा बनाया गया कुआँ)॥

यहाँ से 'कूपेषु' की अनुवृत्ति ४।२।७३ तक जायेगी॥

उदक्च विपाशः ॥४।२।७३॥

उदक् १।१॥ च अ० ॥ विपाशः ५।१॥ अनु०—कूपेषु, अञ्, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विपाशो नद्या उत्तरदेशे (कूले) ये कूपास्तेष्वभिधेयेषु चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दत्तेन निर्वृत्तः कूपो दात्तः, गौप्तः ॥

भाषार्थः—[*विपाशः*] विपाट् नदी के [उदक्] उत्तर देश में = किनारे पर जो कुएँ हैं उनके अभिधेय होने पर [च] भी अञ् प्रत्यय होता है ॥ जब उत्तर कूल अभिधेय न होकर दक्षिण कूल वाले कुएँ अभिधेय होंगे तो दात्तः गौप्तः में औत्सर्गिक अण् होने से *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से अन्तोदात्त स्वर होगा। उत्तर कूल को कहने में तो प्रकृत सूत्र से अञ् होने पर *ञ्नित्यादिर्नित्यम्* (६।१।१९१) से दात्तः गौप्तः आद्युदात्त स्वर वाले होते हैं, यही भेद है। महर्षि पाणिनि की अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि का परिचय इस सूत्र से मिलता है, कि जिन्होंने विभिन्न स्थानों में बोले जाने वाले स्वर विषयक भेद पर भी इतना ध्यान दिया ॥

सङ्कलादिभ्यश्च ॥४।२।७४॥

सङ्कलादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—सङ्कल आदिर्येषां ते सङ्कलादयः तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्कलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सङ्कलेन निर्वृत्तः = साङ्कलः। पौष्कलः ॥

भाषार्थ—[*सङ्कलादिभ्यः*] सङ्कलादि प्रातिपदिकों से [च] भी चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—साङ्कलः (सङ्कल नामक व्यक्ति से बनाया गया कूप आदि), पौष्कलः (पुष्कल नामक व्यक्ति से बनाया गया) ॥

स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु ॥४।२।७५॥

स्त्रीषु ७।३॥ सौ...प्राक्षु ७।३॥ *स०*—सौवीरश्च साल्वश्च प्राङ् च, सौवीरसाल्वप्राञ्चः, तेषु...इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सौवीरसाल्वप्राक्षु स्त्रीलिङ्गे देशेऽभिधेये ङ्याप्प्रातिपदिकात् चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो

भवति ॥ उदा०—सौवीरे-दत्तामित्रेण निर्वृत्ता नगरी दात्तामित्री साल्वे—विधूमाग्निना निर्वृत्ता वैधूमाग्नी। प्राचि—ककन्देन निर्वृत्त काकन्दी, माकन्दी ॥

भाषार्थः—[*स्त्रीषु*] स्त्रीलिङ्गवाची [*सौ·····ञु*] सौवीर साल्व तथ पूर्वदेश अभिधेय होने पर ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है ॥

सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥४।२।७६॥

सुवास्त्वादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—सुवास्तु आदिर्येषां ते सुवास्त्वादयः, तेभ्य·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सुवास्त्वादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सुवास्तो[1]: अदूरभवं नगरं सौवास्तवम्, वार्णवम् ॥

भाषार्थः—[*सु·····भ्यः*] सुवास्तु आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ उवर्णान्त होने से *ओरञ्* (४।२।७०) से अञ् प्राप्त था उसका यह बाधक है। सौवास्तव आदि में *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण हुआ है। अण् तथा अञ् में स्वर का ही भेद है ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ४।२।७८ तक जायेगी ॥

रोणी ॥४।२।७७॥

रोणी १।१॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—रोणी प्रातिपदिकाच् चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—रोण्या निर्वृत्तः रौणः, आजकरोणः, सैंहिकरोणः ॥

भाषार्थः—[*रोणी*] रोणी प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय होता है ॥

कोपधाच्च ॥४।२।७८॥

कोपधात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—ककार उपधा यस्य स कोपधः, तस्मात्·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

१. सुवास्तु स्वात नदी को कहते है, जो अफगानिस्तान से निकलकर सिन्धु प्रदेश में मिल जाती है ॥

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कोपधात् प्रातिपदिकात् चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः कूपः कार्णवेष्टकः कूपः, कार्कवाकवः, त्रैशङ्कवः ॥

भाषार्थः—[कोपधात्] ककार उपधा वाले प्रातिपदिक से [च] भी चातुरर्थिक अण् प्रत्यय होता है ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥४।२।७९॥

वुञ्.....ठकः १।३॥ अरीहण.....कुमुदादिभ्यः ५।३॥ *स०*—वुञ्छण्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। अरीहण० इत्यत्र द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अरीहणादिभ्यः, कृशाश्वादिभ्यः, ऋष्यादिभ्यः, कुमुदादिभ्यः, काशादिभ्यः, तृणादिभ्यः, प्रेक्षादिभ्यः, अश्मादिभ्यः, सख्यादिभ्यः, संकाशादिभ्यः, बलादिभ्यः, पक्षादिभ्यः, कर्णादिभ्यः, सुतङ्गमादिभ्यः, प्रगदिन्नादिभ्यः, वराहादिभ्यः, कुमुदादिभ्यः, इत्येतेभ्यःसप्तदशगणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं वुञ्, छण्, क, ठच्, इल, स, इनि, र, ढञ्, ण्य, य, फक्, फिञ्, इञ्, ञ्य, कक्, ठक् इत्येते सप्तदशप्रत्ययाः चातुरर्थिका भवन्ति ॥ *उदा०*—अरीहणादिभ्यो वुञ् आरीहणकम्, द्रौघणकम्। कृशाश्वादिभ्यश्छण्—कार्शाश्वीयः, आरिष्टीयः। ऋष्यादिभ्यः कः—ऋष्यकः, न्यग्रोधकः। कुमुदादिभ्यष्ठच्—कुमुदिकम्, शर्करिकम्। काशादिभ्य इलः—काशिलम्, वाशिलम्। तृणादिभ्यः सः—तृणसः, नडसः। प्रेक्षादिभ्य इनिः—प्रेक्षी, हलकी। अश्मादिभ्यो रः अश्मरः। सख्यादिभ्यो ढञ्—साखेयम्, साखिदत्तेयम्। संकाशादिभ्यो ण्यः—सांकाश्यम्, काम्पिल्यम्। बलादिभ्यो यः—बल्यः, कुल्यः। पक्षादिभ्यः फक्—पाक्षायणः, तौषायणः। सुतङ्गमादिभ्य इञ्—सौतङ्गमिः, मौनिचित्तिः। प्रगदिन्नादिभ्यो ञ्यः—प्रागद्यम्, मागद्यम्। वराहादिभ्यः कक्—वाराहकम्, पालाशकम्। कुमुदादिभ्यष्ठक्—कौमुदिकम्, गौमथिकम् ॥

भाषार्थः—[*अरीहण.....कुमुदादिभ्यः*] अरीहण, कृशाश्व, आदि सत्रह गणों के प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [वुञ्.....ठकः] वुञ् छण् आदि सत्रह चातुरर्थिक प्रत्यय होते हैं ॥ सिद्धियाँ सब पूर्ववत् हैं ॥

जनपदे लुप् ॥४।२।८०॥

जनपदे ७।१॥ लुप् १।१॥ *अनु०*—प्रत्ययः ॥ *अर्थः* ङ्याप्प्रातिपदिकात् देशसामान्ये यश्चातुरर्थिकः (४।२।६६-६८) प्रत्ययो विधीयते तस्य जनपदे विशेषे विवक्षिते लुप् भवति ॥ *उदा०*—पञ्चालानां निवासो जनपदः = पञ्चालाः, कुरवः, मत्स्याः, अङ्गाः, वङ्गाः, मगधाः ॥

भाषार्थः—ङ्याप्प्रातिपदिक से देश सामान्य में *तदस्मिन्नस्तीति०* इत्यादि सूत्रों से जो प्रत्यय प्राप्त था उसका [*जनपदे*] जनपद (प्रान्त) विशेष को कहना हो तो [*लुप्*] लुप् हो जाता है ॥ सिद्धि सारी विस्तार से प्रथमावृत्ति प्र० भाग पृ० ७६७ परि० १।२।५१ में देखें ॥

यहाँ से '*लुप्*' की अनुवृत्ति ४।२।८२ तक जायेगी ॥

वरणादिभ्यश्च ॥४।२।८१॥

वरणादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—वरण आदिर्येषां ते वरणादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—लुप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वरणादिप्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति ॥ *उदा०*—वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषाः ॥

भाषार्थ—[*वरणादिभ्यः*] वरणादि प्रातिपदिकों से विहित जो चातुरर्थिक प्रत्यय, उसका [च] भी लुप् होता है ॥ *उदा०*— वरणाः (वरण वृक्षों के समीप जो नगर), शिरीषाः ॥ पूर्ववत् *लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने* (१।२।५१) से युक्तवद्भाव जानें ॥ सिद्धि प्रथमावृत्ति प्र० भाग पृ० ७५६ परि० १।१।६० में देखें ॥

शर्कराया वा ॥४।२।८२॥

शर्करायाः ५।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—लुप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शर्कराशब्दादुत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य वा लुप् भवति । पक्षे श्रवणमेव भवति ॥ *उदा०*—शर्करा प्रायेणास्मिन् देशे, शर्करा, शार्करः, शर्करिकः, शार्करकः ॥

भाषार्थः—[*शर्करायाः*] शर्करा शब्द से उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का [*वा*] विकल्प से लुप् होता है ॥

शर्करा छोटे छोटे पाषाणखण्ड (रोड़ी) को कहते हैं वह प्रायः जिस देश में हैं इस अर्थ में ४।२।६६ से जो औत्सर्गिक अण् हुआ था उसका पक्ष में लुप् होकर युक्तवद्भाव होकर शर्करा बना है, अन्यत्र अण् प्रत्यय होकर शार्करः बना। शर्करा शब्द के कुमुदादि गण में पढ़े होने से ४।२।७९ से ठच् तथा वराहादि गण में पढ़े होने से कक् प्रत्यय भी होकर शर्करिक, शार्करकः रूप भी बनेंगे ॥

यहाँ से '*शर्करायाः*' की अनुवृत्ति ४।२।८३ तक जायेगी ॥

ठक्छौ च ॥४।२।८३॥

ठक्छौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*- ठक् च छश्च ठक्छौ, इतरेतरद्वन्द्वः। *अनु०*—शर्करायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शर्कराशब्दात् ठक्, छ इत्येतौ चातुरर्थिकौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*- शार्करिकः, शर्करीयः ॥

भाषार्थः—शर्करा शब्द से चातुरर्थिक [*ठक्छौ*] ठक् तथा छ प्रत्यय [च] भी होते हैं। इस प्रकार शर्करा शब्द के कुल मिला कर छः रूप बनते हैं, दो अण् के लुप् अलुप् पक्ष के, तथा दो कुमुदादि वराहादि में पढ़े होने से और दो प्रकृत सूत्र से ठक्, छ प्रत्यय होकर ॥

नद्यां मतुप् ॥४।२।८४॥

नद्याम् ७।१॥ मतुप् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ङ्याप्प्रातिपदिकात् नद्यामभिधेयायां चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उदुम्बरावती, मशकावती, वीरणावती, ॥

भाषार्थः—ङ्याप्प्रातिपदिक से [*नद्याम्*] नदी अभिधेय हो तो चातुरर्थिक [*मतुप्*] मतुप् प्रत्यय होता है। *तदस्मिन्नस्तीति* देशे *तन्नाम्नि* के सम्बन्ध का सम्भव होने से प्रथमा समर्थ से प्रत्यय होता है। तन्नाम्नि पद नद्यां का विशेषण है, देश का नहीं। उदुम्बर जिसके तीर पर हैं ऐसी नदी उदुम्बरावती कही जाती है, इसी प्रकार सब में समझें। सिद्धि में *उगितश्च* (४।१।६) से ङीप् तथा *मादुपधायाश्च०* (८।२।९) से मतुप् के म को व होगा ॥

यहाँ से '*मतुप्*' की अनुवृत्ति ४।२।८५ तक जायेगी ॥

मध्वादिभ्यश्च ॥४।२।८५॥

मध्वादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—मधु आदिर्येषां ते मध्वादयस्तेभ्यः ······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—मतुप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—मध्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मधु अस्ति अस्मिन् देशे मधुमान् देशः, विसवान् ॥

भाषार्थः—[*मध्वादिभ्यः*] मधु आदि प्रातिपदिकों से [च] भी चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि प्रथम भाग पृ० ६७८ परि० १।१।५ के चितवान् के समान जानें। विसवान् में मतुप् के म को व *मादुपधायाश्च०* (८।२।६) से ही होगा ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ॥४।१।८६॥

कु······भ्यः ५।३॥ ड्मतुप् १।१॥ *स०*—कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च, कुमुद······सास्तेभ्यः······इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुमुद नड वेतस इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिको ड्मतुप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुमुद्वान्, नड्वान्, वेतस्वान् ॥

भाषार्थः—[*कुमु······भ्यः*] कुमुद, नड, वेतस् प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक [*ड्मतुप्*] ड्मतुप् प्रत्यय होता है ॥ ड्मतुप् के डित् होने से टेः (६।४।१४३) से टि भाग (अ) का लोप होता है ॥

नडशादाड् ड्वलच् ॥४।२।८७॥

नडशादात् ५।१॥ ड्वलच् १।१॥ *स०*—नडश्च शादश्च नडशादम्, तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नड शाद इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां चातुरर्थिको ड्वलच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नड्वलम्, शाद्वलम् ॥

भाषार्थः—[*नड······त्*] नड शाद शब्दों से चातुरर्थिक [*ड्वलच्*] ड्वलच् प्रत्यय होता है ॥

शिखाया वलच् ॥४।२।८८॥

शिखायाः ५।१॥ वलच् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शिखाशब्दात् चातुरर्थिको वलच् प्रत्ययो

भवति ॥ उदा०—शिखा नाम कश्चित् मनुष्यः, तेन निर्वृत्तं नगरं शिखावलम्[1] ॥

भाषार्थः—[*शिखायाः*] शिखा शब्द से चातुरर्थिक [*वलच्*] वलच् प्रत्यय होता है ॥

उत्करादिभ्यश्छः ॥४।२।८९॥

उत्करादिभ्यः ५।३॥ छः १।१॥ *स०*—उत्कर आदिर्येषां ते उत्करादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०* - तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उत्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०* - उत्करीयम्, शफरीयम् ॥

भाषार्थः—[*उत्करादिभ्यः*] उत्करादि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥ सर्वत्र यथासम्भव चातुरर्थिक अर्थों की योजना होगी ॥ *उदा०*—उत्करीयम् (उत्कर = धान जहाँ फैलाया जाये, ऐसा देश), शफरीयम् (एक प्रकार की मछली जहाँ पाई जावे, ऐसा देश) ॥

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ४।२।९० तक जायेगी ॥

नडादीनां कुक् च ॥४।२।९०॥

नडादीनाम् ६।३॥ कुक् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—नड आदिर्येषां ते नडादयस्तेषां...बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नडादीनां शब्दानां कुक् आगमो भवति छश्च प्रत्ययश्चातुरर्थिकः ॥ *उदा०*—नडकीयम्, प्लक्षकीयम् ॥

भाषार्थः - [*नडादीनाम्*] नडादि शब्दों को चातुरर्थिक छ प्रत्यय [*च*] तथा [*कुक्*] कुक् का आगम होता है ॥ *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) से कुक् अन्त में बैठेगा । नड कुक् छ = नड क् ईय = नडकीयम् (नरकुल जहाँ हो वह देश) ॥

---

१. शिखातरुनामा वृक्षविशेषोऽपि शिखोच्यते । तथा सति शिखानाम्ना [वृक्ष]ाणामदूरभवं नगरं शिखावलम् । 'सिखवाल' नाम्नां ब्राह्मणानामिदमेव नगरमभिजनः ॥

शेषे ॥४।२।९१॥

शेषे ७।१॥ *अनु०*—प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—अपत्यादिभ्यश्चातुरर्थपर्यन्तेभ्यो योऽन्योऽर्थः स शेषः। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः शेषेऽर्थे भवन्ति अर्थात् इत आरभ्य *तस्येदम्* (४।३।१२०) इतिपर्यन्तं ये अर्थाः सन्ति, तेषु सर्वेष्वर्थेषु वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः भवन्ति। राष्ट्रावारपाराद् घखौ, इति वक्ष्यति, तत्र घखौ प्रत्ययौ सर्वेष्वर्थेषु भवतः। यथा—राष्ट्रे भवः राष्ट्रियः, राष्ट्रादागतः राष्ट्रियः, राष्ट्रे भक्तिरस्य राष्ट्रियः, राष्ट्रादागतः राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—*तस्यापत्यम्* से चातुरर्थिक पर्यन्त जो अर्थ कहे जा चुके हैं उनसे जो [*शेषे*] शेष अर्थ उनमें आगे के कहे हुये प्रत्यय हुआ करेंगे। शेषे का अधिकार ४।३।१३१ तक अर्थात् *तस्य विकारः* से पहिले पहिले तक जायेगा अतः आगे के कहे जानेवाले प्रत्यय यहाँ से लेकर *तस्येदम्* तक जितने अर्थ कहे हैं, उन सब अर्थों में होंगे। यथा आगे के सूत्र में राष्ट्र शब्द से घ प्रत्यय कहा है सो वह घ प्रत्यय *तस्येदम्* तक कहे जानेवाले *तत्र जातः* (४।३।२५), *तत्र भवः* (४।३।५३), *तत आगतः* (४।३।७४) आदि सभी अर्थों में हुआ करेगा, ऐसा सर्वत्र जाने। इस प्रकार राष्ट्रियः के अर्थ राष्ट्र में उत्पन्न, राष्ट्र में होनेवाला, आदि अनेकों होंगे। एक ही प्रत्यय लगने से कितने अर्थों का अभिधान हो गया, यह पाणिनि मुनि की विलक्षण बुद्धि का परिचायक है। शेषे अधिकार वाले ये सब प्रत्यय शैषिक प्रत्यय कहलाते हैं॥ 'शेषे' यह अधिकार सूत्र भी है और लक्षण सूत्र भी। इसलिये जिन अर्थों में पाणिनि महाराज ने साक्षात् प्रत्ययों का विधान नहीं भी किया उनमें औत्सर्गिक यथाविहित प्रत्यय इस सूत्र से हो जाते हैं। यथा - अश्वैरुह्यते आश्वो रथः (घोड़ों से चलाया जानेवाला रथ), चातुरं शकटम् (चार बैलों से चलाया जानेवाला शकट गड्ड = बड़ी गाड़ी) ॥

राष्ट्रावारपाराद्घखौ ॥४।२।९२॥

रा⋯⋯त् ५।१॥ घखौ १।२॥ *स०*—राष्ट्रश्च अवारपारश्च, राष्ट्रावारपारम्, तस्मात्⋯समाहारो द्वन्द्वः। घश्च खश्च, घखौ, इतरेतर-

द्वन्द्वः ।। अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—राष्ट्र अवारपार इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासम्भवं जातादिष्वर्थेषु घखौ प्रत्ययौ यथासङ्ख्यं भवतः ।। समर्थविभक्तिनिर्देशोऽर्थनिर्देशश्च अग्रे यथास्थानं विधीयते ।। उदा०— राष्ट्रियः, अवारपारीण[1]: ।।

भाषार्थः—[रा······त्] राष्ट्र तथा अवारपार शब्दों से शैषिक जातादि अर्थों में यथासङ्ख्य करके [घखौ] घ और ख प्रत्यय होते हैं ।। समर्थ विभक्ति तथा प्रत्ययार्थ 'तत्र जातः' आदि में आगे कहा है, प्रत्यय यहाँ कह दिये । सर्वत्र शैषिक प्रकरण में ऐसा ही जानें ।।

ग्रामाद्यखञौ ।।४।२।९३।।

ग्रामात् ५।१।। यखञौ १।२।। स०—यश्च खञ् च यखञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ।। अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—ग्रामशब्दात् शैषिकौ यखञौ प्रत्ययौ भवतः ।। उदा०—ग्रामे जातः भवो वा ग्राम्यः, ग्रामीणः ।।

भाषार्थः—[ग्रामात्] ग्राम शब्द से [यखञौ] य और खञ् प्रत्यय होते हैं ।।

कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ् ।।४।२।९४।।

कत्त्र्यादिभ्यः ५।३।। ढकञ् १।१।। स०—कत्त्रिरादिर्येषां ते कत्त्र्यादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ।। अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कत्त्र्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको ढकञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०— कात्त्रेयकः औम्भेयकः ।।

भाषार्थः—[क··भ्यः] कत्त्र्यादि प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में [ढकञ्] ढकञ् प्रत्यय होता है ।। कत्त्रि ढकञ् = ७।१।२ से ढ को एय होकर 'कत्त्र् एय् अ क' वृद्धि होकर कात्त्रेयकः बन गया ।।

यहाँ से 'ढकञ्' की अनुवृत्ति ४।२।९५ तक जायेगी ।।

---

१. अवारपार शब्द में बह्वच् का पूर्वनिपात करने से अवार पार स्वतन्त्र शब्दो से तथा अवारपार और पारावार शब्दों से भी ख प्रत्यय होता है। अवारीणः, पारीणः, अवारपारीणः, पारावारीणः ।

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु ॥४।२।९५॥

कुल·····भ्यः ५।३॥ श्वा·····षु ७।३॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ढकञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुल, कुक्षि, ग्रीवा इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं श्वन् असि अलङ्कार इत्येतेषु जातादिष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुले भवः = कौलेयकः श्वा । कुक्षौ भवः = कौक्षेयकोऽसिः । ग्रीवायां भवः = ग्रैवेयकोऽलङ्कारः ॥

भाषार्थ—[*कुल·····भ्यः*] कुल, कुक्षि, तथा ग्रीवा शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*श्वा·····षु*] श्वा, असि तथा अलङ्कार अभिधेय होने पर जातादि अर्थों में ढकञ् प्रत्यय होता है ॥

उदा०—कौलेयकः (कुल में होने वाला कुत्ता), कौक्षेयकः (कुक्षि में रहने वाली तलवार), ग्रैवेयकः (हार तथा गुलूबन्द) ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ॥४।२।९६॥

न··भ्यः ५।३॥ ढक् १।१॥ *स०*—नदी आदिर्येषां ते नद्यादयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको ढक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नादेयम् माहेयम् वाराणसेयम् ॥

भाषार्थः—[*नद्यादिभ्य.*] नद्यादि प्रातिपदिकों से शैषिक [*ढक्*] ढक् प्रत्यय होता है ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥४।२।९७॥

दक्षि·····रसः ५।१॥ त्यक् १।१॥ *स०*—दक्षिणा च पश्चात् च पुरश्च, दक्षि·····पुरः तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकस्त्यक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दाक्षिणात्यः, पाश्चात्यः, पौरस्त्यः ॥

भाषार्थ—[*दक्षि·····स*] दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् इन प्रातिपदिकों से शैषिक [*त्यक्*] त्यक् प्रत्यय होता है ॥

काпिश्याः ष्फक् ॥४।२।९८॥

कापिश्याः ५।१॥ ष्फक् १।१॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कापिशीशब्दात् ष्फक् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ उदा०—कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु, कापिशायनी द्राक्षा ॥

भाषार्थः—[*कापिश्याः*] कापशी शब्द से शैषिक [ष्फक्] ष्फक् प्रत्यय होता है ॥ कापिशी देश विशेष की संज्ञा है । कापिशायनी में फ को आयन तथा *षिद्गौरादि०* (४।१।४१) से ङीष् होगा ॥ उदा०—कापिशायनं, कापिशायनी (कापिशी देश में होने वाला मधु वा द्राक्षा) ॥

यहाँ से 'ष्फक्' की अनुवृत्ति ४।२।९९ तक जायेगी ॥

रङ्कोरमनुष्येऽण् च ॥४।२।९९॥

रङ्कोः ५।१॥ अमनुष्ये ७।१॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ स०—अमनुष्य इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—ष्फक्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—रङ्कुप्रातिपदिकाद् अण् प्रत्ययो भवति चकारात् ष्फक् च । शैषिकेऽमनुष्येऽभिधेये ॥ उदा०—अण्—राङ्कवो गौः, राङ्कवायणो गौः ॥

भाषार्थः—[*रङ्कोः*] रङ्कु शब्द से [*अमनुष्ये*] मनुष्य अभिधेय न हो तो [*अण्*] अण् [च] और ष्फक् प्रत्यय होते हैं ॥ *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा अवादेश सिद्धि में विशेष है ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥४।२।१००॥

द्यु······तीचः ५।१॥ यत् १।१॥ स०—द्युप्रा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रत्यच् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ उदा०—दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम् ॥

भाषार्थः—[*द्यु······तीचः*] दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रत्यच् इन प्रातिपदिकों से शैषिक [यत्] यत् प्रत्यय होता है ॥

कन्थायाष्ठक् ॥४।२।१०१॥

कन्थायाः ५।१॥ ठक् १।१॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कन्थाशब्दात् शैषिकष्ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कान्थिकः ॥

भाषार्थः—[*कन्थायाः*] कन्था प्रातिपदिक से शैषिक [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥

वस्त्रखण्डों से निर्मित जो कन्था (गुदड़ी) उसमें होने वाली जूँ कान्थिक कहलाती है ॥

यहाँ से '*कन्थायाः*' की अनुवृत्ति ४।२।१०२ तक जायेगी ॥

वर्णौ वुक् ॥४।२।१०२॥

वर्णौ ७।१॥ वुक् १।१॥ अनु०—कन्थायाः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वर्णुर्नाम नदस्तत्समीपवर्तीयो देशः तद्विषयात् कन्थाप्रातिपदिकात् वुक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वर्णौ या कन्था तत्र जाता यूका कान्थिका ॥

भाषार्थः—[*वर्णौ*] वर्णु नाम वाले देश विषयक कन्था प्रातिपदिक से, [*वुक्*] वुक् प्रत्यय होता है ॥ वर्णु देश में होने वाली जो कन्था, उसमें होने वाली जो जूं वह 'कान्थिका' कहलायेगी ॥

अव्ययात्त्यप् ॥४।२।१०३॥

अव्ययात् ५।१॥ त्यप् १।१॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अव्ययात् प्रातिपदिकात् शैषिकस्त्यप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, यत्रत्यः, तत्रत्यः, इतस्त्यः ॥

भाषार्थः—[*अव्ययात्*] अव्यय प्रातिपदिकों से शैषिक [*त्यप्*] त्यप् प्रत्यय होता है ॥ अमा, इह, क्व आदि अव्यय हैं सो त्यप् प्रत्यय शैषिक हो गया है ॥

यहाँ से '*त्यप्*' की अनुवृत्ति ४।२।१०४ तक जायेगी ॥

ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् ॥४।२।१०४॥

ऐ॰॰सः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ स॰—ऐषमश्च ह्यश्च श्वश्च, ऐषमोह्योश्वसः तस्मात्॰॰समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु॰—त्यप्-शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऐषमस् ह्यस् श्वस् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽन्यतरस्यां त्यप् प्रत्ययो भवति शैषिकः। पक्षे *सायंचिरंप्राह्णेप्रगे॰* (४।३।२३) इत्यनेन ट्युट्युलौ प्रत्ययौ तुट् चागमो भवति॥ उदा॰—ऐषमस्त्यम् ऐषमस्तनम्। ह्यस्त्यम् ह्यस्तनम्। श्वस्त्यम् श्वस्तनम्॥

भाषार्थः—[*ऐष॰॰॰॰॰सः*] ऐषमस्, ह्यस्, श्वस् प्रातिपदिकों से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से त्यप् प्रत्यय होता है। पक्ष में *सायंचिरंप्राह्णे*॰ सूत्र से ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय तथा तुट् आगम होगा। ट्यु तथा ट्युल् का यु शेष रहेगा, *युवोरनाकौ* से यु को अन होकर ऐषमस् तुट् अन = ऐषमस्तनम् आदि प्रयोग बनेंगे॥

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ ॥४।२।१०५॥

तीर॰॰दात् ५।१॥ अञ्ञौ १।२॥ स॰—तीरञ्च रूप्यञ्च, तीररूप्यं, तत् उत्तरपदं यस्य तत् तीररूप्योत्तरपदम् तस्मात्॰॰॰॰॰द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः॥ अनु॰—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—तीरोत्तरपदात् रूप्योत्तरपदात् प्रातिपदिकात् यथासङ्ख्यं शैषिकौ, अञ्, ञ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा॰—काकतीरे भवं काकतीरम्, पाल्वलतीरम्। रूप्योत्तरपदात्—वार्करूप्यम्, शैवरूप्यम्॥

भाषार्थः—[*ती॰॰॰॰॰दात्*] तीर तथा रूप्य उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*अञ्ञौ*] अञ् तथा ञ शैषिक प्रत्यय होते हैं॥

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ॥४।२।१०६॥

दिक्पूर्वपदात् ५।१॥ असंज्ञायाम् ७।१॥ ञः १।१॥ स॰—दिक्पूर्वपदं यस्य तत् दिक्पूर्वपदं, तस्मात्॰॰॰॰बहुव्रीहिः। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु॰—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—असंज्ञायां वर्त्तमानात् दिक्पूर्वपदात्

प्रातिपदिकात् ञः प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—पौर्वशालः, आपरशालः, दाक्षिणशालः ॥

भाषार्थः—[*असंज्ञायाम्*] असंज्ञा में वर्त्तमान [*दिक्पूर्वपदात्*] दिशावाची शब्द पूर्व पद में है जिस प्रातिपदिक के, ऐसे दिक्पूर्वपद प्रातिपदिक से शैषिक [*ञः*] ञ प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि प्रथम भाग पृ० ८३६ परि० २।१।५० में देखें ॥

यहाँ से '*दिक्पूर्वपदात्*' की अनुवृत्ति ४।२।१०७ तक जायेगी ॥

मद्रेभ्योऽञ् ॥४।२।१०७॥

मद्रेभ्यः ५।३॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—दिक्पूर्वपदात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दिक्पूर्वपदात् मद्रशब्दात् शैषिकोऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पौर्वमद्रः, आपरमद्रः ॥

भाषार्थः—दिशापूर्वपद वाले [*मद्रेभ्यः*] मद्रान्त प्रातिपदिक से शैषिक [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अञ्*' की अनुवृत्ति ४।२।१०८ तक जायेगी ॥

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् ॥४।२।१०८॥

उदीच्यग्रामात् ५।१॥ च अ० ॥ बह्वचः ५।१॥ अन्तोदात्तात् ५।१॥ उदीचि भवः उदीच्यः । *स०*—उदीच्यश्चासौ ग्रामश्च उदीच्यग्रामस्तस्मात्''''कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अन्तोदात्तात् बह्वच उदीच्यग्रामात् प्रातिपदिकात् शैषिकोऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शिवपुरे भवं शैवपुरम्, माण्डवपुरम् ॥

भाषार्थः—[*अन्तोदात्तात्*] अन्तोदात्त [*बह्वचः*] बहुत अच् वाले [*उदीच्यग्रामात्*] उत्तर दिशा में होनेवाले ग्रामवाची प्रातिपदिकों से [*च*] भी अञ् प्रत्यय होता है ॥ शिवस्य पुरं शिवपुरं यहाँ षष्ठी समास होने से *समासस्य* (६।१।२१७) से शिवपुर शब्द अन्तोदात्त है । इसी प्रकार माण्डवपुर में है, ये बह्वच् तथा उदीच्य ग्रामवाची शब्द हैं ही सो अञ् प्रत्यय हो गया है ॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥४।२।१०९॥

प्रस्थो''''पधात् ५।१॥ अण् १।१॥ *स०*—प्रस्थ उत्तरपदं यस्य तत् प्रस्थोत्तरपदम्, पलदी आदिर्येषां ते पलद्यादयः, ककार उपधा यस्य स

कोपधः । प्रस्थोत्तरपदं च पल्ल्यादयश्च कोपधश्च प्रस्थो···पधस्तस्मात्··· बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—प्रस्थोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् पल्ल्यादिभ्यः, कोपधाच्च शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—माद्रीप्रस्थे भवः माद्रीप्रस्थः, माहकीप्रस्थः । पल्ल्यादिभ्यः—पाल्दः, पारिषदः । ककारोपधात्—निलीनके भवः = नैलीनकः, चैयातकः ॥

भाषार्थ—[*प्रस्थो·····धात्*] प्रस्थ शब्द उत्तर पदवाले शब्दों से, पल्ल्यादि गण के शब्दों से, तथा ककार उपधावाले शब्दों से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ माद्रीप्रस्थ आदि नगर विशेष के नाम हैं ॥

यहाँ से 'अण्' की अनुवृत्ति ४।२।११२।तक जायेगी ॥

कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥४।२।११०॥

कण्वादिभ्यः ५।३॥ गोत्रे ७।१॥ स०—कण्व आदिर्येषां ते कण्वादयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अण्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कण्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रे यो विहित प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ उदा०—काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः, गौकक्षाः ॥

भाषार्थः--[*कण्वादिभ्यः*] कण्वादि प्रातिपदिकों से [*गोत्रे*] गोत्र में विहित जो प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्यय होता है ॥

कण्वादि गण गर्गादि गण के अन्तर्गत है, सो यञ् होकर काण्व्य गौकक्ष्य बना, अब इन गोत्र प्रत्ययान्तों से अण् हुआ है । *आपत्यस्य च०* (६।४।१५१) से यकार का लोप होकर काण्व् अ = काण्वः गौकक्षः बना । कण्व के पौत्र के जो छात्र वे काण्व हुए । *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ प्राप्त था उसका अपवाद है ॥

यहाँ से '*गोत्रे*' की अनुवृत्ति ४।२।११२ तक जायेगी ॥

इञश्च ॥४।२।१११॥

इञः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—गोत्रे, अण्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गोत्रे य इञ् विहितस्तदन्तात्

प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ उदा०—दाक्षाः[1] साक्षाः माहकाः ॥

भाषार्थः—गोत्रप्रत्ययान्त [इञः] इञन्त प्रातिपदिक से [च] भी अण् प्रत्यय होता है। *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) का अपवाद यह सूत्र है ॥ दाक्षि आदि इञन्त प्रातिपदिक हैं सो सर्वत्र *यस्येति* च (६।४।१४८) लग ही जाता है ॥ *तस्येदम्* (४।३।१२०) शैषिक की विवक्षा में ये प्रत्यय हो रहे हैं ॥

यहाँ से 'इञः' की अनुवृत्ति ४।२।११२ तक जायेगी ॥

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ॥४।२।११२॥

न अ० ॥ द्व्यचः ५।१॥ प्राच्यभरतेषु ७।३॥ स० प्राच्याश्च भरताश्च, प्राच्यभरताः, तेषु ...... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इञः, गोत्रे, अण्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्राच्यभरतगोत्रप्रत्ययान्तादिञन्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो न भवति ॥ पूर्वेण प्राप्तिः प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—चेदस्यापत्यं चैदिः, तस्य छात्राः चैदीयाः, पौष्कीयाः, काशीयाः, पाशीयाः ॥

भाषार्थः—[*प्राच्यभरतेषु*] प्राच्य भरत गोत्रवाची इञन्त [*द्व्यचः*] द्व्यच् प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय [*न*] नहीं होता ॥ चैदि आदि *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् प्रत्ययान्त हैं, सो पूर्व सूत्र से अण् प्राप्त था जिसका प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया है। तब *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ होकर चैदीयाः बन गया। चैदि पौष्कि प्राच्य गोत्र हैं, काशि पाशि भरतगोत्र हैं ॥

वृद्धाच्छः ॥४।२।११३॥

वृद्धात् ५।१॥ छः १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वृद्धसंज्ञकात् शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गार्गीयः, वात्सीयः, शालीयः, मालीयः ॥

भाषार्थः—[*वृद्धात्*] वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से शैषिक [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥ गार्ग्य से छ प्रत्यय होकर एवं *आपत्यस्य०* (६।४।१५१)

१. यहाँ ४।२।६२ की व्याख्या और टिप्पणी देखनी चाहिये।

से य का लोप होकर गार्गीयः बना। शालीयः की सिद्धि प्रथम भाग परि० १।१।१ में देखें। गर्ग के पौत्रके छात्र गार्गीय कहलायेगे॥

यहाँ से 'वृद्धात्' की अनुवृत्ति ४।२।११७ तक जायेगी॥

भवतष्ठक्छसौ ॥४।२।११४॥

भवतः ५।१॥ ठक्छसौ १।२॥ *स०*—ठक् च छश्च ठक्छसौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—वृद्धात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—वृद्धसंज्ञकात् भवच्छब्दात् शैषिकौ ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—भवतश्छात्रः भावत्कः, भवदीयः॥

भाषार्थः—वृद्धसंज्ञक [*भवतः*] भवत् शब्द से शैषिक [*ठक्छसौ*] ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं॥ *त्यदादीनि च* (१।१।७३) से भवत् शब्द की वृद्ध संज्ञा है। भवदीयः की सिद्धि प्रथम भाग परि० १।४।१६ में देखे। भावत्कः में ठ को क *इसुसुक्तान्तात् कः* (७।३।५१) से हुआ है॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥४।२।११५॥

काश्यादिभ्यः ५।३॥ ठञ्ञिठौ १।२॥ *स०*—काशी आदिर्येषां ते काश्यादयः, तेभ्यः...बहुव्रीहिः। ठञ् च ञिठ् च ठञ्ञिठौ इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—वृद्धात्, शेषे, तद्धिता. ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—काश्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकौ ठञ्, ञिठ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—काशिकी, काशिका, बैदिकी बैदिका॥

भाषार्थः—[*काश्यादिभ्यः*] काशी आदि प्रातिपदिकों से शैषिक [*ठञ्ञिठौ*] ठञ् तथा ञिठ प्रत्यय होते हैं॥ ठञ् तथा ञिठ दोनों का 'ठ' शेष रहता है॥ ठञ् करने पर *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होगा तथा जब ञिठ करेंगे तो टाप् होगा, यही विशेष है॥

यहाँ से '*ठञ्ञिठौ*' की अनुवृत्ति ४।२।११७ तक जायेगी॥

वाहीकग्रामेभ्यश्च ॥४।२।११६॥

वाहीकग्रामेभ्यः ५।३॥ च० अ०॥ *स०*—वाहीकस्य वाहीके वा ग्रामाः वाहीकग्रामास्तेभ्यः...षष्ठीतत्पुरुषः सप्तमीतत्पुरुषो वा॥ *अनु०*—ठञ्ञिठौ, वृद्धात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—वाहीकग्रामवाचिभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः शब्देभ्यः शैषिकौ ठञ् ञिठ, इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—शाकलिकी, शाकलिका। मान्थविकी, मान्थविका ॥

भाषार्थः—[*वाहीकग्रामेभ्यः*] वाहीक देश के जो ग्राम तद्वाची वृद्ध-संज्ञक प्रातिपदिक से [च] भी शैषिक ठञ् ञिठ प्रत्यय होते हैं ॥ शाकल मान्थव वृद्ध संज्ञक वाहीक देश के ग्राम हैं ॥ वाहीक देश का लक्षण—'*पञ्चानां सिन्धुषष्ठानामन्तरं ये समाश्रिताः। वाहीका नाम ते देशाः……।*" (महाभारत कर्णपर्व) सिन्धु से लेकर सतलज के मध्य-वर्ती देश का नाम वाहीक है ॥

यहाँ से '*वाहीकग्रामेभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।२।११७ तक जायेगी ॥

विभाषोशीनरेषु ॥४।२।११७॥

विभाषा १।१॥ उशीनरेषु ७।३॥ *अनु०*—वाहीकग्रामेभ्यः, ठञ्ञिठौ, वृद्धात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उशीनरदेशे ये वाहीकग्रामास्तेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ठञ्ञिठौ शैषिकौ प्रत्ययौ वा भवतः ॥ *उदा०*—आह्वजालिकी आह्वजालिका, आह्वजालीया। सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया ॥

भाषार्थः—[*उशीनरेषु*] उशीनर देश में जो वाहीक ग्राम वृद्धसंज्ञक हैं, उनसे [*विभाषा*] विकल्प से ठञ् तथा ञिठ शैषिक प्रत्यय होते हैं। पक्ष में *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से 'छ' होगा। आह्वजाल आदि ग्रामों में होने वाली कोई वस्तु आह्वजालिकी आदि कहलायेगी। उशीनर देश वाहीक देश के अन्तर्गत है ॥

ओर्देशे ठञ् ॥४।२।११८॥

ओः ५।१॥ देशे ७।१॥ ठञ् १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उवर्णान्ताद् देशवाचिनः प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—नैषादकर्षुकः, शाबरजम्बुकः ॥

भाषार्थः—[*ओः*] उवर्णान्त [*देशे*] देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक [ठञ्] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ निषादकर्षू शबरजम्बू आदि देशवाची

शब्द हैं, इनसे जो ठञ् हुआ उसं 'ठ' को *इसुसुक्तान्तात् कः*(७।३।५१)से क तथा 'क' के परे रहते 'ऊ' को *केऽणः* (७।४।१३) से ह्रस्व हो गया है ॥

यहाँ से '*ओः ठञ्*' की अनुवृत्ति ४।२।११९ तक तथा 'देशे' की अनुवृत्ति ४।२।१४४ तक जायेगी ॥

वृद्धात् प्राचाम् ॥४।२।११९॥

वृद्धात् ५।१॥ प्राचाम् ॥६।३॥ *अनु०*—ओर्देशे ठञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उवर्णान्तात् वृद्धसंज्ञकात् प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकात् शैपिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नापितवस्तूर्नाम देशस्तस्मात् ठञ्—नापितवास्तुकः, शाकजम्बुकः ॥

भाषार्थः—उवर्णान्त [*वृद्धात्*] वृद्धसंज्ञक [*प्राचाम्*] प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् ठ को क तथा ह्रस्वत्व हो गया है। नापितवस्तू शाकजम्बू आदि प्राग्देशवाची शब्द हैं।

यहाँ से '*वृद्धात्*' की अनुवृत्ति ४।२।१२५ तक जायेगी ॥

धन्वयोपधाद् वुञ् ॥४।२।१२०॥

धन्वयोपधात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *स०*—य उपधा यस्य स योपधः, धन्वा च योपधश्च धन्वयोपधं तस्मात्.........बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु*:—वृद्धात्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—देशाभिधायिनो धन्ववाचिनो योपधाच्च वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ धन्वशब्दो मरुदेशवाची ॥ *उदा०*—पारेधन्वकः ऐरावतकः। योपधात्—सांकाश्यकः काम्पिल्यकः ॥

भाषार्थः—देश में वर्त्तमान [*धन्वयोपधात्*] धन्ववाची तथा यकार उपधा वाले वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैपिक [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है। धन्व शब्द मरुदेशवाची है ॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ४।२।१२९ तक जायेगी ॥

प्रस्थपुरवहान्ताच्च ॥४।२।१२१॥

प्रस्थपुरवहान्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—प्रस्थश्च पुरश्च वहश्च, प्रस्थपुरवहा इत्येते शब्दाः अन्ते यस्य स प्रस्थपुरवहान्तस्तस्मात्.........द्वन्द्व-

गर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—वुञ्, वृद्धात्, देशे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रस्थ, पुर, वह इत्येवमन्तात् वृद्धसंज्ञकाद् देशे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रस्थान्तात्—मालप्रस्थकः । पुरान्तात्—नान्दीपुरकः, कान्तीपुरकः । वहान्तात्—पैलुवहकः, फाल्गुनीवहकः ॥

भाषार्थः—[*प्रस्थपुरवहान्तात्*] प्रस्थ, पुर, वह अन्त वाले जो देशवाची वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक उनसे [च] भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥४।२।१२२॥

— रोपधेतोः ६।२॥ प्राचाम् ६।३॥ *स०*—र उपधा यस्य स रोपधः, रोपधश्च ईत् च रोपधेतौ, तयोः······बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, वृद्धात्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—रोपधात् ईकारान्ताच्च वृद्धसंज्ञकात् प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पाटलिपुत्रकाः ऐकचक्रकाः । ईकारान्तात्—काकन्दी, काकन्दकः, माकन्दी, माकन्दकः ॥

भाषार्थः—[*प्राचाम्*] प्राग्देशवाची [*रोपधेतोः*] रेफ उपधावाले, तथा ईकारान्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ पाटलिपुत्र एवं ऐकचक्र शब्द रोपध तथा वृद्ध संज्ञक हैं, काकन्दी माकन्दी ईकारान्त हैं, सो वुञ् हो गया है ॥

जनपदतदवध्योश्च ॥४।२।१२३॥

जनपदतदवध्योः ६।२॥ च अ० ॥ *स०*—तस्य अवधिः तदवधिः, षष्ठीतत्पुरुषः । जनपदश्च तदवधिश्च, जनपदतदवधी, तयोः······इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, वृद्धात्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वृद्धाज्जनपदवाचिनः, जनपदावधिवाचिनश्च प्रातिपदिकात् शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—जनपदवाचिनः—आभिसारकः, आदर्शकः । जनपदावधिवाचिनः—औपुष्टकः, श्यामायनकः, त्रैगर्त्तकः ॥

भाषार्थ—[*जनपदतदवध्योः*] जनपद तथा जनपद का अवधि को कहनेवाले वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से [च] भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*जनपदतदवध्योः*' की अनुवृत्ति ४।२।१२४ तक जायेगी ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥४।२।१२४॥

अवृद्धात् ५।१॥ अपि अ० ॥ बहु···यात् ५।१॥ *स०*—न वृद्धम् अवृद्धं तस्मात्·····नञ्तत्पुरुषः। बहुवचनं विषयो यस्य स बहुवचनविषयस्तस्मात्·····बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—जनपदतदवध्योः, वुञ्, वृद्धात्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवृद्धाद् वृद्धाच्च जनपदात्तदवधिवाचिनश्च बहुवचनविषयात् प्रातिपदिकात् शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अवृद्धाज्जनपदात्—आङ्गकः, वाङ्गकः, कालिङ्गकः। अवृद्धात् जनपदावधेः—आजमीढकः, आजक्रन्दकः। वृद्धात् जनपदात्—दार्वकः जाम्बवकः। वृद्धाज्जनपदावधेः—कालञ्जरकः, वैकुलिशकः ॥

भाषार्थः—जनपद तथा जनपद की अवधि वाले [*अवृद्धात्*] अवृद्ध तथा वृद्ध शब्दों से [*अपि*] भी [*बहुवचनविषयात्*] बहुवचनविषयक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥

आङ्गः वाङ्गः की सिद्धि परि० १।२।५१ में की है, ये शब्द *लुपि युक्त०* (१।२।५१) से युक्तवद्भाव होने से बहुवचनविषयक हैं ही, अतः वुञ् हो गया। इसी प्रकार और भी शब्द बहुवचनविषयक हैं। बहुवचनविषयक बनने से पूर्व जो वृद्ध अवृद्ध शब्द हैं, ऐसा यहाँ समझना है, सो अङ्ग वङ्ग शब्द बहुवचन विषय से पूर्व अवृद्ध हैं ही।

यहाँ से '*अवृद्धादपि*' की अनुवृत्ति ४।२।१२५ तक जायेगी।

कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् ॥४।२।१२५॥

कच्छा···दात् ५।१॥ *स०*—कच्छश्च अग्निश्च वक्त्रश्च वर्त्तश्च क···गर्त्ताः, इत्येतानि उत्तरपदानि यस्य तत्, क···पदम्, तस्मात्···द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अवृद्धादपि, वुञ्, वृद्धात्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कच्छाद्युत्तरपदाद् देशवाचिनोऽवृद्धाद् वृद्धाच्च प्रातिपदिकात् शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥

उदा०—कच्छोत्तरपदात्—दारुकच्छकः, पैप्पलीकच्छकः। अग्न्युत्तरपदात्-काण्डाग्नकः, वैभुजाग्नकः। ऐन्द्रवक्त्रकः, सैन्धुवक्त्रकः। बाहुगर्त्तकः, चाक्रगर्त्तकः॥

भाषार्थः--देश में वर्त्तमान [*कच्छा.....दात्*] कच्छ, अग्नि, वक्त्र, गर्त्त ये उत्तरपद में हैं, जिनके ऐसे वृद्धसंज्ञक तथा अवृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है॥

धूमादिभ्यश्च ॥४।२।१२६॥

धूमादिभ्यः ५।३॥ च अ०॥ *स०*—धूम आदिर्येषां ते धूमादयस्तेभ्यः बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—वुञ्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—देशवाचिभ्यो धूमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—धौमकः, खाण्डकः॥

भाषार्थः—देश विशेषवाची [*धूमादिभ्यः*] धूमादि गणपठित प्रातिपदिकोंसे [च] भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है॥

नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥४।२।१२७॥

नगरात् ५।१॥ कुत्सनप्रावीण्ययोः ७।२॥ *स०*—कुत्सनञ्च प्रावीण्यञ्च कुत्स..ण्ये, तयोः...इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—वुञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—कुत्सनप्रावीण्ययोः अभिधेययोः नगरशब्दाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति॥ कुत्सनं निन्दनम्॥ प्रावीण्यं नैपुण्यम्॥ *उदा०*-नागरकः, कुत्सितः प्रवीणो वा॥

भाषार्थः-[*कुत्सनप्रावीण्ययोः*] कुत्सन = निन्दा प्रावीण्य = नैपुण्य अभिधेय हो तो, [*नगरात्*] नगर प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है॥ नागरक नगर में होनेवाले निन्दित या निपुण मनुष्य को कहेंगे॥

अरण्यान्मनुष्ये ॥४।२।१२८॥

अरण्यात् ५।१॥ मनुष्ये ७।१॥ *अनु०*—वुञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अरण्य-प्रातिपदिकात्, मनुष्येऽभिधेये शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—आरण्यको मनुष्यः॥

भाषार्थः—[*अरण्यात्*] अरण्य प्रातिपदिक से [*मनुष्ये*] मनुष्य अभिधेय हो तो शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ आरण्यक जङ्गली मनुष्य को कहते हैं ॥

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ॥४।२।१२९॥

विभाषा १।१॥ कु ̇ ̇ ̇भ्याम् ५।२॥ *स०*—कुरुश्च युगन्धरश्च, कुरुयुगन्धरौ, ताभ्यां ̇ ̇ ̇इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुरुयुगन्धरजनपदवाचिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विभाषा वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—कौरवकः, कौरवः । यौगन्धरकः, यौगन्धरः ॥

भाषार्थः—[*कु ̇ ̇ ̇ ̇भ्याम्*] कुरु तथा युगन्धर जनपदवाची शब्दों से [*विभाषा*] विकल्प से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ कुरु शब्द कच्छादि गण में पढ़ा है, अतः पक्ष में ४।२।१३२ से अण् ही होगा । इसी प्रकार युगन्धर शब्द से भी पक्ष में औत्सर्गिक अण् होगा ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥४।२।१३०॥

मद्रवृज्योः ६।२॥ कन् १।१॥ *स०*—मद्र० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मद्र वृजि शब्दाभ्यां शैषिकः कन् प्रत्ययो भवति ॥ जनपदवुञोऽपवादः ॥ *उदा०*—मद्रेषु जातः = मद्रकः, वृजिकः ॥

भाषार्थः—देशविशेषवाची [*मद्रवृज्योः*] मद्र, वृजि शब्दों से शैषिक [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है ॥ मद्र वृजि जनपदवाची शब्द हैं, अतः इनसे ४।२।१२३ से वुञ् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥

कोपधादण् ॥४।२।१३१॥

कोपधात् ५।१॥ अण् १।१॥ *स०*—ककार उपधा यस्य स कोपधस्तस्मात् ̇ ̇ ̇बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ककारोपधाद् देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ऋषिकेषु जातः = आर्षिकः, माहिषिकः, ऐक्ष्वाकः ॥

भाषार्थः—देशवाची [*कोपधात्*] ककार उपधा वाले प्रातिपदिक से शैषिक [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ४।२।१३२ तक जायेगी ॥

कच्छादिभ्यश्च ॥४।२।१३२॥

कच्छादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—कच्छ आदिर्येषां ते कच्छादयस्तेभ्यः ''बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अण्, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—देशवाचिभ्यः कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—काच्छः, सैन्धवः, वार्णवः ॥

भाषार्थः—देशविशेषवाची [*कच्छादिभ्यः*] कच्छादि प्रातिपदिकों से [*च*] भी शैषिक अण् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् वृद्धि तथा यस्येति लोप ही सब सिद्धियों में हुए हैं ॥

यहाँ से '*कच्छादिभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।२।१३३ तक जायेगी ॥

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ॥४।२।१३३॥

मनुष्यतत्स्थयोः ७।२॥ वुञ् १।१॥ तस्मिन् स्थितः तत्स्थः ॥ *स०*—मनु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कच्छादिभ्यः, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—मनुष्ये मनुष्यस्थे चाभिधेये कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—काच्छको मनुष्यः । मनुष्यस्थे—काच्छकमस्य हसितं जल्पितम् ॥

भाषार्थः—[*मनुष्यतत्स्थयोः*] मनुष्य या मनुष्य में स्थित कोई कर्मादि अभिधेय हो तो कच्छादि प्रातिपदिकों से [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ।

'काच्छक' कच्छ देश के मनुष्य को कहेंगे तथा कच्छ देश के मनुष्यों का हँसना या बोलना भी काच्छक होगा । हँसी या बोलना मनुष्यस्थ कर्म हैं । इसी प्रकार सबमें जानें । पूर्व सूत्र का यह अपवाद सूत्र है ॥

यहाँ से '*मनुष्यतत्स्थयोः*' की अनुवृत्ति ४।२।१३४ तक तथा '*वुञ्*' की ४।२।१३५ तक जायेगी ॥

अपदातौ साल्वात् ॥४।२।१३४॥

अपदातौ ७।१॥ साल्वात् ५।१॥ पद्भ्याम् अतति निरन्तरं गमनं करोतीति पदातिः ॥ *स०*—न पदातिः अपदातिः, नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अपदातौ मनुष्ये मनुष्यस्थे चाभिधेये साल्वशब्दात् शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—साल्वको मनुष्यः, साल्वकमस्य हसितम् जल्पितम् ।

भाषार्थः—[*साल्वात्*] साल्व शब्द से [*अपदातौ*] अपदाति अर्थात् पैरों से निरन्तर न चलने वाला मनुष्य तथा मनुष्यस्थ कर्म अभिधेय हो तो वुञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*साल्वात्*' की अनुवृत्ति ४।२।१३५ तक जायेगी ॥

गोयवाग्वोश्च ॥४।२।१३५॥

गोयवाग्वोः ७।२॥ च अ० ॥ *स०*—गौश्च यवागूश्च गोयवाग्वौ तयोः.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—साल्वात् वुञ् देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गवि यवाग्वाञ्चाभिधेयायां देशवाचिनः साल्वप्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—साल्वको गौः, साल्विका यवागूः ॥

भाषार्थः—[*गोयवाग्वोः*] गौ तथा यवागू अभिधेय हों तो [च] भी देशवाची साल्व शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ साल्विका में टाप् तथा *प्रत्ययस्थात्०* (७।३।४४) से इत्व हुआ है ॥

गर्त्तोत्तरपदाच्छः ॥४।२।१३६॥

गर्त्तोत्तरपदात् ५।१॥ छः १।१॥ *स०*—गर्त्त उत्तरपदं यस्य तत् गर्त्तोत्तरपदं तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गर्त्तोत्तरपदाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—वृकगर्त्तीयम्, शृगालगर्त्तीयम्, श्वाविद्गर्त्तीयम् ॥

भाषार्थः—[*ग*·····*दात्*] गर्त्त शब्द उत्तरपद वाले देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक [छः] छ प्रत्यय होता है।

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ४।२।१४४ तक जायेगी ॥

गहादिभ्यश्च ॥४।२।१३७॥

गहादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—गह आदिर्येषां ते गहादयस्तेभ्यः ·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गहादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—गहीयः, अन्तःस्थीयः ॥

भाषार्थः—[*गहादिभ्यः*] गहादि प्रातिपदिकों से [च] भी शैषिक छ प्रत्यय होता है ॥ यहाँ देशे का अधिकार सम्बन्धित नहीं होगा, क्योंकि गहादि शब्द अदेशवाची भी हैं ॥

प्राचां कटादेः ॥४।२।१३८॥

प्राचाम् ६।३॥ कटादेः ५।१॥ *स०*—कट शब्द आदिर्यस्य स कटादिस्तस्मात्·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*–प्राग्देशवाचिनः कटादेः प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*-कटनगरीयम्, कटघोषीयम्, कटपल्वलीयम् ॥

भाषार्थः—[*कटादेः*] कट शब्द आदि में है जिनके ऐसे [*प्राचाम्*] प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय होता है ॥

राज्ञः क च ॥४।२।१३९॥

राज्ञः ६।१॥ क लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—छः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—राजन्शब्दात् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः ककारश्चान्तादेशो भवति ॥ *उदा०*—राजकीयम् ॥

भाषार्थः—[*राज्ञः*] राजन् शब्द से शैषिक छ प्रत्यय होता है, तथा उसको [क] 'क' अन्तादेश [च] भी होता है ॥ राज्ञः में वाक्य भेद से पञ्चमी षष्ठी दोनों विभक्ति माननी होंगी, षष्ठी मानने से *अलोन्त्यस्य*

(१।१।५१) लगकर राजन् के न के स्थान में क होकर राजकीयम् बनेगा। राजकीयम् अर्थात् राजा का सम्बन्धी। यहाँ असम्भव होने से देशे की अनुवृत्ति सम्बद्ध नहीं होती॥

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ॥४।२।१४०॥

वृद्धात् ५।१॥ अके·····धात् ५।१॥ *स०*—अकश्च इकश्च, अकेकौ, अकेकौ अन्ते यस्य स अकेकान्तः, बहुव्रीहिः। ख उपधा यस्य स खोपधः, बहुव्रीहिः। अकेकान्तश्च खोपधश्च, अकेकान्तखोपधम् तस्मात्····· समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—छः, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अक, इक इत्येवमन्तात् खोपधाच्च देशवाचिनः वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः॥ *उदा०*—अकान्तात्—आरीहणकीयम् द्रौघणकीयम्। इकान्तात्—आश्वपथिकीयम् शाल्मलिकीयम्। खोपधात्—कौटिशिखीयम्, आयोमुखीयम्॥

भाषार्थः—[*अके·····धात्*] अक, इक अन्त वाले तथा खकार उपधा वाले, जो देशवाची [*वृद्धात्*] वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक उनसे शैषिक छ प्रत्यय होता है॥

यहाँ से '*वृद्धात्*' की अनुवृत्ति ४।२।१४१ तक जायेगी॥

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् ॥४।२।१४१॥

क·····पदात् ५।१॥ *स०*—कन्था च पलदश्च नगरश्च ग्रामश्च ह्रदश्च इत्येतान्युत्तरपदानि यस्य तत् कन्था···पदं तस्मात्·····द्वन्द्वगर्भ-बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—वृद्धात्, छः, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-कात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—कन्थाद्युत्तरपदात् देशवाचिनो वृद्धात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः॥ *उदा०*—कन्थोत्तरपदात्—दाक्षिकन्थीयम्, माहिकिकन्थीयम्। पलदोत्तरपदात्—दाक्षिपलदीयम् माहिकिपलदीयम्। नगरोत्तरपदात्—दाक्षिनगरीयम् माहिकिनगरीयम्। ग्रामोत्तरपदात्—दाक्षिग्रामीयम् माहिकिग्रामीयम्। ह्रदोत्तरपदात्—दाक्षिह्रदीयम् माहिकिह्रदीयम्॥

भाषार्थः—[*कन्था···पदात्*] कन्था, पलद, नगर, ग्राम, ह्रद ये शब्द उत्तरपद में हैं, जिनके ऐसे वृद्धसंज्ञक देशवाची प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होता है॥

पर्वताच्च ॥४।२।१४२॥

पर्वतात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—छः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पर्वतात् प्रातिपदिकात् शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पर्वतीयो राजा ॥

भाषार्थः—[*पर्वतात्*] पर्वत शब्द से [*च*] भी शैषिक छ प्रत्यय होता है ॥ पर्वत शब्द पूर्ववत् देशवाची ही है, अतः देशविशेषण के लिए 'देशे' की अनुवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। पर्वतीय राजा अर्थात् पर्वत का राजा ॥

यहाँ से '*पर्वतात्*' की अनुवृत्ति ४।२।१४४ तक जायेगी ॥

विभाषाऽमनुष्ये ॥४।२।१४३॥

विभाषा १।१॥ अमनुष्ये ७।१॥ *स०*—न मनुष्यः, अमनुष्यः, तस्मिन् ...... नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—पर्वतात्, छः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पर्वतशब्दात् शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति, विकल्पेनामनुष्ये वाच्ये ॥ *उदा०*—पर्वतीयानि फलानि। पक्षे अण्—पार्वतानि फलानि ॥

भाषार्थः—[*अमनुष्ये*] अमनुष्य अभिधेय हो तो पर्वत शब्द से [*विभाषा*] विकल्प करके छ प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में औत्सर्गिक अण् होगा ॥

कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ॥४।२।१४४॥

कृकणपर्णात् ५।१॥ भारद्वाजे ७।१॥ *स०*—कृक० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छः, देशे, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भारद्वाजदेशवाचिभ्यां कृकणपर्णशब्दाभ्यां शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कृकणीयम् पर्णीयम् ॥

भाषार्थः—[*भारद्वाजे*] भारद्वाज देश में वर्त्तमान जो [*कृकणपर्णात्*] कृकण तथा पर्ण प्रातिपदिक उनसे शैषिक छ प्रत्यय होता है ॥ भारद्वाज शब्द यहाँ देशविशेषवाची है न कि गोत्रवाची ॥

॥ इति द्वितीयः पादः ॥

—:०:—

तृतीयः पादः

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ॥४।३।१॥

युष्मदस्मदोः ६।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ खञ् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—युष्म० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—युष्मद् अस्मद् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां शैषिकौ खञ्छौ प्रत्ययौ भवतो विकल्पेन, पक्षेऽण् ॥ *उदा०*—यौष्माकीणः, आस्माकीनः । छः—युष्मदीयः, अस्मदीयः । अण्—यौष्माकः, आस्माकः ॥

भाषार्थः—[*युष्मदस्मदोः*] युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों से [*खञ्*] तथा [*च*] चकार से छ प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होते हैं ॥ पक्ष में औत्सर्गिक अण् होता है ॥ अगले सूत्र ४।३।२ से खञ् तथा अण् प्रत्यय परे रहते, युष्मद् अस्मद् को यथासङ्ख्य करके युष्माक अस्माक आदेश हो जाते हैं, सो यौष्माकीणः, आस्माकीनः, यौष्माकः, आस्माकः बन गया है ॥ छ प्रत्यय परे रहते युष्माक अस्माक आदेश नहीं होते सो युष्मदीयः, अस्मदीयः बन गया ॥

यहाँ से '*युष्मदस्मदोः*' की अनुवृत्ति ४।३।३ तक जायेगी ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥४।३।२॥

तस्मिन् ७।१॥ अणि ७।१॥ च अ० ॥ युष्माकास्माकौ १।२॥ *स०*—युष्मा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—युष्मदस्मदोः ॥ तस्मिन्निति पदेन खञ् निर्दिश्यते, न घः । *अर्थः*—तस्मिन् = खञि, अणि च परतः युष्मदस्मदोः स्थाने यथासङ्ख्यं युष्माक, अस्माक इत्येतावादेशौ भवतः ॥ *उदा०*—युष्माकं छात्राः = यौष्माकीणाः, आस्माकीनाः । यौष्माकाः, आस्माकाः ॥

भाषार्थः—[*तस्मिन्*] उस खञ् [*च*] तथा [*अणि*] अण् प्रत्यय के परे रहते युष्मद् अस्मद् के स्थान में यथासङ्ख्य करके [*युष्माकास्माकौ*] युष्माक, अस्माक, आदेश होते हैं ॥ क्रमशः युष्मद् के स्थान में युष्माक, अस्मद् के स्थान में अस्माक आदेश हो जायेगा ॥

यहाँ से '*तस्मिन्नणि*' की अनुवृत्ति ४।३।३ तक जायेगी ।

तवकममकावेकवचने ॥४।३।३॥

तवकममकौ १।२॥ एकवचने ७।१॥ *स०*—तव० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्मिन्नणि युस्मदस्मदोः ॥ *अर्थः*—खञि अणि च परतः एकार्थवाचिनोः युष्मदस्मदोः स्थाने यथासङ्ख्यं तवक, ममक इत्येतौ आदेशौ भवतः ॥ *उदा०*—तव इमे छात्राः = तावकीनाः, मामकीनाः । अणि—तावकाः, मामकाः ॥

भाषार्थः—[*एकवचने*] एक अर्थ को कहनेवाले युष्मद् अस्मद् शब्दों के स्थान में यथासङ्ख्य करके [*तवकममकौ*] तवक ममक आदेश होते हैं उस खञ् तथा अण् प्रत्यय के परे रहते ॥

युष्मद् खञ् = तवक खञ् = तावकीनाः पूर्ववत् बना। इसी प्रकार मामकीनाः आदि में समझें ॥

अर्धाद्यत् ॥४।३।४॥

अर्धात् ५।१॥ यत् १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अर्धशब्दात् शैषिको यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अर्ध्यम् ॥

भाषार्थः—[*अर्धात्*] अर्ध प्रातिपदिक से शैषिक [*यत्*] प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'अर्धात्' की अनुवृत्ति ४।३।७ तक तथा 'यत्' की अनुवृत्ति ४।३।६ तक जायेगी ॥

परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ॥४।३।५॥

परावराधमोत्तमपूर्वात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—परश्च अवरश्च अधमश्च उत्तमश्च, परा.....त्तमाः, इत्येते पूर्वे यस्य स, पराव...पूर्वस्तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अर्धाद्यत्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पर, अवर, अधम, उत्तम इत्येवं पूर्वाद् अर्धप्रातिपदिकात् यत् प्रत्ययो भवति शैषिकः ॥ *उदा०*—परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् ॥

भाषार्थः—[*पराव.....वात्*] पर, अवर, अधम, उत्तम ये शब्द पूर्व में हैं जिसके ऐसे अर्ध शब्द से [च] भी शैषिक यत् प्रत्यय होता है ॥

दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च ॥४।३।६॥

दिक्पूर्वपदात् ५।१॥ ठञ् १।१। च अ० ॥ स०—दिक् पूर्वपदं यस्य तत् दिक्पूर्वपदम् तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अर्धाद्यत् । अर्थः—दिक्पूर्वपदादर्धान्तात् प्रातिपदिकात् शैषिकौ ठञ्यतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—ठञ्—पौर्वार्द्धिकः, दाक्षिणार्द्धिकः । यत्—पूर्वार्द्ध्यः, दक्षिणार्द्ध्यः ॥

भाषार्थः—[*दिक्.....त्*] दिशावाची पूर्वपदवाले अर्ध प्रातिपदिक से शैषिक [*ठञ्*] ठञ् [च] और यत् प्रत्यय होते हैं ॥

यहाँ से '*दिक्पूर्वपदात्*' की अनुवृत्ति ४।३।७ तक जायेगी ॥

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ॥४।३।७॥

ग्राम.....शात् ५।१॥ अञ्ठञौ १।२॥ स०—ग्रामश्च जनपदश्च, ग्रामजनपदौ, तयोर्य एकदेशः, ग्रामजनपदैकदेशः, तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भ-षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—दिक्पूर्वपदात्, अर्धात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिक्पूर्वपदाद् अर्धान्तात् ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च प्रातिपदिकात् शैषिकौ अञ्ठञौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—इमे ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्द्धाः, पौर्वार्द्धिकाः । दाक्षिणार्द्धाः दाक्षिणार्द्धिकाः ॥

भाषार्थः—[*ग्राम...शात्*] ग्राम के अवयववाची तथा जनपद के अवयववाची, दिशा पूर्वपद वाले अर्धान्त प्रातिपदिक से शैषिक [*अञ्ठञौ*] अञ् तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं ॥ एकदेश शब्द यहाँ अवयव का वाची है ॥

मध्यान्मः ॥४।३।८॥

मध्यात् ५।१॥ मः १।१॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः - मध्यात् प्रातिपदिकाच्छैषिको मः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मध्यमः ॥

भाषार्थः—[*मध्यात्*] मध्य प्रातिपदिक से शैषिक [*मः*] म प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*मध्यात्*' की अनुवृत्ति ४।३।९ तक जायेगी ॥

अ सांप्रतिके ॥४।३।९॥

अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ सांप्रतिके ७।१॥ अनु०—मध्यात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ सांप्रतिकं न्याय्यं युक्तमुच्यते । अर्थः—मध्यशब्दात् सांप्रतिके गम्यमाने शैषिकः 'अः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नातिह्रस्वं नातिदीर्घं मध्यं काष्ठम् । नात्यवकृष्टो, नात्युत्कृष्टो मध्यो वैयाकरणः, मध्या स्त्री ॥

भाषार्थः—मध्य शब्द से [*सांप्रतिके*] सांप्रतिक अर्थ गम्यमान हो तो शैषिक [*अ*] अ प्रत्यय होता है ॥ साम्प्रतिक सम न्याय उचित को कहते हैं, जैसे न अधिक ऊँचा न अधिक नीचा, बराबर का काष्ठ मध्य काष्ठ कहा जायेगा । पूर्व सूत्र का यह अपवाद है ॥

द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ॥४।३।१०॥

द्वीपात् ५।१॥ अनुसमुद्रं १।१॥ यञ् १।१॥ स०—समुद्रं समया अनुसमुद्रं 'अनुर्यत्समया' इत्यनेनाव्ययीभावसमासः । अर्थः—समुद्रसमीपे वर्तमानात् द्वीपप्रातिपदिकाच्छैषिको यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्वैप्यं, मधु द्वैप्या कन्या ॥

भाषार्थः—समुद्र के जो समीप, वह अनुसमुद्र कहलाता है ॥ [*अनुसमुद्रम्*] समुद्र के समीप अर्थ में वर्तमान जो द्वीप प्रातिपदिक उससे शैषिक [*यञ्*] यञ् प्रत्यय होता है । समुद्र के समीप जो द्वीप उसमें होने वाला जो मधु या कन्या वह द्वैप्यं मधु द्वैप्या कन्या कही जायेगी । द्वीपम् की सिद्धि प्रथम भाग पृ० ७२७ परि० १।१।५३ में की है उससे यञ् होकर द्वैप्यम् बन ही जायेगा ॥

कालाट्ठञ् ॥४।३।११॥

कालात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ अनु०—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकश्ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मासे भवः मासिकः, आर्द्धमासिकः, सांवत्सरिकः ॥

भाषार्थः—[*कालात्*] कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से शैषिक [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ मास में होने वाला मासिक, अर्ध

मास में आर्धमासिक तथा संवत्सर में होनेवाला सांवत्सरिक कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*कालात्*' की अनुवृत्ति ४।३।२४ तक जायेगी तथा '*ठञ्*' की ४।३।१५ तक जायेगी ॥

श्राद्धे शरदः ॥४।३।१२॥

श्राद्धे ७।१॥ शरदः ५।१॥ *अनु०*—कालाट्ठञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऋतुवाचिनः शरत्प्रातिपदिकाट्ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः श्राद्धेऽभिधेये ॥ ऋतुवाचिभ्यः (४।३।१६) अण् विहितस्तस्यापवादः ॥ *उदा०*—शरदि भवं शारदिकं श्राद्धं कर्म ॥

भाषार्थः—ऋतुवाची (कालविशेष) [*शरदः*] शरत् शब्द से [*श्राद्धे*] श्राद्ध अभिधेय हो तो शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है ॥

ऋतुवाची होने से ४।३।१६ से अण् प्राप्त था उसका अपवाद है ॥

यहाँ से '*शरदः*' की अनुवृत्ति ४।३।१३ तक जायेगी ॥

विभाषा रोगातपयोः ॥४।३।१३॥

विभाषा १।१॥ रोगातपयोः ७।२॥ *स०*—रोगा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—शरदः, कालाट्ठञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—रोगे, आतपे चाभिधेये कालवाचिनः शरत् शब्दाट्ठञ् प्रत्ययो वा भवति, पक्षेऽण्॥ *उदा०*—शारदिको रोगः, शारदिक आतपः । शारदो रोगः, शारद आतपः ॥

भाषार्थः—कालविशेषवाची शरत् शब्द से [*रोगातपयोः*] रोग तथा आतप अभिधेय हो तो ठञ् प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प से होता है । पक्ष में ४।३।१६ से अण् होगा । शरद् ऋतु में होने वाले रोग या आतप को शारदिकः, शारदः[1] कहेंगे ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ४।३।१५ तक जायेगी ॥

---

१. 'बालार्को न सेवितव्यः' इस मनु वचन में बाला = कन्याराशि गत शरद्ऋतु के सूर्य के सेवन का निषेध है ।

निशाप्रदोषाभ्यां च ॥४।३।१४॥

निशाप्रदोषाभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *स०*—निशा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—विभाषा, कालाट्ठञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—निशा, प्रदोष इत्येताभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां शब्दाभ्यां विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति । *उदा०*—नैशिकम्, नैशम् । प्रादोषिकम्, प्रादोषम् ॥

भाषार्थः—[*निशाप्रदोषाभ्याम्*] निशा प्रदोष कालविशेषवाची शब्दों से [च] भी विकल्प से ठञ् प्रत्यय होता है ॥ *कालट्ठञ्* से नित्य ठञ् की प्राप्ति में यह विकल्प है । पक्ष में *प्राग्दीव्यतोऽण्* का अधिकार होने से अण् ही होगा ॥

श्वसस्तुट् च ॥४।३।१५॥

श्वसः ५।१॥ तुट् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—विभाषा, कालाट्ठञ्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालवाचिनः 'श्वस्' प्रातिपदिकात् विकल्पेन शैषिकष्ठञ्, प्रत्ययो भवति तस्य (प्रत्ययस्य) च तुट् आगमो भवति ॥ पक्षे *ऐषमोह्य:श्वसो०* (४।२।१०४) इत्यनेन विकल्पेन त्यबपि भवति, एताभ्यां मुक्ते *सायंचिरंप्राह्णे०* (४।३।२३) इत्यनेन ट्युट्युलौ प्रत्ययावपि भवतस्तेन त्रैरूप्यं भवति ॥ *उदा०*—शौवस्तिकः श्वस्त्यः श्वस्तनः ॥

भाषार्थः—कालविशेषवाची [*श्वसः*] श्वस् प्रातिपदिक से विकल्प से ठञ् प्रत्यय होता है, [च] तथा उस प्रत्यय को [तुट्] तुट् का आगम भी होता है ॥ पक्ष में *ऐषमोह्य:श्वसोऽन्यतरस्याम्* से विकल्प से त्यप् प्रत्यय होगा, एवं श्वस् शब्द के अव्यय होने से *सायंचिरंप्राह्णे०* से ट्यु, ट्युल् प्रत्यय भी होकर तीन रूप बनेंगे । इन दोनों प्रत्ययों के रूप में कोई भेद नहीं है केवल स्वर में ही भेद है ॥ 'श्वस् तुट् ठक्' इस अवस्था में *न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां०* (७।३।३) से वृद्धि निषेध तथा पूर्व को ऐच् आगम होकर शौवस्तिक बन गया है ।

संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥४।३।१६॥

सं·····भ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—संधिवेला आदिर्येषां ते संधिवेलादयः, संधिवेलादयश्च ऋतुश्च नक्षत्रं च, 'संधिवेलाद्यृतुनक्षत्राणि,

तेभ्यः.....बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संधिवेलादिभ्यः, ऋतुवाचिभ्यः, नक्षत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। *कालाट्ठञ्* इति ठञि प्राप्ते वचनम् ॥ *उदा०*—सांधिवेलम्। सान्ध्यम्। ऋतुभ्यः—ग्रैष्मम्, शैशरम्। नक्षत्रेभ्यः—तैषम्, पौषम् ॥

भाषार्थः—[*संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः*] संधिवेलादि गण पठित शब्दों से तथा ऋतुवाची एवं नक्षत्रवाची शब्दों से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ ये सब कालविशेषवाची शब्द हैं, अतः *कालाट्ठञ्* से ठञ् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥

प्रावृष एण्यः ॥४।३।१७॥

प्रावृषः ५।१॥ एण्यः १।१॥ *अनु०*—कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रावृष् प्रातिपदिकाच्छैषिक एण्यः प्रत्ययो भवति ॥ प्रावृट्शब्द ऋतुवाची, तस्मादण् प्राप्तस्तस्याऽपवादः ॥ *उदा०*—प्रावृषेण्यो मेघः ॥

भाषार्थः—[*प्रावृषः*] प्रावृष् प्रातिपदिक से शैषिक [*एण्यः*] एण्य प्रत्यय होता है ॥ प्रावृष् शब्द-ऋतुवाची है अतः उससे पूर्व सूत्र से अण् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥

वर्षाभ्यष्ठक् ॥४।३।१८॥

वर्षाभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *अनु०*—कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऋतुवाचिनो वर्षाप्रातिपदिकात् ठक् प्रत्ययो भवति ॥ ऋत्वणोऽपवादः ॥ *उदा०*—वार्षिकं गोमयम्, वार्षिकमनुलेपनम् ॥

भाषार्थः—ऋतुवाची [*वर्षाभ्यः*] वर्षा प्रातिपदिक से शैषिक [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र ४।३।१६ का अपवाद है। वर्षा शब्द बहुवचनान्त होता है यह बात इस सूत्र में बहुवचन निर्देश से व्यक्त होती है ॥

यहाँ से '*वर्षाभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।३।१९ तक जायेगी ॥

छन्दसि ठञ् ॥४।३।१९॥

छन्दसि ७।१॥ ठञ् १।१॥ *अनु०*—वर्षाभ्यः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वर्षाप्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ स्वरे विशेषः। *उदा०*—नभश्च नभस्यश्च वार्षिकौ ऋतू ॥

भाषार्थः—वर्षा प्रातिपदिक से [*छन्दसि*] वेद विषय में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ठक् और ठञ् में स्वर का ही भेद है, रूप का नहीं ॥

यहाँ से '*छन्दसि*' की अनुवृत्ति ४।३।२१ तक तथा '*ठञ्*' की अनुवृत्ति ४।३।२२ तक जायेगी ॥

वसन्ताच्च ॥४।३।२०॥

वसन्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—छन्दसि, ठञ्, कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वसन्तप्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मधुश्च माधवश्च वासन्तिकौ ऋतू ॥

भाषार्थः—कालवाची [*वसन्तात्*] वसन्त प्रातिपदिक से [*च*] भी वेद विषय में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

हेमन्ताच्च ॥४।३।२१॥

हेमन्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—छन्दसि, ठञ्, कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालवाचिनो हेमन्तशब्दाच्छैषिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकौ ऋतू ॥

भाषार्थः—कालवाची [*हेमन्तात्*] हेमन्त शब्द से [*च*] भी वेद विषय में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*हेमन्तात्*' की अनुवृत्ति ४।३।२२ तक जायेगी।

सर्वत्राण् च तलोपश्च ॥४।३।२२॥

सर्वत्र अ० ॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ तलोपः १।१॥ च अ० ॥ *स०*—तस्य लोपस्तलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—हेमन्तात्, ठञ्, कालात्,

शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—हेमन्त-शब्दाद् अण्ठञौ प्रत्ययौ भवतः, अणि परतो हेमन्तशब्दस्य तकारलोपश्च भवति सर्वत्र=छन्दसि भाषायां च ॥ उदा०—हैमनं वासः, हैमनमनुलेपनम्। ठञ्—हैमन्तिकम् ॥

भावार्थः—हेमन्त प्रातिपदिक से [*सर्वत्र*] वैदिक तथा लौकिक प्रयोग में [*अण्*] अण् [*च*] तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं तथा उस अण् के परे रहते हेमन्त शब्द के [*तलोपः*] तकार का लोप [*च*] भी होता है ॥ हेमन्त अण् = हैमन्+अ = हैमनं बन गया। ठञ् परे रहते हैमन्तिकं बन गया।

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ॥४।३।२३॥

सायं……भ्यः ५।३॥ ट्युट्युलौ १।२॥ तुट् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—सायं० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। ट्युश्च ट्युल् च ट्युट्युलौ इतरेतरद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे, इत्येतेभ्यः कालवाचिभ्योऽव्ययेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः ट्युट्युल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, तुट् चागमो भवति तयोः ॥ उदा०—सायंतनम् चिरंतनम् प्राह्णेतनम् प्रगेतनम्। अव्ययेभ्यः—दिवातनम् दोषातनम् ॥

भावार्थः—कालवाची [*सायं……भ्यः*] सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे तथा अव्यय प्रातिपदिकों से [*ट्युट्युलौ*] ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय होते हैं, तथा इन प्रत्ययों को [*तुट् च*] तुट् आगम भी होता है ॥

उदा०—सायंतनम् (दिन के अन्त में हुआ), चिरंतनम् (पुराना), प्राह्णेतनम् (दिन के पहले प्रहर में हुआ), प्रगेतनम् (बहुत प्रातः काल में होने वाला), दिवातनम् (दिन में होने वाला), दोषातनम् (रात्रि में होने वाला) ॥

षो अन्तकर्मणि धातु से घञ् प्रत्यय करके 'साय' रूप बनता है, उसी को मकारान्तत्व निपातन से करके सायंतनम् बना है ॥

यहाँ से '*ट्युट्युलौ तुट्*' की अनुवृत्ति ४।३।२४ तक जायेगी ॥

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ॥४।३।२४॥

विभाषा १।१॥ पूर्वा……भ्याम् ५।२॥ *स०*—पूर्वा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—ट्युट्युलौ, तुट्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—कालवाचिभ्यां पूर्वाह्ण अपराह्ण शब्दाभ्यां विभाषा शैषिकौ ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवतस्तयोश्च तुडागमो भवति ॥ *उदा०*—पूर्वाह्णे तनम् पौर्वाह्णिकम् । अपराह्णे तनम् आपराह्णिकम् ॥

भाषार्थः—कालवाची [*पू····भ्याम्*] पूर्वाह्ण अपराह्ण शब्दों से [*विभाषा*] विकल्प से शैषिक ट्यु तथा ट्युल् प्रत्यय होते हैं तथा उन ट्यु ट्युल् प्रत्ययों को तुट् आगम भी होता है। पक्ष में *कालाट्ठञ्* से ठञ् होगा ॥ अहन् को अह्ण आदेश *अह्नो ऽह्ण एतेभ्यः* (५।४।८८) से तथा समासान्त टच् प्रत्यय *राजाहः सखिभ्यष्टच्* (५।४।६१) से टच् एवं *अह्नोऽदन्तात्* (८।४।७) से अह्ण के न को ण होगा ॥

तत्र जातः ॥४।३।२५॥

तत्र अ० ॥ जातः १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत्रेति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् जात इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—राष्ट्रे जातः = राष्ट्रियः अवारपारीणः, ग्राम्यः, ग्रामीणः, कात्त्रेयकः । स्रुघ्ने जातः = स्रौघ्नः, माथुरः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से [*जातः*] उत्पन्न हुआ इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ *राष्ट्रावारपा०* (४।२।६२) से घ प्रत्यय होकर राष्ट्रियः, *ग्रामाद्यखञौ* (४।२।९३) से य और खञ् प्रत्यय होकर ग्राम्यः ग्रामीणः एवं *कत्र्यादिभ्यो०* (४।२।६४) से ढकञ् प्रत्यय जात अर्थ में होकर कात्त्रेयकः बना है ॥

यहाँ से '*तत्र*' की अनुवृत्ति ४।३।५१ तक तथा '*जातः*' की अनुवृत्ति ४।३।३७ तक जायेगी ॥

प्रावृषष्ठप् ॥४।३।२६॥

प्रावृषः ५।१॥ ठप् १।१॥ *अनु०*—तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् प्रावृट् प्रातिपदिकाज्जातार्थे ठप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रावृषि जातः प्रावृषिकः ।

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*प्रावृषः*] प्रावृष् प्रातिपदिक से 'उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में [*ठप्*] ठप् प्रत्यय होता है ॥ सामान्यतया *प्रावृष*

एण्यः (४।३।१७) सूत्र से शैपिक एण्य प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह बाधक है। जात अर्थ में प्रावृष् शब्द से ठप् ही होगा, शेप *तत्र भवः* (४।३।५३) आदि अर्थों में एण्य होगा ॥ *उदा०*—प्रावृषिकः (वर्षा ऋतु में हुआ कदम्ब का वृक्ष) ॥

संज्ञायां शरदो वुञ् ॥४।३।२७॥

संज्ञायां ७।१॥ शरदः ५।१॥ वुञ् १।१॥ *अनु०*—तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमी-समर्थात् शरन्प्रातिपदिकात् संज्ञायां विपये जातार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शरदि जाताः = शारदकाः दर्भाः, शारदकाः मुद्गाः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*शरदः*] शरद् प्रातिपदिक से जात अर्थ में [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय होने पर [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*संज्ञायाम्*' की अनुवृत्ति ४।३।२८ तक जायेगी ॥

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन् ॥४।३।२८॥

पू.....रात् ५।१॥ वुन् १।१॥ *स०*—पूर्वा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—संज्ञायाम्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष, अवस्कर इत्येतेभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जातार्थे वुन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पूर्वाह्णकः, अपराह्णकः, आर्द्रकः, मूलकः, प्रदोपकः, अवस्करकः ॥

भाषार्थः—[*पू.....करात्*] पूर्वाह्ण, अपराह्ण आदि सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से जात अर्थ में [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है ॥

पूर्वाह्ण, अपराह्ण शब्दों से *विभाषा पूर्वा०* (४।३।२४) से ट्यु, ट्युल् प्रत्यय प्राप्त थे उनका यह बाधक है। जात अर्थ में पूर्वाह्ण अपराह्ण शब्दों से वुन् ही होगा, शेष भव आदि अर्थों में ट्यु, ट्युल् होंगे। आर्द्रा तथा मूल नक्षत्रवाची शब्द हैं सो इनसे भी ४।३।१६ से अण् प्राप्त था, जात अर्थ में वुन् कर दिया, शेष भवादि अर्थों में अण् ही होगा। प्रदोष शब्द से भी ४।३।१४ से ठञ् प्राप्त था, जातार्थ में वुन् कह दिया तथा अवस्कर शब्द से औत्सर्गिक अण् की प्राप्ति में वुन् का विधान किया है ॥

यहाँ से '*वुन्*' की अनुवृत्ति ४।३।३० तक जायेगी ॥

पथः पन्थ च ॥४।३।२९॥

पथः ५।१॥ पन्थ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—वुन्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् पथिन्प्रातिपदिकात् वुन् प्रत्ययो भवति, प्रत्ययसन्नियोगेन पथिन्शब्दस्य पन्थ इत्ययमादेशश्च भवति, तत्र जात इत्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—पथि जातः पन्थकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*पथः*] पथिन् प्रातिपदिक से वुन् प्रत्यय होता है, तत्र जात अर्थ में, प्रत्यय के साथ साथ पथिन् को [*पन्थ*] पन्थ आदेश [च] भी होता है ॥

अमावास्याया वा ॥४।३।३०॥

अमावास्यायाः ५।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—वुन्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् अमावास्याप्रातिपदिकाज्जातार्थे विकल्पेन वुन् प्रत्ययो भवति ! अमावास्याशब्दः संधिवेलादिषु पठ्यते, तस्मात् पक्षेऽणपि भवति ॥ *उदा०*—अमावास्यकः । पक्षे अण्—आमावास्यः ॥

भाषार्थः—[*अमावास्यायाः*] सप्तमी समर्थ अमावास्या प्रातिपदिक से जात अर्थ में वुन् प्रत्यय [*वा*] विकल्प से होता है ॥ अमावास्या शब्द सन्धिवेलादि गण में पढ़ा है, अतः उससे पक्ष में ४।३।१६ से अण् होगा ॥

यहाँ से '*अमावास्यायाः*' की अनुवृत्ति ४।३।३१ तक जायेगी ॥

अ च ॥४।३।३१॥

अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः । च अ० ॥ *अनु०*—अमावास्यायाः, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अमावास्याप्रातिपदिकात् अकारप्रत्ययोऽपि भवति तत्र जात इत्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—अमावास्यः ॥

भाषार्थः—अमावास्या प्रातिपदिक से *तत्र जातः* विषय में [*अ*] अ प्रत्यय [च] भी होता है ॥ अण् तथा अ में वृद्धि की विशेषता है ॥

सिन्ध्वपकराभ्यां कन् ॥४।३।३२॥

सि···भ्याम् ५।२॥ कन् १।१॥ *स०*—सिन्ध्व० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सिन्धु, अपकर इत्येताभ्यां सप्तमीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जातार्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ सिन्धुशब्दः कच्छादिषु पठ्यते तस्मादण्वुञोरपवादः ॥ *उदा०*—सिन्धुकः, अपकरकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*सिन्ध्वपकाराभ्याम्*] सिन्धु तथा अपकर शब्दों से जातार्थ में [कन्] कन् प्रत्यय होता है ॥ सिन्धु शब्द कच्छादिगण में पठित है सो ४।२।१३२, १३३ से प्राप्त अण् तथा वुञ् का यह अपवाद है, अपकर शब्द से भी औत्सर्गिक अण् प्राप्त था, जातार्थ में कन् ही होगा। शेष भवादि अर्थों में अण्, वुञ् होंगे ॥

यहाँ से '*सिन्ध्वपकराभ्याम्*' की अनुवृत्ति ४।३।३३ तक जायेगी ॥

अणञौ च ॥४।३।३३॥

अणञौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*—अण् च अञ् च अणञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सिन्ध्वपकराभ्यां, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सिन्ध्वपकरशब्दाभ्यां, तत्र जात इत्येतस्मिन् विषये यथासंख्यमण्, अञ् इत्येतौ प्रत्ययावपि भवतः ॥ *उदा०*—सैन्धवः, आपकरः ॥

भाषार्थः—सिन्धु, अपकर शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*अणञौ*] अण् तथा अञ् प्रत्यय [च] भी होते हैं, तत्र जातः इस विषय में ॥ अण् तथा अञ् में स्वर का ही भेद है ॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ॥४।३।३४॥

श्रवि·····बहुलात् ५।१॥ लुक् १।१॥ *स०*—श्रवि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, अषाढा, बहुल इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जातार्थे

उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति ॥ *उदा०*—श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठः फल्गुनः अनुराधः स्वातिः तिष्यः पुनर्वसुः, हस्तः, विशाखः, अषाढः बहुलः ॥

भाषार्थः—[*श्रवि······लात्*] श्रविष्ठा आदि प्रातिपदिकों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् [लुक्] होता है ॥ *तत्र जातः* (४।३।२५) से उत्पन्न औत्सर्गिक अण् का प्रकृत सूत्र से लुक् होता है, अण् के लुक् होने पर *लुक्तद्धितलुकि* (१।२।४९) से श्रविष्ठा आदियों के स्त्री प्रत्यय टाप् आदि का भी लुक् होता है ॥

यहाँ से 'लुक्' की अनुवृत्ति ४।३।३७ तक जायेगी ॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ॥४।३।३५॥

स्था·········लात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—स्थानमन्ते यस्य स स्थानान्तः, बहुव्रीहिः—स्थानान्तश्च गोशालश्च खरशालश्च, स्था····लम् तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—लुक्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्थानान्तात् गोशालात् खरशालाच्च प्रातिपदिकात् जातार्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति ॥ *उदा०*—गोस्थाने जातः गोस्थानः, अश्वस्थानः, गोशालः, खरशालः ॥

भाषार्थः—[*स्थाना·····लात्*] स्थान शब्द अन्त वाले, तथा गोशाल खरशाल प्रातिपदिकों से [च] भी जातार्थ में उत्पन्न जो प्रत्यय उसका लुक् होता है ॥ पूर्ववत् अण् प्रत्यय का लुक् यहाँ हुआ है ॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो वा ॥४।३।३६॥

वत्स·····षजः ५।१॥ वा अ० ॥ *स०*—वत्स० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—लुक्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुज्, शतभिषज् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जातार्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य वा लुक् भवति ॥ पक्षे अणः श्रवणं भविष्यति ॥ *उदा०*—वत्सशालायां जातः—वत्सशालः वात्सशालः । अभिजित्, आभिजितः । अश्वयुक्, आश्वयुजः । शतभिषक्, शातभिषजः ॥

भाषार्थः—[*वत्स......जः*] वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुज्, शतभिषज् इन प्रातिपदिकों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का [*वा*] विकल्प करके लुक् हो जाता है ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥४।३।३७॥

नक्षत्रेभ्यः ५।३॥ बहुलम् १।१॥ *अनु०*—लुक्, तत्र जातः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नक्षत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जातार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य बहुलं लुक् भवति ॥ उदा०—भरण्यां जातः = भरणः, भारणः। रोहिणः, रौहिणः। मृगशिराः मार्गशीर्षः ॥

भाषार्थः—[*नक्षत्रेभ्यः*] नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का [*बहुलम्*] बहुल करके लुक् होता है ॥ बहुल कहने से पक्ष में लुक् नहीं भी हुआ ॥ *लुक्तद्धित०* (१।२।४९) से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जायेगा। *ये च तद्धिते* (६।१।६०) में चकार ग्रहण करने से यहाँ भी शिरस् को शीर्ष भाव हो जायेगा ॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥४।३।३८॥

कृत......शलाः १।३॥ *स०*—कृतश्च लब्धश्च क्रीतश्च कुशलश्च कृ...शलाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्रुघ्ने कृतः, लब्धः, क्रीतः, कुशलो वा स्रौघ्नः माथुरः। एवं राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*कृ......शलाः*] कृत = किया हुआ, लब्ध = पाया हुआ, क्रीत = खरीदा हुआ, तथा कुशल इन अर्थों में यथाविहित (जिससे जो विहित हो) प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः माथुरः में औत्सर्गिक अण् तथा राष्ट्रियः में शैषिक ४।२।९२ से घ प्रत्यय हुआ है ॥

प्रायभवः ॥४।३।३९॥

प्रायभवः १।१॥ *अनु०*—तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रायभवः इत्ये-

तस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्रुघ्ने प्रायेण (बाहुल्येन) भवति स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*प्रायभवः*] प्रायः करके होता है, इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ जो प्रायः करके हो वह 'प्रायभव' कहाता है। यथा जो स्रुघ्न देश में प्रायः करके रहे हमेशा नहीं वह स्रौघ्नः कहायेगा ॥

यहाँ से *प्रायभवः* की अनुवृत्ति ४।३।४० तक जायेगी ॥

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ॥४।३।४०॥

उप····पनीवेः ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—उप० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्रायभवः, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उपजानु, उपकर्ण, उपनीवि इत्येतेभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रायभव इत्येतस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—औपजानुकः औपकर्णिकः औपनीविकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*उप···वेः*] उपजानु आदि शब्दों से प्रायभवः इस अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ औपजानुकः में 'ठ' को 'क' *इसुसुक्तान्तात् कः* (७।३।५१) से हुआ है, अन्यत्र ७।३।५० से ठ को इक् हुआ है ॥

संभूते ॥४।३।४१॥

संभूते ७।१॥ *अनु०*—तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् संभूत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*संभूते*] संभूत = सम्भव इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ स्रुघ्न में होना जिसका सम्भव हो वह भी स्रौघ्नः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*सम्भूते*' की अनुवृत्ति ४।३।४२ तक जायेगी ॥

कोशाड्ढञ् ॥४।३।४२॥

कोशात् ५।१॥ ढञ् १।१॥ *अनु०*—सम्भूते, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् कोशप्रा-

तिपदिकात् संभूतेऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कोशे सम्भूतं = कौशेयं वस्त्रम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*कोशात्*] कोश प्रातिपदिक से सम्भूत = सम्भव अर्थ में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है। कौशेय रेशमी वस्त्र को कहते हैं ॥

कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥४।३।४३॥

कालात् ५।१॥ साधु······नेषु ७।३॥ *स०*—साधु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालविशेषवाचिभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधु, पुष्प्यत्, पच्यमान इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—हेमन्ते साधुः = हैमन्तः प्राकारः, शैशिरमनुलेपनम्। वसन्ते पुष्प्यन्ति = वासन्त्यः कुन्दलताः। ग्रैष्म्यः पाटलाः। शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः। ग्रैष्माः यवाः।

भाषार्थः—[*कालात्*] कालवाची सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से [*साधु*······*नेषु*] साधु, पुष्प्यत्, पच्यमान इन अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—हैमन्तः प्राकारः, वासन्त्यः, कुन्दलताः, शारदाः शालयः, ग्रैष्माः यवाः ॥

यहाँ से '*कालात्*' की अनुवृत्ति ४।३।५२ तक जायेगी ॥

उप्ते च ॥४।३।४४॥

उप्ते ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकादुप्तार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—हेमन्त उप्यन्ते हैमन्ता यवाः, ग्रैष्मा व्रीहयः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*उप्ते*] बोया हुआ इस अर्थ में [*च*] भी यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*उप्ते*' की अनुवृत्ति ४।३।४६ तक जायेगी ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥४।३।४५॥

आश्वयुज्याः ५।१॥ वुञ् १।१॥ *अनु०*—उप्ते, कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालविशेषवाचिनः

सप्तमीसमर्थात् आश्वयुजी प्रातिपदिकादुप्तेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आश्वयुज्यामुप्ताः आश्वयुजकाः माषाः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*आश्वयुज्याः*] आश्वयुजी प्रातिपदिक से बोया हुआ इस अर्थ में [*वुञ्*] प्रत्यय होता है ॥ अश्वयुज् अर्थात् अश्विनी नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी आश्वयुजी कहलाती है ॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ४।३।४६ तक जायेगी ॥

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ॥४।३।४६॥

ग्री······न् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—ग्रीष्म० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, उप्ते, कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यां कालवाचिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् उप्तेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति विकल्पेन ॥ *उदा०*—ग्रैष्मकम् । पक्षे अण्—ग्रैष्मम् । वासन्तकम्, वासन्तम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*ग्री······न्तात्*] ग्रीष्म तथा वसन्त कालवाची प्रातिपदिकों से बोया हुआ इस अर्थ में वुञ् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है ॥ पक्ष में औत्सर्गिक अण् होगा ॥

देयमृणे ॥४।३।४७॥

देयम् १।१॥ ऋणे ७।१॥ *अनु०*—कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् देयमित्येतस्मिन्नर्थे ऋणेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वैशाखे देयमृणं वैशाखम् । मासे देयमृणं मासिकम्, आर्द्धमासिकम् सांवत्सरिकम् । सांवत्सरिकमित्यत्र *कालाट्ठञ्* इत्यनेन विहितः शैषिकष्ठञ् भवति । यत्तु *संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च* (४।३।५०) इति संवत्सरात् पुनः ठञ् विधानं तत् तु सन्धिवेलादिगणे पठितात् फलपर्वणोरर्थयोः प्राप्तमणं बाधितुं ज्ञेयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*देयम्*] देने योग्य है, ऐसा कहना हो तो [*ऋणे*] ऋण अभिधेय होने पर यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ वैशाख मास में जिस ऋण को लौटा देना है, वह वैशाखम् ऋणं होगा, इसी प्रकार औरों में भी जानें ॥

यहाँ से '*देयमृणे*' की अनुवृत्ति ४।३।५० तक जायेगी ॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ॥४।३।४८॥

कला·····सात् ५।१॥ वुन् १।१॥ *स०*—कला० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—देयमृणे, कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—कलापि, अश्वत्थ, यवबुस इत्येतेभ्यः कालवाचिभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति देयमृणे इत्येतस्मिन् विषये॥ यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स कलापी कालः। यस्मिन् अश्वत्थाः फलन्ति स अश्वत्थः कालः। यस्मिन् यवबुसं सम्पद्यते स यवबुसः कालः। एवं साहचर्येणेमे कालवाचकाः शब्दाः॥ *उदा०*—कलापकम्, अश्वत्थकम्, यवबुसकम्॥

भाषार्थः—[*कला···सात्*] कलापि, अश्वत्थ यवबुस सप्तमी समर्थ कालवाची शब्दों से [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है देयमृणे इस विषय में॥ कलापि मयूर का वाचक है, एवं अश्वत्थ शब्द वृक्षवाची तथा यवबुस शब्द यव के बुस (भूसे) का वाची है। सो ये कालवाची नहीं थे, अतः प्रकृत सूत्र से प्रत्यय नहीं हो सकता था, पुनः यहाँ ये शब्द साहचर्य से कालवाची ही लिये हैं यथा—जिस समय मोरों के पङ्ख निकलते हैं वह काल कलापी एवं जिस समय अश्वत्थ (पीपल) पकता है, वह काल अश्वत्थ तथा जिस समय यव का बुस निकाला जाये, वह काल यवबुस कहाता है, इस प्रकार ये सब कालवाची शब्द हैं॥

ग्रीष्मावरसमाद्वुञ् ॥४।३।४९॥

ग्री·····मात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *स०*—ग्रीष्मा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—देयमृणे, कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां कालवाचिभ्यां ग्रीष्म, अवरसम इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां वुञ् प्रत्ययो भवति देयमृणे इत्येतस्मिन् विषये॥ *उदा०*—ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्, आवरसमकम्॥

भाषार्थः—[*ग्रीष्मावरसमात्*] ग्रीष्म अवरसम सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से देयमृणे इस अर्थ में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ४।३।५० तक जायेगी॥

संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च ॥४।३।५०॥

संव······भ्याम् ५।२॥ ठञ् १।१॥ च अ० ॥ स०—संव० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—वुञ्, देयमृणे, कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थाभ्यां कालवाचिभ्यां संवत्सर, आग्रहायणी प्रातिपदिकाभ्यां ठञ् प्रत्ययो भवति वुञ् च, देयमृण इत्येतस्मिन् विषये ॥ उदा०—संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम् । आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ कालवाची [*संवत्सराग्रहायणीभ्याम्*] संवत्सर तथा आग्रहायणी प्रातिपदिकों से [ठञ्] ठञ् [च] तथा वुञ् प्रत्यय होता है ॥

व्याहरति मृगः ॥४।३।५१॥

व्याहरति क्रियापदम् ॥ मृगः १।१॥ अनु०—कालात्, तत्र, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालवाचिनः सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् व्याहरति मृग इत्येतस्मिन् विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निशायां व्याहरति मृगः[1] नैशः, नैशिकः । प्रादोषः, प्रादोषिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*व्याहरति मृगः*] मृग घूमता है, इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ *निशाप्रदोषाभ्यां* च (४।३।१४) से विकल्प से ठञ् व्याहरति मृगः अर्थ में हो गया है ॥

तदस्य सोढम् ॥४।३।५२॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ सोढम् १।१॥ अनु०—कालात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तदिति प्रथमासमर्थात् सोढसमानाधिकरणात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे यथाविहितं

---

१. इस सूत्र में मृग शब्द सामान्यरूप से समस्त जङ्गली प्राणियो के लिए प्रयुक्त हुआ है। लोक में आखेट को मृगया भी इसीलिए कहते हैं। 'मृगो न भीम.' (ऋ०१।१५४।२) इस मन्त्र में मृग को भीम भयङ्कर प्राणी कहा है। यहाँ मृग शब्द सिंह आदि का वाचक है ॥

प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—निशासहचरितमध्ययनं निशा तत्सोढमस्य-छात्रस्य = नैशिकः छात्रः, नैशो वा ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ कालवाची [*सोढम्*] सोढ (सहन किया) समानाधिकरण प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् ४।३।१४ से ठञ् प्रत्यय विकल्प से यहाँ हुआ है ॥ निशा = रात्रि में होने वाला अध्ययन निशा, साहचर्य से कहा जायेगा, उस रात्रि के अध्ययन को जो विद्यार्थी सहन करले वह नैशिकः, नैशः कहा जायेगा ॥

तत्र भवः ॥४।३।५३॥

तत्र अ० ॥ भवः १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*- सप्तमीसमर्थात् ङ्याप्प्रातिपदिकात् भव इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्रुघ्ने भवः = स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः, शालायां भवः = शालीयः, मालीयः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से [*भवः*] होने वाला इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तत्र भवः*' का अधिकार ४।३।७३ तक जायेगा ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥४।३।५४॥

दिगादिभ्यः ५।३॥ यत् १।१॥ *स०*- दिक् आदिर्येषां ते दिगादयः, तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दिगादिभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति भव इत्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—दिशि भवं = दिश्यम्, वर्ग्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*दिगादिभ्यः*] दिगादि प्रातिपदिकों से भव अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ४।३।५५ तक जायेगी ॥

शरीरावयवाच्च ॥४।३।५५॥

शरीरावयवात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—शरीरस्य अवयवः, शरीरावयवः तस्मात्······षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—यत्, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् शरीरस्यावयववाचिनः प्रातिपदिकात् भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दन्तेषु भवं = दन्त्यम्, ओष्ठ्यम्, कर्ण्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*शरीरावयवात्*] शरीर के अवयववाची (अर्थात् दन्त, ओष्ठ, नाभि आदि) प्रातिपदिकों से [च] भी भव अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ॥४।३।५६॥

दृति·····स्त्यहेः ५।१॥ ढञ् १।१॥ *स०*—दृति० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति, अहि, इत्येतेभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भव इत्येतस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दार्त्तेयम्, कौक्षेयम्, कालशेयम्, वास्तेयम्, आस्तेयम्, आहेयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*दृति·····स्त्यहेः*] दृति, कुक्षि आदि शब्दों से भव अर्थ में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*ढञ्*' की अनुवृत्ति ४।३।५७ तक जायेगी ॥

ग्रीवाभ्योऽण् च ॥४।३।५७॥

ग्रीवाभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ढञ्, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमी समर्थात् ग्रीवाप्रातिपदिकात् भवाऽर्थे ऽणृढञौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—ग्रीवासु भवं ग्रैवम्, ग्रैवेयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*ग्रीवाभ्यः*] ग्रीवा प्रातिपदिक से भव अर्थ में [*अण्*] अण् [च] और ढञ् प्रत्यय होता है ॥ ग्रीवा शब्द धमनी का वाचक है, उनके बहुत होने से सूत्र में बहुवचन निर्देश किया है। *शरीरावयवाच्च* से यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद सूत्र है ॥

गम्भीराञ्ञ्यः ॥४।३।५८॥

गम्भीरात् ५।१॥ ञ्यः १।१॥ *अनु०*—तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् गम्भीरप्रा-

तिपदिकाद् ञ्यः प्रत्ययो भवति भवार्थे ॥ उदा०—गम्भीरे भवं=गाम्भीर्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*गम्भीरात्*] गम्भीर प्रातिपादिक से भव अर्थ में [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*ञ्यः*' की अनुवृत्ति ४।३।५९ तक जायेगी ।

अव्ययीभावाच्च ॥४।३।५९॥

अव्ययीभावात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ञ्यः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः* - सप्तमीसमर्थाद-व्ययीभावसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् भवार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परिमुखं भवं = पारिमुख्यम्, पारिहनव्यम्, पार्य्योष्ठ्यम्, ॥

भाषार्थः - सप्तमी समर्थ [*अव्ययीभावात्*] अव्ययीभाव संज्ञक प्राति-पदिक से [*च*] भी भवार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अव्ययीभावात्*' की अनुवृत्ति ४।३।६१ तक जायेगी ॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ॥४।३।६०॥

अन्तःपूर्वपदात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ *स०*— अन्तः पूर्वपदं यस्य तदन्तः-पूर्वपदं, तस्मात् ''''बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अव्ययीभावात्, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् अन्तःपूर्वपदादव्ययीभावसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आन्तर्वेश्मिकम्, आन्तर्गेहिकम् ॥

भाषार्थः—[*अन्तःपूर्वपदात्*] अन्तः शब्द पूर्वपद में है जिसके ऐसे सप्तमी समर्थ अव्ययीभाव संज्ञक प्रातिपदिक से [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय भवार्थ में होता है ॥

यहाँ से '*ठञ्*' की अनुवृत्ति ४।३।६१ तक जायेगी ॥

ग्रामात्पर्यनुपूर्वात् ॥४।३।६१॥

ग्रामात् ५।१॥ पर्य्यनुपूर्वात् ५।१॥ *स०*—परिश्च अनुश्च पर्य्यनु, पर्यनु पूर्वं यस्य स पर्यनुपूर्वः, तस्मात् ''''द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—

ठञ्, अव्ययीभावात्, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परि, अनु पूर्वादव्ययीभावसंज्ञकात् ग्रामशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् तत्र भव इत्येतस्मिन् विषये ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पारिग्रामिकः, आनुग्रामिकः ॥

भाषार्थः—[*पर्यनुपूर्वात्*] परि, अनुपूर्वक अव्ययीभाव संज्ञक [*ग्रामात्*] ग्राम शब्दान्त सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है, भव अर्थ में ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥४।३।६२॥

जि···लेः ५।१॥ छः १।१॥ *स०*—जिह्वा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां जिह्वामूल, अङ्गुलि इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भवार्थे छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—जिह्वामूले भवं = जिह्वामूलीयम्, अङ्गुलीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*जिह्वामूलाङ्गुलेः*] जिह्वामूल तथा अङ्गुलि प्रातिपदिकों से भव = होने वाला इस अर्थ में [छः] छ प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ४।३।६३ तक जायेगी ॥

वर्गान्ताच्च ॥४।३।६३॥

वर्गान्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—वर्गोऽन्ते यस्य स वर्गान्तस्तस्मात्··बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् वर्गान्तात् प्रातिपदिकात् भवार्थे छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कवर्गे भवं = कवर्गीयम्, चवर्गीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*वर्गान्तात्*] वर्ग शब्द अन्त वाले प्रातिपदिक से [च] भी भव अर्थ में छ प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*वर्गान्तात्*' की अनुवृत्ति ४।३।६४ तक जायेगी ॥

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ॥४।३।६४॥

अशब्दे ७।१॥ यत्खौ १।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—अशब्दे इति नञ्तत्पुरुषः । यत्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वर्गान्तात्, तत्र

भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् वर्गान्तात् प्रातिपदिकादशब्दे प्रत्ययार्थेऽभिधेये भवार्थे विकल्पेन यत्खौ प्रत्ययौ भवतः, पूर्वेण छे प्राप्ते, यत्खौ विधीयेते, पक्षे सोऽपि भवति ॥ उदा०—अक्रूरवर्गे भवः, अक्रूरवर्ग्यः अक्रूरवर्गीणः अक्रूरवर्गीयः । युधिष्ठिरवर्ग्यः युधिष्ठिरवर्गीणः युधिष्ठिरवर्गीयः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्रातिपदिक से [*अशब्दे*] अशब्द प्रत्ययार्थ अभिधेय होने पर भव अर्थ में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*यत्खौ*] यत् तथा ख प्रत्यय होते हैं ॥ पूर्व सूत्र से छ प्राप्त था, अशब्द अभिधेय होने पर यत् ख विकल्प से कह दिये, पक्ष में छ भी होगा ॥

कर्णललाटात् कनलङ्कारे ॥४।३।६५॥

कर्णललाटात् ५।१॥ कन् १।१॥ अलङ्कारे ७।१॥ *स०*—कर्ण०इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां कर्ण-ललाट शब्दाभ्यां भवार्थेऽलङ्कारेऽभिधेये कन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कर्णे भवा कर्णिका, ललाटिका ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*कर्णललाटात्*] कर्ण तथा ललाट शब्दों से भव अर्थ में [*अलङ्कारे*] अलङ्कार = आभूषण अभिधेय हो तो [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है ॥ *शरीरावयवाच्च* से यत् की प्राप्ति थी, अलङ्कार अभिधेय होने पर कन् विधान कर दिया ॥ कर्णिका कान के आभूषण, तथा ललाटिका ललाट के आभूपण (जिसे टीका कहते हैं) को कहेंगे । स्त्रीलिङ्ग में ४।१।४ से टाप् तथा *प्रत्ययस्थात्कात्०* (७।३।४४) से इत्व भी हो जायेगा ॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥४।३।६६॥

तस्य ६।१॥ व्याख्याने ७।१॥ इति अ० ॥ च अ० ॥ व्याख्यातव्यनाम्नः ५।१॥ *स०*—व्याख्यातव्यस्य नाम व्याख्यातव्य नाम, तस्मात् षष्ठीतत्पुरुषः ॥ व्याख्यायते अनेन इति व्याख्यानम् तस्मिन् ॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—

तस्येति षष्ठीसमर्थात् व्याख्यातव्यनामवाचिनः प्रातिपदिकात् व्याख्यानेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति, सप्तमीसमर्थात् भवार्थे च ॥ उदा०—सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। कृतां व्याख्यानो ग्रन्थः = कार्त्तः। तैङः। एवं सुप्सु भवं सौपं, कार्त्तं, तैङम् ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ [*व्याख्यातव्यनाम्नः*] व्याख्यान किये जाने योग्य जो प्रातिपादिक हैं, उनसे [*व्याख्यान इति*] व्याख्यान अभिधेय होने पर यथाविहित प्रत्यय होता है [च] तथा सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनामवाची शब्दों से भवार्थ में भी यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

सुप्, कृत्, तिङ् व्याख्यान किये जाने योग्य प्रातिपदिक हैं, सो इनसे व्याख्यान अभिधेय होने पर यथाविहित औत्सर्गिक अण् हो गया है ॥ वि+आ पूर्वक ख्या धातु से तव्य प्रत्यय (३।१।९६) होकर व्याख्यातव्य (व्याख्यान किया जाने योग्य) बना है ॥ व्याख्यातव्य का जो नाम = प्रातिपदिक वह व्याख्यातव्यनाम हुआ ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।३।७२ तक जायेगी ॥

बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ॥४।३।६७॥

बह्वचः ५।१॥ अन्तोदात्तात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ *स०*—बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच् तस्मात् बहुव्रीहिः। *अनु०*—तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बह्वचोऽन्तोदात्तात् व्याख्यातव्यनाम्नः प्रातिपदिकात् भवव्याख्यानयोरर्थयोः ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—षत्वणत्वयोः (३।२) व्याख्यानं षात्वणत्विकम्। षत्वणत्वयोः (७।२) भवम् षात्वणत्विकम्। वार्त्तिकिकम् ॥

भाषार्थः—व्याख्यान और भव अर्थ में षष्ठी और सप्तमी समर्थ [*बह्वचः*] बहुत अच् वाले [*अन्तोदात्तात्,*] अन्तोदात्त व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिकों से [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ षत्वणत्व आदि शब्द *समासस्य* (६।१।२१७) से अन्तोदात्त हैं ॥

यहाँ से '*ठञ्*' की अनुवृत्ति ४।३।६९ तक जायेगी ॥

क्रतुयज्ञेभ्यश्च ॥४।३।६८॥

क्रतुयज्ञेभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—क्रतवश्च यज्ञाश्च, क्रतुयज्ञाः, तेभ्य इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ठञ्, तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्रतुवाचिभ्यो यज्ञवाचिभ्यश्च षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोः ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—क्रतुभ्यः—अग्निष्टोमस्य व्याख्यानो ग्रन्थः, अग्निष्टोमे भवो वा = आग्निष्टोमिकः, राजसूयिकः, वाजपेयिकः । यज्ञेभ्यः—पाकयज्ञिकः, नावयज्ञिकः ॥

भाषार्थः—[*क्रतुयज्ञेभ्यः*] क्रतुवाची और यज्ञवाची व्याख्यातव्यनाम षष्ठी तथा सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से [च] भी व्याख्यान और भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ क्रतु यज्ञ विशेष होते हैं ॥

अध्यायेष्वेवर्षेः ॥४।३।६९॥

अध्यायेषु ७।३॥ एव अ० ॥ ऋषेः ५।१॥ *अनु०*—ठञ्, तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्य ऋषिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोः, अध्यायेष्वेवाभिधेयेषु ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वसिष्ठस्य ग्रन्थस्य व्याख्यानः, तत्र भवो वा वासिष्ठिकोऽध्यायः । वैश्वामित्रिकोऽध्यायः ॥

भाषार्थः—षष्ठी तथा सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम [*ऋषेः*] ऋषिवाची प्रातिपदिकों से भव, व्याख्यान अर्थों में [*अध्यायेषु*] अध्याय गम्यमान होने पर [*एव*] ही ठञ् प्रत्यय होता है ॥ वसिष्ठ तथा विश्वामित्र शब्द ऋषिवाची हैं, तत्सहचरित ग्रन्थ भी वसिष्ठ, विश्वामित्र कहे जायेंगे, अतः व्याख्यातव्यनाम हैं ही सो ठञ् हो गया है ॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ॥४।३।७०॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ५।१॥ ष्ठन् १।१॥ पौरो० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे,

तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसप्तमी-समर्थाभ्यां व्याख्यातव्यनामभ्यां पौरोडाश पुरोडाश प्रातिपदिकाभ्यां भवव्याख्यानयोरर्थयोः ष्ठन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पुरोडाशाः पिष्टपिण्डास्तेषां संस्कारको मन्त्रः पौरोडाशस्तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पौरोडाशिकः पौरोडाशिकी । एवं पुरोडाशसहचरितो ग्रन्थः = पुरोडाशः, तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पुरोडाशिकः पुरोडाशिकी ॥

भाषार्थः—षष्ठी, सप्तमी समर्थ [*पौ···शात्*] पौरोडाश, पुरोडाश व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिकों से भव और व्याख्यान अर्थों में [*ष्ठन्*] ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥

यज्ञ कार्य में चावल या जौ के आटे को गरम पानी में गूँथकर जो बाटी के सदृश पिण्ड बनाया जाता है, उसे पुरोडाश कहते हैं ॥

छन्दसो यदणौ ॥४।३।७१॥

छन्दसः ५।१॥ यदणौ १।२॥ *स०*—यत् च अण् च यदणौ, इतरेतर-द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठी-सप्तमीसमर्थात् व्याख्यातव्यनाम्नः छन्दसः प्रातिपदिकात् भवव्याख्या-नयोरर्थयोर्यत्, अण् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—छन्दसः व्याख्यानः तत्र भवो वा = छन्दस्यः, छान्दसः ॥

भाषार्थः—षष्ठी-सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम [*छन्दसः*] छन्दस् प्रातिपदिक से भव और व्याख्यान अर्थों में [*यदणौ*] यत् और अण् प्रत्यय होते हैं ॥ अगले सूत्र से छन्दस् शब्द के द्व्यच् होने से ठक् की प्राप्ति में यह विधान है ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ॥४।३।७२॥

द्व्य·····तात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, बहुव्रीहिः । द्व्यच् च ऋत् च ब्राह्मणश्च ऋक् च प्रथमश्च अध्वरश्च पुरश्चरणश्च नाम च आख्यातश्च, द्व्यजृ·····ख्यातम्, तस्मात्····· समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्यो द्व्यच् ऋत् (ऋकारान्त) ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोः ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्व्यचः—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थः तत्र भवो वा वैदिकः, ऐष्टिकः। ऋकारान्तेभ्यः—पाञ्चहोतृकः, चातुर्होतृकः। प्राथमिकः। आध्वरिकः। पौरश्चरणिकः। नामिकः। आख्यातिकः ॥

भाषार्थः—षष्ठी तथा सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम जो [*द्व्यजृ....तात्*] द्व्यच् = दो अच् वाले प्रातिपदिक तथा ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात प्रातिपदिक उनसे भव व्याख्यान अर्थों में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥

अणृगयनादिभ्यः ॥४।३।७३॥

अण् १।१॥ ऋगयनादिभ्यः ५।३॥ *स०*—ऋगयन आदिर्येषां ते ऋगयनादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः, तत्र भवः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्यः व्याख्यातव्यनामभ्यः ऋगयनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोः, अण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ऋगयनस्य व्याख्यानः तत्र भवो वा आर्गयनः, पादव्याख्यानः ॥

भाषार्थः—षष्ठी-सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम [*ऋगयनादिभ्यः*] जो ऋगयनादि प्रातिपदिक उनसे भव और व्याख्यान अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

तत आगतः ॥४।३।७४॥

ततः अ० ॥ आगतः १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थात् प्रातिपदिकादागत इत्येतस्मिन् अर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—[*ततः*] पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिक से [*आगतः*] आया हुआ इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*आगतः*' की अनुवृत्ति ४।३।८२ तक तथा '*ततः*' की अनुवृत्ति ४।३।८४ तक जायेगी ॥

ठगायस्थानेभ्यः ॥४।३।७५॥

ठक् १।१॥ आयस्थानेभ्यः ५।३॥ *अनु०*—तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थेभ्य आयस्थानवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ आय इति स्वामिग्राह्यो भाग उच्यते। स यस्मिन्नुत्पद्यते तद् आयस्थानम् ॥ *उदा०*—शुल्कशालाया आगतः = शौल्कशालिकः, आकरिकम् ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*आयस्थानेभ्यः*] आयस्थानवाची प्रातिपदिकों से आगत इस अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ जहाँ पर आय की उत्पत्ति हो वह आयस्थान होता है ॥

शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥४।३।७६॥

शुण्डिकादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—शुण्डिक आदिर्येषां ते शुण्डिकादयस्तेभ्यः ..... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थेभ्यः शुण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शुण्डिकादागतः = शौण्डिकः। कार्कणः ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*शुण्डिकादिभ्यः*] शुण्डिकादि प्रातिपदिकों से आगत = आया हुआ इस अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ शुण्डिकादिआयस्थानवाची हैं, सो पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ॥४।३।७७॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः ५।३॥ वुञ् १।१॥ *स०*—विद्या च योनिश्च, विद्यायोनी, तत्कृतः सम्बन्धो येषां ते विद्यायोनिसंबन्धाः, तेभ्यः ...द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थेभ्यः विद्याकृतसम्बन्धेभ्यो योनिकृतसम्बन्धेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः आगतार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विद्याकृतसम्बन्धेभ्यः—उपाध्यायादागतं औपाध्यायकम्,

शैष्यकम्, आचार्यकम्। योनिसम्बन्धेभ्यः—मातामहकः पैतामहकः मातुलकः ॥

भाषार्थः—[*विद्या··भ्य*] विद्यासम्बन्धवाची एवं योनिसम्बन्धवाची पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिकों से आगत इस अर्थ में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ आचार्य एवं शिष्य में विद्यासम्बन्ध, तथा मातामह पितामह आदि शब्दों में योनिसम्बन्ध है ॥

यहाँ से "*विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः*" की अनुवृत्ति ४।३।७८ तक जायेगी ॥

ऋतष्ठञ् ४।३।७८॥

ऋतः ५।१॥ ठञ् १।१॥ *अनु०*—विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः, तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमी-समर्थेभ्य ऋकारान्तेभ्यो विद्यायोनिसम्बन्धवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्ठञ् प्रत्ययो भवति आगतार्थे ॥ *उदा०*—विद्यासम्बन्धवाचिभ्यः—होतुरागतं हौतृकम् पौतृकम्। योनिसम्बन्धवाचिभ्यः—भ्रातृकम् स्वासृकम् मातृकम् ॥

भाषार्थ.—पञ्चमी समर्थ विद्यायोनि सन्बन्धवाची [*ऋतः*] ऋकारान्त प्रातिपदिकों से [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है आगत इस अर्थ में ॥ ठ को क *इसुसुक्तान्तात्* कः (७।३।५१) से हुआ है।

यहाँ से 'ठञ्' की अनुवृत्ति ४।३।७९ तक जायेगी ॥

पितुर्यच्च ॥४।३।७९॥

पितुः ५।१॥ यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ठञ्, तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमी-समर्थात् पितृप्रातिपदिकात् आगत इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, ठञ् च ॥ *उदा०*—पितुरागतं = पित्र्यम्, पैतृकम् ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*पितुः*] पितृ प्रातिपदिक से आगत इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है तथा [*च*] चकार से ठञ् प्रत्यय होता है ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥४।३।८०॥

गोत्रात् ५।१॥ अङ्कवत् अ० ॥ अङ्क इव अङ्कवत् ॥ *अनु०*—तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थात् गोत्रप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादागतार्थे अङ्कवत् प्रत्ययविधिर्भवति ॥ यथा *तस्येदम्* (४।३।१२०) अधिकारे गोत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो *गोत्रचरणाद्वुञ्* (४।३।१२६) इत्यनेन वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ एवमत्रापि गोत्रवाचिभ्यो वुञ् भवति । अङ्क इत्यनेन तस्येदमर्थसामान्यं लक्ष्यते ॥ *उदा०*—औपगवानामङ्कः = औपगवकः, कापटवकः, नाडायनकः, चारायणकः ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*गोत्रात्*] गोत्रवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में [*अङ्कवत्*] अङ्कवत् प्रत्ययविधि होती है, अर्थात् जिस प्रकार गोत्रवाची शब्दों से *गोत्रचरणाद्वुञ्* से वुञ् होता है उसी प्रकार यहाँ भी होता है ॥ अब यहाँ अङ्कवत् प्रत्ययविधि का अतिदेश करने से *सङ्घाङ्कल०* (४।३।१२७) में विहित अण् प्रत्यय का ही अतिदेश होना चाहिये, न कि वुञ् का, क्योंकि *सङ्घाङ्कलक्षणेषु०* सूत्र में ही अङ्क शब्द का ग्रहण है। इसका उत्तर यह है कि, यहाँ 'अङ्क' शब्द *तस्येदम्* अर्थ सामान्य का उपलक्षण है, अर्थात् जिस प्रकार गोत्रवाचियों से *तस्येदम्* अर्थ में प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार *तत आगतः* अर्थ में होते हैं। इस प्रकार यहाँ वुञ् का भी अतिदेश हो जाता है ॥

हेतुमनुष्येभ्योन्यतरस्यां रूप्यः ॥४।३।८१॥

हेतुमनुष्येभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ रूप्यः १।१॥ *स०*—हेतु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन रूप्यः प्रत्ययो भवति आगतार्थे ॥ हेतुः कारणम् ॥ *उदा०*—हेतुभ्यः—समादागतं समरूप्यम् विषमरूप्यम् । पक्षे गहादित्वात् छः—समीयम् , विषमीयम् । मनुष्येभ्यः—देवदत्तरूप्यम् यज्ञदत्तरूप्यम् । पक्षे औत्सर्गिकोऽण्-दैवदत्तम् , याज्ञदत्तम् ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*हेतुमनुष्येभ्यः*] हेतु तथा मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*रूप्यः*] रूप्य

प्रत्यय होता है ॥ मार्ग आदि के सम होने से अथवा विभाग के सम वा विषम होने से आगत रूप जो प्राप्ति हो वह समरूप्य विषमरूप्य कहाती है। इस प्रकार सम वा विषम शब्द हेतुवाची हुये। देवदत्त और मनुष्य से जो प्राप्ति हो वह देवदत्तरूप्य कही जायेगी॥

यहाँ से '*हेतुमनुष्येभ्यः*' की अनुवृत्ति ४।३।८२ तक जायेगी॥

मयट् च ॥४।३।८२॥

मयट् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—हेतुमनुष्येभ्यः, तत आगतः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगतार्थे मयट् प्रत्ययो भवति। *उदा०*—सममयम्, विषममयम्। मनुष्येभ्यः—देवदत्तमयम् यज्ञदत्तमयम्॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ हेतु तथा मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में [*मयट्*] मयट् प्रत्यय [*च*] भी होता है॥

प्रभवति ॥४।३।८३॥

प्रभवति क्रियापदम्॥ *अनु०*—ततः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्येतस्मिन् विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति॥ प्रभवति = प्रकाशते प्रथमत उपलभ्यते इत्यर्थः॥ *उदा०*—हिमालयात् प्रभवति हैमालयी गङ्गा, दारदी सिन्धुः, सौमेरवी॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिक से [*प्रभवति*] प्रभवति इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है॥ प्रभवति का अर्थ है प्रथमतः उपलब्धि अर्थात् निकास। औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होकर *टिड्ढाण्ञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर हैमालयी आदि सिद्ध होंगे। सुमेरु शब्द के रु के उ को *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण एवं अवादेश होकर सौमेरवी बना है॥

यहाँ से '*प्रभवति*' की अनुवृत्ति ४।३।८४ तक जायेगी॥

विदूराञ्ञ्यः ॥४।३।८४॥

विदूरात् ५।१॥ ञ्यः १।१॥ *अनु०*—प्रभवति, ततः, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थाद् विदूर-

प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्येतस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विदूरात् प्रभवति = वैदूर्य्यो मणिः ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*विदूरात्*] विदूर शब्द से प्रभवति इस अर्थ में [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥ विदूर देश से निकलने वाली मणि वैदूर्य मणि कहायेगी ॥

तद् गच्छति पथिदूतयोः ॥४।३।८५॥

तत् २।१॥ गच्छति क्रियापदम् ॥ पथिदूतयोः ७।२॥ *स०*—पन्थाश्च दूतश्च, पथिदूतौ तयोः'' 'इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्येतस्मिन् विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ गच्छति पन्थाश्चेत् स भवति दूतो वा ॥ उदा०—स्रुघ्नं गच्छति = स्रौघ्नः पन्था दूतो वा । माथुरः पन्था दूतो वा ॥

भाषार्थः—[*तत्*] द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*गच्छति*] गच्छति क्रिया के [*पथिदूतयोः*] पथ (मार्ग) तथा दूत कर्त्ता अभिधेय होने पर यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ स्रुघ्न को जानेवाला मार्ग या दूत स्रौघ्न कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*तद्*' की अनुवृत्ति ४।३।८८ तक जायेगी ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥४।३।८६॥

अभिनिष्क्रामति, क्रियापदम् ॥ द्वारम् १।१॥ *अनु०*—तद्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकादभिनिष्क्रामतीत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तदभिनिष्क्रामति द्वारं चेत्तद् भवति ॥ आभिमुख्येन निष्क्रामति अभिनिष्क्रामति ॥ उदा०—स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारं = स्रौघ्नम्, माथुरम्, राष्ट्रियम् ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*अभिनिष्क्रामति*] अभिनिष्क्रमण क्रिया का [*द्वारम्*] द्वार कर्त्ता अभिधेय हो तो, यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ जो द्वार = फाटक स्रुघ्न को निकले वह स्रौघ्न द्वार कहा जायेगा ॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥४।३।८७॥

अधिकृत्य अ० ॥ कृते ७।१॥ ग्रन्थे ७।१॥ अनु०—तद्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकादधिकृत्य कृत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत् तत्कृतं ग्रन्थश्चेत् स भवति ॥ उदा०—सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः = सौभद्रो ग्रन्थः, गौरिमित्रः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*अधिकृत्य*] उसको अधिकृत = विषय बनाकर [*कृते*] बनाया गया इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, लक्ष्य करके बनाया गया यदि [*ग्रन्थे*] ग्रन्थ हो तो। सुभद्रा नामक स्त्री को अधिकार में करके, अर्थात् उसके जीवन वृत्त को लेकर जो ग्रन्थ रचा जाये वह सौभद्रः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*अधिकृत्य कृते ग्रन्थे*' की अनुवृत्ति ४।३।८८ तक जायेगी ॥

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ॥४।३।८८॥

शिशु.....भ्यः ५।३॥ छः १।१॥ स०—इन्द्रजननमादिर्येषां ते इन्द्रजननादयः, बहुव्रीहिः। शिशूनां क्रन्दः शिशुक्रन्दः, षष्ठीतत्पुरुषः। यमस्य सभा यमसभं, षष्ठीतत्पुरुषः। शिशुक्रन्दश्च यमसभञ्च द्वन्द्वश्च इन्द्रजननादयश्च, शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादयः तेभ्यः..... इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अधिकृत्य कृते ग्रन्थे, तद्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयासमर्थेभ्यः शिशुक्रन्दादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधिकृत्य कृते ग्रन्थ इत्येतस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ शिशुक्रन्दीयः[1], यमसभीयः। द्वन्द्वात्—अग्निश्च, काश्यपश्च, अग्निकाश्यपौ, तौ अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अग्निकाश्यपीयः, श्येनकपोतीयः[2] शब्दार्थसम्बन्धीयम् प्रकरणम्, वाक्यपदीयम्। इन्द्रजननादिभ्यः—इन्द्रजननीयम्, प्रद्युम्नागमनीयम् ॥

---

१. शिशु के रोने का विषय बनाकर उसके विविध कारणों का व्याख्यान करने वाला ग्रन्थ शिशुक्रन्दीय कहाता है। कुछ लोग श्रीकृष्ण के कारागार में जन्म लेते ही वे रोये उसका वर्णन करने वाला ग्रन्थ शिशुक्रन्दीय कहाता है, ऐसा मानते हैं। पर हमारे विचार मे प्रथम सामान्य अर्थ अधिक उचित है।

२. महाभारत वन पर्व अ० १३१ श्येनकपोतीय कहाता है, उसमे श्येन और कपोत के शिवि के समीप आने की कथा है ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*शिशु···भ्यः*] शिशुक्रन्द यमसभ द्वन्द्व-वाची तथा इन्द्रजननादि गण पठित शब्दों से अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इस अर्थ में [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥

सोऽस्य निवासः ॥४।३।८९॥

सः १।१॥ अस्य ६।१॥ निवासः १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थ.*—स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् तत् प्रथमासमर्थं निवासश्चेत् स भवति॥ *उदा०*—स्रुघ्नः निवासोऽस्य = स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—[*सः*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि प्रथमासमर्थ [*निवास.*] निवास हो तो॥

यहाँ से '*सोऽस्य*' की अनुवृत्ति ४।३।१०० तक जायेगी ॥

अभिजनश्च ॥४।३।९०॥

अभिजनः १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यदि प्रथमासमर्थमभिजनो भवेत्॥ अभिजनः पूर्वबान्धवः, तत्सम्बन्धात् देशोऽपि अभिजन उच्यते ॥ *उदा०*—इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः, लावपुरः, स्रौघ्नः, ग्राम्यः, ग्रामीणः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यदि वह प्रथमा-समर्थ [*अभिजनः*] अभिजन हो तो [*च*] भी यथाविहित प्रत्यय होता है॥ अभिजन पूर्वबन्धुओं को कहते हैं, तत्सम्बन्ध से जिस देश में वे रहें, वह देश भी अभिजन कहलायेगा॥

यहाँ से '*अभिजनः*' की अनुवृत्ति ४।३।९४ तक जायेगी ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥४।३।९१॥

आयुधजीविभ्यः ४।३॥ छः १।१॥ पर्वते ७।१॥ आयुधैर्जीवितुं शील-मेषां त आयुधजीविनस्तेभ्यः, आयुधजीव्यर्थमायुधजीविभ्यः। तादर्थ्ये चतुर्थी। पर्वत इति प्रकृतिविशेषणम् तत्रार्थवशाद् पञ्चमीविभक्तौ विपरिणम्यते॥ *अनु०*—अभिजनः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-

कात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पर्वतवाचिनः प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकादस्याभिजन इत्येतस्मिन् विषये छः प्रत्ययो भवति आयुधजीविभ्यः = आयुधजीविनोऽभिधातुम् ॥ उदा०—हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां हृद्गोलीयाः, आयुधजीविनः[1]। अन्धकवर्तीयाः, रोहितगिरीयाः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*पर्वते*] पर्वतवाची प्रातिपदिकों से वह इसका अभिजन इस अर्थ में [छः] छ प्रत्यय होता है [*आयुधजीविभ्यः*] आयुधजीवियों को कहने के लिये ॥ आयुध शस्त्र को कहते हैं। शस्त्र से जिनकी जीविका चले वह आयुधजीवी कहलायेंगे। 'पर्वते' शब्द प्रकृति का विशेषण है। अतः पञ्चमी विभक्ति में पर्वत शब्द का विपरिणाम हो जाता है ॥ हृद्गोल पर्वत है अभिजन जिन आयुधजीवियों का वे हृद्गोलीयाः कहलायेंगे ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ॥४।३।९२॥

शण्डिकादिभ्यः ५।३॥ ञ्यः १।१॥ स०—शण्डिक आदिर्येषां ते शण्डिकादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अभिजनः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थेभ्यः शण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः, अस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये ञ्यः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—शण्डिको ऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्यः, सार्वसेन्यः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*शण्डिकादिभ्यः*] शण्डिकादि प्रातिपदिकों से 'इसका अभिजन' इस अर्थ में [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥४।३।९३॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः ५।३॥ अणञौ १।२॥ स०—सिन्धुश्च तक्षशिला च सिन्धुतक्षशिले, सिन्धुतक्षशिले आदी येषां ते सिन्धुतक्षशिलादयस्तेभ्यः···द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः। अणञौ, इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अभिजनः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्च प्राति-

---

१. आयुधजीवी वे लोग होते हैं जो वेतन लेकर किसी के लिये भी लड़ने को तैयार रहते है। जैसे गोरखे ॥

पदिकेभ्यो यथासङ्ख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतोऽस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये ॥ उदा॰—सिन्धुरभिजनोऽस्य सैन्धवः, वार्णवः। तक्षशिलादिभ्यः—ताक्षशिलः, वात्सोद्धरणः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*सिन्धु······भ्यः*] सिन्ध्वादि तथा तक्षशिलादि गण पठित शब्दों से यथासंख्य करके [*अणञौ*] अण् तथा अञ् प्रत्यय होते हैं इसका अभिजन ऐसा कहना हो तो। अण् और अञ् में स्वर का ही भेद है ॥

तूदीशलातुरवर्म्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः ॥४।३।९४॥

तूदी······रात् ५।१॥ ढक्···ञ्यकः १।३॥ *स॰*—तूदी॰ इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु॰*—अभिजनः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यः, तूदी, शलातुर वर्म्मती, कूचवार इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये यथासंख्यं ढक्, छण्, ढञ्, यक् इत्येते चत्वारः प्रत्यया भवन्ति ॥ *उदा॰*—तूदी अभिजनोऽस्य तौदेयः, शालातुरीयः, वार्मतेयः, कौचवार्यः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*तूदीश······रात्*] तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*ढक्···ञ्यकः*] ढक्, छण्, ढञ्, यक् प्रत्यय होते हैं, अस्याभिजन इस विषय में ॥

भक्तिः ॥४।३।९५॥

भक्तिः १।१॥ *अनु॰*—सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् भक्तिसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा॰*—स्रुघ्नो भक्तिरस्य = स्रौघ्नः, माथुरः, राष्ट्रियः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*भक्तिः*] भक्तिसमानाधिकरण प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ स्रुघ्न जिससे सेवित है वह स्रौघ्नः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*भक्तिः*' की अनुवृत्ति ४।३।१०० तक जायेगी ॥

अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥४।३।९६॥

अचित्तात् ५।१॥ अदेशकालात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—अविद्यमानं चित्तं यस्मिन् तदचित्तं तस्मात्, बहुव्रीहिः। देशश्च कालश्च देशकालम् समाहारो द्वन्द्वः। न देशकालमदेशकालं तस्मात् ..... नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—भक्तिः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—देशकालव्यतिरिक्तादचित्तवाचिनो भक्तिसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् ठक् प्रत्ययो भवति षष्ठ्यर्थे॥ *उदा०*—अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः शाष्कुलिकः पायसिकः॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ भक्तिसमानाधिकरणवाची जो [*अदेशकालात्*] देश काल को छोड़कर [*अचित्तात्*] अचेतनवाची प्रातिपदिक उनसे षष्ठ्यर्थ में [ठक्] ठक् प्रत्यय होता है॥ देश और काल भी अचेतन हैं, अतः उनका निषेध कर दिया॥ जिसको पुआ प्रिय है वह आपूपिकः, तथा जिसको पूड़ी प्रिय है वह शाष्कुलिकः कहलायेगा॥

महाराजाट्ठञ् ॥४।३।९७॥

महाराजात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ *अनु०*—भक्तिः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थ*—प्रथमासमर्थाद् भक्तिसमानाधिकरणात् महाराजात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—महाराजो भक्तिरस्य माहाराजिकः॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ भक्तिसमानाधिकरणवाची [*महाराजात्*] महाराज प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ॥४।३।९८॥

वासुदेवार्जुनाभ्याम् ५।२॥ वुन् १।१॥ *स०*—वासु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—भक्तिः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां वासुदेव, अर्जुन इत्येताभ्यां शब्दाभ्यामस्यभक्तिरित्येतस्मिन् विषये वुन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—वासुदेवो भक्तिरस्य = वासुदेवकः, अर्जुनकः॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ भक्तिसमानाधिकरणवाची [*वासुदेवार्जुनाभ्याम्*] वासुदेव तथा अर्जुन शब्दों से षष्ठ्यर्थ में [*वुन्*] वुन्

प्रत्यय होता है ॥ महाभाष्य के अनुसार वासुदेव शब्द यहाँ परमात्मा का वाचक है[1] ॥

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ॥४।३।९९॥

गोत्र···भ्यः ५।३॥ बहुलम् १।१॥ वुञ् १।१॥ स०—गोत्रञ्च क्षत्रियश्च गोत्रक्षत्रियौ, तौ आख्या येषां ते गोत्रक्षत्रियाख्यास्तेभ्यः······द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ अनु०—भक्तिः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थेभ्यो भक्तिसमानाधिकरणेभ्यो गोत्राख्येभ्यः क्षत्रियाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे बहुलं वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गोत्राख्येभ्यः—ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य = ग्लौचुकायनकः, औपगवकः, कापटवकः । क्षत्रियाख्येभ्यः—नाकुलकः, साहदेवकः, साम्बकः ॥ बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति । पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीयः, पौरवीयः ॥

भाषार्थः प्रथमासमर्थ भक्तिसमानाधिकरणवाची [*गो····भ्यः*] गोत्र आख्या वाले, तथा क्षत्रिय आख्या वाले प्रातिपदिकों से [बहुलम्] बहुल करके [वुञ्] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ बहुल कहने से कहीं कहीं वुञ् प्रत्यय नहीं भी होता यथा पाणिन (पाणिनि का ही नामान्तर) सेव्य है इसका, वह 'पाणिनीय' हुआ । यहाँ छ ही हुआ है ॥

जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥४।३।१००॥

जनपदिनाम् ६।३॥ जनपदवत् अ० ॥ सर्वम् १।१॥ जनपदेन ३।१॥ समानशब्दानाम् ६।३॥ बहुवचने ७।१॥ जनपदशब्दो देशवाची, स एषामस्तीती जनपदी, इनिप्रत्ययः । जनपदिनो जनपदस्वामिनः क्षत्रियाः ॥ अनु०—भक्तिः, सोऽस्य, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—बहुवचने जनपदेन समानशब्दानां जनपदिनां सर्वं जनपदवत् कार्य्यं भवति, सोऽस्य भक्तिरित्यस्मिन्नर्थे ॥ *जनपदतदवध्यो-*

---

१. महाभारत शान्तिपर्व अ०—३४१ श्लोक ४० में वासुदेव का निर्वचन इस प्रकार दिया है—

छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्यं इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ॥

श्चेत्यत्र प्रकरणे देशवाचिनां जनपदानां यत् कार्यं विधीयते तद्भक्तिसमानाधिकरणानां जनपदिनामतिदिश्यते इत्यर्थः ॥ उदा०—यथा अङ्गेषु देशे भवमाङ्गकम् वाङ्गकम् एवम् अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य आङ्गकः, वाङ्गकः सौह्मकः, पौण्ड्रकः, इत्यत्रापि वुञ् भवति ॥

भाषार्थः—जनपद शब्द देश का वाचक है। जनपद के स्वामी क्षत्रिय जनपदी कहलायेंगे ॥ यह अतिदेश सूत्र है।

[*बहुवचने*] बहुवचन विषय में वर्तमान जो [*जनपदेन समानशब्दानाम्*] जनपद के समान ही [*जनपदिनाम्*] क्षत्रियवाची प्रातिपदिक उनको [*सर्वं जनपदवत्*] जनपद की भांति ही सारे कार्य्य हो जाते हैं, अर्थात् *जनपदतदवध्योश्च* (४।२।१२३) इत्यादि सूत्रों से देशवाची जनपद प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय कहे हैं वे भक्तिसमानाधिकरणवाची जनपदी = क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से भी उसी प्रकार हो जायेंगे ॥ अङ्ग वङ्ग आदि शब्द जनपदवाची हैं, तथा जनपदी वाची भी हैं, बहुवचन में वर्तमान हैं ही, सो जनपद से कहा हुआ वुञ् अस्य भक्तिः इस अर्थ में भी ४।२।१२३ से हो गया है ॥

तेन प्रोक्तम् ॥४।३।१०१॥

तेन ३।१॥ प्रोक्तम् १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ प्रकर्षेणोक्तं प्रोक्तम्, न तु कृतम् ॥ *उदा०*—पाणिनिना प्रोक्तं = पाणिनीयम्, आपिशलम्, काशकृत्स्नम् ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*प्रोक्तम्*] प्रोक्त = 'प्रवचन किया हुआ' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ पाणिनीयम् में *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ हुआ है, शेष में *इञश्च* (४।२।१११) से अण् हुआ है ॥ प्रोक्त का अर्थ होता है, प्रवचन किया हुआ। पाणिनि ने अष्टाध्यायी बनाकर उसे पढ़ाया सो वह भी प्रोक्त है ॥

यहाँ से '*तेन प्रोक्तम्*' की अनुवृत्ति ४।३।१११ तक जायेगी ॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ॥४।३।१०२॥

तित्तिरि.....खात् ५।१॥ छण् १।१॥ *स०*—तित्तिरि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्यस्तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिका, उखा इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि विषये प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे छण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते = तैत्तिरीयाः, वारतन्तवीयाः, खाण्डिकीयाः, औखीयाः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*ति···खात्*] तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिका, उखा प्रातिपदिकों से छन्दोविषयक प्रोक्त अर्थ में [*छण्*] छण् प्रत्यय होता है ॥ *छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि* (४।२।६५) से तद्विषयता होकर तैत्तिरीयाः आदि का प्रयोग अध्येता वेत्ता अर्थ में ही होता है। स्वतन्त्र प्रोक्त अर्थ में नहीं ॥ इस सूत्र के तथा अगले सूत्रों के *शौनकादिभ्यश्छन्दसि* में अनुवर्तन होने से *छन्दोब्रा॰* से तद्विषयता हो जाती है ॥

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ॥४।३।१०३॥

काश्य·····भ्याम् ५।२॥ ऋषिभ्याम् ५।२॥ णिनिः १।१॥ *स०*—काश्य० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यामृषिवाचिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—काश्यपेन प्रोक्तमधीयते = काश्यपिनः, कौशिकिनः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*ऋषिभ्याम्*] ऋषिवाची [*का···भ्याम्*] काश्यप और कौशिक प्रातिपदिकों से प्रोक्त अर्थ में [*णिनि*] णिनि प्रत्यय होता है ॥

विशेषः—यद्यपि काश्यप और कौशिक ऋषियों ने कल्प शास्त्र का प्रवचन किया है, छन्द का नहीं, तो भी इस सूत्र में *शौनकादिभ्यश्छन्दसि* का अधिकार होने से ४।२।६५ से अध्येतृ वेदितृ प्रत्यय विषयता हो ही जाती है ॥

काश्यप ऋषि के द्वारा प्रोक्त कल्प को जो पढ़ते हैं वे काश्यपिनः कहलायेंगे ॥

यहाँ से '*णिनि*' की अनुवृत्ति ४।३।१०६ तक जायेगी ॥

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ॥४।३।१०४॥

कला·····सिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—कलापी च वैशम्पायनश्च, कलापिवैशम्पायनौ, तयोरन्तेवासिनः कला·····सिनस्तेभ्यः·····द्वन्द्व-

गर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—णिनिः, तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयासमर्थेभ्यः कलाप्यन्तेवासिभ्यो वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ अन्तेवासिशब्दः शिष्यपर्यायः ॥ उदा०—कलाप्यन्तेवासिभ्यः—हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः, तौम्बुरविणः, औलपिनः । वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः—आलम्बिनः, पालङ्गिनः, कामलिनः, आर्च्चभिनः, आरुणिनः, ताण्डिनः, श्यामायनिनः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*कला᳀᳀वासिभ्यः*] कलापी के अन्तेवासी तथा वैशम्पायन के अन्तेवासी-वाचक जो प्रातिपदिक उनसे [च] प्रोक्तार्थ में णिनि प्रत्यय होता है छन्द विषय में ॥ अन्तेवासी शब्द शिष्य का पर्यायवाची है ॥ कलापी के चार शिष्य थे, हरिद्रु, छगली, तुम्बुरु और उलप । छगली से ४।३।१०६ से ढिनुक् कहा है, अतः प्रकृत सूत्र से णिनि नहीं हुआ । इसी प्रकार वैशम्पायन के भी ६ शिष्य थे, आलम्बि, पलङ्ग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ और कलापी ॥ सो कठ शब्द से प्रोक्त प्रत्यय का ४।३।१०७ से लुक् तथा कलापी शब्द से इस सूत्र का अपवाद अण् प्रत्यय ४।३।१०८ से कहेंगे ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥४।३।१०५॥

पुराणप्रोक्तेषु ७।३॥ ब्राह्मणकल्पेषु ७।३॥ स०—पुराणेन प्रोक्ताः पुराणप्रोक्तास्तेषु᳀᳀तृतीयातत्पुरुषः । ब्राह्मणानि च कल्पाश्च *ब्राह्मणकल्पाः*᳀᳀इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—णिनिः, प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेष्वभिधेयेषु प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भाल्लवेन प्रोक्तं ब्राह्मणमधीयते = भाल्लविनः, शाट्यायनिनः, ऐतरेयिणः । कल्पेषु — पिङ्गेन प्रोक्तः = पैङ्गी कल्पः, आरुणपराजी ॥

भाषार्थः—प्राचीन ऋषि द्वारा प्रोक्त जो ब्राह्मण, कल्प वह पुराणप्रोक्त कहे गये ॥ तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*पुराणप्रोक्तेषु*] पुराण प्रोक्त [*ब्राह्मणकल्पेषु*] ब्राह्मण और कल्प अभिधेय हों तो प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है ॥ ब्राह्मण विषय में तद्विषयता होती है, कल्पों के वेद न होने से तद्विषयता नहीं होती, यह ध्यान रहे ॥ सिद्धि परि० २१६ में देखें ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥४।३।१०६॥

शौनकादिभ्यः ५।३॥ छन्दसि ७।१॥ *स०*—शौनक आदिर्येषां ते शौनकादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—णिनिः, तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शौनकादिभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दस्यभिधेये प्रोक्तमित्येतस्मिन् विषये णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः, वाजसनेयिनः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*शौनकादिभ्यः*] शौनकादि प्रातिपदिकों से प्रोक्त विषय में [*छन्दसि*] छन्द अभिधेय होने पर णिनि प्रत्यय होता है ॥

यहाँ छन्द विषय होने से तद्विषयता (अध्येतृ वेदितृ प्रत्यय-विषयता ४।२।६५) होती ही है ।

यहाँ से '*छन्दसि*' की अनुवृत्ति ४।३।१११ तक जायेगी ॥

कठचरकाल्लुक् ॥४।३।१०७॥

कठचरकात् ५।१॥ लुक् १।१ ॥ *स०*—कठश्च चरकश्च कठचरकम् तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छन्दसि, तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कठचरकशब्दाभ्यामुत्पन्नस्य प्रोक्तप्रत्ययस्य लुग् भवति छन्दसि विषये। कठशब्दात् *कलापि०* (४।३।१०४) इत्यनेन णिनिप्रत्ययः, चरकशब्दादप्यौत्सर्गिकोऽण् तयोर्लुक् विधीयते ॥ *उदा०*—कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः, चरकाः ॥

भाषार्थः—[*कठचरकात्*] कठ और चरक शब्द से उत्पन्न प्रोक्त प्रत्यय का छन्द विषय में [*लुक्*] लुक् होता है ॥ कठ वैशम्पायन का अन्तेवासी है अतः *कलापिवैश०* से णिनि प्रत्यय जो हुआ था उसका लुक् तथा चरक वैशम्पायन का नाम है उससे औत्सर्गिक अण् का लुक् हुआ है ॥ छन्द की अनुवृत्ति होने से तद्विषयता होगी ही सो कठ ऋषि के द्वारा प्रोक्त जो छन्दोरूप वेद का व्याख्यान ग्रन्थ, वह भी कठ कहायेगा, तथा उसका अध्येता भी कठ कहायेगा ॥ सिद्धि ४।२।६५ में देखें ॥

कलापिनोऽण् ॥४।३।१०८॥

कलापिनः ५।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः* तृतीयासमर्थात् कला-

पिप्रातिपदिकान् प्रोक्तार्थेऽण् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ।। उदा०—कलापिना प्रोक्तमधीयते = कालापाः ।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*कलापिनः*] कलापिन् प्रातिपदिक से छन्द विषय में प्रोक्त अर्थ को कहना हो तो [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ।। कलापिन् वैशम्पायन का अन्तेवासी है, अतः ४।३।१०४ से णिनि प्राप्त था तदपवाद यह है ।। "कलापिन्+अण्" यहाँ *इनरायनपत्ये* (६।४।१६४) से टि भाग के लोप का प्रकृतिभाव प्राप्त था, पुनः *नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारि०* (६।४।१४४) इस वार्त्तिक से प्रकृतिभाव का प्रतिषेध हो गया तो *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग "इन्" का लोप होकर कलाप् अण् रहा । वृद्धि आदि होकर कालापाः बहुवचन में बन गया है ।।

छगलिनो ढिनुक् ।।४।३।१०९।।

छगलिनः ५।१।। ढिनुक् १।१।। *अनु*०—तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थ*—तृतीयासमर्थात् छगलिप्रातिपदिकात् छन्दसि विषये प्रोक्तार्थे ढिनुक् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—छगलिना प्रोक्तमधीयते = छागलेयिनः ।।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*छगलिनः*] छगलिन् प्रातिपदिक से वेद विषय में प्रोक्त अर्थ को कहने में [*ढिनुक्*] ढिनुक् प्रत्यय होता है ।। छगलिन् ढिनुक् = छगलिन् ढिन् रहा । टि भाग का *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से लोप होकर तथा ढ को एय तथा वृद्धि होकर छागल् एय् इन् = छागलेयिनः बन गया । छगलिन् कलापी का शिष्य है सो ४।३।१०४ से णिनि प्राप्त था, यह उसका अपवाद है ।। छगलिन के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ को जो पढ़े, वे छागलेयिनः कहायेंगे । सर्वत्र तद्विषयता होती जायेगी ।।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ।।४।३।११०।।

पाराशर्य......भ्याम् ५।२।। भिक्षु......योः ७।२।। *स०*—पारा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः । भिक्षुश्च नटश्च भिक्षुनटौ, तयोः सूत्रे भिक्षुनटसूत्रे, तयोः......द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ।। *अनु*०- तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च । मण्डूकप्लुतगत्या णिनिरप्यत्रानुवर्त्तते ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां पाराशर्यशिलालिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां

यथासङ्ख्यं भिक्षुनटसूत्रयोः प्रोक्तयोर्णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पाराशर्येण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः, शैलालिनो नटाः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*पारा······भ्याम्*] पाराशर्य, शिलालि प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*भिक्षुनटसूत्रयोः*] भिक्षुसूत्र तथा नट-सूत्र का प्रोक्त विषय कहना हो तो णिनि प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—पाराशरिणो भिक्षवः (पाराशर्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्रों को जो पढ़े) शैलालिनो नटाः (शिलालि के द्वारा प्रोक्त नट सूत्रों को जो पढ़े)॥ पाराशरिणः में पाराशर्य के य का लोप *आपत्यस्य च०* (६।४।१५१) से हुआ है॥

विशेषः— यद्यपि भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र वेद के व्याख्यान प्रवचन ग्रन्थ नहीं हैं, स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, तथापि यहाँ तद्विषयता इष्ट है, अतः इन सूत्रों को छन्दोवत् मानकर ४।२।६५ से तद्विषयता कर ही लेते हैं॥

यहाँ से '*भिक्षुनटसूत्रयोः*' की अनुवृत्ति ४।३।१११ तक जायेगी॥

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ॥४।३।१११॥

कर्मन्दकृशाश्वात् ५।१॥ इनिः १।१॥ *स०*—कर्म० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—भिक्षुनटसूत्रयोः, तेन प्रोक्तम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रा-तिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मन्दकृशा-श्वप्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोः प्रोक्तयोरिनिः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः कृशाश्वेन प्रोक्तमधीयते कृशाश्विनो नटा ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*कर्म······त्*] कर्मन्द तथा कृशाश्व प्राति-पदिकों से यथासंख्य करके भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र का प्रोक्त विषय अभिधेय होने पर [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है॥ यहाँ भी भिक्षुसूत्रा-दियों को छन्दोवत् मानकर तद्विषयता की गई है॥ कर्मन्द के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्रों को पढ़ने वाले कर्मन्दिनः, तथा कृशाश्व के द्वारा प्रोक्त नटसूत्रों को जो पढ़े वे कृशाश्विनः कहलायेंगे॥

तेनैकदिक् ॥४।३।११२॥

तेन ३।१॥ एकदिक् १।१॥ *अनु०* - शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-कात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् यथा-

विहितं प्रत्ययो भवति, एकदिगित्येतस्मिन्नर्थे। एकदिक् तुल्यदिगित्यर्थः॥ उदा०—इन्द्रप्रस्थेन एकदिक् ऐन्द्रप्रस्थो ग्रामः। सुदाम्ना एकदिक्= सौदामनी विद्युत्॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*एकदिक्*] एकदिक् (समानदिशा) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है॥ इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से जो ग्राम समान दिशा में है वह ऐन्द्रप्रस्थ ग्राम कहलायेगा। सुदाम पर्वत वाली दिशा में जो बिजली चमकती है उसे सौदामनी कहेंगे।

यहाँ से '*तेन*' की अनुवृत्ति ४।३।११९ तक तथा '*एकदिक्*' की अनुवृत्ति ४।३।११४ तक जायेगी॥

तसिश्च ॥४।३।११३॥

तसिः १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—तेनैकदिक्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकादेकदिक् इत्येतस्मिन्नर्थे तसिः प्रत्ययोऽपि भवति॥ *उदा०*—ऐन्द्रप्रस्थतः, वाराणसीतः, सुदामतः॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थप्रातिपदिक से एकदिक् विषय में [*तसिः*] तसि प्रत्यय [च] भी होता है॥

यहाँ से '*तसिः*' की अनुवृत्ति ४।३।११४ तक जायेगी॥

उरसो यच्च ॥४।३।११४॥

उरसः ५।१॥ यत् १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—तसिः, तेनैकदिक्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीया-समर्थादुरस्शब्दात् यत्, तसि इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, एकदिक् इत्येतस्मिन् विषये॥ *उदा०*—उरसा एकदिक्= उरस्यः, उरस्तः॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*उरसः*] उरस् शब्द से एकदिक् इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय तथा [च] चकार से तसि प्रत्यय भी होता है॥

उपज्ञाते ॥४।३।११५॥

उपज्ञाते ७।१॥ *अनु०*—तेन, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकादुपज्ञात इत्येत-

तस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ विनोपदेशं स्वबुद्ध्या ज्ञातमुपज्ञातं भवति ॥ उदा०—पाणिनिना उपज्ञातं = पाणिनीयम् अकालकं व्याकरणम् । आपिशलम् पुष्करणम्, काशकृत्स्नम् गुरुलाघवम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*उपज्ञाते*] उपज्ञात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ उपज्ञा कहते हैं नई सूझ को । अपनी बुद्धि से जो नई बात आविष्कृत करता है वह उपज्ञा कहाती है । किन्तु जिसका आविष्कार पहले हो चुका हो उसका कुछ परिष्कार इत्यादि किया जाये वह नये रूप में प्रस्तुत ग्रन्थादि प्रोक्त कहाता है ।

कृते ग्रन्थे ॥४।३।११६॥

कृते ७।१॥ ग्रन्थे ७।१॥ *अनु०*—तेन, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीया-समर्थात् प्रातिपदिकात् कृत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत्कृतं ग्रन्थश्चेत् स भवति ॥ उदा०—वररुचिना कृता वाररुचाः श्लोकाः । हैकुपादो ग्रन्थः । भैकुराटो ग्रन्थः । जालूकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*कृते ग्रन्थे*] ग्रन्थ बनाने अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

प्रोक्त और कृत में भेद—प्रोक्त ग्रन्थ वह होता है जिसकी समस्त शब्द रचना प्रवक्ता की अपनी न हो अर्थात् पूर्व ग्रन्थ का जो परिष्कार आदि किया गया हो । कृत ग्रन्थ में ग्रन्थकार की समस्त शब्दरचना अपनी होती है । कृत ग्रन्थों में केवल साहित्यिक ग्रन्थों का समावेश होता है तथा प्रोक्त ग्रन्थों में शास्त्रीय ग्रन्थों का ॥

यहाँ से '*कृते*' की अनुवृत्ति ४।३।११९ तक जायेगी ॥

संज्ञायां कुलालादिभ्यो वुञ् ॥४।३।११७॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कुलालादिभ्यः ५।३॥ वुञ् १।१॥ *स०*—कुलाल आदिर्येषां ते कुलालादयः, तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—कृते, तेन, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीया-समर्थेभ्यः, कुलालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संज्ञायां विषये वुञ् प्रत्ययो

भवति, कृत इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ उदा०—[1]कुलालेन कृतं—कौलालकम्, वारुडकम् ॥

भाषार्थः तृतीया समर्थ [*कुलालादिभ्यः*] कुलालादि प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान होने पर कृत अर्थ में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ कुम्हार के द्वारा जो किया हुआ वह कौलालकः कहायेगा ॥

यहाँ से '*संज्ञायाम्*' की अनुवृत्ति ४।३।११८ तक जायेगी ॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ॥४।३।११८॥

क्षुद्रा०......पात् ५।१॥ अञ् १।१॥ *स०*—क्षुद्रा च भ्रमरश्च वटरश्च पादपश्च क्षुद्रा......पादपम्, तस्मात्......समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कृते, तेन, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्षुद्रा, भ्रमर, वटर, पादप इत्येतेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्येतस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायाम् विषये ॥ *उदा०*—क्षुद्राभिः कृतं = क्षौद्रम्, भ्रामरम्, वाटरम्, पादपम् ॥

भाषार्थ—तृतीया-समर्थ [*क्षु...पात्*] क्षुद्रा, भ्रमर वटर पादप प्रातिपदिकों से 'कृते' इस अर्थ में संज्ञा विषय गम्यमान होने पर [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ क्षौद्रम् = छोटी मक्खियों का शहद । भ्रामरम् = भँवरों से संगृहीत शहद ॥

तस्येदम् ॥४।३।११९॥

तस्य ६।१॥ इदम् १।१॥ *अनु०*—शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् इदमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उपगोरिदम् = औपगवम्, कापटवम् । राष्ट्रस्येदं = राष्ट्रियम्, अवारपारीणः ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*इदम्*] इदम् = 'यह' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ 'उपगु का यह' इस

---

१. यहाँ महाभाष्यकार ने *कृते ग्रन्थे* ४।३।११६ सूत्र मे संज्ञायाम्, कुलालादिभ्यो वुञ् का योगविभाग करके, मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकं सारघम् आदि प्रयोग सिद्ध किये हैं । काशिकादि में इन प्रयोगो की सिद्धि के लिये *संज्ञायाम्* पृथक् सूत्र रखा है, सो महाभाष्य विरुद्ध होने से ठीक नही । महाभाष्यमें योगविभाग से ही ये प्रयोग सिद्ध किये हैं ॥

सम्बन्ध सामान्य में औत्सर्गिक अण् होकर औपगवम् बना है। ऐसा सर्वत्र समझें। तस्य में सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी है॥

यहाँ से '*तस्येदम्*' का अधिकार ४।३।१३० तक जायेगा॥

रथाद्यत्॥४।३।१२०॥

रथात् ५।१॥ यत् १।१॥ *अनु०*—तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् रथप्रातिपदिकात् यत् प्रत्ययो भवतीदमित्येतस्मिन् विषये॥ *उदा०*—रथस्येदं रथ्यम्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*रथात्*] रथ प्रातिपदिक से इदम् इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है॥ रथ्यं रथ के नाभि या चक्र को कहेंगे॥

यहाँ से '*रथात्*' की अनुवृत्ति ४।३।१२१ तक जायेगी॥

पत्रपूर्वादञ्॥४।३।१२१॥

पत्रपूर्वात् ५।१॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—रथात्, तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ पतन्ति = गच्छन्ति अनेनेति पत्रमश्वादिकं वाहनमुच्यते॥ पत्रपूर्वात् षष्ठीसमर्थाद् रथप्रातिपदिकाद् इदमित्येतस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—अश्वरथस्येदम् आश्वरथम्, औष्ट्ररथम्, गार्दभरथम्॥

भाषार्थः—[*पत्रपूर्वात्*] पत्त्र पूर्व वाले षष्ठी समर्थ रथ शब्द से इदम् इस अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है॥ पत्लृ गतौ धातु से पत्त्र बनता है, पत्र का अर्थ है घोड़ा आदि वाहन॥

यहाँ से '*अञ्*' की अनुवृति ४।३।१२२ तक जायेगी॥

पत्राध्वर्युपरिषदश्च॥४।३।१२२॥

पत्रा......षदः ५।१॥ च अ०॥ *स०*—पत्रा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—अञ्, तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्राध्वर्युपरिषद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमित्येतस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—गर्दभस्येदं गार्दभं, आश्वम्, औष्ट्रम्। अध्वर्योरिदमाध्वर्यम्, पारिषदम्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पत्रा...दः*] पत्र, अध्वर्यु, परिषद् प्रातिपदिकों से [*च*]भी इदम् इस अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ॥ पत्र शब्द यहाँ भी वाहन का वाचक है ॥

हलसीराट्ठक् ॥४।३।१२३॥

हलसीरात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—हल० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां हलसीरप्रातिपदिकाभ्यां ठक् प्रत्ययो भवतीदमित्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०* हलस्येदं = हालिकं, सैरिकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*हलसीरात्*] हल और सीर शब्दों से इदम् इस अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥४।३।१२४॥

द्वन्द्वात् ५।१॥ वुन् १।१॥ वैरमैथुनिकयोः ७।२॥ *स०*—वैर० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् द्वन्द्वसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् वैरमैथुनिकयोरभिधेययोः वुन् प्रत्ययो भवतीदमित्येतस्मिन्नर्थे ॥ वैरमैथुनिके प्रत्ययार्थविशेषणे ॥ *उदा०*—वैरे—बाभ्रव्यश्च, शालङ्कायनश्च, बाभ्रव्यशालङ्कायनौ तयोरिदं वैरं बाभ्रव्यशालङ्कायनिका, काकोलूकिका। मैथुनिकायाम्—अत्रिभरद्वाजिका, कुत्सकुशिकिका ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*द्वन्द्वात्*] द्वन्द्व संज्ञक प्रातिपदिक से इदम्, इस अर्थ में [*वैरमैथुनिकयोः*] वैर, मैथुनिक अभिधेय हों तो [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है ॥ बाभ्रव्यशालङ्कायनिका आदि शब्द स्वभाव से ही स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, अतः टाप् तथा *प्रत्ययस्थात्०* (७।३।४४) से इकारादेश हो जाता है ॥

गोत्रचरणाद्वुञ् ॥४।३।१२५॥

गोत्रचरणात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *स०*—गोत्र० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रवाचिभ्यश्चरणवाचिभ्यश्च प्रातिपदि-

केभ्य इदमित्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०— गोत्रात्— ग्लौचुकायनकम्, औपगवकम्। चरणवाचिभ्यः—काठकम्, कालापकम् मौदकम्, पैप्पलादकम् ॥

भाषार्थः - षष्ठी समर्थ [*गोचरणात्*] गोत्रवाची तथा चरणवाची प्रातिपदिकों से इदम् इस अर्थ में [वुञ्] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ *चरणाद्धर्माम्नाययोः* इस वार्तिक से गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठ्यर्थ में तथा चरणवाचियों से धर्म और आम्नाय अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, यह विशेष नियम है ॥

विशेषः-- काठक कालापक आदि वेद के व्याख्यान रूप ग्रन्थ हैं। कठ ऋषि ने मूल यजुर्वेद संहिता को याज्ञिक प्रक्रिया में अपनी दृष्टि से उपयोगी समझकर अथवा मूल संहिता के पदों की व्याख्या करके समझाने के लिये, कहीं कही न्यूनाधिक पाठ भेद करके अपने शिष्यों को पढ़ाया वह प्रवचन काठक नाम से प्रसिद्ध होकर काठक संहिता कहलाई, जो कि एक प्रकार से तैत्तिरीय शाखा की अवान्तर शाखा है। यही बात कालापकम् (मैत्रायणी संहिता) पैप्पलादकम् (अथर्ववेद की अवान्तर शाखा[1]) आदि में समझनी चाहिये। यहाँ यह और समझ लेना चाहिये कि महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि ने वेद के विषय में ११३१ शाखायें गिनाई हैं, इनमें ऋक्, यजुः, साम, अथर्व ये चार मूल वेद भी सम्मिलित हैं, शेष ११२७ इन चारों की शाखायें हैं। शाखा का विषय बहुत गम्भीर तथा विवेचनीय है, इसको बहुत कम लोग यथार्थ रूप में समझते है ॥

यहाँ से *'गोत्रात्'* की अनुवृत्ति ४।३।१३१ तक जायेगी ॥

संघाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥४।३।१२६॥

संघाङ्कलक्षणेषु ७।३॥ अञ्यञिञाम् ६।३॥ अण् १।१॥ *स०*— उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—गोत्रात्, तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः,

---

१. शाखा के विषय मे विशेष जानकारी के लिये हमारी बनाई यजुर्वेद भाष्य विवरण भूमिका (पृ० ३६ से ४२ तक) रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित में तथा वैदिक वाङ्मय के उद्भट विद्वान् श्री प० भगवद्दत्त जी कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग मे देखे ॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—संघ, अङ्क, लक्षण, इत्येतेष्वभिधेयेषु षष्ठीसमर्थादञन्तात् यञन्तादिञन्ताच्च गोत्रप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादिदमित्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। यथासंख्यमत्र न भवति ॥ उदा०—अञन्तात्—बिदानां सङ्घः = बैदः सङ्घः, बैदोऽङ्कः, बैदं लक्षणम्। यञन्तात्—गार्गः सङ्घः, गार्गोऽङ्कः, गार्गं लक्षणम्। इञन्तान्तात्—दाक्षः सङ्घः, दाक्षोऽङ्कः, दाक्षं लक्षणम् ॥

भाषार्थः—[*संघाङ्कलक्षणेषु*] संघ, अङ्क, लक्षण ये अभिधेय हों तो गोत्रप्रत्ययान्त [*अञ्यञिञाम्*] अञन्त यञन्त तथा इञन्त, षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है इदम् इस अर्थ में ॥ यथासङ्ख्यता इस सूत्र में नहीं लगती ॥ बिद शब्द से *अनृष्यानन्तर्ये०* (४।१।१०४) से अञ् होकर बैद बना है, सो यह अञन्त है, अतः प्रकृत सूत्र से अण् हो गया है। गार्ग्य शब्द (४।१।१०५) यञन्त है सो अण् होकर य का लोप *हलस्तद्धितस्य* च (६।४।१५०) से हो गया है। दाक्षि इञन्त (४।१।९५) शब्द है सो अण् तथा यस्येति लोप हो जाने पर दाक्षः बन गया है ॥ पूर्व सूत्र से वुञ् प्राप्त था उसका अपवाद यह सूत्र है ॥

यहां से '*संघाङ्कलक्षणेषु यञः अण्*' की अनुवृत्ति ४।३।१२७ तक जायेगी ॥

शकलाद्वा ॥४।३।१२७॥

शकलात् ५।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—संघाङ्कलक्षणेषु, यञः[1], अण्, तस्येदम्, गोत्रात्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् यञन्तात् गोत्रप्रत्ययान्तात् शकलप्रातिपदिकात् संघाङ्कलक्षणेष्वभिधेयेषु विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति ॥ *गोत्रचरणा०* (४।३।१२५) इति वुञि प्राप्तेऽण् विधीयते पक्षे सोऽपि भवति ॥ *उदा०*—शकलस्यापत्यं बहवः शाकलाः शाकलकाः। तेषां संघः अङ्कः लक्षणं वा शाकलः, शाकलम्, शाकलकाः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त यञन्त [*शकलात्*] शकल शब्द से [*वा*] विकल्प से अण् प्रत्यय होता है। पक्ष में ४।३।१२५ का अपवाद होने से वुञ् होगा ॥ *आपत्यस्य च तद्धिते०* (६।४।१५१) से शाकल्य के य का लोप हो गया है ॥

---

१. क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तत इति नियमेन 'यञः' अनुवृत्तिर्भवति।

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः ॥४।३।१२८॥

छन्दो····· नटात् ५।१॥ ञ्यः १।१॥ *स०*—छन्दोगश्च औक्थिकश्च याज्ञिकश्च बह्वृचश्च नटश्च, छन्दो·····नटम्, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच, नट इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमित्येतस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा, छान्दोग्यम्, औक्थिक्यम्, याज्ञिक्यम्, बाह्वृच्यम्, नाट्यम्॥

भाषार्थ.—षष्ठी समर्थ [*छन्दो·····टात्*] छन्दोग, औक्थिक आदि प्रातिपदिकों से इदम् इस अर्थ में [*ञ्य.*] ञ्य प्रत्यय होता है॥ *चरणाद्धर्माम्नाययोः* इस वार्त्तिक से धर्म और आम्नाय को कहने में ही 'ञ्य' होता है॥

न दण्डमाणवान्तेवासिषु ॥४।३।१२९॥

न अ०॥ दण्ड·····सिषु ७।३॥ *स०*—दण्डः प्रधानमेषां ते दण्डप्रधानाः बहुव्रीहिः, दण्डप्रधानाश्च ते माणवाश्च दण्डमाणवाः मध्यमपदलोपी कर्मधारयस्तत्पुरुषः। दण्डमाणवाश्च अन्तेवासिनश्च दण्डमाणवान्तेवासिनः, तेषु, इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—गोत्रात्, तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ दण्डमाणवा आश्रमरक्षिण उच्यन्ते। अन्तेवासिनश्च छात्राः। *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रवाचिभ्य इदमित्येतस्मिन्नर्थे दण्डमाणवेषु अन्तेवासिषु चाभिधेयेषु वुञ् प्रत्ययो न भवति॥ *गोत्रचरणाद्वुञ्* (४।३।१२६) इति वुञ् प्राप्तः स प्रतिषिध्यते॥ *उदा०*—गौकक्ष्यस्य दण्डमाणवाः, अन्तेवासिनो वा गौकक्षाः, दाक्षाः, माहकाः, । गौकक्ष्याद् वुञि प्रतिषिद्धे कण्वादिभ्यो गोत्र इत्यण्। दाक्षिमाहकिशब्दाभ्या*मिञश्च* (४।२।१११) इत्यण्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से इदम् इस अर्थ में [*दण्ड·····सिषु*] दण्डमाणव तथा अन्तेवासी अभिधेय हों तो वुञ् प्रत्यय [*न*] नहीं होता है॥ आश्रमरक्षकों को दण्डमाणव कहते हैं, तथा अन्तेवासी शिष्य को कहते हैं॥ *गोत्रचरणाद् वुञ्* से जो वुञ् प्राप्त था उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। वुञ् का प्रतिषेध हो जाने

पर गौकक्ष्य शब्द से *कण्वादिभ्यो०* से अण् तथा दाक्षि, माहकि शब्दों से इञश्च से अण् हुआ है। *आपत्यस्य च०* (६।४।१५१) से गौकक्ष्य के य का लोप हुआ है, अन्यत्र यस्येति लोप हो जायेगा।

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥४।३।१३०॥

रैवतिकादिभ्यः ५।३॥ छः १।१॥ *स०*—रैवतिक आदिर्येषां ते रैवतिकादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—गोत्रात्, तस्येदम्, शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थ*—षष्ठीसमर्थेभ्यो रैवतिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमित्येतस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*- रैवतिकानां सङ्घः = रैवतिकीयः, स्वापिशीयः॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*रैवतिकादिभ्यः*] रैवतिकादि प्रातिपदिकों से इदम् इस अर्थ में [*छः*] छ प्रत्यय होता है॥ रैवतिक आदि सब शब्द गोत्र प्रत्ययान्त हैं, उनसे वुञ् की प्राप्ति में छ का विधान किया है॥

यहाँ से शेषे (४।२।९१) का अधिकार समाप्त हुआ॥

तस्य विकारः ४।३।१३१॥

तस्य ६।१॥ विकारः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्यय परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् विकारेऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—मृत्तिकायाः विकारो घटः मार्त्तिकः, आश्मः, आश्मनः, भास्मनः॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*विकारः*] विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है॥ मृत्तिका = मट्टी का विकार = बना हुआ रूप मार्त्तिक (घट) कहाता है, यहाँ सर्वत्र यथाविहित अण् प्रत्यय हुआ है। *अश्मनो विकार उपसङ्ख्यानम्* (६।४।१४४) इस वार्त्तिक से विकल्प से टि भाग का लोप होता है अतः दो रूप बनते हैं॥

यहाँ से *"तस्य विकारः"* की अनुवृत्ति ४।३।१६५ तक जायेगी॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥४।३।१३२॥

अवयवे ७।१॥ च अ०॥ प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ५।३॥ *स०* प्राण्यो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-

कात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राण्योषधिवृक्षवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ नियमार्थमिदम्। प्राण्यादिभ्य इतराणि यानि प्रातिपदिकानि तेभ्यो विकार एव प्रत्ययो भवति, प्राण्यादिभ्यस्तु विकारावयवोरुभयोरपि ॥ उदा०—प्राणिवाचिभ्यः—कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः, मायूरः, तैत्तिरः। ओषधिभ्यः—मौर्वं काण्डम्, लावङ्गम्। वृक्षवाचिभ्यः—कारीरं काण्डम्, कारीरं भस्म ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः*] प्राणिवाची, ओषधिवाची तथा वृक्षवाची प्रातिपदिकों से [*अवयवे*] अवयव [*च*] तथा विकार अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

विशेषः—यह सूत्र नियमार्थ है। यहाँ से आगे ४।३।१६५ तक प्राणी ओषधी, तथा वृक्षवाची प्रातिपदिकों से अवयव तथा विकार दोनों अर्थों में प्रत्यय होंगे, एवं इनसे अन्य प्रातिपदिकों से केवल विकार अर्थ में ही प्रत्यय होंगे, यह नियम है ॥ प्राणीवाची प्रातिपदिकों से आगे ४।३।१५१ से अञ् (४।१।१५४) कहेंगे, अतः कापोतः आदि में अञ् हो गया है, शेष में औत्सर्गिक अण् है ॥

यहाँ से '*अवयवे*' की अनुवृत्ति ४।३।१६५ तक जायेगी ॥

बिल्वादिभ्योऽण् ॥४।३।१३३॥

बिल्वादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—बिल्व आदिर्येषां ते बिल्वादयस्तेभ्यः····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो बिल्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा = बैल्वः, व्रैहः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*बिल्वादिभ्यः*] बिल्वादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ४।३।१३५ तक जायेगी ॥

कोपधाच्च ॥४।३।१३४॥

कोपधात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—क उपधा यस्य स कोपधः, तस्मात्·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अण्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थात् कोपधप्रातिपदिकात् विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तित्तिडीकस्य विकारोऽवयवो वा तैत्तिडीकम्। तर्कोः विकारोऽवयवो वा तार्कवम्, माण्डूकम्, दार्दुरूकम्, माधूकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*कोपधात्*] ककार उपधा वाले प्रातिपदिक से [च] भी विकार और अवयव अर्थों में अण् प्रत्यय होता है ॥ तर्कु के उ को अण् परे रहते *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण होकर तार्कवम् बना है ॥

त्रपुजतुनोः षुक् ॥४।३।१३५॥

त्रपुजतुनोः ६।२॥ षुक् १।१॥ *स०*—त्रपु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अण्, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—त्रपु जतु इत्येताभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकारेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन च तयोः षुगागमो भवति ॥ उदा०—त्रपुणो विकारः = त्रापुषम्, जातुषम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*त्रपुजतुनोः*] त्रपु और जतु प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है, तथा इन शब्दों को [षुक्] षुक्] षुक् आगम भी होता है ॥ त्रपु = रांगा, जतु लाख के वाची हैं, अतः अप्राण्योषधिवाची होने से केवल विकार अर्थ में प्रत्यय होगा। सिद्धि प्रथमावृत्ति प्रथम भाग पृ० ७१५ परि० १।१।४५ में दिखाई है ॥

ओरञ् ॥४।३।१३६॥

ओः ५।१॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—षष्ठीसमर्थाद् उवर्णान्तात् प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः ॥ उदा०—देवदारोर्विकारावयवो वा दैवदारवम्, तारवम्, धैनवम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*ओः*] उवर्णान्त प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से सर्वत्र सिद्धि में गुण होगा ॥

यहाँ से 'अञ्' की अनुवृत्ति ४।३।१३८ तक जायेगी ॥

अनुदात्तादेश्च ॥४।३।१३७॥

अनुदात्तादेः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—अञ्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद-नुदात्तादेः प्रातिपदिकात् विकारावयवयोरर्थयोरञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दाधित्थम्, कापित्थम्, माहित्थम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*अनुदात्तादेः*] अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से [च] भी विकार और अवयव अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है ॥ दध्नि तिष्ठतीति दधित्थः, कपित्थः, यहाँ क प्रत्ययान्त से उपपद समास *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से हुआ है, अतः *थाथघञ्क्ता०* से यह शब्द उत्तरपद अन्तोदात्त है। *अनुदात्तं०* (६।१।१५२) से शेष सारा पद अनुदात्त होकर यह शब्द अनुदात्तादि हुआ, अतः प्रकृत सूत्र से अञ् होकर दाधित्थम्, कापित्थम् बन गया ॥ स्था के सकार को तकार *पृषोदरादीनि०* (६।३।१०७) से जानना चाहिये। अव्युत्पन्न पक्ष में *फिषोऽन्तो०* (*फिट्०* १।१) सूत्र से अन्तोदात्त होता है ॥

पलाशादिभ्यो वा ॥४।३।१३८॥

पलाशादिभ्यः ५।३॥ वा अ० ॥ *स०*—पलाश आदिर्येषां ते पला-शादयस्तेभ्यः,.......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अञ्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः पलाशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन विकारावयवयोरर्थयोरञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पलाशस्य विकारोऽवयवो वा पालाशम्, खादिरम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पलाशादिभ्यः*] पलाशादि प्रातिपदिकों से [*वा*] विकल्प से विकार, अवयव अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में औत्सर्गिक अण् होता है ॥

शम्याष्ट्लञ् ॥४।३।१३९॥

शम्याः ५।१॥ ट्लञ् १।१॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् शमीप्रा-तिपदिकात् ट्लञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः। *उदा०*—शम्याः विकारः = शामीलं भस्म, शामीली यष्टिका ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*शम्याः*] शमी प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में [*ट्लञ्*] ट्लञ् प्रत्यय होता है ॥ टित् होने से *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥४।३।१४०॥

मयट् १।१॥ वा० अ० ॥ एतयोः ७।२॥ भाषायाम् ७।१॥ अभक्ष्याच्छादनयोः ७।२॥ *स०*—भक्ष्यञ्च, आच्छादनञ्च, भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने, अभक्ष्याच्छादने, तयोः द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भक्ष्याच्छादनवर्जितयोर्विकारावयवयोरर्थयोः षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भाषायां = लौकिकप्रयोगविषये विकल्पेन मयट्प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अश्मनो विकारोऽवयवो वा अश्ममयम् , आश्मनम् , मूर्वामयम् , मौर्वम् ॥ विकारावयवयोरनुवृत्तावपि एतयोर्निर्देशेऽनयोरर्थयोर्येऽपि विशेषप्रत्यया विहितास्तत्रापि मयट् विभाषा यथा स्यात् इत्येवमर्थो द्रष्टव्यः । यथा कपोतमयम् कापोतम् । लोहमयम् , लौहम् ।

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से [*अभक्ष्याच्छादनयोः*] भक्ष्य और आच्छादन वर्जित [*एतयोः*] विकार तथा अवयव अर्थों में [*भाषायाम्*] लौकिक प्रयोग विषय में [*वा*] विकल्प से [*मयट्*]मयट् प्रत्यय होता है ॥ 'एतयोः' से यहाँ विकार वयवय ही लक्षित किया गया है, यहाँ विकार और अवयव की अनुवृत्ति है ही, पुनः एतयोः ग्रहण से विकार अवयव अर्थ में जो विशेष प्रत्यय कहे हैं, उनके साथ भी मयट् विकल्प से हो जाता है ॥ यथा—कपोतमयम् कापोतम् , लोहमयम् , लौहम् ॥ पक्ष में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥

यहाँ से '*मयट्*' की अनुवृत्ति ४।३।१४८ तक तथा '*भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः*' की अनुवृत्ति ४।३।१४१ तक जायेगी ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥४।३।१४१॥

नित्यम् १।१॥ वृद्धशरादिभ्यः ५।३॥ *स०*—शर आदिर्येषां ते शरादयः, वृद्धश्च शरादयश्च, वृद्धशरादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥

अनु०—मयट्, भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भक्ष्याच्छादनवर्जितविकारावयवयोरर्थयोः षष्ठीसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम् ॥ *उदा०*—वृद्धसंज्ञकेभ्यः—आम्रस्य विकारः = आम्रमयम्, शाकमयम्। शरादिभ्यः—शरमयम्, दर्भमयम्, मृण्मयम् ॥

भाषार्थः—भक्ष्य और आच्छादन वर्जित विकार और अवयव अर्थों में षष्ठी समर्थ [*वृद्धशरादिभ्यः*] वृद्ध संज्ञक तथा शरादि प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोग विषय में [*नित्यम्*] नित्य ही मयट् प्रत्यय होता है॥ पूर्व सूत्र से विकल्प की प्राप्ति में नित्यार्थ यह वचन है ॥

गोश्च पुरीषे ॥४।३।१४२॥

गोः ५।१॥ च अ० ॥ पुरीषे ७।१॥ *अनु०*—मयट्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् गोप्रातिपदिकात् पुरीषेऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गोः पुरीषं = गोमयम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*गोः*] गो प्रातिपदिक से [च] भी [*पुरीषे*] पुरीषं = मल अभिधेय होने पर मयट् प्रत्यय होता है॥ पुरीष न तो गाय का विकार है न अवयव, अतः इस सूत्र में सामर्थ्य से विकार अवयव का सम्बन्ध नहीं होता, केवल सम्बन्ध सामान्य विवक्षित है ॥

पिष्टाच्च ॥४।३।१४३॥

पिष्टात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—मयट्, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् पिष्टप्रातिपदिकात् मयट् प्रत्ययो भवति विकारेऽर्थे ॥ *उदा०*—पिष्टस्य विकारः पिष्टमयं भस्म ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पिष्टात्*] पिष्ट प्रातिपदिक से [च] भी मयट् प्रत्यय होता है विकार अर्थ में ॥ पिष्ट अप्राण्योषधिवृक्षवाची

प्रातिपदिक है, अतः इससे केवल विकार अर्थ में मयट् होता है ॥ यह सूत्र औत्सर्गिक अण् का अपवाद है ॥

यहाँ से *'पिष्टात्'* की अनुवृत्ति ४।३।१४४ तक जायेगी ॥

संज्ञायां कन् ॥४।३।१४४॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कन् १।१॥ *अनु०*—पिष्टात्, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् पिष्टप्रातिपदिकात् संज्ञायां विषये विकारेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पिष्टकः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ पिष्ट प्रातिपदिक से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में विकार अर्थ कहना हो तो [कन्] कन् प्रत्यय होता है ॥

व्रीहेः पुरोडाशे ॥४।३।१४५॥

व्रीहेः ५।१॥ पुरोडाशे ७।१॥ *अनु०*—मयट्, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् व्रीहिप्रातिपदिकात् मयट् प्रत्ययो भवति पुरोडाशे विकारेऽभिधेये ॥ *उदा०*—व्रीहिमयः पुरोडाशः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*व्रीहेः*] व्रीहि प्रातिपदिक से [*पुरोडाशे*] पुरोडाश रूप विकार अभिधेय होने पर मयट् प्रत्यय होता है ॥ व्रीहि-शब्द बिल्वादि गण में पढ़ा है, अतः अण् का अपवाद यह सूत्र है, पुरोडाश से अन्य कोई विकार कहना हो तो अण् ही होगा ॥

असंज्ञायाम् तिलयवाभ्याम् ॥४।३।१४६॥

असंज्ञायाम् ७।१॥ तिलयवाभ्याम् ५।२॥ *स०*—तिल० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—मयट्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां तिलयवप्रातिपदिकाभ्यां विकारावयवयोरर्थयोरसंज्ञायां विषये मयट् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—तिलस्य विकारोऽवयवो वा तिलमयम् यवमयम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*तिलयवाभ्याम्*] तिल, यव प्रातिपदिकों से [*असंज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान न हो तो विकार और अवयव अर्थों में

मयट् प्रत्यय होता है ॥ ये सब भक्ष्य पदार्थ हैं, सो ४।३।१४० से मयट् प्राप्त नहीं था, अतः उसका विधान कर दिया है ॥

द्व्यचश्छन्दसि ॥४।३।१४७॥

द्व्यचः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ स०—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्मात्......बहुव्रीहिः ॥ अनु०—मयट्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थाद् द्व्यच्प्रातिपदिकात् छन्दसि विषये विकारावयवयोरर्थयोर्मयट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति । दर्भमयं वासो भवति । शरमयं बर्हिर्भवति ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*द्व्यचः*] दो अच् वाले प्रातिपदिक से [*छन्दसि*] वेद विषय में विकार, अवयव अर्थ अभिधेय होने पर मयट् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*द्व्यचश्छन्दसि*' की अनुवृत्ति ४।३।१४८ तक जायेगी ॥

नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ॥४।३।१४८॥

न अ० ॥ उत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ५।१॥ स०—उकारो विद्यते ऽस्मिन् तदुत्वत्, बहुव्रीहिः । उत्वत् च वर्ध्रश्च बिल्वश्च, उत्वद्वर्ध्रबिल्वम्, तस्मात्......समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—द्व्यचश्छन्दसि, मयट्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थाद् द्व्यच उकारवतः प्रातिपदिकाद् वर्ध्रबिल्वशब्दाभ्यां च विकारावयवयोरर्थयोः मयट् प्रत्ययो न भवति ॥ उदा०—मौञ्जं शिक्यम्, गार्मुतं चरुम् । वार्ध्रम् । बैल्वम् ॥

भाषार्थः—[*उत्वद्वर्ध्रबिल्वात्*] उकारवान् द्व्यच् षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से, तथा वर्ध्र बिल्व शब्दों से वेद विषय में मयट् प्रत्यय [*न*] नहीं होता ॥ पूर्व सूत्र से प्राप्त मयट् का यह निषेध है ॥ मुञ्ज एवं गर्मुत् शब्द उकारवान् तथा द्व्यच् हैं, सो मयट् का निषेध होकर मुञ्ज शब्द से औत्सर्गिक अण् एवं गर्मुत् शब्द से *अनुदात्तादेश्च* (४।३।१३८) सूत्र से अञ् हो गया है । वर्ध्र शब्द से भी औत्सर्गिक अण् तथा बिल्व शब्द से *बिल्वादिभ्योऽण्* (४।३।१३४) से अण् हुआ है ॥

तालादिभ्योऽण् ॥४।३।१४९॥

तालादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ स०—ताल आदिर्येषां ते तालादयस्तेभ्यः—बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यस्तालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः ॥ उदा०—तालं धनुः। बार्हिणम्। ऐन्द्रालिशम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*तालादिभ्यः*] तालादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ४।३।१५० तक जायेगी ॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥४।३।१५०॥

जातरूपेभ्यः ५।३॥ परिमाणे ७।१॥ अनु०—अण्, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जातरूपवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परिमाणे गम्यमाने विकारेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—हाटको निष्कः। जातरूपं कार्षापणम्। सौवर्णो निष्कः। रौक्मः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*जातरूपेभ्यः*] जातरूप = सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से [*परिमाणे*] परिमाण जाना जाए तो विकार अभिधेय होने पर अण् प्रत्यय होता है ॥ निष्क कार्षापण आदि परिमाण वाची शब्द हैं ॥ हाटक सुवर्ण रुक्म आदि सोने के पर्यायवाची शब्द हैं ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥४।३।१५१॥

प्राणि·····भ्यः ५।३॥ अञ् १।१॥ स०—रजत आदिर्येषां ते रजतादयः, प्राणिनश्च रजतादयश्च, प्राणिरजतादयः, तेभ्यः····· बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरञ् प्रत्ययो भवति। अणादेरपवादः ॥ उदा०—कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतम्, मायूरम्, तैत्तिरम्। रजतादिभ्यः—राजतम्, सैसम् ॥

भावार्थ —षष्ठी समर्थ [*प्राणि······भ्यः*] प्राणिवाची तथा रजतादि गण में पढ़े प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में मयट् अणादि की प्राप्ति थी, उन्हीं का बाधक यह सूत्र है ॥

यहाँ से '*अञ्*' की अनुवृत्ति ४।३।१५२ तक जायेगी ॥

ञितश्च तत्प्रत्ययात् ॥४।३।१५२॥

ञितः ५।१॥ च अ० ॥ तत्प्रत्ययात् ५।१॥ *स०*—ञ् इत् यस्य स ञित्, तस्मात् बहुव्रीहिः । तयोर्विहितः प्रत्ययः, तत्प्रत्ययः, तस्मात् षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अञ्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विकारावयवयोरर्थयोः विहितो यो ञित् प्रत्ययस्तदन्तात् षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरेवार्थयोः ॥ *उदा०*—शामीलस्य विकारोऽवयवो वा शामीलम् । दैवदारवस्य विकारः दैवदारवम्, दाधित्थम्, कापित्थम् ॥

भावार्थः—[*तत्प्रत्ययात्*] विकार और अवयव अर्थों में विहित जो [*ञितः*] ञित् प्रत्यय तदन्त षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से [च] भी, विकार और अवयव अर्थ में ही (अर्थात् विकार का भी विकार, अवयव का भी अवयव कहना हो तो) अञ् प्रत्यय होता है ॥

तस्य विकारः और *अवयवे* के अधिकार में *ओरञ्*, *अनुदात्तादेश्च*, *पलाशादिभ्यो वा*, *शम्याष्ट्लञ्*, *प्राणिरजतादिभ्योऽञ्*, *उष्ट्राद्वुञ्*, *एण्या ढञ्*, *कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च*, इन सूत्रों से ञित् प्रत्यय कहे हैं, सो इन सूत्रों से विहित ञित् प्रत्यय तदन्त शब्द से यदि विकार का विकार अथवा अवयव का अवयव कहना हो तो, अञ् प्रत्यय हो जायेगा । अञ् प्रत्यय कर लेने पर रूप तो पहिले जैसा ही बनेगा, केवल अर्थ में ही भेद रहेगा ॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥४।३।१५३॥

क्रीतवत् अ० ॥ परिमाणात् ५।१॥ क्रीत इव क्रीतवत्, सप्तमीसमर्थाद्वतिः ॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् परिमाणवाचिनः प्रातिपदिकात्,

क्रीतवन् प्रत्यया भवन्ति, अर्थात् यथैव क्रीतार्थे ये प्रत्यया भवन्ति तथैव ते प्रत्ययाः विकारावयवयोरप्यर्थयोर्भवन्ति ॥ *उदा०*—यथैव निष्केण क्रीतं नैष्किकम्, शतेन क्रीतं = शत्यं शतिकम् भवति तथैव विकारावयवार्थेऽपि, निष्कस्य विकारोऽवयवो वा नैष्किकः शतस्य विकारः = शत्यः, शतिक इत्यपि भवति ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*परिमाणात्*] परिमाणवाची प्रातिपदिकों से [*क्रीतवत्*] क्रीतवत् प्रत्यय अर्थात् परिमाणवाची प्रातिपदिकों से जिस प्रकार जो प्रत्यय क्रीत अर्थों में कहे हैं, वे प्रत्यय उसी तरह विकार अवयव अर्थों में भी होते हैं ॥ यह अतिदेश सूत्र है ॥ *प्राक्क्रीताच्छः* (५।१।१) प्रकरण में क्रीत अर्थ में प्रत्यय कहे हैं। उन्हीं का यहाँ अतिदेश है। नैष्किकः में जिस प्रकार *प्राग्वतेष्ठञ्* (५।१।१८) अधिकार में *तेन क्रीतम्* से ठञ् प्रत्यय क्रीत अर्थ में हुआ है इसी प्रकार विकारावयव अर्थ में भी हो जायेगा। इसी प्रकार शतिकः शत्यः में *शताच्च ठन्यतावशते* (५।१।२१) से कहे हुए ठन् और यत् विकार अवयव अर्थ में भी हो गये हैं ॥

उष्ट्राद्वुञ् ॥४।३।१५४॥

उष्ट्रात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—षष्ठीसमर्थाद् उष्ट्रप्रातिपदिकात् वुञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः ॥ *उदा०*—उष्ट्रस्य विकारोऽवयवो वा औष्ट्रकः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*उष्ट्रात्*] उष्ट्र प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ उष्ट्र शब्द प्राणीवाची है, सो *प्राणिरजतादि०* (४।३।१५२) से अञ् प्राप्त था तदपवाद है ॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ४।३।१५५ तक जायेगी ॥

उमोर्णयोर्वा ॥४।३।१५५॥

उमोर्णयोः ६।२॥ वा अ० ॥ *स०*—उमो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्याम् उमा, ऊर्णा इत्येताभ्यां

प्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः ॥ उदा०—उमायाः विकारोऽवयवो वा = औमकम्, औमम्। और्णकम्, और्णम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*उमोर्णयोः*] उमा तथा ऊर्णा प्रातिपदिक से [*वा*] विकल्प से विकार अवयव अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है। पक्ष में औत्सर्गिक अण् होता है ॥

एण्या ढञ् ॥४।३।१५६॥

एण्याः ५।१॥ ढञ् १।१॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् एणीप्रातिपदिकात् ढञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः ॥ *उदा०*—एण्या विकारोऽवयवो वा = ऐणेयं मांसम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*एण्याः*] एणी प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है॥ एणी शब्द हिरनी का वाचक है, अतः प्राणिवाची होने से ४।३।१५२ से अञ् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है॥

गोपयसोर्यत् ॥४।३।१५७॥

गोपयसोः ६।२॥ यत् १।१॥ *स०*—गौश्च पयश्च, गोपयसी, तयोः······इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां गोपयःशब्दाभ्यां यत् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः। *उदा०*—गोर्विकारो ऽवयवो वा गव्यम्, पयसः विकारः पयस्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*गोपयसोः*] गो तथा पयस् शब्दों से विकार तथा अवयव अर्थों में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है॥ पयस् (दूध) अप्राण्योषधिवृक्षवाची शब्द है, अतः इससे केवल विकार अर्थ में प्रत्यय हुआ है, अवयव में नहीं॥

यहाँ से 'यत्' की अनुवृत्ति ४।३।१५८ तक जायेगी॥

द्रोश्च ॥४।३।१५८॥

द्रोः ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—यत्, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात्

द्रुप्रातिपदिकाद् विकारावयवयोरर्थयोर्यत् प्रत्ययो भवति। ओरञो-पवादः॥ उदा०—द्रोर्विकारोऽवयवो वा द्रव्यम्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*द्रोः*] द्रु प्रातिपदिक से [च] भी विकार और अवयव अर्थों में यत् प्रत्यय होता है॥ यह सूत्र *ओरञ्* (४।३।१३७) सूत्र का अपवाद है॥ वस्तुवाची द्रव्य शब्द अव्युत्पन्न स्वतन्त्र है॥

यहाँ से '*द्रोः*' की अनुवृत्ति ४।३।१५९ तक जायेगी॥

माने वयः ॥४।३।१५९॥

माने ७।१॥ वयः १।१॥ *अनु०*—द्रोः, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् द्रुशब्दात् माने विकारेऽभिधेये वयः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—द्रोर्विकारो मानं द्रुवयम्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ द्रु प्रातिपदिक से [*माने*] मान रूपी विकार अभिधेय हो तो [*वयः*] वय प्रत्यय होता है॥

फले लुक् ॥४।३।१६०॥

फले ७।१॥ लुक् १।१॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—फलेऽभिधेये विकाराव-यवोरर्थयोरुत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति॥ *उदा०*—आमलक्याः फलं विकारोऽवयवो वा आमलकम्, कुवलम्, बदरम्॥

भाषार्थः—[*फले*] फल अभिधेय हो तो विकार, और अवयव अर्थों में विहित जो प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् होता है॥ सिद्धि भाग १ पृ० ७९६ परि० १।२।४९ में देखें॥

यहाँ से '*फले*' की अनुवृत्ति ४।३।१६४ तक जायेगी॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ॥४।३।१६१॥

प्लक्षादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—प्लक्ष आदिर्येषां ते प्लक्षादय-स्तेभ्यः······बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—फले, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यः प्लक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः फले विकारेऽवयवत्वेन विवक्षितेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्लक्षस्य विकारोऽवयवो वा = प्लाक्षम्, नैयग्रोधम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*प्लक्षादिभ्यः*] प्लक्षादि प्रातिपदिकों से फल के विकार और अवयव की विवक्षा होने पर [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ विधान सामर्थ्य से इस अण् का फले लुक् से लुक् नहीं होता। नैयग्रोधम् में *न्यग्रोधस्य च केवलस्य* (७।३।५) से ऐच् आगम होकर 'न् ऐयग्रोधम् = नैयग्रोधम्' बनेगा ॥

यहाँ से 'अण्' की अनुवृत्ति ४।३।१६२ तक जायेगी ॥

जम्ब्वा वा ॥४।३।१६२॥

जम्ब्वाः ५।१॥ वा अ० ॥ अनु०—अण्, फले, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः– षष्ठीसमर्थात् जम्बूप्रातिपदिकात् विकारावयवयोरर्थयोः फलेऽभिधेये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति, पक्षे ओरञ् इत्यनेनाञ् ॥ उदा०—जम्ब्वाः फलानि = जाम्बवानि फलानि। पक्षे अञ् तस्य लुक्-जम्बूनि फलानि ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*जम्ब्वाः*] जम्बू प्रातिपदिक से विकार अवयव अर्थों में फल अभिधेय हो तो [*वा*] विकल्प से अण् प्रत्यय होता है ॥ विधान सामर्थ्य से फले लुक् से अण् का लुक् नहीं होता किन्तु पक्ष में हुये अञ् का लुक् होकर 'जम्बूनि फलानि' बनता है ॥

यहाँ से '*जम्ब्वा वा*' की अनुवृत्ति ४।३।१६३ तक जायेगी ॥

लुप् च ॥४।३।१६३॥

लुप् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—जम्ब्वा वा, फले, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थाज्जम्बूप्रातिपदिकात् विकारावयवयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य फलेऽभिधेये, वा लुप् भवति ॥ उदा०—जम्ब्वाः फलं जम्बूः फलम्, जम्बु फलं, जाम्बवम् फलम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ जम्बू प्रातिपदिक से फल अभिधेय होने पर विकारावयव अर्थों में विहित प्रत्यय का विकल्प से [लुप्] लुप् [च] भी होता है ॥

विधान सामर्थ्य से अण् का लुप् नहीं होता, *जम्ब्वा वा* से पक्ष में हुये अञ् का ही विकल्प से लुप् होता है, एक पक्ष में अञ् का लुप् तथा दूसरे पक्ष में *फले लुक्* से लुक् होगा ॥ लुप् और लुक् में यही भेद है कि लुप् करने पर *लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने* (१।२।५१) से युक्तवद्भाव होकर फलार्थक जम्बू में भी स्त्रीलिङ्ग ही होता है अतः जम्बूः फलं बना, पर लुक् करने पर युक्तवद् (पूर्ववत् लिङ्ग वचन) नहीं हुआ, तो अभिधेय के अनुसार नपुंसक लिङ्ग होकर, *ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य* (१।२।४७) से ह्रस्व होकर जम्बु फलम् बन गया ॥

यहाँ से 'लुप्' की अनुवृत्ति ४।३।१६४ तक जायेगी ॥

हरीतक्यादिभ्यश्च ॥४।३।१६४॥

हरीतक्यादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—हरीतकी आदिर्येषां ते हरीतक्यादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—लुप्, फले, अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य फलेऽभिधेये लुप् भवति ॥ *उदा०*—हरीतक्याः फलं विकारो हरीतकी फलं, कोशातकी, नखरजनी ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*हरीतक्यादिभ्यः*] हरीतकी आदि प्रातिपदिकों से विकार अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का फल अभिधेय होने पर [च] भी लुप् होता है ॥ औत्सर्गिक अण् *अवयवे च प्राण्यो०* (४।३।१३३) से हुआ था, उसी का यहाँ लुप् हुआ है ॥ फले लुक् से लुक् प्राप्त था लुप् विधान कर दिया, ताकि *लुपि युक्तवद्०* (१।२।५१) से युक्तवद्भाव हो जाये, तथा स्त्रीप्रत्यय का *लुक्तद्धितलुकि* (१।२।४९) से लुक् न हो ॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च ॥४।३।१६५॥

कंसीयपरशव्ययोः ६।२॥ यञञौ १।२॥ लुक् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अवयवे, तस्य विकारः, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

पदिकात् ,प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां कंसीय, परशव्य इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं यञ् ,अञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः,तत्सन्नियोगेन च कंसीयपरशव्ययोर्लुग् भवति ॥ *उदा०* – कंसीयस्य विकारः, कांस्यः, परशव्यस्य विकारः = पारशवः ॥ यद्यपि कंसीयपरशव्यशब्दौ षष्ठीनिर्दिष्टौ तथापि *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०) इति नियमाच् छयतोः प्रत्यययोरेव लुक् भवति ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*कंसी˙˙व्ययोः*] कंसीय परशव्य प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*यञञौ*] यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं, तथा प्रत्यय के साथ साथ कंसीय और परशव्य का [लुक्] लुक् [च] भी होता है ॥

कंस शब्द से *प्राक् क्रीताच्छः* (५।१।१) से छ होकर कंसीय तथा परशु शब्द से *उगवादिभ्यो०* (५।१।२) से यत् होकर परशव्य शब्द बने हैं ॥ यद्यपि सूत्र में कंसीय और परशव्य षष्ठ्यन्त है तथापि यहाँ लुक् कहने पर छ और यत् प्रत्यय का ही लुक् होता है, पूरे कंसीय तथा परशव्य शब्द का नहीं, क्योंकि *प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः* (१।१।६०) से प्रत्यय के अदर्शन की ही लुक् संज्ञा है, सो प्रत्यय का ही लुक् होगा ॥ प्रत्यय का लुक् कर लेने पर 'कंस यञ्' 'परशु अञ्' ऐसी स्थिति रही, सो *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से परशु को गुण होकर पारशवः, कांस्यः बन गया ॥

॥ इति तृतीयः पादः ॥

—:०:—

चतुर्थः पादः

प्राग्वहतेष्ठक् ॥४।४।१॥

प्राक् अ० ॥ वहतेः ५।१॥ ठक् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्राग् एतस्मात् *तद्वहति०* (४।४।७६) इत्यतः पूर्वं पूर्वं येऽर्थाः निर्दिश्यन्ते तेषु सामान्येन ठगधिकारो वेदितव्यः ॥ *उदा०*—अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः, एवमन्यत्रापि ज्ञेयम् ॥

भाषार्थः—[*वहतेः*] *तद्वहतिरथयुगप्रासङ्गम्* इस सूत्र से [*प्राक्*] पहिले पहिले जो अर्थ निर्दिष्ट किये गये हैं, वहाँ तक [ठक्] ठक् प्रत्यय

का अधिकार जायेगा, ऐसा जानना चाहिये ।। यह अधिकार सूत्र है ।। अपवाद सूत्रों को छोड़कर सर्वत्र ४।४।७६ तक के औत्सर्गिक सूत्रों में इसकी ही प्रवृत्ति होगी, सो वहीं वहीं इसकी अनुवृत्ति दिखाई जायेगी ।।

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ।।४।४।२।।

तेन ३।१।। दीव्यति क्रियापदम् ।। खनति क्रियापदम् ।। जयति क्रियापदम् ।। जितम् १।१।। *अनु०*—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तेनेति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् दीव्यति खनति जयति, जितम् इत्येतेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—अक्षैर्दीव्यति = आक्षिकः, शालाकिकः । अभ्र्या खनति = आभ्रिकः, कौद्दालिकः । अक्षैर्जयति आक्षिकः शालाकिकः । अक्षैर्जितमाक्षिकम्, शालाकिकम् ।।

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*दीव्यति*······*जितम्*] दीव्यति = खेलता है, खनति = खोदता है, जयति = जीतता है, जितम् = जीता हुआ इन अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है ।। जुए के पाशों से जो खेले या उनसे जो जीते या जीता हुआ वह आक्षिक तथा शलाकाओं से जो खेले, जीते या जीता हुआ हो वह शालाकिक कहलायेगा । इसी प्रकार कुदाल से खोदने वाला कौद्दालिक होगा । *किति* च (७।२।११८) से आदि अच् की वृद्धि होगी । शेप सब कार्य पूर्ववत् जानें ।।

यहाँ से '*तेन*' की अनुवृत्ति ४।४।२७ तक जायेगी ।।

संस्कृतम् ।।४।४।३।।

संस्कृतम् १।१।। *अनु०*—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—घृतेन संस्कृतं घार्त्तिकम्, दाधिकम्, तैलिकम् ।।

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*संस्कृतम्*] संस्कार किया हुआ, इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।।

यहाँ से '*संस्कृतम्*' की अनुवृत्ति ४।४।४ तक जायेगी ।।

कुलत्थकोपधादण् ॥४।४।४॥

कुल······त् ५।१॥ अण् १।१॥ स०—ककार उपधा यस्य स कोपधः कुलत्थश्च कोपधश्च, कुलत्थकोपधम्, तस्मात्······बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—संस्कृतम्, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् कुलत्थशब्दात् ककारोपधाच्च संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—कुलत्थैः संस्कृतं = कौलत्थम्। ककारोपधात्—तित्तिडीकेन संस्कृतं तैत्तिडीकम्, दार्दभकम्॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*कुलत्थकोपधात्*] कुलत्थ तथा ककार उपधा वाले प्रातिपदिकों से संस्कृतम् इस अर्थ में [*अण्*] प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—कौलत्थिकः (कुलत्थ से संस्कृत), तैत्तिडीकः (इमली से संस्कृत) दार्दभकम्॥

तरति ॥४।४।५॥

तरति क्रियापदम्॥ अनु०—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—काण्डप्लवेन तरति काण्डप्लविकः औडुपिकः॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*तरति*] तरति = तैरता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ काण्डप्लव बांसों से बने बेड़े को कहते हैं, उसके द्वारा पार जाने वाला काण्डप्लविक कहा जायेगा। उडुप का अर्थ छोटी नाव है, उसके द्वारा पार जानेवाले को औडुपिक कहेंगे॥

यहाँ से '*तरति*' की अनुवृत्ति ४।४।७ तक जायेगी॥

गोपुच्छाट्ठञ् ॥४।४।६॥

गोपुच्छात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ अनु०—तरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छप्रातिपदिकात् तरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—गोपुच्छेन तरति—गौपुच्छिकः॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*गोपुच्छात्*] गोपुच्छ प्रातिपदिक से तरति इस अर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ गाय की पूँछ पकड़कर जो तैरे वह गौपुच्छिक कहलायेगा ॥ ठञ् और ठक् में केवल स्वर का ही भेद है ॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥४।४।७॥

नौद्व्यचः ५।१॥ ठन् १।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, नौश्च द्व्यच् नौद्व्यच्, तस्मात्.....बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थान् नौप्रातिपदिकात् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् ठन् प्रत्ययो भवति तरतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—नावा तरति—नाविकः। द्व्यचः—घटेन तरति = घटिकः, बाहुकः ।

भाषार्थः—तृतीया-समर्थ [*नौद्व्यचः*] नौ तथा दो अच् वाले प्रातिपदिकों से तरति इस अर्थ में [*ठन्*] ठन् प्रत्यय होता है ॥ ठक् का अपवाद यह ठन् विधान है। बाहुकः में *इसुसुक्ता०* (७।३।५१) से 'ठ' को 'क' हुआ है ॥

चरति ॥४।४।८॥

चरति क्रियापदम् ॥ *अनु०*—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शकटेन चरति = शाकटिकः, हास्तिकः, दध्ना चरति = दाधिकः ॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*चरति*] चलता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ चर गतिभक्षणयोः धातु से चरति बना है, सो दाधिकः 'दही से जो खाता है' उसको कहेंगे, तथा शकट = गाड़ी से जो चले = घूमे वह शाकटिकः कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*चरति*' की अनुवृत्ति ४।४।११ तक जायेगी ॥

आकर्षात् ष्ठल् ॥४।४।९॥

आकर्षात् ५।१॥ ष्ठल् १।१॥ *अनु०*—चरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—तृतीयासमर्थाद् आकर्षप्रातिपदिकात्

चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आकर्षेण चरति = आकर्षिकः, आकर्षिकी ॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ [*आकर्षात्*] आकर्ष प्रातिपदिक से चरति इस अर्थ में [ष्ठल्] ष्ठल् प्रत्यय होता है ॥ आकर्ष सोने चाँदी की कसौटी के पत्थर का नाम है जो उसको लिए हुए चाँदी खरीदने के लिए घूमता है वह आकर्षिकः कहाता है ॥ स्त्रीलिङ्ग में *षिद्गौरा०* (४।१।४१) से ङीष् होकर आकर्षिकी प्रयोग बनता है ॥

पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥४।४।१०॥

पर्पादिभ्य ५।३॥ ष्ठन् १।१॥ *स०*—पर्प आदिर्येषां ते पर्पादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—चरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्यः पर्पादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पर्पेण चरति पर्पिकः पर्पिकी, अश्विकः अश्विकी ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*पर्पादिभ्यः*] पर्पादि प्रातिपदिकों से चरति इस अर्थ में [ष्ठन्] ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् स्त्रीलिङ्ग में ङीष् हो जाता है ॥

यहाँ से 'ष्ठन्' की अनुवृत्ति ४।४।११ तक जायेगी ॥

श्वगणाट्ठञ् च ॥४।४।११॥

श्वगणात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ष्ठन्, चरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् श्वगणप्रातिपदिकात् ठञ्ष्ठनौ प्रत्ययौ भवतश्चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—श्वगणेन चरति = श्वागणिकः श्वागणिकी । ष्ठन्—श्वगणिकः श्वगणिकी ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*श्वगणात्*] श्वगण प्रातिपदिक से [ठञ्] ठञ् [च] तथा ष्ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ ठञ् होने पर वृद्धि तथा *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होता है तथा ष्ठन् होने पर पूर्ववत् ङीष् प्रत्यय होगा यही ठञ्, ष्ठन् का भेद है ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ॥४।४।१२॥

वेतनादिभ्यः ५।३॥ जीवति क्रियापदम् ॥ *स०*—वेतन आदिर्येषां ते वेतनादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तेन, ठक्, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्यो वेतनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वेतनेन जीवति = वैतनिकः कर्मकरः, जालेन जीवति = जालिकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*वेतनादिभ्यः*] वेतनादि प्रातिपदिकों से [*जीवति*] जीता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ जो वेतन की आय से जिए वह वैतनिकः कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*जीवति*' की अनुवृत्ति ४।४।१४ तक जायेगी ॥

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ॥४।४।१३॥

वस्नक्रयविक्रयात् ५।१॥ ठन् १।१॥ *स०*—वस्न० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—जीवति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां वस्न, क्रयविक्रय शब्दाभ्यां जीवतीत्येतस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वस्नेन जीवति वस्निकः, क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*वस्न······त्*] वस्न क्रयविक्रय प्रातिपदिकों से [*ठन्*] ठन् प्रत्यय होता है ॥ क्रयविक्रय शब्द से समस्त से तथा अलग-अलग से भी प्रत्यय होता है ।

यहाँ से 'ठन्' की अनुवृत्ति ४।४।१४ तक जायेगी ॥

आयुधाच्छ च ॥४।४।१४॥

आयुधात् ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—ठन्, जीवति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाद् आयुधप्रातिपदिकात् छठनौ प्रत्ययौ भवतः जीवतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*आयुधात्*] आयुध प्रातिपदिक से [*छ*] छ [*च*] तथा ठन् प्रत्यय होते हैं जीवति = जीता है इस अर्थ में ॥ जो आयुध = शस्त्रों के द्वारा जीविका कमाकर जिये वह आयुधीयः आयुधिकः कहा जायेगा ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥४।४।१५॥

हरति, क्रियापदम् ॥ उत्सङ्गादिभ्यः ५।३॥ *स०*—उत्सङ्ग आदिर्येषां ते उत्सङ्गादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ठक्, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्यः, उत्सङ्गादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उत्सङ्गेन हरति = औत्सङ्गिकः औडुपिकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*उत्सङ्गादिभ्यः*] उत्सङ्गादि प्रातिपदिकों से [*हरति*] हरति = स्थानान्तर प्राप्त करता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ उत्सङ्ग गोद को कहते हैं, जो गोद के द्वारा ले जाता है उसे औत्सङ्गिक कहते हैं ॥

यहाँ से '*हरति*' की अनुवृत्ति ४।४।१८ तक जायेगी ॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥४।४।१६॥

भस्त्रादिभ्यः ५।३॥ ष्ठन् १।१॥ *स०*—भस्त्रा आदिर्येषां ते भस्त्रादयस्तेभ्यः··· बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—हरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्यः भस्त्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भस्त्रया हरति = भस्त्रिकः, भस्त्रिकी । भरटिकः, भरटिकी ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*भस्त्रादिभ्यः*] भस्त्रादि गणपठित प्रातिपदिकों से हरति इस अर्थ में [*ष्ठन्*] ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ ष्ठन् के षित् होने से पूर्ववत् ४।१।४१ से ङीष् हो जाता है ॥

यहाँ से 'ष्ठन्' की अनुवृत्ति ४।४।१८ तक जायेगी ॥

विभाषा विवधात् ॥४।४।१७॥

विभाषा १।१॥ विवधात् ५।१॥ *अनु०*—हरति, ष्ठन्, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् विवधप्रातिपदिकात् ष्ठन् प्रत्ययो भवति विकल्पेन, हरतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—विवधिकः विवधिकी । वैवधिकः वैवधिकी ॥

भाषार्थः—तृतीया-समर्थ [*विवधात्*] विवध प्रातिपदिक से [*विभाषा*] विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ विवध कावड़ (जिस काष्ठ के दोनों सिरों पर बोझ बाँध कर उठाया जाता है) को कहते हैं। पक्ष में अधिकार से प्राप्त ठक् होता है, ठक् होने पर *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि होगी, ष्ठन् में नहीं, यही विशेष है ॥

अण् कुटिलिकायाः ॥४।४।१८॥

अण् १।१॥ कुटिलिकायाः ५।१॥ *अनु०*—हरति, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् कुटिलिकाप्रातिपदिकात् हरतीत्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुटिलिकया गत्या व्याधं हरति मृगः कौटिलिको मृगः। कुटिलिकया हरति अङ्गारान् कौटिलिकः कर्मारः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*कुटिलिकायाः*] कुटिलिका-प्रातिपदिक से हरति इस अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ कुटिलिका टेढ़ी गति को तथा लौहकारों के उपकरण जिससे आग आदि खींचते हैं उसे भी कहते हैं, अतः कौटिलिकः लौहकार तथा व्याध को हरण करने वाले मृग को भी कहेंगे ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥४।४।१९॥

निर्वृत्ते ७।१॥ अक्षद्यूतादिभ्यः ५।३॥ *स०*—अक्षद्यूत आदिर्येषां ते अक्षद्यूतादयस्तेभ्यः...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्योऽक्षद्यूतादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्त इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्, जानुप्रहृतिकम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*अक्षद्यूतादिभ्यः*] अक्षद्यूत आदि गण पठित प्रातिपदिकों से [*निर्वृत्ते*] निर्वृत्त = उत्पन्न किया गया इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ जुए के द्वारा जो उत्पन्न हुआ वैर वह आक्षद्यूतिक वैर कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*निर्वृत्ते*' की अनुवृत्ति ४।४।२१ तक जायेगी ॥

क्त्रेर्मम्नित्यम् ॥४।४।२०॥

क्त्रेः ५।१॥ मप् १।१॥ नित्यम् १।१॥ *अनु०*—निर्वृत्ते, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् क्त्रिप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकान् निर्वृत्तमित्येतस्मिन्नर्थे नित्यं मप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्, वापेन निर्वृत्तम् उप्त्रिमम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*क्त्रेः*] क्त्रि प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से निर्वृत्त अर्थ में [*नित्यम्*] नित्य ही [*मप्*] मप् प्रत्यय होता है ॥ क्त्रिप्रत्ययान्त से मप् प्रत्यय का नित्य विधान होने से यहाँ 'पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्' ऐसा अस्वपद विग्रह ही दर्शाया है। क्त्रि प्रत्यय *ड्वितः क्त्रिः* (३।३।८८) से होता है। पूरी सिद्धि प्रथमावृत्ति भाग १ पृ० ७९६ परि० १।३।५ में देखें ॥

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ॥४।४।२१॥

अप.....भ्याम् ५।२॥ कक्कनौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—निर्वृत्ते, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्याम् अपमित्य, याचित प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं कक् कन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, निर्वृत्त इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—आपमित्यकम् याचितकम् ॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ [*अप.....भ्याम्*] अपमित्य और याचित प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में यथासङ्ख्य करके [*कक्कनौ*] कक् और कन् प्रत्यय होते हैं ॥ कक् कन् में स्वर तथा वृद्धि (७।२।११८) का भेद है ॥

संसृष्टे ॥४।४।२२॥

संसृष्टे ७।१॥ *अनु०*—तेन, ठक् तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दध्ना संसृष्टं शाकं दाधिकम्, तक्रेण संसृष्टं = ताक्रिकं, मारीचिकम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*संसृष्टे*] मिला हुआ अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'संसृष्टे' की अनुवृत्ति ४।४।२५ तक जायेगी ॥

चूर्णादिनिः ॥४।४।२३॥

चूर्णात् ५।१॥ इनिः १।१॥ अनु०—संसृष्टे, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयासमर्थाच्चूर्णप्रातिपदिकात् संसृष्टेऽर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चूर्णेन संसृष्टाः चूर्णिनोऽपूपाः, चूर्णिनो धानाः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*चूर्णात्*] चूर्ण प्रातिपदिक से संसृष्ट = मिला हुआ इस अर्थ में [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है ॥

लवणाल्लुक् ॥४।४।२४॥

लवणात् ५।१॥ लुक् १।१॥ अनु०—संसृष्टे, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयासमर्थात् लवणप्रातिपदिकात् संसृष्टार्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति ॥ उदा०—लवणेन संसृष्टः = लवणः सूपः, लवणं शाकं, लवणा यवागूः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*लवणात्*] लवण प्रातिपदिक से संसृष्ट अर्थ में उत्पन्न जो प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् होता है ॥ *संसृष्टे* (४।४।२२) से ठक् प्रत्यय लवण शब्द से हुआ था उसी का लुक् (१।१।६०) हो गया है ॥

मुद्गादण् ॥४।४।२५॥

मुद्गात् ५।१॥ अण् १।१॥ अनु०—संसृष्टे, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयासमर्थात् मुद्गप्रातिपदिकात् संसृष्टेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मुद्गेन संसृष्टः = मौद्ग ओदनः, मौद्गी यवागूः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*मुद्गात्*] मुद्ग प्रातिपदिक से संसृष्ट अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर मौद्गी बनेगा ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥४।४।२६॥

व्यञ्जनैः ३।३॥ उपसिक्ते ७।१॥ अनु०—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—व्यञ्जनवाचिभ्यस्तृती-

यासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उपसिक्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दध्ना उपसिक्त ओदनः = दाधिकः, सौपिकः, ताक्रिकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*व्यञ्जनैः*] व्यञ्जनवाची प्रातिपदिकों से [*उपसिक्ते*] ऊपर से डाला हुआ इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ 'व्यञ्जनैः' में पञ्चमी के अर्थ में तृतीया विभक्ति जाननी चाहिये ॥

ओजःसहोम्भसा वर्त्तते ॥४।४।२७॥

ओजःसहोम्भसा ३।१॥ वर्त्तते क्रियापदम् ॥ *स०*—ओजश्च सहश्च अम्भश्च, ओजःसहोम्भः, तेन ..... समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तेन, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थेभ्य ओजस् सहस् अम्भस् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्त्तत इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ओजसा वर्त्तते = औजसिकः शूरः, साहसिकश्चौरः, अम्भसा वर्त्तते = आम्भसिको मत्स्यः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*ओजःसहोम्भसा*] ओजस् सहस् अम्भस् प्रातिपदिकों से [*वर्त्तते*] 'व्यवहार करता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*वर्त्तते*' की अनुवृत्ति ४।४।२९ तक जायेगी ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥४।४।२८॥

तत् २।१॥ प्रत्य.....र्वम् २।१॥ ईप...लम् २।१॥ *स०*—प्रतिश्च अनुश्च प्रत्यनु, प्रत्यनु पूर्वं यस्य तत् प्र...र्वम्, तत्...द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः । ईपञ्च लोमञ्च कूलञ्च ईपलोमकूलं तत्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वर्त्तते, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रति अनु इत्येवं पूर्वेभ्यः ईप लोम कूल इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्त्तत इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः, आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः, आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः, आनुकूलिकः ॥

भाषार्थः—[*तत्*] द्वितीया समर्थ [*प्रत्यनुपूर्वम्*] प्रति, अनुपूर्वक जो [*ईपलोमकूलम्*] ईप, लोम और कूल प्रातिपदिक उनसे 'वर्त्तते = है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ प्रतीप आदि शब्द क्रियाविशेषण हैं ।

अकर्मक धातुओं के क्रियाविशेषण कर्म बनते हैं, इस प्रकार द्वितीया का सम्बन्ध वर्त्तते से होता है ॥

यहाँ से '*तत्*' की अनुवृत्ति ४।४।४६ तक जायेगी ॥

परिमुखं च ॥४।४।२९॥

परिमुखम् २।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तत्, वर्त्तते, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् परिमुखप्रातिपदिकात् वर्त्तत इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परिमुखं वर्त्तते = पारिमुखिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*परिमुखम्*] परिमुख प्रातिपदिक से [च] भी वर्त्तते इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥४।४।३०॥

प्रयच्छति क्रियापदम् ॥ गर्ह्यम् २।१॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रयच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तद् द्वितीयासमर्थं गर्ह्यं चेत्तद्भवति ॥ *उदा०*—द्विगुणं प्रयच्छति = द्वैगुणिकः, त्रैगुणिकः ॥ तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यमत्र द्रष्टव्यम् । द्विगुणार्थं यद् धनं दीयते तद् द्विगुणशब्देनोच्यते एवं त्रिगुणम् ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*प्रयच्छति*] 'देता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है, यदि वह जो देता है वह [*गर्ह्यम्*] गर्ह्य = निन्दित हो तो ॥

थोड़ा देकर बहुत लेना गर्ह्य है, सो ऐसा ही अर्थ यहाँ उदाहरणों में समझना चाहिये । यहाँ तादर्थ्यात् ताच्छब्द्य है, अर्थात् दुगुने के लिये इस अर्थ में द्विगुण शब्द प्रयुक्त हो रहा है द्विगुणार्थं प्रयच्छति = दुगुना करने के लिये जो धन देता है, वह द्वैगुणिकः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*प्रयच्छति गर्ह्यम्*' की अनुवृत्ति ४।४।३१ तक जायेगी ॥

कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ ॥४।४।३१॥

कु.....शात् ५।१॥ ष्ठन्ष्ठचौ १।२॥ *स०*—कुसीदश्च दशैकादश च कुसी.....शम्, तस्मात्...समाहारो द्वन्द्वः । ष्ठच् च ष्ठन् च ष्ठन्ष्ठचौ,

इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्रयच्छति गर्ह्यम्, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां कुसीददशैकादशप्रातिपदिकाभ्यां प्रयच्छति गर्ह्यमित्येतस्मिन्नर्थे यथासङ्ख्यं ष्ठन् ष्ठच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—कुसीदं प्रयच्छति कुसीदिकः कुसीदिकी। अत्रापि तादर्थ्ये ताच्छब्द्यं द्रष्टव्यम्—कुसीदार्थं धनं कुसीदम्। दशैकादशिकः दशैकादशिकी ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*कु.....शात्*] कुसीद तथा दशैकादश प्रातिपदिकों से प्रयच्छति गर्ह्यम् (निन्दित वस्तु को देता है) इस अर्थ में यथासङ्ख्य करके [ष्ठन्ष्ठचौ] ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय होते हैं ॥ ष्ठन् तथा ष्ठच् में केवल स्वर का ही भेद है। षित् होने से ४।१।४१ से ङीप् हो जाता है ॥

ब्याज लगाकर ११ रु० हो जावें इसके लिए जो १० रु० ऋण दिया जाये वह दशैकादश कहलाता है। १०) का १) ब्याज लेना अर्थात् १० प्रतिशत ब्याज पाणिनि जी के समय में अधिक माना जाता होगा अतः यह निन्द्य है इस प्रकार इतना जो ब्याज ले वह दशैकादशिकः कहा जायेगा ॥

उञ्छति ॥४।४।३२॥

उञ्छति क्रिया० ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थादुञ्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गोधूमानुञ्छति गौधूमिकः, कणानुञ्छति काणिकः, बादरिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*उञ्छति*] 'चुनता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

भूमि में गिरे हुए दानों के उठाने की क्रिया को 'उञ्छति' कहते हैं। खेतों में काटते समय गिरे हुए जो गेहूँ के दाने, उनको जो चुनता है वह गौधूमिकः कहलायेगा ॥

रक्षति ॥४।४।३३॥

रक्षति क्रियापदम् ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् रक्षती-

त्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—समाजं रक्षति सामाजिकः, गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः, कौटुम्बिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*रक्षति*] रक्षा करता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। समाज की, कुटुम्ब की जो रक्षा करे वह सामाजिकः, कौटुम्बिकः कहा जायेगा ॥

शब्ददर्दुरं करोति ॥४।४।३४॥

शब्ददर्दुरम् २।१॥ करोति क्रियापदम् ॥ *स०*— शब्द० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां शब्द, दर्दुर इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां करोतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शब्दं करोतीति शाब्दिको वैयाकरणः, दार्दुरिकः, कुम्भकारः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*शब्ददर्दुरम्*] शब्द और दर्दुर प्रातिपदिकों से [*करोति*] करता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥४।४।३५॥

पक्षि‥न् २।३॥ हन्ति क्रिया० ॥ *स०*—पक्षि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः पक्षिन्, मत्स्य, मृग इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हन्तीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ अत्र स्वस्य रूपस्य पर्यायाणां तद्विशेषाणां च ग्रहणं भवति ॥ उदा०—पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः, शाकुनिकः मायूरिकः, तैत्तिरिकः । मत्स्य—मात्स्यिकः, मैनिकः । मृग—मृगान् हन्ति मार्गिकः, हारिणिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*पक्षि‥न्*] पक्षि, मत्स्य तथा मृगवाची प्रातिपदिकों से [*हन्ति*] 'मारता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ पक्षिन् मत्स्य मृग शब्दों के अपने रूप, इनके पर्याय और विशेष-वाची शब्दों का भी ग्रहण होता है। पक्षियों को जो मारे वह पाक्षिक होगा, इसी प्रकार सब में जानें ॥

यहाँ से '*हन्ति*' की अनुवृत्ति ४।४।३६ तक जायेगी ॥

परिपन्थम् च तिष्ठति ॥४।४।३६॥

परिपन्थम् २।१॥ च अ० ॥ तिष्ठति क्रिया० ॥ *अनु०*—हन्ति, तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् परिपन्थप्रातिपदिकात् तिष्ठति, हन्ति चेत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिकश्चौरः परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*परिपन्थम्*] परिपन्थ प्रातिपदिक से [*तिष्ठति*] बैठता है, तथा मारता है, अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है ॥ परितः पन्थानं तिष्ठति अर्थात् जो चारों ओर से मार्ग को घेर के बैठे वह पारिपन्थिकः कहलायेगा ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥४।४।३७॥

माथो···पदम् २।१॥ धावति क्रिया० ॥ *स०*—माथशब्द उत्तरपदं यस्य तत् माथोत्तरपदं, माथोत्तरपदञ्च पदवी च अनुपदञ्च, माथो····· पदं, तत्·····बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—माथोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् पदवी अनुपद इत्येताभ्यां च द्वितीयासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां धावतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ माथशब्दः पथिपर्यायः ॥ *उदा०*—विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः, धार्ममाथिकः, दाण्डमाथिकः । पदवीं धावति = पादविकः, आनुपदिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*माथो···पदम्*] माथ शब्द उत्तरपद वाले प्रातिपदिक से तथा पदवी अनुपद प्रातिपदिकों से [*धावति*] दौड़ता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ माथ शब्द मार्ग का पर्यायवाची है । विद्या के मार्ग की ओर जो जाये वह वैद्यामाथिकः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*धावति*' की अनुवृत्ति ४।४।३८ तक जायेगी ॥

आक्रन्दाट् ठञ् च ॥४।४।३८॥

आक्रन्दात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—धावति, तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाद् आक्रन्द-प्रातिपदिकात् धावतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ठक् च ॥ *उदा०*—आक्रन्दं धावति आक्रन्दिकः, आक्रन्दिकी ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*आक्रान्दात्*] आक्रन्द प्रातिपदिक से दौड़ता है इस अर्थ में [ठञ्] ठञ् [च] तथा ठक् प्रत्यय होते हैं ॥ आक्रन्द अर्थात् शरण स्थान की ओर जो दौड़ता है वह आक्रन्दिक कहाता है ठञ् तथा ठक् में केवल स्वर का ही भेद है ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥४।४।३९॥

पदोत्तरपदम् २।१॥ गृह्णाति क्रिया० ॥ *स०*—पदशब्द उत्तरपदं यस्य तत् पदोत्तरपदं बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् पदोत्तरपदप्रातिपदिकाद् गृह्णातीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः, औत्तरपदिकः ॥

भाषार्थः—[*पदोत्तरपदम्*] पद शब्द उत्तर पद वाले द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*गृह्णाति*] 'ग्रहण करता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*गृह्णाति*' की अनुवृत्ति ४।४।४० तक जायेगी ॥

प्रतिकण्ठार्थललामं च ॥४।४।४०॥

प्रति⋯⋯मम् २।१॥ च अ० ॥ *स०*—प्रति० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—गृह्णाति, तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गृह्णातीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकः, आर्थिकः, लालामिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*प्रति⋯मम्*] प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम प्रातिपदिकों से [च] भी 'ग्रहण करता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

धर्मं चरति ॥४।४।४१॥

धर्मम् २।१॥ चरति क्रिया० । *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् धर्मप्रातिपदिकात् चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—धर्मं चरति धार्मिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*धर्मम्*] धर्म प्रातिपदिक से [*चरति*] आचरण करता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।। जो धर्म का आचरण करे धर्म में चले वह धार्मिक कहायेगा ।।

प्रतिपथमेति ठंश्च ।।४।४।४२।।

प्रतिपथम् २।१।। एति क्रिया० ।। ठन् १।१।। च अ० ।। *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रतिपथप्रातिपदिकादेतीत्येतस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति, ठक् च ।। *उदा०*—प्रतिपथमेति प्रतिपथिकः, प्रातिपथिकः ।।

भाषार्थः—द्वितीया-समर्थ [*प्रतिपथम्*] प्रतिपथ प्रातिपदिक से [*ठन्*] ठन् [*च*] तथा ठक् प्रत्यय होते हैं, [*एति*] 'जाता है' इस अर्थ में ।। ठक् होने पर *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि तथा ठन् होने पर वृद्धि नहीं होगी ।।

समवायान् समवैति ।।४।४।४३।।

समवायान् २।३।। समवैति क्रिया० ।। *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः समवायवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समवैतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।। समवैति शब्दस्य तत् प्रविश्य तदवयवी भवतीत्यर्थः ।। *उदा०*—समवायान् समवैति = सामवायिकः, सामाजिकः, सामूहिकः, सान्निवेशिकः ।।

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*समवायान्*] समवायवाची = समूहवाची प्रातिपदिकों से [*समवैति*] समवेत होता है, इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।। समवैति का अर्थ है प्रवेश करके उसका अवयव बन जाना ।।

यहाँ से '*समवैति*' की अनुवृत्ति ४।४।४५ तक जायेगी ।।

परिषदो ण्यः ।।४।४।४४।।

परिषदः ५।१।। ण्यः १।१।। *अनु०*—समवैति, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् परि-

षत्प्रातिपदिकाद् समवैतीत्येतस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ ठकोऽपवादः ॥ *उदा०*—परिषदं समवैति पारिषद्यः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*परिषदः*] परिषद् प्रातिपदिक से समवैति इस अर्थ में [*ण्यः*] ण्य प्रत्यय होता है ॥ परिषद् शब्द समवायवाची है अतः पूर्वसूत्र से ठक् प्राप्त था, तदपवाद यह सूत्र है ॥

यहाँ से '*ण्यः*' की अनुवृत्ति ४।४।४५ तक जायेगी ॥

सेनाया वा ॥४।४।४५॥

सेनायाः ५।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—ण्यः, समवैति, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् सेनाप्रातिपदिकात् समवैतीत्येतस्मिन्नर्थे वा ण्यः प्रत्ययो भवति, पक्षे ठक् ॥ *उदा०*—सेनां समवैति = सैन्यः, सैनिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*सेनायाः*] सेना प्रातिपदिक से समवैति = इकट्ठे होता है इस अर्थ में [*वा*] विकल्प से ण्य प्रत्यय होता है। पक्ष में सेना के समवायवाची होने से ४।४।४३ से ठक् होगा ॥ सेना में जो भर्त्ती हो वह सैनिक या सैन्य कहलायेगा ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥४।४।४६॥

संज्ञायाम् ७।१॥ ललाटकुक्कुट्यौ २।२॥ पश्यति क्रिया० ॥ *स०*—लला० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां ललाट, कुक्कुटी इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां संज्ञायामभिधेयायां पश्यतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ललाटं पश्यति = लालाटिकः सेवकः, कौक्कुटिको भिक्षुः ॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ [*ललाटकुक्कुट्यौ*] ललाट, तथा कुक्कुटी प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान होने पर [*पश्यति*] देखता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥

जो सेवक काम ठीक न करे केवल बैठे बैठे स्वामी का मुँह देखे उसे लालाटिक सेवक कहेंगे। इसी प्रकार जो भिक्षु कुक्कुटी के फुदकने मात्र परिमाण मार्ग का अवलोकन करे वह कौक्कुटिक कहाता है ॥

तस्य धर्म्यम् ॥४।४।४७॥

तस्य ६।१॥ धर्म्यम् १।१॥ *अनु०*—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ धर्म्यम् न्याय्यमुच्यते ॥ *उदा०*—हाटकस्य धर्म्यम् = हाटकिकम्, शौल्कशालिकम्, आपणिकम्, आकरिकम् ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*धर्म्यम्*] धर्म्य अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ धर्म्य कहते हैं न्याय्य आचार युक्त व्यवहार को ॥

यहाँ से '*तस्य*' की अनुवृत्ति ४।४।५० तक तथा '*धर्म्यम्*' की ४।४।४९ तक जायेगी ॥

अण् महिष्यादिभ्यः ४।४।४८॥

अण् १।१॥ महिष्यादिभ्यः ५।३॥ *स०*—महिषी आदिर्येषां ते महिष्यादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्य धर्म्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो महिष्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्येतस्मिन् विषयेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—महिष्या धर्म्यं = माहिष्यम्, प्राजावतम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*महिष्यादिभ्यः*] महिष्यादि प्रातिपदिकों से धर्म्यम् इस अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

ऋतोऽञ् ॥४।४।४९॥

ऋतः ५।१॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—तस्य धर्म्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् ऋकारान्तात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्येतस्मिन् विषयेऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—होतुर्धर्म्यं = हौत्रम्, पौत्रम्, औद्गात्रम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*ऋतः*] ऋकारान्त प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ होता का जो उचित आचार है वह हौत्रम् होगा, इसी प्रकार सब में समझें ॥

अवक्रयः ॥४।४।५०॥

अवक्रयः १।१॥ अनु०—तस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवक्रय इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ इच्छया मितेन द्रव्येण नियतकालाय आपणादेः क्रयोऽवक्रय उच्यते ॥ *उदा०*—शुल्कशालाया अवक्रयः = शौल्कशालिकः, आकरिकः, आपणिकः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*अवक्रयः*] अवक्रय अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ इच्छानुसार नियत द्रव्य से नियत काल के लिए आय आदि का खरीद लेना अर्थात् ठेके पर ले लेना अवक्रय कहाता है ॥

तदस्य पण्यम् ॥४।४।५१॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ पण्यम् १।१॥ अनु०—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं पण्यं चेत्तद्भवति ॥ *उदा०*—अपूपाः पण्यमस्य = आपूपिकः, शाष्कुलिकः, मौदकिकः ॥

भाषार्थः—[*तत*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है यदि वह प्रथमासमर्थ [*पण्यम्*] खरीदने योग्य हो तो ॥ पुए विक्रय योग्य हैं जिसके, अर्थात् पुए की दुकानवाला आपूपिकः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*तदस्य*' की अनुवृत्ति ४।४।६५ तक तथा '*पण्यम्*' की ४।४।५४ तक जायेगी ॥

लवणाट्ठञ् ॥४।४।५२॥

लवणात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ अनु०—तदस्य पण्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् लवणप्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे पण्यम् इत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—लवणं पण्यमस्य लावणिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*लवणात्*] लवण प्रातिपदिक से अस्य पण्यम् इस अर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥

किशरादिभ्यः ष्ठन् ॥४।४।५३॥

किशरादिभ्यः ५।३॥ ष्ठन् १।१॥ स०—किशर आदिर्येषां ते किशरादयस्तेभ्यः ..... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तदस्य पण्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थेभ्यः किशरादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य पण्यमित्येतस्मिन् विषये ष्ठन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—किशराः पण्यमस्य = किशरिकः, किशरिकी, नरदिकः, नरदिकी ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*किशरादिभ्यः*] किशरादि प्रातिपदिकों से 'इसका बेचना' इस अर्थ में [*ष्ठन्*] ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ किशर इत्यादि शब्द सुगन्धि विशेष के वाचक हैं ॥

यहाँ से 'ष्ठन्' की अनुवृत्ति ४।४।५४ तक जायेगी ॥

शलालुनोऽन्यतरस्याम् ॥४।४।५४॥

शलालुनः ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अनु०—ष्ठन्, तदस्य पण्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थात् शलालुप्रातिपदिकादस्य पण्यमित्येतस्मिन् विषये विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति । पक्षे ठक् ॥ उदा०—शलालुकः, शलालुकी । ठक्—शालालुकः, शालालुकी ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*शलालुनः*] शलालु प्रातिपदिक से अस्य पण्यं इस विषय में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में शलालु से ठक् होगा । शलालु शब्द गन्धविशेषवाची है, अतः पूर्व सूत्र से ष्ठन् प्राप्त ही था, विकल्प करने के लिए यह वचन है ॥ *इसुसुक्तान्तात्* कः (७।३।५१) से ठ को 'क' हुआ है ॥ ष्ठन् होने पर ङीष् (४।१।४१) तथा ठक् करने पर आदि वृद्धि और ङीप् (४।१।१५) होता है ॥

शिल्पम् ॥४।४।५५॥

शिल्पम् १।१॥ अनु०—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्य शिल्पमित्येतस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययो भवति ॥ शिल्पं कौशलमुच्यते ॥ उदा०—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य = मार्दङ्गिकः, पाणविकः, वैणिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'इसका [*शिल्पम्*] शिल्प' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ शिल्प का अर्थ कुशलता वा वैशिष्ट्य है ॥

यहाँ से '*शिल्पम्*' की अनुवृत्ति ४।४।५६ तक जायेगी ॥

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ॥४।४।५६॥

मड्डुकझर्झरात् ५।१॥ अण् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—मड्डु० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—शिल्पम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां मड्डुकझर्झर-प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य शिल्पमित्येतस्मिन् विषये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मड्डुकवादनं शिल्पमस्य = माड्डुकः । पक्षे ठक्, माड्डुकिकः । झार्झरः । झार्झरिकः ॥

भाषार्थः—शिल्पवाची प्रथमासमर्थ [*म......रात्*] मड्डुक, झर्झर प्रातिपदिकों से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से षष्ठ्यर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ मड्डुक झर्झर वाद्य विशेष हैं ॥

प्रहरणम् ॥४।४।५७॥

प्रहरणम् १।१॥ *अनु०*—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत्तद्भवति ॥ *उदा०*—असिः प्रहरणमस्य = आसिकः, दाण्डिकः, चाक्रिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक प्रहरण = शस्त्र हो तो ॥

यहाँ से '*प्रहरणम्*' की अनुवृत्ति ४।४।५८ तक जायेगी ॥

परश्वधाट्ठञ् च ॥४।४।५८॥

परश्वधात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—प्रहरणम्, तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रहरणसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् परश्वधशब्दात् षष्ठ्यर्थे ठञ्

प्रत्ययो भवति चकाराट् ठक् च ॥ *उदा०*—परश्वधः (परशुः) प्रहरणमस्य पारश्वधिकः ॥

भाषार्थः—प्रहरण समानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ [*परश्वधात्*] परश्वध प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ और [*च*] चकार से ठक् भी। दोनों में स्वर का भेद है। परश्वध परशु कुल्हाड़ी का नाम है ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥४।४।५९॥

शक्तियष्ट्योः ६।२॥ ईकक् १।१॥ *स०*—शक्ति० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्रहरणम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां प्रहरणसमानाधिकरणाभ्यां शक्ति, यष्टि इत्येताभ्यां प्रतिपदिकाभ्यां षष्ठ्यर्थे ईकक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—*शक्तिः* प्रहरणमस्य = शाक्तीकः, याष्टीकः ॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ प्रहरणसमानाधिकरणवाची [*शक्तियष्ट्योः*] शक्ति, तथा यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*ईकक्*] ईकक् प्रत्यय होता है ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥४।४।६०॥

अस्तिनास्तिदिष्टम् १।१॥ मतिः १।१॥ *स०*—अस्ति० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्योऽस्ति, नास्ति, दिष्ट इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः, अस्य मतिरित्येतस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अस्ति मस्तिरस्य = आस्तिकः। नास्ति मतिरस्य = नास्तिकः, दैष्टिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*अस्तिनास्तिदिष्टम्*] अस्ति, नास्ति दिष्ट इन प्रातिपदिकों से इसकी [*मतिः*] मति इस विषय में ठक् प्रत्यय होता है ॥ सत्कार्यों में जिसकी मति (बुद्धि) हो वह आस्तिक, जिसकी न हो वह नास्तिक कहलायेगा। दिष्ट प्रारब्ध को कहते हैं, प्रारब्ध में जिसकी मति हो वह दैष्टिक = ज्योतिषी कहलायेगा ॥

शीलम् ॥४।४।६१॥

शीलम् १।१॥ अनु०—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शीलसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अपूपभक्षणं शीलमस्य = आपूपिकः, शाष्कुलिकः, मौदकिकः ।

भाषार्थः—शील कहते हैं स्वभाव को ॥ प्रथमासमर्थ [*शीलम्*] शील समानाधिकरणवाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ पुए खाने का जिसका स्वभाव है वह आपूपिकः कहलायेगा ॥

यहाँ से '*शीलम्*' की अनुवृत्ति ४।४।६२ तक जायेगी ॥

छत्रादिभ्यो णः ॥४।४।६२॥

छत्रादिभ्यः ५।३॥ णः १।१॥ *स०*—छत्र आदिर्येषां ते छत्रादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ अनु०—शीलम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शीलसमानाधिकरणेभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यः छत्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे णः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—छत्रं शीलमस्य = छात्रः, बौभुक्षः ॥ *गुरुणा शिष्यश्छत्रवत् छाद्यः, शिष्येण च गुरुश्छत्रवत् परिपाल्यः* (महाभाष्य) ॥

भाषार्थः—शीलसमानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ [*छत्रादिभ्यः*] छत्रादि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*णः*] ण प्रत्यय होता है ॥ स्त्रीलिङ्ग में टाप् होकर छात्रा बौभुक्षा बनेगा । जो छत्र के समान शिष्य की रक्षा करे उसको अज्ञानान्धकार से दूर करे, वह गुरु छत्र के समान होने से छत्र, तथा जो छत्र के समान गुरु की शुश्रूषा करे वह छात्र कहाता है, जैसा कि महाभाष्य में कहा है ॥

कर्माध्ययने वृत्तम् ॥४।४।६३॥

कर्म १।१॥ अध्ययने ७।१॥ वृत्तम् १।१॥ *अनु०*—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्ययने वृत्तकर्मसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठक्

प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—एकमन्यदध्ययने कर्म वृत्तमस्य ऐकान्यिकः, द्वैयन्यिकः, त्रैयन्यिकः ॥

भाषार्थः—[*अध्ययने*] अध्ययन में [*कर्म वृत्तम्*] वृत्तकर्मसमानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ वृत्त का तात्पर्य जातं='हुआ है' है ॥ परीक्षा के समय में जो एक एवं दो भूल कर दे वह क्रमशः ऐकान्यिकः, द्वैयन्यिकः कहा जायेगा ॥ *न य्वाभ्यां०* (७।३।३) से द्वैयन्यिकः में ऐच् आगम होगा ॥

यहाँ से '*कर्माध्ययने वृत्तम्*' की अनुवृत्ति ४।४।६४ तक जायेगी ॥

बह्वच्पूर्वपदाट् ठच् ॥४।४।६४॥

बह्वच्पूर्वपदात् ५।१॥ ठच् १।१॥ *स०*—बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, बहुव्रीहिः । बह्वच् पूर्वपदं यस्य तत् बह्वच् पूर्वपदम् तस्मात्...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—कर्माध्ययने वृत्तम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्ययने वृत्तकर्मसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाद् बह्वच् पूर्वपदात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य द्वादशान्यिकः, त्रयोदशान्यिकः, चातुर्दशान्यिकः ॥

भाषार्थः—अध्ययन विषय में वृत्तकर्मसमानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ [*बह्वच् पूर्वपदात्*] बह्वच् पूर्वपद वाले प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [ठच्] ठच् प्रत्यय होता है ॥ उदात्त के स्थान में अनुदात्त बोलकर जो १२ त्रुटियां करे वह द्वादशान्यिकः कहलायेगा ॥

हितं भक्षाः ॥४।४।६५॥

हितं १।१॥ भक्षाः १।३॥ *अनु०*—तदस्य, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—हितसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् भक्ष्यवाचिनः प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति तच्चेद्धितं भक्षाः ॥ *उदा०*—अपूपभक्षणं हितमस्मै=आपूपिकः, शाष्कुलिकः, मौदकिकः ॥

भाषार्थः—[*हितम्*] हित समानाधिकरण वाले [*भक्षाः*] भक्ष्यवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। हित योग में चतुर्थी होती है अतः यहाँ 'अस्य' षष्ठी विभक्ति चतुर्थी में बदल जाती है, ऐसा जानना चाहिये॥ पूए का खाना जिसके लिये हितकारी है वह आपूपिकः कहलायेगा॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥४।४।६६॥

तत् १।१॥ अस्मै ४।१॥ दीयते क्रिया० ॥ नियुक्तम् १।१॥ *अनु०*—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् नियुक्तमस्मै दीयते इत्येतस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—अग्रे भोजनमस्मै नियुक्तं दीयते आग्रभोजनिकः। अपूपा अस्मै नियुक्तं दीयन्ते आपूपिकः॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्मै*] 'इसके लिये [*नियुक्तम्*] नियम पूर्वक [*दीयते*] दिया जाता है' इस विषय में ठक् प्रत्यय होता है॥ नियुक्तं का अर्थ है नियम पूर्वक॥ जिसको नियम पूर्वक सबसे प्रथम भोजन दिया जाये वह आग्रभोजनिकः कहा जायेगा॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।४।६८ तक जायेगी॥

श्राणामांसौदनाट्टिठन् ॥४।४।६७॥

श्राणा……त् ५।१॥ टिठन् १।१॥ *स०*—श्राणा च मांसौदनञ्च श्राणामांसौदनम्, तस्मात्……समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्मै दीयते नियुक्तम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां श्राणा, मांसौदन इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां नियुक्तमस्मै दीयते इत्येतस्मिन् विषये टिठन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—श्राणा नियुक्तमस्मै दीयते श्राणिकः श्राणिकी, मांसौदनिकः मांसौदनिकी॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*श्राणामांसौदनात्*] श्राणा तथा मांसौदन प्रातिपदिकों से, 'इसको नियत रूप से दिया जाता है' इस अर्थ में [*टिठन्*] टिठन् प्रत्यय होता है॥ टिठन् का शेष ठ रहता है ठ को इक हो ही जायेगा। *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् करने के लिए टित् किया है॥ श्राणा पकी हुई लप्सी या खिचड़ी को कहते हैं॥

भक्तादणन्यतरस्याम् ॥४।४।६८॥

भक्तात् ५।१॥ अण् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—तदस्मै दीयते नियुक्तम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् भक्तप्रातिपदिकात् नियुक्तमस्मै दीयते इत्येतस्मिन्नर्थे विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भक्तं नियुक्तमस्मै दीयते भाक्तः, भाक्तिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*भक्तात्*] भक्त प्रातिपदिक से नियुक्तमस्मै दीयते इस अर्थ में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है। पक्ष में ठक् होगा ॥

तत्र नियुक्तः ॥४।४।६९॥

तत्र अ० ॥ नियुक्तः १।१॥ *अनु०*—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत्रेति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् नियुक्त इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शुल्कशालायां नियुक्तः = शौल्कशालिकः, आकरिकः, आपणिकः, दौवारिकः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*नियुक्तः*] नियुक्त इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ *द्वारादीनां च* (७।३।४) से दौवारिकः में ऐच् आगम होगा। द्वार पर जो नियुक्त वह दौवारिक अर्थात् द्वारपाल कहलायेगा ॥

यहाँ से '*तत्र*' की अनुवृत्ति ४।४।७४ तक तथा '*नियुक्तः*' की ४।४।७० तक जायेगी ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥४।४।७०॥

अगारान्तात् ५।१॥ ठन् १।१॥ *स०*—अगार शब्दः अन्ते यस्य स अगारान्तः, तस्मात्......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र नियुक्तः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् अगारान्तात् प्रातिपदिकात् नियुक्तार्थे ठन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—देवागारे नियुक्तः = देवागारिकः, कोष्ठागारिकः, भाण्डागारिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*अगारान्तात्*] अगार अन्त वाले प्रातिपदिकों से नियुक्त अर्थ में [*ठन्*] ठन् प्रत्यय होता है ॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥४।४।७१॥

अध्यायिनि ७।१॥ अदेशकालात् ५।१॥ स०—देशश्च कालश्च देशकालम्, न देशकालम् अदेशकालम् तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः। अदेशकालादित्यत्र विरुद्धार्थे नञ् वर्त्तते ॥ अनु०—तत्र, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यस्मिन् देशे काले चाध्ययनं प्रतिषिध्यते तस्मात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अध्यायिन्यभिधेये ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—श्मशानेऽधीते = श्माशानिकः, चातुष्पथिकः। अकालात्— चतुर्दश्यामधीते चातुर्दशिकः, पौर्णमासिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*अदेशकालात्*] जिस देश व काल में अध्ययन नहीं करना चाहिए ऐसे अदेशकालवाची प्रातिपदिकों से [*अध्यायिनि*] अध्ययन करने वाला अभिधेय हो तो ठक् प्रत्यय होता है ॥ अध्ययन की दृष्टि से जो देश काल प्रतिषिद्ध किये गये हैं, अर्थात् जहाँ जहाँ अध्यन नहीं हो सकता, या नहीं किया जाना चाहिये ऐसे देश काल को अदेशकाल कहा है। यहाँ नञ् विरुद्ध अर्थ में है ॥ श्मशान या चौरस्ता अध्ययन करने की उपयुक्त जगह नहीं है, अतः यह अदेश हैं, यहाँ जो पढ़े वह श्माशानिक चातुष्पथिक कहलायेगा। इसी प्रकार पहले चतुर्दशी अमावस्या तथा पूर्णिमा को यज्ञादि होता था सो उस दिन छुट्टी होती थी, अतः ये सब अध्ययन की दृष्टि से अकालवाची प्रातिपदिक हैं, इनमें भी जो पढ़े वह चातुर्दशिकः, आमावास्यिकः, पौर्णमासिकः कहलायेगा ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥४।४।७२॥

कठि.....नेषु ७।३॥ व्यवहरति क्रिया० ॥ स०—कठिनशब्दः अन्ते यस्य स कठिनान्तः, बहुव्रीहिः। कठिनान्तश्च प्रस्तारश्च संस्थानञ्च कठि.....नानि तेषु इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तत्र, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थेभ्यः कठिनान्त, प्रस्तार, संस्थान इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्यवहरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः, वार्ध्रकठिनिकः, प्रास्तारिकः, सांस्थानिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*कठि......नेषु*] कठिन शब्द अन्त वाले, तथा प्रस्तार संस्थान प्रातिपदिकों से [*व्यवहरति*] व्यवहार करता है इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।। कठिन वंश (बांस) जिस देश में उत्पन्न होता है वह वंशकठिन कहाता है । उसमें उचित व्यवहार करने वाला वांशकठिनिकः कहाता है । प्रस्तार पर्णशय्या तथा घास के जङ्गल का नाम है । संस्थान चतुष्पथ को कहते हैं ।।

निकटे वसति ।।४।४।७३।।

निकटे ७।१।। वसति क्रिया० ।। *अनु०*—तत्र, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् निकट-प्रातिपदिकाद् वसतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—निकटे वसति = नैकटिकः । अरण्यवासिनो भिक्षोर्ब्रह्मचारिणश्च ग्रामाद् दूरनिवासे या मर्यादा शास्त्रेण विहिता तामपेक्ष्य यो निकटे वसति स नैकटिक इत्युच्यते ।।

भाषार्थः—सप्तमीसमर्थ [*निकटे*] निकट प्रातिपदिक से '*वसति*' 'बसता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।। अरण्य में वास करने वाले भिक्षु और ब्रह्मचारी को ग्राम से एक कोस दूर रहना चाहिये ऐसी शास्त्रीय मर्यादा है, उसकी अपेक्षा जो ग्राम के निकट बसे वह नैकटिक कहाता है ।।

यहाँ से '*वसति*' की अनुवृत्ति ४।४।७४ तक जायेगी ।।

आवसथात् ष्ठल् ।।४।४।७४।।

आवसथात् ५।१।। ष्ठल् १।१।। *अनु०*—वसति, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—सप्तमीसमर्थादावसथ-प्रातिपदिकाद् वसतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—आवसथे वसति आवसथिकः, आवसथिकी ।।

भाषार्थः—सप्तमीसमर्थ [*आवसथात्*] आवसथ प्रातिपदिक से वसति अर्थ में [*ष्ठल्*] ष्ठल् प्रत्यय होता है ।। षित् होने से ङीष् होता है ।। आवसथ कुटिया को कहते हैं, उसमें जो रहे वह आवसथिक कहा जायेगा ।।

प्राग्घिताद्यत् ॥४।४।७५॥

प्राक् अ० ॥ हितात् ५।१॥ यत् १।१॥ अनु०—तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इतोऽग्रे 'तस्मै हितम्' (५।१।५) इत्येतस्मात् प्राक्, येऽर्था वक्ष्यन्ते तेषु सामान्येन यत् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ वक्ष्यति तद्वहति रथयुग० (४।४।७६), तत्र यत् प्रत्ययो भवति, रथ्यः, युग्यः, प्रासङ्ग्यः ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे [*हितात्*] तस्मै हितम् से [*प्राक्*] पहले पहले जो अर्थ कहेंगे उन सब में सामान्य करके अर्थात् अपवाद विषयों को छोड़कर यत् प्रत्यय का अधिकार जायेगा ॥ *प्राग्घिताद्यत्* में अर्थ प्रधान निर्देश है, अतः हित अर्थ के आरम्भ होने से पहले-पहले इस सूत्र का अधिकार जाने, हित अर्थ में प्रत्यय ५।१।१ से प्रारम्भ होते हैं अतः इसका अधिकार ४।४।१४४ तक जानें ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥४।४।७६॥

तत् २।१॥ वहति क्रिया० ॥ रथ.....ङ्गम् २।१॥ स०—रथ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयासमर्थेभ्यः रथ, युग, प्रासङ्ग इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—रथं वहति = रथ्यो गौः, युग्यः, प्रासङ्ग्यः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*रथ.....ङ्गम्*] रथ, युग, प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से [*वहति*] ढोता है इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥
यहाँ से '*तत्*' की अनुवृत्ति ४।४।८६ तक तथा '*वहति*' की ४।४।८२ तक जायेगी ॥

धुरो यड्ढकौ ॥४।४।७७॥

धुरः ५।१॥ यड्ढकौ १।२॥ स०—यत् च ढक् च, यड्ढकौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तद्वहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयासमर्थाद् धुरःप्रातिपदिकाद् वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् ढक् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—धुरं वहति = धुर्यः, धौरेयः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [धुरः] धुर् प्रातिपदिक से वहति इस अर्थ में [यड्ढकौ] यत् और ढक् प्रत्यय होते हैं ॥ ढ को एय तथा *किति* च (७।२।११८) से वृद्धि होकर धौरेयः बनता है ॥

खः सर्वधुरात् ॥४।४।७८॥

खः १।१॥ सर्वधुरात् ५।१॥ *अनु०*—तद्वहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् सर्वधुरप्रातिपदिकात् वहतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। पूर्वसूत्रस्यापवादः ॥ *उदा०*—सर्वधुरं वहति = सर्वधुरीणः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*सर्वधुरात्*] सर्वधुर प्रातिपदिक से [*खः*] ख प्रत्यय होता है वहति इस अर्थ में ॥ तदन्त विधि (१।१।७१) लगकर पूर्व सूत्र से यत् और ढक् की प्राप्ति थी, तदपवाद यह सूत्र है ॥

यहाँ से '*खः*' की अनुवृत्ति ४।४।७९ तक जायेगी ॥

एकधुराल्लुक् च ॥४।४।७९॥

एकधुरात् ५।१॥ लुक् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—खः, तद्वहति तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाद् एकधुरप्रातिपदिकात् वहतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति, तस्य च लुग् भवति ॥ *उदा०*—एकधुरं वहति, एकधुरीणः, एकधुरः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*एकधुरात्*] एकधुर प्रातिपदिक से वहति इस अर्थ में ख प्रत्यय [च] तथा उसका [लुक्] लुक् होता है विधान सामर्थ्य से एक बार जब ख का लुक् नहीं होगा तो एकधुरीणः बनेगा, लुक् होने पर एकधुरः बनेगा ॥

शकटादण् ॥४।४।८०॥

शकटात् ५।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—तद्वहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् शकटप्रातिपदिकात् वहतीत्येतस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शकटं वहति शाकटो गौः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*शकटात्*] शकट प्रातिपदिक से [*अण्*] अण् प्रत्यय वहति अर्थ में होता है ॥

हलसीराट्ठक् ॥४।४।८१॥

हलसीरात् ५।१॥ ठक् १।१॥ *स०*—हल० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्वहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां हल, सीर प्रातिपदिकाभ्यां वहतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—हलं वहति = हालिकः, सैरिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*हलसीरात्*] हल और सीर प्रातिपदिकों से वहति अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥

संज्ञायां जन्याः ॥४।४।८२॥

संज्ञायाम् ७।१॥ जन्याः ५।१॥ *अनु०*—तद्वहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् जनीप्रातिपदिकाद् वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति संज्ञायां गम्यमानायाम् ॥ जनी वधूरुच्यते ॥ *उदा०*—जनी = वधूं वहति जन्या ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*जन्याः*] जनी प्रातिपदिक से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान होने पर वहति अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ जनी वधू को कहते हैं । जनी (वधू) को जामाता के समीप पहुँचाने वाली जामाता की सखी जन्या कहाती है ॥

विध्यत्यधनुषा ॥४।४।८३॥

विध्यति क्रिया० ॥ अधनुषा ३।१॥ *स०*—अधनुषेत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तत्, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् विध्यतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति न चेद्धनुष्करणं भवति ॥ *उदा०*—पादौ विध्यन्ति = पद्या शर्कराः, ऊरव्याः कण्टकाः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*विध्यति*] बींधता है, इस अर्थ में [*अधनुषा*] यदि धनुष करण न हो तो यत् प्रत्यय होता है ॥ पैरों को जो बींध दे घायल कर दे ऐसे नुकीले कंकड़ पद्य कहाते हैं ।

ऊरु (जंघा) को बींधने वाले काँटे ऊरव्याः कहलायेंगे। यहाँ *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण तथा *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से 'अव्' आदेश होता है ॥

धनगणं लब्धा ॥४।४।८४॥

धनगणम् २।१॥ लब्धा १।१॥ *स०*—धन० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां धन, गण इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां लब्धेत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—धनं लब्धा धन्यः, गणं लब्धा गण्यः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*धनगणम्*] धन और गण प्रातिपदिकों से [*लब्धा*] प्राप्त करने वाला अभिप्रेत हो तो यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*लब्धा*' की अनुवृत्ति ४।४।८५ तक जायेगी ॥

अन्नाण्णः ॥४।४।८५॥

अन्नात् ५।१॥ णः १।१॥ *अनु०*—लब्धा, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थादन्नप्रातिपदिकात् लब्धेत्येतस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अन्नं लब्धा = आन्नः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*अन्नात्*] अन्नप्रातिपदिक से लब्धा = प्राप्त करने वाला कहना हो तो [*णः*] ण प्रत्यय होता है ॥

वशं गतः ॥४।४।८६॥

वशम् २।१॥ गतः १।१॥ *अनु०*—तत्, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाद् वशप्रातिपदिकाद् गत इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वशं गतः = वश्यः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*वशम्*] वश प्रातिपदिक से [*गतः*] गत = प्राप्त हुआ अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥

पदमस्मिन् दृश्यम् ॥४।४।८७॥

पदम् १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ दृश्यम् १।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दृश्यसमानाधिकरणात्

प्रथमासमर्थात् पदप्रातिपदिकादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। निर्देशादेव प्रथमासमर्थविभक्तिः॥ उदा०—पदमस्मिन् दृश्यम् = पद्यः कर्दमः। पद्याः सिकताः॥

भाषार्थः—[*दृश्यम्*] दृश्यसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ [*पदम्*] पदप्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है॥ पदम् शब्द प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट है, अतः उसी निर्देश से 'प्रथमासमर्थ विभक्ति' यह अर्थ ले लिया गया है॥

ऐसा कीचड़ जो कुछ कड़ा-कड़ा सा हो अर्थात् जिसमें पैर रखने पर पैर के निशान बन जायें, वह पद्यः कर्दमः कहलायेगा॥

मूलमस्याबर्हि ॥४।४।८८॥

मूलम् १।१॥ अस्य ६।१॥ आबर्हि १।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ आबर्हणम् = आबर्हः = उत्पाटनम् तद् अस्यास्तीति, आबर्हि॥ *अर्थः*—आबर्हिसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् मूलप्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—मूलमेषामाबर्हि मूल्याः माषाः, मूल्याः मुद्गाः॥

भाषार्थः—आबर्ह उखाड़ने को कहते हैं, आबर्ह जिसका हो वह आबर्हि है॥ यहाँ भी निर्देश से प्रथमा समर्थ विभक्ति ली है॥

[*आबर्हि*] आबर्हि समानाधिकरण प्रथमा समर्थ [*मूलम्*] मूल प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है॥ मूल जड़ को कहते हैं। मूंग या उड़द के पौधों के पक जाने पर जड़ समेत उखाड़ा जाता है, अतः वे मूल्याः माषाः, मूल्याः मुद्गाः कहलाते हैं॥

संज्ञायां धेनुष्या ॥४।४।८९॥

संज्ञायाम् ७।१॥ धेनुष्या १।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये धेनुष्या इति निपात्यते। धेनोः षुगागमः यश्च प्रत्ययो निपात्यते॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में [*धेनुष्या*] धेनुष्या शब्द स्त्रीलिङ्ग में निपातन किया जाता है। धेनु शब्द को षुक् आगम तथा

य प्रत्यय निपातन से होता है ॥ दुग्धादि के द्वारा ऋण उतारने के लिये जो धेनु उत्तमर्ण को दी जाती है, वह धेनुष्या कहाती है ॥

यहाँ से *'संज्ञायाम्'* की अनुवृत्ति ४।४।९० तक जायेगी ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥४।४।९०॥

गृहपतिना ३।१॥ संयुक्ते ७।१॥ ञ्यः १।१॥ *अनु०*—संज्ञायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् गृहपतिशब्दात् संयुक्त इत्येतस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये ॥ *उदा०*—गृहपतिना सयुक्तः = गार्हपत्योऽग्निः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*गृहपतिना*] गृहपति शब्द से [*संयुक्ते*] संयुक्त अर्थ में [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है, संज्ञा विषय में ॥ यहाँ भी गृहपतिना तृतीया निर्देश से ही तृतीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ गृहपति यजमान से संबद्ध अग्नि गार्हपत्य कहाती है। यद्यपि आहवनीय और दक्षिणाग्नि भी गृहपति से संबद्ध होती हैं फिर भी संज्ञा ग्रहण से आहवनीय से पश्चिम प्रदेश में स्थापित अग्नि ही गार्हपत्य कही जाती है। इसी में गार्हपत्य कर्म विशेष रूप से होते हैं ॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्या-नाम्यसमसमितसंमितेषु ॥४।४।९१॥

नौवयो·····तुलाभ्यः ५।३॥ तार्यतुल्य·····तेषु ७।३॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—यत्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला इत्येतेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्योऽष्टाभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यम् तार्य्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित, इत्येतेष्वष्टस्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति ॥ प्रत्ययार्थद्वारेणात्र तृतीयासमर्थविभक्तिर्द्रष्टव्या, अर्थात् तार्याद्यर्थेषु तृतीयाविभक्तिरेव संबद्धुं योग्या भवति ॥ *उदा०*—नावा तार्यं नाव्यमुदकम्, नाव्या नदी। वयसा तुल्यो वयस्यः सखा। धर्मेण प्राप्यं = धर्म्यम्। विषेण वध्योः विष्यः। मूलेनानाम्यं मूल्यम्। मूलेन समो मूल्यः पटः। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया संमितं तुल्यम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*नौवयो······लाभ्यः*] नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला इन आठ प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*तार्य······तेषु*] तार्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित इन आठ अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ।। यहाँ तार्य आदि प्रत्ययार्थ के द्वारा तृतीया समर्थ विभक्ति स्वीकार की गई है, अर्थात् तार्य आदि अर्थों में नौ आदि प्रातिपदिकों का तृतीया विभक्ति द्वारा ही संबन्ध हो सकता है अन्य विभक्तियों से नहीं ।।

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ।।४।४।९२।।

धर्मपथ्यर्थन्यायात् ५।१।। अनपेते ७।१।। *स०*—धर्म० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—धर्म, पथिन्, अर्थ न्याय इत्येतेभ्यः पञ्चमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनपेत इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—धर्मादनपेतं धर्म्यम्, पथ्यम्, अर्थ्यम्, न्याय्यम् ।।

भाषार्थः—पञ्चमीसमर्थ [*धर्म······यात्*] धर्म, पथिन्, अर्थ, न्याय प्रातिपदिकों से [*अनपेते*] अनपेत अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।। यहाँ भी निर्देश से ही समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ।। अनपेत कहते हैं अनुकूल को जो धर्म से अनुकूल हो वह धर्म्य होगा, इसी प्रकार औरों में जानें ।।

छन्दसो निर्मिते ।।४।४।९३।।

छन्दसः ५।१।। निर्मिते ७।१।। इच्छा पर्य्यायश्छन्दोऽत्र गृह्यते ।। *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थाच्छन्दसः प्रातिपदिकात् निर्मित इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ।। अत्रापि प्रत्ययार्थानुरोधात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्द्रष्टव्या ।। *उदा०*—छन्दसा निर्मितः छन्दस्यः ।।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*छन्दसः*] छन्दस् प्रातिपदिक से [*निर्मिते*] निर्मित (बनाया हुआ) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।। छन्दस् शब्द यहाँ इच्छा का पर्यायवाची लिया गया है । यहाँ भी अर्थ के सामर्थ्य से तृतीया समर्थ विभक्ति ली गई है ।।

यहाँ से '*निर्मिते*' की अनुवृत्ति ४।४।९४ तक जायेगी ।।

उरसोऽण् च ॥४।४।९४॥

उरसः ५।१॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—यत्, निर्मिते, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाद् उरसः प्रातिपदिकात् निर्मितेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति यत् च ॥ *उदा०*—उरसा निर्मितः = औरसः पुत्रः, उरस्यः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*उरसः*] उरस् प्रातिपदिक से निर्मित अर्थ में [*अण्*] अण् [च] और यत् प्रत्यय होते हैं ॥ अर्थ की अनुकूलता से यहाँ भी तृतीया समर्थ विभक्ति ली है ॥ औरस, उरस्य अपने सगे पुत्र को कहते हैं ॥

हृदयस्य प्रियः ॥४।४।९५॥

हृदयस्य ६।१॥ प्रियः १।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् हृदयप्रातिपदिकात् प्रिय इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— हृदयस्य प्रियो हृद्यो देशः, हृद्या कन्या ॥

भाषार्थ.—षष्ठी समर्थ [*हृदयस्य*] हृदय प्रातिपदिक से [*प्रियः*] प्रिय इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी निर्देश से षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है। जो हृदय को प्रिय हो वह हृद्य कहाता है, *हृदयस्य हृल्लेख०* (६।३।४८) से हृदय को हृद् आदेश होता है ॥

यहाँ से '*हृदयस्य*' की अनुवृत्ति ४।४।९६ तक जायेगी ॥

बन्धने चर्षौ ॥४।४।९६॥

बन्धने ७।१॥ च अ० ॥ ऋषौ ७।१॥ *अनु०*—हृदयस्य, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् हृदयशब्दात् बन्धन इत्येतस्मिन्नर्थे ऋषावभिधेये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—हृदयस्य बन्धनं ऋषिः हृद्यः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ हृदय शब्द से [*बन्धने*] बन्धन अर्थ में [च] भी [*ऋषौ*] ऋषि = वेद अभिधेय होने पर यत् प्रत्यय होता है ॥ ऋषि यहाँ वेद का वाचक है। जो मनुष्य वेदों को पढ़ कर वेदोक्त धर्मादि का निश्चय करता है, उसका हृदय धर्मादि कृत्यों में बन्ध जाता है, अर्थात्

वह पाप कर्म नहीं करता, उस वेद को हृद्यः ऋषिः कहेंगे। बध्यते येन सत्कर्मसु तद् बन्धनम् = जिससे सत्कर्म में बंधे वह बन्धन है, ऐसा यहाँ समझना चाहिये ॥

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु ॥४।४।९७॥

मतजनहलात् ५।१॥ करणजल्पकर्षेषु ७।३॥ *स०*—मत० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः। करण० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मत, जन, हल इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं करण, जल्प, कर्ष इत्येतेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मतं ज्ञानं तस्य करणं मत्यम्। जनस्य जल्पो जन्यः। हलस्य कर्षो हल्यः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*मत…त्*] मत, जन, हल प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*कर…षु*] करण, जल्प, कर्ष इन अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी प्रत्ययार्थ की अनुकूलता से समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

तत्र साधुः ॥४।४।९८॥

तत्र अ० ॥ साधुः १।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधुरित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सामसु साधुः सामन्यः, वेमन्यः, कर्मण्यः शरण्यः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*साधुः*] साधु = 'कुशल' अर्थ को कहने में यत् प्रत्यय होता है ॥ *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टिलोप प्राप्त था, *ये चाभावकर्मणोः* (६।४।१६८) से प्रकृति भाव होकर सामन्यः वेमन्यः आदि बन गया ॥

यहाँ से '*तत्र*' की अनुवृत्ति ४।४।११६ तथा '*साधुः*' की ४।४।१०६ तक जायेगी ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥४।४।९९॥

प्रतिजनादिभ्यः ५।३॥ खञ् १।१॥ *स०*—प्रतिजन आदिर्येषां ते प्रतिजनादयस्तेभ्यः…… बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*- तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रतिजना-

दिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्येतस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रतिजने साधुः प्रातिजनीनः, ऐदंयुगीनः, सायंयुगीनः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*प्रति···भ्यः*] प्रतिजनादि प्रातिपदिकों से साधु = 'कुशल' अर्थ में [*खञ्*] खञ् प्रत्यय होता है ॥ जो मनुष्य प्रत्येक के प्रति व्यवहारादि में कुशल हो वह प्रातिजनीनः कहलायेगा ॥

भक्ताण् णः ॥४।४।१००॥

भक्तात् ५।१॥ णः १।१॥ तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् भक्तप्रातिपदिकात् साधुरित्येतस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—भक्ते साधुः = भाक्तः शालिः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*भक्तात्*] भक्त प्रातिपदिक से साधु अर्थ में [*णः*] ण प्रत्यय होता है ॥ जो धान भात = चावल के लिए अच्छे हों वे भाक्त शालि कहायेंगे ॥

परिषदो ण्यः ॥४।४।१०१॥

परिषदः ५।१॥ ण्यः १।१॥ *अनु०*—तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् परिषद्प्रातिपदिकात् साधुरित्येतस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परिषदि साधुः पारिषद्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*परिषदः*] परिषद् प्रातिपदिक से साधु अर्थ में [*ण्यः*] ण्य प्रत्यय होता है ॥

कथादिभ्यष्ठक् ॥४।४।१०२॥

कथादिभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *स०*—कथा आदिर्येषां ते कथादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यः कथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कथायां साधुः काथिकः वैकथिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*कथादिभ्यः*] कथादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥

गुडादिभ्यष्ठञ् ॥४।४।१०३॥

गुडादिभ्यः ५।३॥ ठञ् १।१॥ *स०*—गुड आदिर्येषां ते गुडादयस्तेभ्यः……बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यो गुडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्येतस्मिन् विषये ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गुडे साधुः = गौडिकः इक्षुः, कौल्माषिको मुद्गः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*गुडादिभ्यः*] गुडादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ जो गुड़ के लिये, अच्छा उपयुक्त गन्ना वह गौडिकः कहाता है ॥ कुल्माष अर्ध पके अन्न को कहते हैं । अर्धपक्व करके खाने योग्य मुद्ग कौल्माषिक कहाते हैं ॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ॥४।४।१०४॥

पथ्य……पतेः ५।१॥ ढञ् १।१॥ *स०*—पन्थाश्च अतिथिश्च वसतिश्च स्वपतिश्च पथ्य……पतिः, तस्मात्……समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यः पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ढञ् प्रत्ययो भवति साधुरित्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—पथि साधुः पाथेयम्, आतिथेयम्, वासतेयम्, स्वापतेयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*पथ्य……पतेः*] पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति प्रातिपदिकों से साधु इस अर्थ में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है ॥

यात्रा में खाने के लिये जो भोजन हो उसे पाथेय कहते हैं ॥

सभाया यः ॥४।४।१०५॥

सभायाः ५।१॥ यः १।१॥ *अनु०*—तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् सभाप्रातिपदिकात् साधुरित्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सभायां साधुः = सभ्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*सभायाः*] सभा प्रातिपदिक से साधु अर्थ में [*यः*] य प्रत्यय होता है ॥ सभा के व्यवहारादि में जो कुशल है वह सभ्य कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*सभायाः*' की अनुवृत्ति ४।४।१०६ तक जायेगी ॥

ढश्छन्दसि ॥४।४।१०६॥

ढः १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—सभायाः, तत्र साधुः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् सभाप्रातिपदिकात् साधुरित्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये ढः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् (य० २२।२२) ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ सभा शब्द से साधु इस अर्थ में [*छन्दसि*] वैदिक प्रयोग विषय में [ढः] ढ प्रत्यय होता है ॥

समानतीर्थे वासी ॥४।४।१०७॥

समानतीर्थे ७।१॥ वासी १।१॥ *अनु*०—तत्र, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् समानतीर्थप्रातिपदिकाद् वासीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*०—समाने तीर्थे वासी सतीर्थ्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*समानतीर्थे*] समानतीर्थ प्रातिपदिक से [*वासी*] रहने वाला इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ तीर्थ का अर्थ गुरुकुल पाठशाला वा आचार्य है अतः सतीर्थ्य सहपाठी, सहाध्यायी को कहते हैं ॥

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥४।४।१०८॥

समानोदरे ७।१॥ शयितः १।१॥ ओ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ उदात्तः १।१॥ *स*०—समानं च तदुदरञ्च समानोदरम् तस्मिन्... कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्र, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् समानोदरप्रातिपदिकात् शयित इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवत्योकारश्चोदात्तः ॥ *उदा*०—समानोदरे शयितः समानोदर्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*समानोदरे*] समानोदर प्रातिपदिक से [*शयितः*] शयन किया हुआ इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है [च] तथा समानोदर शब्द में जो [*ओ*] ओकार है, वह [*उदात्तः*] उदात्त होता है ॥

यत् प्रत्यय कर लेने पर *तित् स्वरितम्* (६।१।१७९) से 'य' स्वरित होता है, तत्पश्चात् *अनुदात्तं पदमे०* (६।१।१५२) से य को छोड़ कर सारा पद अनुदात्त प्राप्त था, उसको बाध कर ओकार ही उदात्त रहे अतः 'ओ चोदात्तः' कहा है ॥ जो समान उदर (पेट) में शयन करे अर्थात् भाई समानोदर्य कहाता है ॥

यहाँ से '*शयितः*' की अनुवृत्ति ४।४।१०९ तक जायेगी ॥

सोदराद्यः ॥४।४।१०९॥

सोदरात् ५।१॥ यः १।१॥ *अनु०*—शयितः, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*.—सप्तमीसमर्थात् सोदर-प्रातिपदिकात् शयित इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सोदर्य्यो भ्राता ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*सोदरात्*] सोदर प्रातिपदिक से शयित इस अर्थ में [*यः*] य प्रत्यय होता है ॥ य और यत् में स्वर का ही भेद है ॥ सोदर में समान को स भाव 'य' प्रत्यय की विवक्षा में *विभाषोदरे* (६।३।८६) से हुआ है । सोदर्य भी सगे भाई को कहते हैं ॥

भवे छन्दसि ॥४।४।११०॥

भवे ७।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—तत्र, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् भव इत्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मेघ्याय च विद्युत्याय च नमः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*भवे*] भव अर्थ में [*छन्दसि*] वेद विषय में यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*भवे*' की अनुवृत्ति ४।४।११८ तक तथा '*छन्दसि*' की ४।४।१४४ तक जायेगी ॥

पाथोनदीभ्यां ड्यण् ॥४।४।१११॥

पाथोनदीभ्याम् ५।२॥ ड्यण् १।१॥ *स०*—पाथश्च नदी च, पाथोनद्यौ, ताभ्यां······इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पाथस्, नदी इत्येताभ्यां सप्तमीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि विषये भवेऽर्थे ड्यण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पाथसि भवः = पाथ्यः, नाद्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*पाथोनदीभ्याम्*] पाथस् और नदी प्रातिपदिकों से वेद विषय में भव अर्थ में [*ड्यण्*] ड्यण् प्रत्यय होता है ॥ डित् होने से टि भाग का लोप होकर 'पाथ् य, नद् य' बना, पश्चात् वृद्धि होकर पाथ्यः, नाद्यः बन जायेगा ॥

वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ॥४।४।११२॥

वेश···भ्याम् ५।२॥ अण् १।१॥ *स०*—वेश० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां वेशन्त, हिमवत् प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि विषये भवेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वेशन्ते भवः वैशन्तः । वैशन्तीभ्यः स्वाहा, हैमवतीभ्यः स्वाहा ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*वेश···भ्याम्*] वेशन्त और हिमवत् प्रातिपदिकों से वेद विषय में भव अर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ अण् होने से *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है ॥

स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ ॥४।४।११३॥

स्रोतसः ५।१॥ विभाषा १।१॥ ड्यड्ड्यौ १।२॥ *स०*—ड्यड्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् स्रोतस्प्रातिपदिकात् छन्दसि विषये भवार्थे विकल्पेन ड्यत्, ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—स्रोतसि भवः स्रोत्यः, स्रोतस्यः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*स्रोतसः*] स्रोतस् प्रातिपदिक से वेद विषय में भवार्थ में [*ड्यड्ड्यौ*] ड्यत्, ड्य प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प से होते हैं ॥ ड्यत्, ड्य दोनों प्रत्ययों से बने शब्दों के रूप टि भाग का लोप करके एक जैसे ही बनेंगे, केवल स्वर में भेद होगा । पक्ष में अधिकार से प्राप्त यत् प्रत्यय होगा तो *स्रोतस्यः* रूप बनेगा ॥

सगर्भसयूथसनुताद्यन् ॥४।४।११४॥

सग.....तात् ५।१॥ यन् १।१॥ स०—सगर्भ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थेभ्यः सगर्भ, सयूथ, सनुत इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि विषये भवार्थे यन् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अनुभ्राता सगर्भ्यः। अनुसखा सयूथ्यः (य० ४।२०), यो नः सनुत्यः॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [सग...तात्] सगर्भ, सयूथ, सनुत इन प्रातिपदिकों से वेदविषयक भवार्थ में [यन्] यन् प्रत्यय होता है॥

तुग्राद् घन् ॥४।४।११५॥

तुग्रात् ५।१॥ घन् १।१॥ अनु०—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थात्, तुग्रप्रातिपदिकाद् घन् प्रत्ययो भवति वेद विषये भवार्थे॥ उदा०—त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [तुग्रात्] तुग्र शब्द से वेद विषयक भवार्थ में [घन्] घन् प्रत्यय होता है॥ घ को 'इय्' ७।१।२ से हो ही जायेगा॥

अग्राद्यत् ॥४।४।११६॥

अग्रात् ५।१॥ यत् १।१॥ अनु०—भवे छन्दसि, तत्र तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सप्तमीसमर्थाद् अग्रप्रातिपदिकाच् छन्दसि विषये भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—अग्रेभवम् = अग्र्यम्॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [अग्रात्] अग्र प्रातिपदिक से वेद विषयक भवार्थ में [यत्] यत् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'अग्रात्' की अनुवृत्ति ४।४।११७ तक जायेगी॥

घच्छौ च ॥४।४।११७॥

घच्छौ १।२॥ च अ०॥ स०—घश्च छश्च, घच्छौ, इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अग्रात्, भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् अग्रप्रातिपदिकात् घ, छ इत्येतावपि प्रत्ययौ भवतो वेदविषये भवार्थे ॥ *उदा०*—अग्रियम्, अग्रीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ अग्र प्रातिपदिक से वेद विषय में भव इस अर्थ में [घच्छौ] घ और छ प्रत्यय [च] भी होते हैं ॥ पूर्व सूत्र से यत् होगा ही ॥

समुद्राभ्राद् घः ॥४।४।११८॥

समुद्राभ्रात् ५।१॥ घः १।१॥ *स०*—समु० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—भवे छन्दसि, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां समुद्र, अभ्र इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि विषये भवार्थे घः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—समुद्रियाणां नदीनाम्। अभ्रियस्येव घोषः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*समुद्राभ्रात्*] समुद्र और अभ्र प्रातिपदिकों से वेदविषयक भवार्थ में [*घः*] घ प्रत्यय होता है ॥ समुद्र शब्द निघण्टु में अन्तरिक्ष (आकाश) नामों में पढ़ा है, तथा अभ्र मेघ का वाची है ॥

बर्हिषि दत्तम् ॥४।४।११९॥

बर्हिषि ७।१॥ दत्तम् १।१॥ *अनु०*—छन्दसि, तत्र, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् बर्हिष्-प्रातिपदिकाद् दत्तमित्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बर्हिषि दत्तम् = बर्हिष्यम्, बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*बर्हिषि*] बर्हिष् प्रातिपदिक से [*दत्तम्*] दिया हुआ इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है वेद विषय में ॥

दूतस्य भागकर्मणी ॥४।४।१२०॥

दूतस्य ६।१॥ भागकर्मणी १।२॥ *स०*—भागश्च कर्म च, भागकर्मणी, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् दूतशब्दाद् भागे कर्मणि चाभिधेये छन्दसि विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—दूतस्य भागः कर्म वा दूत्यम्, यत्तेऽग्ने दूत्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*दूतस्य*] दूत प्रतिपदिक से [*भागकर्मणी*] भाग और कर्म अभिधेय हों तो यत् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ दूतस्य षष्ठ्यन्त निर्देश से ही षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ दूत का भाग या कर्म दूत्य कहायेगा ॥

रक्षोयातूनां हननी ॥४।४।१२१॥

रक्षोयातूनाम् ६।३॥ हननी १।१॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ हन्यते यया सा हननी ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां रक्षस्, यातु इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हननीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—रक्षसां = हननी रक्षस्या तनूः । यातूनां हननी यातव्या ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*रक्षोयातूनाम्*] रक्षस् तथा यातु प्रातिपदिकों से [*हननी*] हननी अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ हनन किया जाता है जिसके द्वारा, वह हननी कहाती है । ३।३।११७ से करण में ल्युट् होकर ४।१।१५ से ङीप् हुआ है ॥ यहाँ भी निर्देश से ही षष्ठी विभक्ति का ग्रहण है ॥

रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये ॥४।४।१२२॥

रेव······भ्यः ५।३॥ प्रशस्ये ७।१॥ *स०*—रेवती० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः रेवती, जगती, हविष्या इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रशस्येऽर्थे छन्दसि विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ प्रशंसनं प्रशस्यम्, *कृत्यल्युटो०* (३।३।११३) इत्यनेन भावे क्यप् ॥ *उदा०*—यद्वो रेवती रेवत्यम् । यद्वो जगती जगत्यम् । यद्वो हविष्या हविष्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*रेव······भ्यः*] रेवती, जगती, तथा हविष्या प्रातिपदिकों से [*प्रशस्ये*] प्रशस्य अर्थ में वैदिक प्रयोग में यत् प्रत्यय होता है ॥ प्रत्ययार्थ की अनुकूलता से यहाँ षष्ठी समर्थ विभक्ति ली है ॥ प्रशस्य में क्यप् प्रत्यय *कृत्यल्युटो०* से भाव में हुआ है ॥ हविष्या यत् यहाँ यस्येति लोप करने के पश्चात् *हलो यमां यमि लोपः* (८।४।६३) से हविष्य के य का लोप भी विकल्प से हो जाता है, तब

हविष्+य=हविष्यः बनता है ॥ जब लोप नहीं होता तब हविष्ष्यः दो यकार होते हैं ॥

असुरस्य स्वम् ॥४।४।१२३॥

असुरस्य ६।१॥ स्वम् १।१॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थादसुरप्रातिपदिकात् स्वमित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—असुर्यं वा एतत्पात्रं, यच्चक्रधृतं कुलालकृतम् । असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः (यजु० ४०।९) ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*असुरस्य*] असुर प्रातिपदिक से [*स्वम्*] 'अपना' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, वेद विषय में ॥ यहाँ भी निर्देश से समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

यहाँ से '*असुरस्य स्वम्*' की अनुवृत्ति ४।४।१२४ तक जायेगी ॥

मायायामण् ॥४।४।१२४॥

मायायाम् ७।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—असुरस्य स्वम्, छन्दसि, यत् तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद-सुरप्रातिपदिकात् स्वकीयायां मायायामण् प्रत्ययो भवति, छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—असुरस्येयम् आसुरी माया, स्वधया कृतासि ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ असुर शब्द से वेदविषय में [*मायायाम्*] असुर की अपनी माया अभिधेय हो तो, [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ आसुरी में *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् हुआ है ॥

तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः ॥४।४।१२५॥

तद्वान् १।१॥ आसाम् ६।३॥ उपधानः १।१॥ मन्त्रः १।१॥ इति अ० ॥ इष्टकासु ७।३॥ लुक् १।१॥ च अ० ॥ मतोः ६।१॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ उपधी-यते=स्थाप्यते इष्टका येन स उपधानो मन्त्रः । तद्वानिति निर्देशादेव

प्रथमासमर्थविभक्तिः ॥ *अर्थः*—उपधानमन्त्रसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत्तदासामिति निर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, प्रकृत्यन्तर्गतस्य मतोश्च लुक् भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—वर्चः शब्दोऽस्मिन्नस्ति, स वर्चस्वान् मन्त्रः । वर्चस्वान् मतुबन्ता प्रकृतिः, ततो वर्चस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्य यत् प्रत्ययः, मतोश्च लुक् भूत्वा-वर्चस्या इष्टकाः, सहस्याः तेजस्याः ॥

भाषार्थः—जिस मन्त्र को बोलकर उपधान अर्थात् स्थापन (ईंटों का वेदी बनाने के लिये) किया जाये वह उपधान मन्त्र कहाता है ॥ [*उपधानो मन्त्रः*] उपधान मन्त्र समानाधिकरण प्रथमा समर्थ [*तद्वान्*] मतुबन्त प्रातिपदिक से [*आसाम्*] षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है, यदि षष्ठ्यर्थ से निर्दिष्ट [*इतीष्टकासु*] ईंटें ही हों तो [*च*] तथा [*मतोः*] मतुप् का [*लुक्*] लुक् भी हो जाता है वेद विषय में ॥ तद्वान् इस निर्देश से ही प्रथमा समर्थ विभक्ति ली है ॥ जिन मन्त्रों में वर्चस्, सहस् तेजस् आदि शब्द होंगे, वे मन्त्र वर्चस्वान्, सहस्वान् , तेजस्वान् आदि शब्दों से कहे जायेंगे, अर्थात् यहाँ *तदस्यास्त्यस्मिन्निति०* (५।२।९४) से मतुप् प्रत्यय हो जायेगा, सो ये सब मतुबन्त प्रकृतियाँ होंगी ॥ अब वर्चः शब्द जिस मन्त्र में है, ऐसे मन्त्र को बोलकर जब वेदि बनाने के लिये ईंटों का चयन किया जायेगा, तब वह मन्त्र उपधान मन्त्र कहायेगा, अतः वर्चस्वान् मन्त्र है उपधान मन्त्र इन ईंटों का इस अर्थ में वर्चस्वत् आदि शब्दों से प्रकृत सूत्र से यत् प्रत्यय तथा प्रकृति में से मतुप् भाग का, अर्थात् वर्चस्वत् में वत् का लुक् होकर बहुवचन में वर्चस्याः तेजस्याः सहस्याः बनेगा । वर्चस्याः आदि शब्द उन चयन की जाने वाली ईंटों के वाचक होंगे जो वर्चः शब्द वाले मन्त्रों से चयन कर्म में रखी जाती हैं ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ४।४।१२७ तक जायेगी ॥

अश्विमानण् ॥४।४।१२६॥

अश्विमान् १।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—उपधानमन्त्रसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाद् मतुबन्ताद् अश्विमान् इति प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति यत् तत् षष्ठ्यन्तेन निर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत्ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति छन्दसि विषये ॥ पूर्वस्यापवादः ॥ उदा०—अश्विमान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानाम् = आश्विनीरुपदधाति ॥

भाषार्थः—उपधान मन्त्र समानाधिकरण वाले प्रथमासमर्थ मतुबन्त [*अश्विमान्*] अश्विमान् प्रातिपदिक में षष्ठ्यर्थ से इष्टका अभिधेय हों तो [*अण्*] अण् प्रत्यय तथा मतुप् का लुक् होता है, वेद विषय में ॥ अश्वि शब्द जिसमें है वह अश्विमान् मन्त्र हुआ, वह है उपधान मन्त्र जिनका इस अर्थ में अण् प्रत्यय होकर तथा मतुप् का लुक् होकर आश्विनी बना है। *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् हुआ है ॥ पूर्व सूत्र से यत् प्राप्त था उसका यह अपवाद है ॥

वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ॥४।४।१२७॥

वयस्यासु ७।३॥ मूर्ध्नः ५।१॥ मतुप् १।१॥ *अनु०* - तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उपधानमन्त्रसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् मतुबन्तात् मूर्धन् इति प्रातिपदिकाद् वयस्यास्विष्टकास्वभिधेयासु छन्दसि विषये मतुप् प्रत्ययो भवति, लुक् च मतोः ॥ उदा०—मूर्धन्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां = मूर्धन्वत्य इष्टकाः ॥

भाषार्थः—उपधान मन्त्र समानाधिकरण प्रथमा समर्थ मतुबन्त [*मूर्ध्नः*] मूर्धन् प्रातिपदिक से [*वयस्यासु*] वयस्या ईंटें, अर्थात् वयस्वान् है उपधान मन्त्र जिन ईंटों का ऐसी ईंटों के अभिधेय होने पर वेद विषय में [*मतुप्*] मतुप् प्रत्यय तथा प्रकृत्यन्तर्गत जो मतुप् उसका लुक् हो जाता है॥ वयस् शब्द जिस मन्त्र में है, वह वयस्वान् मन्त्र होगा, वह वयस्वान् मन्त्र है उपधानमन्त्र जिन ईंटों का, वे ईंटें वयस्या इष्टकाः कही जायेंगी, ४।४।१२५ से यत् हो जायेगा। अब जिस उपधान मन्त्र में वयस् शब्द तथा मूर्धन् शब्द दोनों विद्यमान हों, वह मन्त्र वयस्वान् तथा मूर्धन्वान् दोनों कहा जायेगा, तो जिस प्रकार वयस्वान् शब्द से यत् होता है उसी प्रकार मूर्धन्वान् शब्द से भी यत् प्राप्त था अतः

मतुप् विधान करते हैं ॥ जब मूर्धन् तथा वयस् शब्द एक ही मन्त्र में होंगे तभी मूर्धन्वती शब्द की वयस्या इष्टका अभिधेय हो सकेगी ॥ मूर्धन्वान् मतुप् यहाँ प्रकृतिगत मतुप् का लुक् होकर मूर्धन् मतुप् रहा मतुप् के म को व *मादुपधायाश्च०* (८।२।९) से हुआ है, शेष सिद्धि प्रथम भाग पृ० ६७८ परि० १।१।५ के चितवान् के समान जानें ॥ यह सूत्र यत् का (४।४।१२५) अपवाद है ॥

मत्वर्थे मासतन्वोः ॥४।४।१२८॥

मत्वर्थे ७।१॥ मासतन्वोः ७।२॥ *स०*—मास० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ यस्मिन्नर्थेऽर्थात् *तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्* (५।२।९४) इत्यनेन षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च मतुब्विहितस्तस्मिन्नर्थेऽत्र यत् विधीयते ॥ *अर्थः*—मासतन्वोरन्यपदार्थयोः प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् मत्वर्थे छन्दसि विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मासे—नभांसि विद्यन्ते यस्मिन् मासे स नभस्यो मासः, सहस्यः, तपस्यः । तन्वाम्—ओजोऽस्यां विद्यते ओजस्या तनूः, तेजस्या तनूः ।

भाषार्थः—[*मासतन्वोः*] मास और तनू प्रत्ययार्थ विशेषण हों तो प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*मत्वर्थे*] मतुप् के अर्थ में अर्थात् *तदस्यास्त्यस्मिन्निति०* इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है वेदविषय में ॥ जिस अर्थ में ५।२।९४ के अधिकार में मतुप् कहा है, उसी अर्थ में यहाँ छन्द विषय में यत् कहा जाता है ॥ *तदस्या०* (५।२।९४) में तत् प्रथमा समर्थ कहा है, अतः यहाँ भी प्रथमा समर्थ विभक्ति ली गई है ।

यहाँ से *मत्वर्थे* की अनुवृत्ति ४।४।१३२ तक तथा '*मासतन्वोः*' की अनुवृत्ति ४।४।११९ तक जायेगी ॥

मधोर्ञ च ॥४।४।१२९॥

मधोः ५।१॥ ञ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—मत्वर्थे मासतन्वोः, छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् मधोः प्रातिपदिकात् मत्वर्थे मासतन्वोः प्रत्यया-

र्थयोर्ञः प्रत्ययो भवति यत् च ॥ उदा०—मधु अस्मिन्नस्ति माधवो मासः, मधव्यः । तन्वाम्—माधवा, मधव्या ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*मधोः*] मधु प्रातिपदिक से मत्वर्थ में मास और तनू प्रत्ययार्थ विशेषण हों तो [*ञ*] ञ [*च*] और यत् प्रत्यय होते हैं ॥

ओजसोऽहनि यत्खौ ॥४।४।१३०॥

ओजसः ५।१॥ अहनि ७।१॥ यत्खौ १।२॥ *स०*—यत् च खश्च, यत्खौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—मत्वर्थे, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ओजःप्रातिपदिकात् मत्वर्थेऽहन्यभिधेये यत्खौ प्रत्ययौ भवतश्छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—ओजस्यमहः, ओजसीनमहः ॥

भाषार्थः—[*ओजसः*] ओजस् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*यत्खवौ*] यत् और ख प्रत्यय होते हैं, [*अहनि*] अहन्=दिन अभिधेय हो तो वेद विषय में ॥

वेशोयशआदेर्भगाद्यल् ॥४।४।१३१॥

वेशोयशआदेः ५।१॥ भगात् ५।१॥ यल् १।१॥ *स०*—वेशश्च यशश्च, वेशोयशसी, वेशोयशसी आदौ यस्य, वेशो····दिः, तस्मात्·· द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—मत्वर्थे, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वेशोयशआदेः भगान्तात् प्रातिपदिकात् मत्वर्थे यल् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—वेशो भगो वा विद्यते यस्य स, वेशोभग्यः, यशोभग्यः ॥

भाषार्थः—[*वेशोयशआदेः*] वेशस् और यशस् आदि में हैं जिसके, ऐसे [*भगात्*] भग अन्त वाले प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*यल्*] यल् प्रत्यय होता है, वेद विषय में ॥

यहाँ से '*वेशोयशआदेर्भगात्*' की अनुवृत्ति ४।४।१३२ तक जायेगी ॥

ख च ॥४।४।१३२॥

ख लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—वेशोयशआदेर्भगात्, मत्वर्थे, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—वेशोयशआदेः भगान्तात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् मत्वर्थे खः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ।। *उदा०*—वेशोभगीनः, यशोभगीनः ।।

भाषार्थः—वेशस् यशस् आदि वाले भगान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*ख*] ख प्रत्यय [च] भी होता है, वेद विषय में ।।

यहाँ से '*ख*' की अनुवृत्ति ४।४।१३३ तक जायेगी ।।

पूर्वैः कृतमिनियौ च ।।४।४।१३३।।

पूर्वैः ३।३।। कृतम् १।१।। इनियौ १।२।। *स०*—इनि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*—ख, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् पूर्वशब्दात् कृतमित्येतस्मिन्नर्थे इनि, य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ख च, छन्दसि विषये ।। *उदा०*—पूर्वैः कृतः पन्थाः, तैः पथिभिः पूर्विणैः, पूर्व्यैः, पूर्वीणैः ।।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*पूर्वैः*] पूर्व प्रातिपदिक से [*कृतम्*] 'किया हुआ' इस अर्थ में [*इनियौ*] इनि और य प्रत्यय होते हैं ।।

यहाँ भी निर्देश से तृतीया समर्थ विभक्ति ली है ।।

अद्भिः संस्कृतम् ।।४।४।१३४।।

अद्भिः ३।३।। संस्कृतम् १।१।। *अनु०*—छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थाद् अप्-प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, छन्दसि विषये *उदा०*—अप्यं हविः ।।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*अद्भिः*] अप् प्रातिपदिक से [*संस्कृतम्*] संस्कृत अर्थ में यत् प्रत्यय होता है वेद विषय में ।। यहाँ भी निर्देश से समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ।।

सहस्रेण सम्मितौ घः ।।४।४।१३५।।

सहस्रेण ३।१।। सम्मितौ ७।१।। घः १।१।। *अनु०*—छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् सहस्र-प्रातिपदिकात् सम्मितावित्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये घः प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—सहस्रेण सम्मितिः = सम्मितः सहस्रियोऽग्निः ।।

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*सहस्रेण*] सहस्र प्रातिपदिक से [*सम्मितौ*] सम्मिति अर्थात् सम्मित = तुल्य अभिधेय हो तो [*घः*] घ प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी निर्देश से ही तृतीया समर्थ विभक्ति ली है ॥

यहाँ से '*सहस्रेण घः*' की अनुवृत्ति ४।४।१३६ तक जायेगी ॥

मतौ च ॥४।४।१३६॥

मतौ ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—सहस्रेण, घः, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात्, सहस्र-प्रातिपदिकात् मत्वर्थे घः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—सहस्रमस्य विद्यते सहस्रियः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ सहस्र प्रातिपदिक से [*मतौ*] मत्वर्थ में [*च*] भी घ प्रत्यय होता है वेद विषय में ॥ *तदस्यास्त्य०* (५।२।९४) में प्रथमा समर्थ कहा है, अतः यहाँ भी प्रथमा समर्थ ले लिया है ॥ *तपःसहस्राभ्यां विनीनी, अण् च* (५।२।१०२,१०३) इन दो सूत्रों में सहस्र शब्द से मत्वर्थ में इनि और अण् प्रत्यय कहे हैं, उनका यह अपवाद है ॥

सोममर्हति यः ॥४।४।१३७॥

सोमम् २।१॥ अर्हति क्रिया० ॥ यः १।१॥ *अनु०*—छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् सोम-शब्दाद् अर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सोममर्हन्ति सोम्याः ब्राह्मणाः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*सोमम्*] सोम प्रातिपदिक से [*अर्हति*] अर्हति इस अर्थ में [*यः*] य प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी सोमम् निर्देश से द्वितीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

यहाँ से '*सोमम् यः*' की अनुवृत्ति ४।४।१३८ तक जायेगी ॥

मये च ॥४।४।१३८॥

मये ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—सोमम्, यः, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सोमशब्दात् मयेऽर्थे यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यः, सोमादा-गतं सोम्यम्, सोमः प्रकृतः सोम्यः ॥

भाषार्थः—सोम शब्द से [*मये*] मयट् के अर्थ में [*च*] भी अर्थात् जिन जिन अर्थों में मयट् प्रत्यय कहा है, उन उन अर्थों में 'य' प्रत्यय होता है ॥ *मयड्वैतयोर्भाषा०* (४।३।१४१) से विकार और अवयव अर्थों में *मयट् च* (४।३।८२) से आगत अर्थ में तथा *तत्प्रकृतवचने मयट्* (५।४।२१) से प्रकृत = प्राचुर्य अर्थों में मयट् कहा है, सो इन सब अर्थों में यहाँ सोम शब्द से य होगा ॥ समर्थ विभक्ति का योग जहाँ जहाँ जिस समर्थ से मयट् कहा है उसी प्रकार यहाँ भी होगा ॥

यहाँ से '*मये*' की अनुवृत्ति ४।४।१४० तक जायेगी ॥

मधोः ॥४।४।१३९॥

मधोः ५।१॥ *अनु०*—मये, छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मधुप्रातिपदिकात् मयेऽर्थे यत् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—मधव्यान् स्तोकान् ॥

भाषार्थः—[*मधोः*] मधुप्रातिपदिक से मयट् के अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, वेद विषय में ॥ समर्थ विभक्तियों का योग पूर्ववत् होगा ॥ मधु को यत् परे रहते *ओर्गुण.* (६।४।१४६) से गुण तथा *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से वान्त आदेश होगा ॥

वसोः समूहे च ॥४।४।१४०॥

वसोः ५।१॥ समूहे ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—मये, छन्दसि, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वसुप्रातिपदिकात् समूहे वाच्ये मयेऽर्थे च यत् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—वसोः समूहो विकारोऽवयवादिर्वा = वसव्यः ॥

भाषार्थः—[*वसोः*] वसु प्रातिपादिक से [*समूहे*] समूह [*च*] तथा मयट् के अर्थ में यत् प्रत्यय होता है वेद विषय में ॥ पूर्ववत् सिद्धि जानें ॥

नक्षत्राद् घः ॥४।४।१४१॥

नक्षत्रात् ५।१॥ घः १।१॥ *अनु०*—छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नक्षत्रशब्दाद् घः प्रत्ययो भवति

छन्दसि विषये ॥ अर्थविशेषस्य विधानात् स्वार्थे प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नक्षत्राण्येव नक्षत्रियाणि ते नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा ॥

भाषार्थः—[*नक्षत्रात्*] नक्षत्रप्रातिपदिक से वेद विषय में [*घः*] घः प्रत्यय होता है ॥ विशेष अर्थ का विधान न होने से यहाँ स्वार्थ में प्रत्यय होता है ॥

सर्वदेवात्तातिल् ॥४।४।१४२॥

सर्वदेवात् ५।१॥ तातिल् १।१॥ *स०*—सर्वश्च देवश्च सर्वदेवम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सर्वदेवप्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि विषये तातिल् प्रत्ययो भवति। अयमपि स्वार्थे प्रत्ययः ॥ *उदा०*—सर्वतातिः देवताति ॥

भाषार्थः—[*सर्वदेवात्*] सर्व और देव प्रातिपदिकों से वेद विषय में स्वार्थ में [*तातिल्*] तातिल् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तातिल्*' की अनुवृत्ति ४।४।१४४ तक जायेगी ॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥४।४।१४३॥

शिव.....स्य ६।१॥ करे ७।१॥ *स०*—शिव० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तातिल्, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शिव, शम्, अरिष्ट इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कर इत्येतस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ करोतीति करः ॥ *उदा०*—शिवं करोति शिवतातिः, शंतातिः, अरिष्टतातिः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*शिव.....स्य*] शिव, शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से [*करे*] 'करने वाला' इस अर्थ में स्वार्थ में तातिल् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी निर्देश से ही षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

यहाँ से '*शिवशमरिष्टस्य*' की अनुवृत्ति ४।४।१४४ तक जायेगी ॥

भावे च ॥४।४।१४४॥

भावे ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—शिवशमरिष्टस्य, तातिल्, छन्दसि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः शिव, शम्, अरिष्ट इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः छन्दसि विषये भावेऽर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शिवस्य भावः = शिवतातिः, शंतातिः, अरिष्टतातिः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ शिव, शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से वेद विषय में [*भावे*] भाव अर्थ में [च] भी तातिल् प्रत्यय होता है ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

प्राक् क्रीताच्छः ॥५।१।१॥

प्राक् अ० ॥ क्रीतात् ५।१॥ छः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इतोऽग्रे तेन क्रीतमित्येतस्मात् प्राक् येऽर्था वक्ष्यन्ते तेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ *उदा०*—वक्ष्यति तस्मै हितम्, तत्र छः प्रत्ययो भवति, वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्। करभीय उष्ट्रः ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे [*प्राक् क्रीतात्*] *तेन क्रीतम्* (५।१।३६) से पहले पहले जितने अर्थ कहे हैं, उन सब अर्थों में [छः] छ प्रत्यय होता है, ऐसा अधिकार जानना चाहिये ॥ अपवाद विषयों को छोड़कर सर्वत्र छः की प्रवृत्ति होती जायेगी ॥

विशेषः—यहाँ भी अर्थ की अपेक्षा से 'क्रीतात्' निर्देश है शब्द की अपेक्षा से नहीं, अतः क्रीत अर्थ के आरम्भ होने से पूर्व पूर्व तक छ का अधिकार जायेगा। यद्यपि क्रीत अर्थ का निर्देश ५।१।३९ में किया है तथापि *प्राग्वतेष्ठक्* (५।१।१८) से क्रीताद्यर्थों में प्रत्यय विशेषों का विधान करने से छ प्रत्यय का अधिकार ५।१।१७ तक ही समझना चाहिये ॥ यहाँ आगे आगे औत्सर्गिक सूत्रों में केवल छ की अनुवृत्ति तथा अन्यत्र प्राक् क्रीतात् की अनुवृत्ति दिखाई जायेगी ऐसा जानें ॥

उगवादिभ्यो यत् ॥५।१।२॥

उगवादिभ्यः ५।३॥ यत् १।१॥ *स०*—गौरादिर्येषां ते गवादयः, उश्च गवादयश्च उग॰॰यस्तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्राक् क्रीतात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उवर्णान्तात् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उवर्णान्तात्—शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु, पिचव्यः

कार्पासः, कमण्डलव्या मृत्तिका। गवादिभ्यः—गवे हितं = गव्यम् हविष्यम् ॥

भाषार्थः—[*उगवादिभ्यः*] उवर्णान्त तथा गवादि गणपठित प्रातिपदिकों से प्राक्क्रीतीय अर्थात् क्रीत अर्थ से पहले पहले जितने अर्थ कहे हैं उन सब अर्थों में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥ छ का अपवाद यह सूत्र है ॥ शंकु कहते हैं कील = खूँटी को, उसके लिये हित अर्थात् शंकु बनाने के लिए जो उपयोगी लकड़ी वह शंकव्य कही जायेगी। इसी प्रकार पिचु रुई को कहते हैं, पिचु = रुई के लिये जो हित अच्छा कपास वह पिचव्य कहा जायेगा, ऐसे ही औरों में जानें ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।१।४ तक जायेगी ॥

कम्बलाच्च संज्ञायाम् ॥५।१।३॥

कम्बलात् ५।१॥ च अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—यत्, प्राक्क्रीतात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कम्बलात् प्रातिपदिकात् प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु संज्ञायां विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कम्बलाय हितं कम्बल्यमूर्णापलशतम् ॥

भाषार्थः—[*कम्बलात्*] कम्बल प्रातिपदिक से [*च*] भी प्राक्क्रीतीय अर्थों में [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय होने पर यत् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र छ का अपवाद है ॥ कम्बल के लिए हित उपयोगी जो ऊन वह कम्बल्या कही जायेगी, परन्तु संज्ञा का निर्देश होने से १०० पल परिमाण वाली ऊन ही कम्बल्या कहाती है ॥

विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥५।१।४॥

विभाषा १।१॥ हवि······भ्यः ५।३॥ *स०*—अपूप आदिर्येषां तेऽपूपादयः, हविश्च अपूपादयश्च, हविरपूपादयः, तेभ्यः······बहुव्रीहिगर्भेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—यत्, प्राक्क्रीतात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयं दधि, पुरोडाश्यास्तण्डुलाः पुरोडाशीयाः। अपूपादिभ्यः—अपूप्यम् अपूपीयम्, तण्डुल्यम् तण्डुलीयम् ॥

भाषार्थः—[*हवि······भ्यः*] हवि विशेषवाची, तथा अपूपादि प्रातिपदिकों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में [*विभाषा*] विकल्प से यत् प्रत्यय होता है पक्ष में औत्सर्गिक छ होगा ।। आमीक्षा और पुरोडाश के लिए जो दही चावल, वह आमीक्ष्य, पुरोडाश्य कहे जायेंगे। उबलते हुए दूध में दही डालने से दूध का जो घना भाग अलग हो जाता है उसे आमिक्षा कहते हैं उसे बनाने के लिए जो उचित परिमाण वाला दही होता है वह आमिक्ष्य कहाता है । आमिक्षा और पुराडाश की हवि यज्ञ में दी जाती है, अतः यह हवि विशेषवाची शब्द हैं ।।

तस्मै हितम् ।।५।१।५।।

तस्मै ४।१।। हितम् १।१।। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकात् हितमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्, रोगिणो हितं रोगीयमौषधम्, गव्यम्, हविष्यम् ।।

भाषार्थः—[*तस्मै*] चतुर्थी समर्थ प्रातिपदिक से [*हितम्*] हित अर्थ में यथाविहित = जिससे जो कह आये हैं, वे प्रत्यय होते हैं ।।

यहाँ से '*तस्मै हितम्*' की अनुवृत्ति ५।१।१५ तक जायेगी ।।

शरीरावयवाद्यत् ।।५।१।६।।

शरीरावयवात् ५।१।। यत् १।१।। *स०*—शरीरस्य अवयवः, शरीरावयवः, तस्मात्······षष्ठीतत्पुरुषः ।। *अनु०*—तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थात् शरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकात् हितमित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—दन्तेभ्यो हितं = दन्त्यम् औषधम्, कण्ठ्यो रसः, ओष्ठ्यम्, नाभ्यम्, नस्यम् ।।

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*शरीरावयवात्*] शरीर के अवयववाची प्रातिपदिकों से हित अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ।। छ का अपवाद यह सूत्र है ।। *पद्दन्नोमास्०* (६।१।६१) सूत्र के *नस् नासिकाया यत्तस्क्षुद्रेषु* वार्तिक से नासिका को नस् आदेश होकर नस्यम् बना है ।।

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।१।७ तक जायेगी ।।

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ॥५।१।७॥

खल·····ह्मणः ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—खल० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०* - यत् , तस्मै हितम् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थेभ्यः खल, यव, माष, तिल, वृष, ब्रह्मन् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हितमित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—खलाय हितं = खल्यम् , यव्यम्, माष्यम्, तिल्यम्, वृष्यम्, ब्रह्मण्यम् ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*खल·····णः*] खल, यव आदि प्रातिपदिकों से [च] भी हित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥

अजाविभ्यां थ्यन् ॥५।१।८॥

अजाविभ्याम् ५।२॥ थ्यन् १।१॥ *स०*—अजा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्मै हितम् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थाभ्याम् अज, अवि इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्येतस्मिन्नर्थे थ्यन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अजथ्या यूथिः, अविथ्या ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*अजाविभ्याम्*] अज और अवि प्रातिपदिकों से हित इस अर्थ में [*थ्यन्*] थ्यन् प्रत्यय होता है ॥ अजः = बकरे तथा अविः = भेड़ के वाचक शब्द हैं ॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ॥५।१।९॥

आत्म·····त् ५।१॥ खः १।१॥ *स०*—भोगशब्द उत्तरपदं यस्य तत् भोगोत्तरपदं, बहुव्रीहिः । आत्मा च विश्वजनश्च, भोगोत्तरपदञ्च, आत्मन्·····पदं, तस्मात्·····समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्मै हितम् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थाभ्यां आत्मन् विश्वजन इत्येताभ्यां भोगोत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात् हितमित्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आत्मने हितमात्मनीनम् , विश्वजनीनम् । भोगोत्तरपदात्—मातृभोगीणः, पितृभोगीणः ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*आत्म·····दात्*] आत्मन्, विश्वजन तथा भोग उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से हित अर्थ में [*खः*] ख प्रत्यय होता है ॥ मातृभोगीणः आदि में *पूर्वपदात् संज्ञायामगः* (८।४।३) से णत्व हुआ है ॥ जो बात अपने हित के लिये हो वह आत्मनीनः कहायेगी इसी प्रकार अन्यत्र भी जानें ॥ यह भी छ का अपवाद है ॥

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ॥५।१।१०॥

सर्वपुरुषाभ्याम् ५।२॥ णढञौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थाभ्यां सर्वपुरुषप्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं णढञौ प्रत्ययौ भवतः, हितमित्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—सर्वस्मै हितं = सार्वम्, पौरुषेयम् ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*सर्वपुरुषाभ्याम्*] सर्व तथा पुरुष प्रातिपदिकों से हित अर्थ में यथासङ्ख्य करके [*णढञौ*] ण, तथा ढञ् प्रत्यय होते हैं ॥ सर्व+ण = सार्वम्, । पुरुष+ढञ् = पुरुष् एय = पौरुषेय बन गया है ॥

माणवचरकाभ्यां खञ् ॥५।१।११॥

माण·····भ्याम् ५।२॥ खञ् १।१॥ *स०*—माण० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थाभ्यां माणव, चरक इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां हितमित्येतस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—माणवाय हितं माणवीनम्, चारकीणम् ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*माण·····भ्याम्*] माणव, चरक प्रातिपदिकों से हित अर्थ में [*खञ्*] खञ् प्रत्यय होता है ॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥५।१।१२॥

तदर्थम् १।१॥ विकृतेः ५।१॥ प्रकृतौ ७।१॥ *स०*—तस्मै इदं तदर्थं, चतुर्थीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विकृतिवाचिनश्चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकात्

प्रकृतावभिधेयायां यथाविहितं प्रत्ययो भवति, हितमित्येतस्मिन्नर्थे यदि सा प्रकृतिः विकृत्यर्था भवेत् ॥ *उदा०*—अङ्गारेभ्यो हितानि एतानि काष्ठानि, अङ्गारीयाणि काष्ठानि। प्राकारीया इष्टकाः, शङ्कव्यं दारु, पिचव्यः कार्पासः ॥

भाषार्थ.—चतुर्थी समर्थ [*विकृतेः*] विकृतिवाची प्रातिपदिक से [*प्रकृतौ*] प्रकृति = कारण अभिधेय हो तो, यथाविहित प्रत्यय होता है, हित अर्थ में, यदि वह प्रकृति [*तदर्थम्*] विकृति के लिये हो तो ॥

जो किसी चीज का कारण हो वह प्रकृति होती है, उसका जो विकार वह विकृति होती है। प्रकृत उदाहरण में अङ्गार काष्ठ की विकृति है, तथा काष्ठ प्रकृति है, सो अङ्गार विकृतिवाची प्रातिपदिक से काष्ठ प्रकृति अभिधेय होने पर छः प्रत्यय हो गया है। अङ्गार बनाने के लिये = तदर्थ जो काष्ठ वह अङ्गारीय कहायेंगे। इसी प्रकार प्राकारार्थ जो ईंटे वह प्राकारीया इष्टकाः कही जायेंगी ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।१५ तक जायेगी ॥

छदिरुपधिबलेर्ढञ् ॥५।१।१३॥

छदिरुपधिबलेः ५।१॥ ढञ् १।१॥ *स०*—छदि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ, तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ.*—चतुर्थीसमर्थेभ्यश्छदि, उपधि, बलि, इत्येतेभ्यो विकृतिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तदर्थं प्रकृतावभिधेयायां ढञ् प्रत्ययो भवति हितमर्थे ॥ *उदा०*—छदिभ्यो हितानि एतानि तृणानि = छादिषेयाणि तृणानि, औपधेयं दारु, बालेयास्तण्डुलाः ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ विकृतिवाची [*छदिरुपधिबलेः*] छदि उपधि और बलि, प्रातिपदिकों से तदर्थ प्रकृति = उसके विकृति के लिए जो प्रकृति अभिधेय हो तो [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है हित अर्थ में ॥ पूर्व सूत्र के समान तदर्थ प्रकृति की व्याख्या सर्वत्र समझें ॥

ऋषभोपानहोर्ञ्यः ॥५।१।१४॥

ऋषभोपानहोः ६।२॥ ञ्यः १।१॥ *स०*—ऋषभश्च उपानच्च, ऋष॰॰हौ, तयोः॰॰॰॰॰इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ,

तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विकृतिवाचिभ्यां चतुर्थीसमर्थाभ्याम् ऋषभ, उपानह् प्रातिपदिकाभ्यां तदर्थं प्रकृतौ इत्येतस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति हितमर्थे ॥ *उदा०*—ऋषभाय हितम् आर्षभ्यो वत्सः, औपानह्यो मुञ्जः ॥

भाषार्थः—विकृतिवाची चतुर्थी समर्थ [*ऋ*...*होः*] ऋषभ, और उपानह् प्रातिपदिकों से तदर्थ प्रकृति अभिधेय होने पर [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है हित अर्थ में ॥

चर्मणोऽञ् ॥५।१।१५॥

चर्मणः ६।१॥ अञ् १।१॥ *अनु०*—तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ, तस्मै हितम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थात् चर्मणो या विकृतिस्तद्वाचिनः प्रातिपदिकाद् अञ् प्रत्ययो भवति, तदर्थं प्रकृतौ हितमित्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—वरध्राय हितं = वारध्रं चर्म, वारत्रं चर्म ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*चर्मणः*] चर्म का बनी हुई जो विकृति उसके वाचक प्रातिपदिक से तदर्थ प्रकृति अभिधेय होने पर हित अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥

वरध्र कहते हैं चमड़े के बने दस्ताने को, तथा वरत्र हाथी के कक्ष-स्थित रज्जु को कहते हैं, अतः यह दोनों चमड़े के विकारवाची प्राति-पदिक हैं, सो इनसे अञ् प्रत्यय हो गया है ॥

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति ॥५।१।१६॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ तत् १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ स्यात् क्रिया० ॥ इति अ० ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च यथा-विहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत् प्रथमासमर्थं स्यात् चेत् तद्भवति ॥ *उदा०*—षष्ठ्यर्थे—प्राकार आसामिष्टकानां स्यात् प्राकारीया इष्टकाः, प्रासादीयं दारु । सप्तम्यर्थे—प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात् प्राकारीया भूमिः, प्रासादीया भूमिः ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में तथा [*तत्*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में भी

यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक [*स्यादिति*] स्यात् क्रिया के साथ समानाधिकरण वाला हो तो ॥ प्राकार बनना जिन ईंटों का सम्भव हो, अर्थात् जिनसे प्राकार बनाया जा सकती हो, ऐसी ईंटों को प्राकारीया इष्टका कहेंगे इसी प्रकार प्राकार जिस भूमि में बनाया जा सके वह प्राकारीया भूमि होगी ॥

यहाँ से '*तदस्य तदस्मिन् स्यादिति*' की अनुवृत्ति ५।१।१७ तक जायेगी ॥

परिखाया ढञ् ॥५।१।१७॥

परिखायाः ५।१॥ ढञ् १।१॥ अनु०—तदस्य तदस्मिन् स्यादिति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् परिखाप्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च ढञ् प्रत्ययो भवति, यतत् प्रथमासमर्थं स्यात् चेत् तद् भवति ॥ *उदा०*—परिखा स्यादस्यां भूम्यां = पारिखेयी भूमिः ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*परिखायाः*] परिखा प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ सप्तम्यर्थ में सम्भव अर्थ को कहने में [*ढञ्*] ढञ् प्रत्यय होता है ॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥५।१।१८॥

प्राक् अ० ॥ वतेः ५।१॥ ठञ् १।१॥ अनु०—तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इतोऽग्रे तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः (५।१।११४) इत्येतस्मात् प्राक् येऽर्था वक्ष्यन्ते तेषु सामान्येन ठञ् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ वक्ष्यति *पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति* (५।१।७१) तत्र ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पारायणं वर्त्तयति पारायणिकः, तौरायणिकः, चान्द्रायणिकः ॥

भाषार्थः—[*वतेः*] तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः से [*प्राक्*] पहले पहले जितने अर्थ कहे हैं उन सब अर्थों में सामान्य करके [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है, ऐसा अधिकार जानना चाहिये। वतेः से *तेन तुल्यं०* (५।१।११४) सूत्र लक्षित है। यहाँ भी अर्थ प्रधान निर्देश होने से, वति अर्थ के आरम्भ होने से पहले पहले तक इसका अधिकार समझा जायेगा ॥

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् ॥५।१।१९॥

आ अ० ॥ अर्हात् ५।१॥ अगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणात् ५।१॥ ठक् १।१॥ स०—गोपुच्छञ्च संख्या च परिमाणञ्च, गोपु·····माणम्, न गोपु·····म्, अगो·····णम्, तस्मात्·····द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इतोऽग्रे तदर्हति (५।१।६२) अर्थपर्यन्तं येऽर्था वक्ष्यन्ते तेषु ठक् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः, गोपुच्छसंख्यापरिमाणवाचिशब्दान् वर्जयित्वा॥ वक्ष्यति तेन क्रीतम् (५।१।३६) तत्र ठक् प्रत्ययो भवति। निष्केण क्रीतं = नैष्किकम्, पाणिकम् ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे [*आर्हात्*] अर्हति अर्थ पर्यन्त जितने अर्थ कहे हैं, उन सब अर्थों में सामान्य करके [ठक्] ठक् प्रत्यय होता है, यह अधिकार जानना चाहिये [*अगोपु·····णात्*] गोपुच्छ संख्या तथा परिमाणवाची शब्दों को छोड़ कर॥ *प्राग्वतेष्ठञ्* के अधिकार के बीच में ही ठक् का अधिकार कर दिया है सो यह उसका अपवाद है॥ *आर्हाद-गोपु०* में आ + अर्हात् आङ् का आ मिला है। यहाँ आङ् अभिविधि में है सो आर्हात् का अर्थ होगा तदर्हति अर्थ (अधिकार) तक। तदर्हति अधिकार ५।१।७० तक जाता है, सो वहीं तक ठक् का अधिकार भी जायेगा ऐसा जाने। अभिविधि अर्थ में आङ् करने से यह लाभ होगा॥ ठञ् और ठक् में स्वर का ही भेद है। गोपुच्छादियों से ठक् का निषेध हो जाने से आगे आगे सर्वत्र गोपुच्छादियों से *प्राग्वतेष्ठञ्* से ठञ् ही हुआ करेगा। शेष में अपवाद विषयों को छोड़कर ठक्, तदर्हति अर्थ के अधिकार पर्यन्त होगा, इसके पश्चात् ठञ् होगा॥

असमासे निष्कादिभ्यः ॥५।१।२०॥

असमासे ७।१॥ निष्कादिभ्यः ५।३॥ स०—निष्क आदिर्येषां ते निष्कादयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः॥ न समासः असमासस्तस्मिन्····· नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—आर्हात्, ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—निष्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽसमासे ठक् प्रत्ययो भवत्यार्हीयेष्वर्थेषु॥ ठञोऽपवादः॥ उदा०—निष्केण क्रीतं नैष्किकं, पाणिकम्, पादिकम्, माषिकम्॥

भाषार्थः—[*निष्कादिभ्यः*] निष्कादि प्रातिपदिक जब [*असमासे*] समास में वर्तमान न हों तब उनसे आर्हीय = तदर्हति अर्थ पर्यन्त सारे अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र ठञ् का अपवाद है ॥

शताच्च ठन्यतावशते ॥५।१।२१॥

शतात् ५।१॥ च अ० ॥ ठन्यतौ १।२॥ अशते ७।१॥ *स०*—ठन्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। अशते इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शतप्रातिपदिकात् ठन्यतौ प्रत्ययौ भवतः, अशतेऽभिधेय आर्हीयेष्वर्थेषु ॥ *उदा०*—शतेन क्रीतं शतिकम्, शत्यम् ॥

भाषार्थः—[*शतात्*] शत प्रातिपदिक से, आर्हीय अर्थों में [*ठन्यतौ*] ठन् और यत् प्रत्यय होते हैं यदि [*अशते*] सौ अभिधेय न हों तो ॥

सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥५।१।२२॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ अतिशदन्तायाः ५।१॥ कन् १।१॥ *स०*—तिश्च शच्च, तिशतौ तिशतावन्तावस्याः, सा (संख्या) तिशदन्ता, द्वन्द्वगर्भ-बहुव्रीहिः। न तिशदन्ता अतिशदन्ता, तस्याः······नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु*ः—आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अत्यन्ताया अशदन्तायाश्च सङ्ख्याया कन् प्रत्ययो भवत्यार्हीयेष्वर्थेषु ॥ *उदा०*—पञ्चभिः क्रीतः = पञ्चकः, दशकः, बहुकः, गणकः ॥

भाषार्थः—[*अतिशदन्तायाः*] ति शब्द अन्त वाली तथा शत् शब्द अन्त वाली सङ्ख्या को छोड़कर जो और [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिक हैं, उनसे [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है आर्हीय अर्थों में ॥ *बहुगणवतु०* (१।१।२२) से बहु तथा गण की सङ्ख्या संज्ञा है ॥

यहाँ से 'कन्' की अनुवृत्ति ५।१।२३ तक जायेगी ॥

वतोरिड्वा ॥५।१।२३॥

वतोः ५।१॥ इट् १।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—कन्, आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वत्वन्तात् सङ्ख्यावा-

चिनः प्रातिपदिकाद् आर्हीयेष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति, तस्य च कनो वा इडागमो भवति ।। *उदा०*—तावता क्रीतः तावतिकः, तावत्कः । यावतिकः, यावत्कः ।।

भाषार्थः—[*वतोः*] वत्वन्त जो सङ्ख्यावाची प्रातिपदिक उनसे कन् प्रत्यय तथा कन् प्रत्यय को [*इट्*] इट् का आगम [*वा*] विकल्प से होता है ।। *आद्यन्तौ टकितौ* से कन् के आदि में इट् बैठता है ।। *बहुगण०* (१।१।२२) से वत्वन्त प्रातिपदिक की संख्या संज्ञा है ही सो सङ्ख्या संज्ञा होने से पूर्व सूत्र से कन् प्रत्यय सिद्ध ही था, पुनः उस कन् को इट् आगम विकल्प से करने के लिए यह सूत्र है ।। तावत् इट् कन् = तावतिकः, जब इट् आगम नहीं हुआ तो कन् होकर तावत्कः बन गया ।।

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् ।।५।१।२४।।

विंशतित्रिंशद्भ्याम् ५।२।। ड्वुन् १।१।। असंज्ञायाम् ७।१।। *स०*—विंशति० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*— आर्हात् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—विंशति, त्रिंशत् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां ड्वुन् प्रत्ययो भवत्यसंज्ञायां विषय आर्हीयेष्वर्थेषु ।। *उदा०*—विंशत्या क्रीतः विंशकः, त्रिंशकः ।।

भाषार्थः—[*विंशतित्रिंशद्भ्याम्*] विंशति तथा त्रिंशत् शब्दों से [*ड्वुन्*] ड्वुन् प्रत्यय [*असंज्ञायाम्*] असंज्ञा विषय में होता है, आर्हीय अर्थों को कहने में ।।

विंशकः में *ति विंशतेर्डिति* (६।४।१४२) से ति का लोप हुआ है, तथा त्रिंशकः में टेः (६।४।१४३) से त्रिंशत् के टि भाग अत् का लोप हुआ है ।।

कंसाट्टिठन् ।।५।१।२५।।

कंसात् ५।१।। टिठन् १।१।। *अनु०*—आर्हात् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—कंसप्रातिपदिकाट् टिठन् प्रत्ययो भवत्यार्हीयेष्वर्थेषु ।। *उदा०*—कंसेन क्रीतः कंसिकः, कंसिकी ।।

भाषार्थः—[*कंसात्*] कंस प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में [*टिठन्*] टिठन् प्रत्यय होता है ॥ टिठन् का ठ शेष रहकर ठ को इक होता है। *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर कंसिकी बना है ॥

शूर्पादञन्यतरस्याम् ॥५।१।२६॥

शूर्पात् ५।१॥ अञ् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—आर्हात् ॥ तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—शूर्पशब्दाद् विकल्पेनाञ् प्रत्ययो भवत्यार्हीयेष्वर्थेषु। शूर्पशब्दस्य परिमाणवाचित्वात् पक्षे ठञ् भवति न ठक् ॥ *उदा०*—शूर्पेण क्रीतं शौर्पम्, शौर्पिकम् ॥

भाषार्थः—[*शूर्पात्*] शूर्प शब्द से आर्हीय अर्थों में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ शूर्प शब्द परिमाणवाची है, अतः *आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक्* में परिमाण का निषेध होने से ठक् प्राप्त नहीं है, ठञ् ही प्राप्त है, सो पक्ष में ठञ् ही होगा, ठक् नहीं ॥

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ॥५।१।२७॥

शत·····नात् ५।१॥ अण् १।१॥ *स०*—शत० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शतमान, विंशतिक, सहस्र, वसन इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवत्यार्हीयेष्वर्थेषु ॥ *उदा०*—शतमानेन क्रीतं शातमानम्, वैंशतिकम्, साहस्रम्, वासनम् ॥

भाषार्थः—[*शत·····नात्*] शतमान, विंशतिक, सहस्र तथा वसन शब्दों से आर्हीय अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ शतमान परिमाणवाची तथा सहस्र सङ्ख्यावाची शब्द हैं, सो ठक् प्राप्त नहीं है। वसन शब्द से ठक् प्राप्त था, सो ठञ् ठक् दोनों का अपवाद यह सूत्र है ॥

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥५।१।२८॥

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः ५।१॥ लुक् १।१॥ असंज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—अधिकम् अर्धं यस्मात् स अध्यर्द्धः, बहुव्रीहिः। अध्यर्धशब्दः पूर्वो यस्मिन् स अध्यर्द्धपूर्वः, अध्यर्द्धपूर्वश्च द्विगुश्च, अध्य··द्विगुः, तस्मात्·····

बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः। असंज्ञायामित्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०— आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः— अध्यर्द्धपूर्वात् प्रातिपदिकाद् द्विगुसंज्ञकाच्चोत्तरस्यार्हीयस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति॥ उदा०—अध्यर्द्धेन कंसेन क्रीतम् = अध्यर्द्धकंसम्। द्वाभ्यां कंसाभ्यां क्रीतं = द्विकंसम्। त्रिकंसम्। अध्यर्द्धशूर्पम्। द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतः पटः द्विशूर्पः। त्रिशूर्पः पटः॥

भाषार्थः—[*अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः*] अध्यर्द्ध शब्द पूर्व में हो जिस शब्द में उससे तथा द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्तर आर्हीय अर्थ में आये हुये प्रत्यय का [*लुक्*] लुक् होता है [*असंज्ञायाम्*] संज्ञा विषय को छोड़कर॥

जिसमें आधी चीज़ और अधिक हो वह अध्यर्द्ध कहाता है॥ अध्यर्द्धकंसम् आदि में समास *तद्धितार्थोत्तरपद०* (२।१।५०) से होगा। अध्यर्द्धकंस आदि शब्द से आर्हीय अर्थ में जो टिठन् (५।१।२५) एवं अध्यर्द्धशूर्प आदि शब्द से जो अञ् (५।१।२६) आया था उसी का यहाँ लुक् हुआ है॥ *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) से द्विकंसम् आदि की द्विगुसंज्ञा थी ही, सो अञ् प्रत्यय का लुक् हो गया है॥

यहाँ से '*अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः*' की अनुवृत्ति ५।१।३५ तक तथा 'लुक्' की ५।१।३१ तक जायेगी॥

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ॥५।१।२९॥

विभाषा १।१॥ कार्षा……भ्याम् ५।२॥ *स०*—कार्षा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुक्, आर्हात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अध्यर्द्धपूर्वौ द्विगुसंज्ञकौ च यौ कार्षापणसहस्रान्तौ शब्दौ ताभ्यामुत्पन्नस्यार्हीयप्रत्ययस्य विभाषा लुक् भवति। पक्षे श्रवणमेव॥ पूर्वेण नित्यं लुकि प्राप्ते विकल्प्यते॥ *उदा०*— अध्यर्द्धकार्षापणम्, अध्यर्द्धकार्षापणिकम्। द्विकार्षापणम्, द्विकार्षापणिकम्। अध्यर्द्धसहस्रम्, अध्यर्द्धसाहस्रम्। द्विसहस्रम्, द्विसाहस्रम्॥

भाषार्थः—अध्यर्द्ध शब्द पूर्व में है जिनके ऐसे जो [*कार्षा……भ्याम्*] कार्षापण और सहस्र तथा द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक उनसे उत्पन्न

जो आर्हीय प्रत्यय उनका [*विभाषा*] विकल्प से लुक् होता है ॥ पक्ष में प्रत्यय का श्रवण होगा ॥ कंसाट्टिठन् ५।१।२५ में '*कार्षापणाट्टिठन् वक्तव्यः*' यह वार्तिक कही है, सो कार्षापण शब्द से टिठन् प्रत्यय प्राप्त था, उसी का पक्ष में लुक् तथा पक्ष में श्रवण होकर अध्यर्द्धकार्षापणिकः बनेगा। सहस्र शब्द से ५।१।२७ में अण् कहा है, अतः उसी का लुक् तथा पक्ष में श्रवण होगा। जब लुक् नहीं होगा तो अध्यर्द्ध की *संख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य* च (७।३।१५) से उत्तरपद (सहस्र) के आदि अच् को वृद्धि होकर अध्यर्द्धसाहस्रम् बनेगा ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ५।१।३१ तक जायेगी ॥

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ॥५।१।३०॥

द्वित्रिपूर्वात् ५।१॥ निष्कात् ५।१॥ *स०*—द्वौ च त्रयश्च, द्वित्रयः, द्वित्रयः पूर्वे यस्मिन् स द्वित्रिपूर्वस्तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—विभाषा, द्विगोः, लुक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ द्वित्रिपूर्वग्रहणाद् 'अध्यर्द्धपूर्वाद्' इति इह न संबध्यते ॥ *अर्थः*—द्वित्रिपूर्वात् निष्कान्तात् द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकादुत्पन्नस्य विभाषार्हीयस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति। पक्षे श्रवणमेव ॥ *उदा०*—द्विनिष्कम्, द्विनैष्किकम्। त्रिनिष्कम्, त्रिनैष्किकम् ॥

भाषार्थः—[*द्वित्रिपूर्वात्*] द्वि, त्रि पूर्व वाले [*निष्कात्*] निष्क शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्पन्न आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ॥ निष्क शब्द परिमाणवाची है, अतः उससे ठञ् (५।१।१८) हुआ था, उसी का पक्ष में लुक् हुआ है ॥ *परिमाणान्तस्य०* (७।३।१७) से उत्तरपद को वृद्धि हुई है ॥

यहाँ से '*द्वित्रिपूर्वात्*' की अनुवृत्ति ५।१।३१ तक जायेगी ॥

बिस्ताच्च ॥५।१।३१॥

बिस्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—द्वित्रिपूर्वात्, विभाषा, द्विगोः, लुक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, चकारेण द्वित्रिपूर्वस्यानुकर्षणाद् अध्यर्द्धपूर्वादितीह न संबध्यते ॥ *अर्थः*—

द्वित्रिपूर्वात् बिस्तान्तात् द्विगोः परस्यार्हीयस्य प्रत्ययस्य वा लुक् भवति ॥ उदा०—द्विबिस्तम्, द्विबैस्तिकम्, त्रिबिस्तम्, त्रिबैस्तिकम् ॥

भाषार्थः—द्वि, त्रि पूर्व वाले [*बिस्तात्*] बिस्त शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से [च] भी उत्पन्न आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ॥ पूर्ववत् उत्तरपद को वृद्धि यहाँ भी होती है ॥ द्वौ बिस्तौ परिमाणमस्य ऐसा विग्रह करके तद्धितार्थ में (२।१।५०) से समास होकर पुनः द्विबिस्त शब्द से परिमाणवाची होने से ठञ् हुआ है, उसी का पक्ष में श्रवण तथा पक्ष में लुक् हुआ है ॥ सर्वत्र ५।१।२८ से नित्य लुक् की प्राप्ति में यह सूत्र विकल्प करने के लिये है ॥

विंशतिकात् खः ॥५।१।३२॥

विंशतिकात् ५।१॥ खः १।१॥ *अनु०*—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्यर्द्धपूर्वात् द्विगुसंज्ञकाच्च विंशतिकशब्दान्ताद् प्रातिपदिकाद् आर्हीयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अध्यर्द्धविंशतिकीनम्, द्विविंशतिकीनम्, त्रिविंशतिकीनम् ॥

भाषार्थः—अध्यर्द्ध शब्द पूर्व वाले, तथा द्विगुसंज्ञक [*विंशतिकात्*] विंशतिक शब्दान्त प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में [*खः*] ख प्रत्यय होता है ॥ विधानसामर्थ्य से इस 'ख' का *अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लु०* (५।१।२८) से लुक् नहीं होता ॥

खार्या ईकन् ॥५।१।३३॥

खार्याः ५।१॥ ईकन् १।१॥ *अनु०*—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च खारीशब्दान्तात् प्रातिपदिकाद् आर्हीयेष्वर्थेष्वीकन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अध्यर्द्धखारीकम्, द्विखारीकम्, त्रिखारीकम् ॥

भाषार्थः—अध्यर्द्ध पूर्व वाले तथा द्विगुसंज्ञक [*खार्याः*] खारी शब्द अन्त में है जिसके तदन्त से आर्हीय अर्थ में [ईकन्] ईकन् प्रत्यय होता है ॥ खारी शब्द परिमाणवाची है, अतः उससे ठञ् प्राप्त था तदपवाद ईकन् है ॥ खारी के ईकार का *यस्येति* च (६।४।१४८) से लोप होकर, खार् ईक = अध्यर्द्धखारीकम् बनेगा ॥

पणपादमाषशताद्यत् ॥५।१।३४॥

पण·····शतात् ५।१॥ यत् १।१॥ *स०*—पण० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्यर्द्धपूर्वेभ्यः द्विगुसंज्ञकेभ्यश्च, पण, पाद, माष, शत इत्येवमन्तेभ्यः शब्देभ्य आर्हीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अध्यर्द्धपण्यम्, द्विपण्यम्, त्रिपण्यम्। अध्यर्द्धपाद्यम्, द्विपाद्यम्, त्रिपाद्यम्। अध्यर्द्धमाष्यम्, द्विमाष्यम्, त्रिमाष्यम्। अध्यर्द्धशत्यम्, द्विशत्यम्, त्रिशत्यम् ॥

भाषार्थः—अध्यर्द्ध शब्द पूर्व वाले, तथा द्विगुसंज्ञक [*पण···तात्*] पण, पाद, माष और शत अन्त में हैं जिनके उन शब्दों से [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है, आर्हीय अर्थों में ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।१।३५ तक जायेगी ॥

शाणाद्वा ॥५।१।३५॥

शाणात् ५।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—यत्, अध्यर्द्धपूर्वद्विगोः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्यर्द्धपूर्वात् द्विगुसंज्ञकाच्च शाणान्तात् प्रातिपदिकाद् आर्हीयेष्वर्थेषु वा यत् प्रत्ययो भवति। ठञोऽपवादस्तेन पक्षे सोऽपि भवति, तस्य च लुक् (५।१।२८) भवति ॥ *उदा०*—अध्यर्द्धशाण्यम्, अध्यर्द्धशाणम्। द्विशाण्यम् द्विशाणम्। त्रिशाण्यम् त्रिशाणम् ॥

भाषार्थः—अध्यर्द्धपूर्व वाले तथा द्विगुसंज्ञक [*शाणात्*] शाणान्त शब्द से आर्हीय अर्थों में [*वा*] विकल्प से यत् प्रत्यय होता है ॥ शाणा शब्द परिमाणवाची है सो उससे ठञ् की प्राप्ति थी, पक्ष में वह भी होता है, किन्तु उस ठञ् का *अध्यर्द्धपूर्वद्विगो०* से लुक् हो जाता है, सो ठञ् पक्ष में अध्यर्द्धशाणम् द्विशाणाम् ही रूप बनेंगे। यत् का विधान सामर्थ्य से लुक् नहीं होता ॥

तेन क्रीतम् ॥५।१।३६॥

तेन ३।१॥ क्रीतम् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् क्रीतमित्येतस्मि-

न्नर्थे यथाविहितं ठञादयः प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम्, आशीतिकम्, नैष्किकम्, पाणिकम्, पादिकम् ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*क्रीतम्*] खरीदा गया, इस अर्थ में यथाविहित = जिससे जो जो विधान किये हैं, वे प्रत्यय हो जाते हैं ॥ प्राग्वतेष्ठञ् से लेकर, ठञ्, ठक्, ठन्, यत् आदि १३ प्रत्यय कहे हैं, वे किस समर्थ विभक्ति तथा किस अर्थ में होंगे इसी को यह सूत्र कहता है ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ॥५।१।३७॥

तस्य ६।१॥ निमित्तम् १।१॥ संयोगोत्पातौ १।२॥ *स०*—संयो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् निमित्तमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा भवति ॥ उदा०—संयोगः–शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः = शत्यः, शतिकः, साहस्रः । उत्पातः—शतस्य निमित्तम् उत्पातः शत्यः, शतिकः, साहस्रः ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*निमित्तम्*] निमित्त = कारण इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह निमित्त = कारण [*संयोगोत्पातौ*] संयोग, या उत्पात हो तो ॥ आर्हीय = तदर्हति तक कहे सारे अर्थों में *शताच्च ठन्य०* (५।१।२१) से ठन् और यत् तथा *शतमानविंश* (५।१।२७) से अण् कहा है, सो संयोग और उत्पात अर्थों में भी ये ही प्रत्यय शत और सहस्र शब्दों से हो जायेंगे ॥

सौ के कारण से जो हुआ संयोग = किसी का सम्बन्ध वह शत्यः शतिकः कहा जायेगा । इसी प्रकार सौ (रुपये) के कारण जो हुआ उत्पात (लड़ाई झगड़ा आदि) वह भी शत्यः, शतिकः कहा जायेगा ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।४० तक जायेगी ॥

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥५।१।३८॥

गोद्व्यचः ५।१॥ असंख्यापरिमाणाश्वादेः ५।१॥ यत् १।१॥ *स०*—द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच् बहुव्रीहिः । गौश्च द्व्यच् च, गोद्व्यच्

तस्मात्‌ ····बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः। अश्व शब्द आदिर्येषां ते अश्वादयः, सङ्ख्या च परिमाणञ्च अश्वादयश्च, सङ्ख्या···श्वः, तस्मात्‌··समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—गोशब्दात्‌ द्व्यचश्च प्रातिपदिकात्‌ यत्‌ प्रत्ययो भवति, सङ्ख्यापरिमाणाश्वादिशब्दान्‌ वर्जयित्वा तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ, इत्येतस्मिन्नर्थे॥ *उदा०*—गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। द्व्यचः—धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा धन्यं, स्वर्ग्यं, यशस्यम्‌॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*गोद्व्यचः*] गौ, तथा द्व्यच्‌ प्रातिपदिकों से [*असं···देः*] सङ्ख्यावाची, परिमाणवाची तथा अश्वादि प्रातिपदिकों को छोड़कर, [*यत्‌*] यत्‌ प्रत्यय होता है, निमित्तं संयोगोत्पातौ अर्थ में॥ द्व्यच्‌ होने से जो सङ्ख्यावाची परिमाणवाची तथा अश्वादि प्रातिपदिकों से यत्‌ की प्राप्ति थी, उसी का निषेध कर दिया है॥ 'गो यत्‌' यहाँ *वान्तो यि प्रत्यये* (६।१।७६) से वान्तादेश हुआ है॥

यहाँ से '*यत्‌*' की अनुवृत्ति ५।१।३९ तक जायेगी॥

पुत्राच्छ च ॥५।१।३९॥

पुत्रात्‌ ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ०॥ *अनु०*—यत्‌, तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पुत्रप्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति यत्‌ च, तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ, इत्येतस्मिन्नर्थे॥ *उदा०*—पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा पुत्रीयः, पुत्र्यः॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पुत्रात्‌*] पुत्र शब्द से [*छ*] छ [*च*] तथा यत्‌ प्रत्यय होते हैं, निमित्तं संयोगोत्पातौ इस अर्थ में॥ पुत्र के कारण से जो संयोग या उत्पात हो वह पुत्रीयः, पुत्र्यः कहा जायेगा॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥५।१।४०॥

सर्व····भ्याम्‌ ५।२॥ अणञौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌,

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सर्वभूमि, पृथिवी इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां तस्य निमित्तं संयोगोत्पातावित्येतस्मिन्नर्थे, यथासङ्ख्यं अण्, अञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—सर्वभूमेर्निमित्तं सार्वभौमः, पार्थिवः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*सर्व...भ्याम्*] सर्वभूमि तथा पृथिवी शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*अणञौ*] अण् तथा अञ् प्रत्यय होते हैं, उसके कारण से जो संयोग, और उत्पात इस अर्थ में *अनुशतिकादीनां* च (७।३।२०) से सर्व और भूमि दोनों पदों को वृद्धि होकर सार्वभौम बना है। अण् और अञ् में स्वर का ही भेद है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।४२ तक जायेगी ॥

तस्येश्वरः ॥५।१।४१॥

तस्य ६।१॥ ईश्वरः १।१॥ *अनु०*—सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीप्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यमणञौ प्रत्ययौ भवत ईश्वर इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः, पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*ईश्वरः*] ईश्वर स्वामी इस अर्थ में अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं ॥ सारे भूमि का जो स्वामी वह सार्वभौम कहा जायेगा, इसी प्रकार पृथिवी का स्वामी पार्थिव होगा।

तत्र विदित इति च ॥५।१।४२॥

तत्र अ० ॥ विदितः १।१॥ इति अ० ॥ च अ० ॥ *अनु०*—सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत्रेति सप्तमीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीशब्दाभ्यां यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतो विदित इत्येतस्मिन्नर्थे ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*विदित इति*] प्रसिद्ध अर्थ में [*च*] भी अण् और

अञ् प्रत्यय होते हैं ॥ विदित प्रसिद्ध = प्रकाशित को कहते हैं। सारी भूमि में जो प्रसिद्ध वह सार्वभौम कहायेगा ॥

यहाँ से '*तत्र विदितः*' की अनुवृत्ति ५।१।४३ तक जायेगी ॥

लोकसर्वलोकाट्ठञ् ॥५।१।४३॥

लोक··कात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ *स०*—लोकश्च सर्वलोकश्च, लोकसर्वलोकम् तस्मात् समाहारोद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्र विदितः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां लोक, सर्वलोक इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां ठञ् प्रत्ययो भवति विदित इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—लोके विदितः = लौकिकः । सर्वलोके विदितः = सार्वलौकिकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*लोकसर्वलोकात्*] लोक, तथा सर्वलोक प्रातिपदिकों से [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है, विदित इस अर्थ में ॥ जो लोक में विदित हो वह लौकिक कहा जायेगा ॥ *अनुशतिकादीनां च* (७।३।२०) से सार्वलौकिकः में उभयपद वृद्धि होती है ॥

तस्य वापः ॥५।१।४४॥

तस्य ६।१॥ वापः १।१॥ उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रमुच्यते *हलश्च* (३।३।१२१) इति घञ् प्रत्ययः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् वाप इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं प्रास्थिकम्, द्रौणिकम्, खारीकम् ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से [*वापः*] खेत अर्थ वाच्य हो तो यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ प्रस्थ द्रोण परिमाणवाची शब्द हैं, सो उनसे वाप अर्थ में यथाविहित ठञ् प्रत्यय तथा खारी से ईकन् (५।१।३३) प्रत्यय हुआ है ॥ प्रस्थ परिमाण बीज जिसमें बोया जाए, वह क्षेत्र प्रास्थिक कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*तस्य वापः*' की अनुवृत्ति ५।१।४५ तक जायेगी ॥

पात्रात् ष्ठन् ॥५।१।४५॥

पात्रात् ५।१॥ ष्ठन् १।१॥ *अनु०*—तस्य वापः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पात्रशब्दात् ष्ठन् प्रत्ययो

भवति तस्य वाप इत्येतस्मिन विषये ॥ उदा०—पात्रस्य वापः = पात्रिकं क्षेत्रम्, पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः ॥

भाषार्थः—[*पात्रात्*] पात्र शब्द से [ष्ठन्] ष्ठन् प्रत्यय होता है, तस्य वापः अर्थ में ॥ षित् होने से ङीष् (४।१।४१) हुआ है ॥

पात्र शब्द परिमाणवाची है, अतः ठञ् प्राप्त था तदपवाद यह सूत्र है ॥

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ॥५।१।४६॥

तत् १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ वृद्ध्याय·····पदाः १।३॥ दीयते क्रिया०॥ स०—वृद्धिश्च आयश्च लाभश्च शुल्कश्च उपदा च वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं वृद्धिः, आयः, लाभः, शुल्कः, उपदा चेत्तद् दीयते ॥ उदा०—पञ्चास्मिन् वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते, पञ्चकः सप्तकः, शत्यः, शतिकः, साहस्रः ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में यथाविहित (जिससे जो प्रत्यय कहा है) प्रत्यय होते हैं, यदि [*वृद्ध्या···दाः*] वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क, और उपदा ये [*दीयते*] (दिया जाता है) क्रिया के कर्म वाच्य हों तो ॥ जो द्रव्य ब्याज के रूप में दिया जाता है वह वृद्धि कहाता है । जो ज़मींदार का भाग होता है वह आय, दुकानदारी आदि में मूल द्रव्य के अतिरिक्त जिस द्रव्य की प्राप्ति होती है वह लाभ, राजा का कर का भाग शुल्क, तथा घूस को उपदा कहते हैं ॥ जिस व्यवहार में पांच या सात (रुपये) वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क या उपदा के रूप में दिए जायें, वह पञ्चकः सप्तकः कहायेगा ॥ पञ्चन् सप्तन् से (५।१।२२) से कन्, तथा शत से ठन्, यत् (५।१।२१) और सहस्र से अण् (५।१।२७) ये यथाविहित प्रत्यय उदाहरणों में हुये हैं ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।४८ तक जायेगी ॥

पूरणार्द्धाट् ठन् ॥५।१।४७॥

पूरणार्द्धात् ५।१॥ ठन् १।१॥ स०—पूरणश्च अर्द्धञ्च, पूरणार्द्धम्, तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा, दीयते, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूरणवाचिनः प्रातिपदिकादर्द्धशब्दाच्च ठन् प्रत्ययो भवति तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयत इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—द्वितीयो वृद्धिर्वा आयो वा, लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयत अस्मिन् द्वितीयिकः, तृतीयिकः, पञ्चमिकः, सप्तमिकः, अर्द्धिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*पूरणार्द्धात्*] पूरणवाची प्रातिपदिकों से तथा अर्द्ध शब्द से [ठन्] ठन् प्रत्यय होता है, वृद्धि आय आदि दिया जाता है, इस अर्थ में ॥ *तस्य पूरणे* डट् (५।२।४८) के अधिकार में जो पूरण अर्थ में प्रत्यय किये हैं, ऐसे पूरणप्रत्ययान्त द्वितीय, तृतीय, पञ्चम आदि शब्द पूरणवाची शब्द हैं, सो इन्हीं से ठन् हो गया है ॥

यहाँ से 'ठन्' की अनुवृत्ति ५।१।४६ तक जायेगी ॥

भागाद्यच्च ॥५।१।४८॥

भागात् ५।१॥ यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ठन्, तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भागशब्दात् यत् प्रत्ययो भवति ठन् च तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—भागो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते भाग्यं, भागिकम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*भागात्*] भाग प्रातिपदिक से [*यत्*] यत् [च] तथा ठन् प्रत्यय होते हैं, वृद्धि आय आदि को दिया जाता है इस अर्थ में ॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥५।१।४९॥

तद् २।१॥ हरति क्रिया० ॥ वहति क्रिया० ॥ आवहति क्रिया० ॥ भारात् ५।१॥ वंशादिभ्यः ५।३॥ स०—वंश आदिर्येषां ते वंशादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वंशादिभ्यः परो यो भारशब्दस्तदन्तात् द्वितीयासमर्थात्

प्रातिपदिकात् , हरति, वहति, आवहति, इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वंशभारं हरति वहत्यावहति वा वांशभारिकः, कौटजभारिकः, बाल्वजभारिकः ॥

भाषार्थः—[*वंशादिभ्यः*] वंशादिगण पठित प्रातिपदिकों से उत्तर जो [*भारात्*] भारशब्द तदन्त [*तद्*] द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*हरति वहत्यावहति*] हरण करता है, वहन करता है, आवहन करता है इन सब अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ यथाविहित कहने से ठक् प्रत्यय वंशभार आदि शब्दों से हो जाता है ॥

यहाँ से '*तत्*' की अनुवृत्ति ५।१।५४ तथा '*हरति वहत्यावहति*' की अनुवृत्ति ५।१।५० तक जायेगी ॥

वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ ॥५।१।५०॥

वस्नद्रव्याभ्याम् ५।२॥ ठन्कनौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धरति, वहत्यावहति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां वस्नद्रव्यशब्दाभ्यां हरति वहत्यावहतीत्येतेष्वर्थेषु यथासङ्ख्यं ठन् , कन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—वस्नं हरति, वहति, आवहति वा वस्निकः, द्रव्यकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*वस्नद्रव्याभ्याम्*] वस्न और द्रव्य शब्दों से हरति वहति आवहति अर्थों में यथासङ्ख्य करके [*ठन्कनौ*] ठन् , और कन् प्रत्यय होते हैं ॥

संभवत्यवहरति पचति ॥५।१।५१॥

संभवति क्रिया० ॥ अवहरति क्रिया० ॥ पचति क्रिया० ॥ *अनु०*—तत् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संभवति, अवहरति, पचति इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रस्थं सम्भवति, अवहरति, पचति वा प्रास्थिकः, कौडविकः, खारीकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*संभ······चति*] संभव है, अवहरण करता है, पकाता है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ प्रस्थ, कुडव से ठञ् तथा खारी से यथाविहित ईकन् प्रत्यय हुआ है ॥

प्रस्थ भर अटना सम्भव है वा लाता है, वा पकाता है उसे प्रास्थिकः कहेंगे ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।५४ तक जायेगी ॥

आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ॥५।१।५२॥

आढकाचितपात्रात् ५।१॥ खः १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—आढ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—संभवत्यवहरति पचति तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्य आढक, आचित, पात्र इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संभवत्यवहरति पचति इत्येतेष्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आढकं सम्भवत्यवहरति पचति आढकीना आढकिकी, आचितीना आचितिकी, पात्रीणा पात्रिकी ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*आढकाचितपात्रात्*] आढक, आचित, पात्र प्रातिपदिकों से, संभवति, अवहरति, पचति अर्थों में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*खः*] ख प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में आढक आदियों के परिमाणवाची होने से ठञ् होता है। ख पक्ष में टाप् तथा ठञ् पक्ष में ४।१।१५ से ङीप् होता है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।५३ तक जायेगी ॥

द्विगोष्ठंश्च ॥५।१।५३॥

द्विगोः ५।१॥ ष्ठन् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्, संभवत्यवहरति पचति, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्विगुसंज्ञकेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यः आढकाचितपात्रान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन् प्रत्ययो भवति, खश्च विकल्पेन। तेन पक्षे ठञपि भवति ॥ *उदा०*—द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना, द्व्याढकी। द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना, द्व्याचिता। द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा, द्विपात्रा[1] ॥

---

१. '*पात्रादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः*' द्विपात्रम् पञ्चपात्रम्, (महा० २।४।३०) इति भाष्यकारवचनात् स्त्रीत्वं प्रतिषिध्यते। तेन द्विपात्रं सम्भवत्यवहरति पचति वा स्थाली इत्यर्थे लुक् पक्षे द्विपात्रा इत्येव भवति। यथाग्रिमसूत्रे द्विकुलिजेति।

भाषार्थः—[*द्विगोः*] द्विगुसंज्ञक द्वितीया समर्थ आढक, आचित, तथा पात्रान्त प्रातिपदिकों से सम्भवत्यादि अर्थों में [ष्ठन्] ष्ठन् प्रत्यय होता है, [च] तथा ख प्रत्यय भी विकल्प से होता है ॥ ख का विकल्प करने से पक्ष में ठञ् होगा, इस प्रकार ष्ठन, ख तथा ठञ् के तीन रूप बनेंगे, उनमें विधान सामर्थ्य से ष्ठन तथा ख का *अध्यर्द्धपूर्वद्विगो०* (५।१।२८) से (द्विगुसंज्ञक मानकर) लुक् नहीं होगा, किन्तु ठञ् का लुक् होगा, सो द्व्याढकी, द्व्याचिता, द्विपात्री ऐसे ही ठञ् पक्ष में लुक् होकर रूप बनेंगे। ष्ठन् पक्ष में ङीष् तथा ख पक्ष में टाप् हुआ है। ठञ् पक्ष में ठञ् का लुक् होकर (४।१।१५) से ङीप् हुआ है केवल द्व्याचिता में *अपरिमाणबिस्ताचित०* (४।१।२२) से ङीप् निषेध होकर टाप् हुआ है ॥

यहाँ से '*द्विगोष्ठन्*' की अनुवृत्ति ५।१।५४ तक जायेगी ॥

कुलिजाल्लुक्खौ च ॥५।१।५४॥

कुलिजात् ५।१॥ लुक्खौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*—लुक्खौ इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—द्विगोष्ठन्, सम्भवत्यवहरति पचति, तत्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् कुलिजशब्दान्ताद्, द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् संभवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ प्रत्ययौ भवतः ष्ठन् च ॥ प्रत्ययस्यादर्शनस्य लुक् संज्ञा, तेन य औत्सर्गिकष्ठञ् तस्यैव लुक् ॥ *उदा०*—लुक्—द्वे कुलिजे सम्भवत्यवहरति पचति द्विकुलिजा। ख—द्विकुलिजीना। ष्ठन्—द्विकुलिजिकी ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ द्विगुसंज्ञक [*कुलिजात्*] कुलिज शब्दान्त प्रातिपदिक से [*लुक्खौ*] लुक् और ख [च] तथा चकार से ष्ठन् प्रत्यय भी होता है ॥ प्रत्यय के अदर्शन की लुक् संज्ञा होती है, अतः यहाँ औत्सर्गिक ठञ् का ही लुक् होता है, ख तथा ष्ठन् का विधानसामर्थ्य से लुक् नहीं होता ॥

सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥५।१।५५॥

सः १।१॥ अस्य ६।१॥ अंशवस्नभृतयः १।३॥ *स०*—अंश० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति,

यत्तत्प्रथमासमर्थम् अंशवस्नभृतयश्चेत् ता भवन्ति ॥ उदा०—पञ्च अंशो, वस्नो भृतिर्वाऽस्य = पञ्चकः, सप्तकः, साहस्रः ॥

भाषार्थः—[*सः*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमासमर्थ, [*अंश...यः*] अंश = भाग, वस्न = मूल्य, भृति = वेतन समानाधिकरण वाला हो तो ॥ पाँच (रुपये) जिसके भाग, मूल्य, या वेतन रूप से हों वह पञ्चकः कहा जायेगा ॥ सङ्ख्यावाचियों से कन् (५।१।२२) कह आये हैं, सो कन् तथा सहस्र शब्द से अण् हुआ है ॥

तदस्य परिमाणम् ॥५।१।५६॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ परिमाणम् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परिमाणसमानाधिकरणवाचिनः प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रस्थः परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः = खारीकः शत्यः शतिकः साहस्रः द्रौणिकः कौडविकः ॥

भाषार्थः—[*परिमाणम्*] परिमाण समानाधिकरणवाची [*तत्*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में यथाविहित = जिससे जो जो प्रत्यय कह आये हैं, वे प्रत्यय होते हैं ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।६१ तक जायेगी ॥

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु ॥५।१।५७॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ संज्ञा·····नेषु ७।३॥ *स०*—संज्ञा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तदस्य परिमाणम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परिमाणसमानाधिकरणात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात्, षष्ठ्यर्थे संज्ञा, सङ्घ, सूत्र, अध्ययन, इत्येतेषु प्रत्ययार्थविशेषणेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः, त्रिकाः शालङ्कायनाः । सङ्घः—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः सङ्घः, अष्टकः सङ्घः । सूत्रम्—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य = अष्टकं पाणिनीयम्

दशकं वैयाघ्रपदीयम्। अध्ययनम्—पञ्च (आवृत्तिः) परिमाणमस्य अध्ययनस्य पञ्चकम् अध्ययनम्, दशकम्।

भाषार्थः—परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ [*सङ्ख्यायाः*] संख्यावाची प्रातिपदिक से [*संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु*] संज्ञा, सङ्घ, सूत्र, अध्ययन प्रत्ययार्थ होने पर षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है॥ सङ्ख्यावाचियों से कन् कह आये हैं, सो वही यहाँ हुआ है॥ पञ्चकः पाँच शकुनि विशेषों की संज्ञा है, तथा त्रिकाः शालङ्कायनों की॥

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्॥५।१।५८॥

पङ्क्ति.....शतम् १।१॥ *स०*—पङ्क्ति० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्य परिमाणम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, इत्येतानि पदानि निपात्यन्ते, तदस्य परिमाणम् इत्येतस्मिन् विषये॥ पञ्चन् प्रातिपदिकात् तिप्रत्ययः, टिलोपश्च निपात्यते पङ्क्तिरिति, पञ्च परिमाणमस्य पङ्क्तिः। द्विदशत् प्रातिपदिकस्य स्थाने विन् आदेशः शतिच्च प्रत्ययो निपात्यते विंशतिरिति, द्वौ दशतौ परिमाणमस्य सङ्घस्य विंशतिः सङ्घः। त्रिदशत् इत्यस्य स्थाने त्रिन् आदेशः शत् च प्रत्ययो निपात्यते, त्रिंशदिति, त्रयो दशतः परिमाणमस्य त्रिंशत्। चतुर् दशत् इत्यस्य स्थाने चत्वारिन् आदेशः, शत् च प्रत्ययो निपात्यने, चत्वारिंशदिति, चत्वारो दशतः परिमाणमस्य चत्वारिंशत्। पञ्चदशत् इत्यस्य स्थाने पञ्चा आदेशः शत् च प्रत्ययो निपात्यते पञ्चाशदिति, पञ्चदशतः परिमाणमस्य पञ्चाशत्। षड्दशत् इत्यस्य स्थाने षष्भावः तिश्च प्रत्ययः। षष्+ति = षष्टिरिति, षड् दशतः परिमाणमस्य षष्टिः। सप्तदशत् इत्यस्य स्थाने सप्तभावः तिश्च प्रत्ययः सप्ततिरिति, सप्त दशतः परिमाणमस्य सप्ततिः। अष्टदशत् इत्यस्य स्थाने 'अशी' भावः तिश्च प्रत्ययः अशीतिरिति, अष्टौ दशतः परिमाणमस्य अशीतिः। नवदशत् इत्यस्य स्थाने नवभावः तिश्च प्रत्ययः, नव दशतः परिमाणमस्य नवतिः। दशदशत् इत्यस्य स्थाने शभावस्तश्च प्रत्ययः शतमिति, दश दशतः परिमाणमस्य शतम्॥

भाषार्थः—तदस्य परिमाणम् इस अर्थ में [*पङ्क्ति*·····*शतम्*] पङ्क्ति, विंशति आदि शब्द निपातन किये जाते हैं, जो जो कार्य सूत्रों से सिद्ध न हों वे सब निपातन से जानना चाहियें ॥

पङ्क्ति शब्द में पञ्चन् शब्द के टि भाग का लोप तथा ति प्रत्यय निपातन से किया है सो 'पञ्च् ति' रहा अब चोः कुः (८।२।३०) से च् को क् तथा ८।४।५७ से अनुस्वार को परसवर्ण ङ् होकर पङ्क्ति बना है, जिसका पाँच परिमाण हो वह पङ्क्ति[1] छन्द कहा जायेगा ॥ विंशति शब्द में द्विदशत् (अर्थात् दशक = दहाई के दो जोड़े, बीस) शब्द को विन् आदेश तथा 'शतिच्' प्रत्यय निपातन से किया जाता है, त्रिदशत् (तीन दहाई = तीस) शब्द के स्थान में 'त्रिन्' आदेश तथा शत् प्रत्यय त्रिंशत् शब्द में हुआ है। चत्वारिंशत् शब्द में चतुर्दशत् के स्थान में चत्वारिन् आदेश तथा शत् प्रत्यय होता है। पञ्चाशत् शब्द में पञ्चदशत् के स्थान में पञ्चा आदेश तथा शत् प्रत्यय होता है। षष्टि शब्द में षड्-दशत् के स्थान में षष् आदेश तथा ति प्रत्यय होता है, तत्पश्चात् ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर 'षष्टि' बनता है। 'सप्तति' शब्द में सप्तदशत् प्रातिपदिक के स्थान में 'सप्त' आदेश तथा ति प्रत्यय होता है। अशीति शब्द में अष्टदशत् के स्थान में अशी आदेश तथा 'ति' प्रत्यय होता है। नवति प्रातिपदिक में नवदशत् के स्थान में नव आदेश तथा 'ति' प्रत्यय होता है। शतम् शब्द में दशदशत् (दस दहाई = सौ) के स्थान में 'श' आदेश तथा त प्रत्यय होता है ॥

पञ्चदशतौ वर्गे वा ॥५।१।५९॥

पञ्चदशतौ १।२॥ वर्गे ७।१॥ वा अ० ॥ *स०*—पञ्चत् च दशत् च, पञ्चदशतौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्य परिमाणम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चत् दशत् इत्येतौ शब्दौ डतिप्रत्ययान्तौ तदस्य परिमाणमित्येतस्मिन् विषये वर्गेऽभिधेये वा निपात्येते। वा वचनात् पक्षे कन्नपि भवति ॥ *उदा०*—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद् वर्गः, दशद् वर्गः। पक्षे कन्—पञ्चको वर्गः, दशको वर्गः ॥

---

१. पङ्क्ति छन्द में ४० अक्षर होते है, छन्द में १ पाद ८ अक्षरों का माना जाता है, इस प्रकार पङ्क्ति छन्द में ५ पाद होते हैं ॥

भाषार्थः—[*पञ्चद्शतौ*] पञ्चत् और दशत् ये डति प्रत्ययान्त शब्द *तदस्य परिमाणम्* इस विषय में [*वर्गे*] वर्ग अभिधेय होने पर [*वा*] विकल्प से निपातन किये जाते हैं॥ पञ्चन् दशन् प्रातिपदिक सङ्ख्यावाची हैं, सो पक्ष में ५।१।२२ से कन् होकर पञ्चकः, दशकः बनता है॥ पञ्चन् + डति, टि भाग का लोप होकर पञ्च् + अत् = पञ्चत् दशत् बनता है॥

यहाँ से '*वर्गे*' की अनुवृत्ति ५।१।६० तक जायेगी॥

सप्तनोऽञ् छन्दसि ॥५।१।६०॥

सप्तनः ५।१॥ अञ् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—वर्गे तदस्य परिमाणम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सप्तनः प्रातिपदिकात् छन्दसि विषये तदस्य परिमाणमित्येतस्मिन्नर्थे वर्गेऽभिधेये ऽञ् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—सप्त साप्तान्यसृजन्॥

भाषार्थः—[*सप्तनः*] सप्तन् प्रातिपदिक से [*छन्दसि*] वेद विषय में तदस्य परिमाणम् इस अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है, वर्ग अभिधेय होने पर॥ सप्त साप्तानि सात संख्यावाले वर्ग सात अर्थात् ७ × ७ = ४९ प्रकार के मरुतों को उत्पन्न किया॥

त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् ॥५।१।६१॥

त्रिंश·····शतो ६।२॥ ब्राह्मणे ७।१॥ संज्ञायां ७।१॥ डण् १।१॥ *स०*—त्रिंश० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्य परिमाणम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—त्रिंशत् चत्वारिंशत् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां संज्ञायां विषये डण् प्रत्ययो भवति, तदस्य परिमाणमित्येतस्मिन् विषये ब्राह्मणेऽभिधेये॥ *उदा०*—त्रिंशदध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानां त्रैंशानि ब्राह्मणानि, चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि॥

भाषार्थः—[*त्रिंश··तोः*] त्रिंशत् तथा चत्वारिंशत् प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में तदस्य परिमाणम् इस अर्थ को कहने में [*डण्*] डण् प्रत्यय होता है, [*ब्राह्मणे*] ब्राह्मण ग्रंथ अभिधेय हो रहे हों तो॥

त्रिशत् + डण् यहाँ टेः (६।४।१४३) से टि भाग का लोप होकर त्रिश् अ = त्रैंशानि चात्वारिंशानि बना है ॥ ऐतरेय के प्रारम्भ के ३० अध्याय त्रैंश कहाते हैं और अन्त के १० मिलाकर चात्वारिंश[1] । इन्हीं को गृह्यसूत्रों में क्रमशः ऐतरेय महैतरेय के नाम से स्मरण किया है ।

तदर्हति ॥५।१।६२॥

तत् २।१॥ अर्हति क्रिया० ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः, वास्त्रयुग्मिकः, शत्यः, शतिकः, साहस्रः ॥

भाषार्थः—[*तत्*] द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*अर्हति*] योग्य है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ श्वेतच्छत्र के जो योग्य है वह श्वैतच्छत्रिकः कहायेगा । यहाँ ठक् प्रत्यय हो गया है । शत्यः शतिकः में पूर्ववत् यत्, ठन् हुये हैं ॥

यहाँ से '*तत्*' की अनुवृत्ति ५।१।७५ तक तथा '*अर्हति*' की अनुवृत्ति ५।१।७० तक जायेगी ॥

छेदादिभ्यो नित्यम् ॥५।१।६३॥

छेदादिभ्यः ५।३॥ नित्यम् १।१॥ *स०*—छेद आदिर्येषां ते छेदादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यश्छेदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो नित्यमर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नित्यं छेदमर्हति छैदिकः, भैदिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*छेदादिभ्यः*] छेदादि प्रातिपदिकों से [*नित्यम्*] नित्य ही योग्य है इस अर्थ में यथाविहित अर्थात् ठक् प्रत्यय होता है, यहाँ नित्यशब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है ॥

यहाँ से '*नित्यम्*' की अनुवृत्ति ५।१।६४ तक जायेगी ॥

---

१. इसीप्रकार शतपथ के आदि के ६० अध्याय षष्टीपथ, अगले २० मिलाकर अशीति और सम्पूर्ण १०० अध्याय शतपथ के नाम से कहे जाते हैं ।

शीर्षच्छेदाद्यच्च ॥५।१।६४॥

शीर्षच्छेदात् ५।१॥ यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—नित्यम्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् शी० च्छेदशब्दात् नित्यमर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति चकाराद् यथाविहितं ठक् च ॥ *उदा०*—शिरश्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्यः, शैर्षच्छेदिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*शीर्षच्छेदात्*] शीर्षच्छेद प्रातिपदिक से नित्य ही योग्य है इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय [*च*] तथा चकार से यथाविहित = ठक् प्रत्यय होता है ॥ शिरः शब्द को शीर्ष आदेश निपातन से होता है ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।१।६६ तक जायेगी ॥

दण्डादिभ्यः ॥५।१।६५॥

दण्डादिभ्यः ॥५।३॥ *स०*—दण्ड आदिर्येषां ते दण्डादयस्तेभ्यः... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—यत्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दण्डादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति तदर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे । ठकोऽपवादः ॥ *उदा०*—दण्डमर्हति दण्ड्यः, मुसल्यः ॥

भाषार्थः—[*दण्डादिभ्यः*] दण्डादि द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से अर्हति इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥

छन्दसि च ॥५।१।६६॥

छन्दसि ७।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—यत्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रातिपदिकमात्राच्छन्दसि विषये तदर्हति इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—उदक्या वृत्तयः, यूप्यः पलाशः, गर्त्यो देशः ॥

भाषार्थः—प्रातिपदिक मात्र से [*छन्दसि*] वेद विषय में [*च*] भी तदर्हति इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ उदक यत् टाप् = उदक्या, यूप्यः, गर्त्यः आदि बन गये ॥

पात्राद् घंश्च ॥५।१।६७॥

पात्रात् ५।१॥ घन् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—यत्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् पात्रशब्दाद् घन् प्रत्ययो भवति, यत् चार्हतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—पात्रमर्हति = पात्रियः, पात्र्यः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*पात्रात्*] पात्र शब्द से अर्हति इस अर्थ में [*घन्*] घन् [*च*] तथा यत् प्रत्यय होते हैं ॥ पात्र शब्द परिमाणवाची भी है, अतः यह सूत्र ठञ्, ठक् दोनों का अपवाद है ॥

कडङ्करदक्षिणाच्छ च ॥५।१।६८॥

कडङ्करदक्षिणात् ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—कडङ्करश्च, दक्षिणा च, कड······णम् तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—यत्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कडङ्करदक्षिणाशब्दाभ्यां छः प्रत्ययो भवति यत् च तदर्हतीत्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—कडङ्करमर्हति = कडङ्करीयो गौः, कडङ्कर्यः । दक्षिणामर्हति दक्षिणीयो भिक्षुः, दक्षिण्यः ॥

भाषार्थः—[*कड······णात्*] कडङ्कर और दक्षिणा प्रातिपदिकों से [*छ*] छ [*च*] और यत् प्रत्यय होते हैं तदर्हति इस विषय में ॥ कडङ्कर बुस को कहते हैं, बुस खाने वाली गौ को कडङ्करीया कहेंगे । जो भिक्षु दक्षिणा देने के योग्य है, वह दक्षिणीयः कहायेगा ॥

यहाँ से 'छ' की अनुवृत्ति ५।१।६९ तक जायेगी ॥

स्थालीबिलात् ॥५।१।६९॥

स्थालीबिलात् ५।१॥ *अनु०*—छ, यत्, तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्थालीबिलप्रातिपदिकात् छयतौ प्रत्ययौ भवतस्तदर्हतीत्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—स्थालीबिलमर्हन्ति स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः स्थालीबिल्याः ॥

भाषार्थः—[*स्थालीबिलात्*] स्थालीबिल प्रातिपदिक से छ, तथा यत् प्रत्यय होते हैं तदर्हति इस अर्थ में ॥ जो चावल पकाने योग्य हैं, वह स्थालीबिलीयाः कहे जायेंगे ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥५।१।७०॥

यज्ञर्त्विग्भ्याम् ५।२॥ घखञौ १।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तदर्हति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यज्ञ, ऋत्विग् प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यं घखञौ प्रत्ययौ भवतस्तदर्हतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—यज्ञियो ब्राह्मणः, ऋत्विजमर्हति = आर्त्विजीनः ॥

भाषार्थः—[*यज्ञर्त्विग्भ्याम्*] यज्ञ तथा ऋत्विग् प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*घखञौ*] घ तथा खञ् प्रत्यय होते हैं तदर्हति इस अर्थ में ॥ यहाँ से अर्हति अर्थ का अधिकार समाप्त हुआ, अतः *आर्हाद्गो०* (५।१।१९) वाला ठक् का अधिकार भी समाप्त जानना चाहिये, अब केवल ठञ् का अधिकार आगे आगे चलेगा ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ॥५।१।७१॥

पारा॰॰॰यणम् २।१॥ वर्त्तयति क्रिया० ॥ स०—पारा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्यः पारायण, तुरायण, चान्द्रायण इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्त्तयतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पारायणं वर्त्तयति = पारायणिकश्छात्रः, तुरायणं वर्त्तयति तौरायणिको यजमानः, चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिकस्तपस्वी ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*पारा॰॰॰॰॰णम्*] पारायण, तुरायण, तथा चान्द्रायण प्रातिपदिकों से [*वर्त्तयति*] बरतता है इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पारायणिकः (पारायण = आदि से अन्त तक ग्रन्थ का जो आर्वतन करता है, वह पारायणिक कहाता है[1]), तौरायणिकः (तुरायण = संवत्सर साध्य जो इष्टियाँ उनको जो करता है), चान्द्रायणिकः (तुरायण और चान्द्रायण ये दो प्रकार के व्रत हैं इन्हें जो करता है वह क्रमशः तौरायणिक और चान्द्रायणिक कहाता है) ॥

---

१. पारायण ग्रन्थ विशेष का नाम भी है, उसका अध्ययन करने वाला भी पारायणिक कहाता है ।

संशयमापन्नः ॥५।१।७२॥

संशयम् २।१॥ आपन्नः १।१॥ *अनु०*—तत्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् संशयप्रातिपदिकाद् आपन्न इत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—संशयमापन्नः = प्राप्तः सांशयिकः स्थाणुः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*संशयम्*] संशय प्रातिपदिक से [*आपन्नः*] आपन्न = प्राप्त इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ जिस खंभे को देखकर सन्देह में पड़ जायें अर्थात् यह खम्भा है, या पुरुष वह सांशयिक स्थाणु कहायेगा ॥

योजनं गच्छति ॥५।१।७३॥

योजनम् २।१॥ गच्छति क्रिया० ॥ *अनु०*—तत्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् योजनप्रातिपदिकात् गच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—योजनं गच्छति = यौजनिकः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*योजनम्*] योजन प्रातिपदिक से [*गच्छति*] जाता है, इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ योजन = चार कोस[1] तक जो जाये अर्थात् चल सके वह यौजनिकः कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*गच्छति*' की अनुवृत्ति ५।१।७६ तक जायेगी ॥

पथः ष्कन् ॥५।१।७४॥

पथः ५।१॥ ष्कन् १।१॥ *अनु०*—गच्छति, तत्, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् पथिन्प्रातिपदिकात् गच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पन्थानं गच्छति = पथिकः, पथिकी ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*पथः*] पथिन् प्रातिपदिक से गच्छति इस अर्थ में [ष्कन्] ष्कन् प्रत्यय होता है ॥ पथिन् ष्कन् = पथिन् क, *नलोपः०* (८।२।७) से नकार लोप होकर पथिकः बन गया ॥

यहाँ से '*पथः*' की अनुवृत्ति ५।१।७५ तक जायेगी ॥

---

१. योजन शब्द का परिमाण समय समय पर बदलता रहता है, यह वर्तमान अर्थ है ।

तेन निर्वृत्तम् ॥५।१।७८॥

तेन ३।१॥ निर्वृत्तम् १।१॥ *अनु०*—कालात्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तेनेति तृतीयासमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् निर्वृत्तमित्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम्, आर्द्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्, सप्ताहेन निर्वृत्तो विवादः साप्ताहिकः, मुहूर्त्तेन निर्वृत्तं भोजनम् मौहूर्त्तिकम्, पाक्षिकः ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से [*निर्वृत्तम्*] बनाया हुआ इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥५।१।७९॥

तम् २।१॥ अधीष्टः १।१॥ भृतः १।१॥ भूतः १।१॥ भावी १।१॥ *अनु०*—कालात्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकाद् अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितम् = ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः, मासं भृतो मासिकः कर्मकरः । मासं भूतो मासिको व्याधिः । मासं भावी मासिक उत्सवः ॥

भाषार्थः—[*तम्*] द्वितीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*अधीष्टः*] सत्कारपूर्वक व्यापार [*भृतः*] खरीदा हुआ [*भूतः*] हो चुका [*भावी*] होने वाला, इन अर्थों में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है ॥

सत्कारपूर्वक जिस अध्यापक को मास भर के लिये रखा हो, वह मासिकः, जिसको वेतन = मजदूरी देकर मास भर को रखा हो वह भी मासिक, जिस व्याधि को मास भर हो चुका हो वह भी मासिक तथा जो उत्सव मास भर चले वह भी मासिक कहायेगा। ये सब अर्थ प्रकरण की विवक्षा देखकर लग जायेंगे ॥

यहाँ से '*तमधीष्टो भृतो भूतो भावी*' की अनुवृत्ति यथासम्भव ५।१।८४ तक जायेगी ॥

पन्थो ण नित्यम् ॥५।१।७५॥

पन्थः १।१॥ ण लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ नित्यम् १।१॥ अनु०—पथः, गच्छति, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पथिन्प्रातिपदिकस्य स्थाने पन्थ इत्ययमादेशो भवति, णश्च प्रत्ययो नित्यं गच्छतीत्येतस्मिन् विषये ॥ उदा०—पन्थानं नित्यं गच्छति = पान्थो भिक्षां याचते ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ पथिन् प्रातिपदिक के स्थान में [*पन्थः*] पन्थ आदेश तथा [*णः*] ण प्रत्यय [*नित्यम्*] 'नित्य ही जाता है' इस अर्थ में होता है ॥ यहाँ भी नित्य शब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है ॥

उत्तरपथेनाहृतं च ॥५।१।७६॥

उत्तरपथेन ३।१॥ आहृतम् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—गच्छति ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात्, उत्तरपथप्रातिपदिकाद् आहृतमित्येतस्मिन्नर्थे गच्छतीत्येतस्मिन् विषये च ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ निर्देशादेव समर्थविभक्तिः ॥ *उदा०*—उत्तरपथेनाहृतम् = औत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति = औत्तरपथिकः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*उत्तरपथेन*] उत्तरपथ प्रातिपदिक से [*आहृतम्*] लाया हुआ इस अर्थ में [*च*] तथा गच्छति अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ उत्तरपथेन तृतीयान्त निर्देश से ही यहाँ तृतीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

कालात् ॥५।१।७७॥

कालात् ५।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालाद् इत्यधिकारो वेदितव्यः *व्युष्टादिभ्योऽण्* (५।१।९६) इत्यतः प्राक् । इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः कालवाचिनः प्रातिपदिकाद् भविष्यन्ति ॥ तथा च वक्ष्यति तेन निर्वृत्तम्, 'मासेन' निर्वृत्तं = मासिकम्, आर्द्धमासिकम्, सांवत्सरिकम् ॥

भाषार्थः—[*कालात्*] कालात् यह अधिकार सूत्र है, ५।१।९५ तक इसका अधिकार जायेगा, अर्थात् यहाँ से आगे ५।१।९५ तक के कहे हुये प्रत्यय कालवाची प्रातिपदिकों से हुआ करेंगे, ऐसा जानें ॥

मासाद्वयसि यत्खञौ ॥५।१।८०॥

मासात् ५।१॥ वयसि ७।१॥ यत्खञौ १।२॥ *स०*—यत्खञौ इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—भूतःकालात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अधीष्टादीनां चतुर्णामधिकारेऽपि भूत इत्येवात्र सम्बध्यते ॥ *अर्थः*—मासशब्दात् वयस्यभिधेये यत्खञौ प्रत्ययौ भवतो भूतेऽर्थे ॥ *उदा०*—मासं भूतो मास्यः शिशुः, मासीनः ॥

भाषार्थः—[*मासात्*] मास प्रातिपदिक से [*वयसि*] अवस्था गम्यमान हो तो, भूत अर्थ में [*यत्खञौ*] यत् और खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ यद्यपि इस सूत्र में अधीष्ट आदि चारों अर्थों की अनुवृत्ति है तो भी अर्थ की योग्यतावशात् यहाँ केवल भूत अर्थ ही सम्बन्धित होगा ॥ जो (बच्चा आदि) मास भर का हुआ है वह मास्यः, या मासीनः कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*मासात्*' की अनुवृत्ति ५।१।८१ तक तथा '*वयसि*' की ५।१।८२ तक जायेगी ॥

द्विगोर्यप् ॥५।१।८१॥

द्विगोः ५।१॥ यप् १।१॥ *अनु०*—मासाद्वयसि भूतः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्विगुसंज्ञकात् मासान्तात् प्रातिपदिकात् यप् प्रत्ययो भवति वयस्यभिधेये भूतेऽर्थे ॥ *उदा०*—द्वौ मासौ भूतो द्विमास्यः, त्रिमास्यः ॥

भाषार्थः—[*द्विगोः*] द्विगुसंज्ञक मासान्त प्रातिपदिक से अवस्था अभिधेय हो तो भूत अर्थ में [*यप्*] यप् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ भी केवल भूत अर्थ का ही सम्बन्ध पूर्ववत् समझें ॥

यहाँ से '*यप्*' की अनुवृत्ति ५।१।८२ तक जायेगी ॥

षण्मासाण्ण्यच्च[1] ॥५।१।८२॥

षण्मासात् ५।१॥ ण्यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—यप्, वयसि भूतः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षण्मास-

---

१. एतत्सूत्रवचनात् *अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते*(महा० २।४१७) इति न प्रवर्तते पात्रादित्वाद् वाऽत्र प्रतिषेधो ज्ञेयः । अतएव इममेव प्रयोगमनुसृत्य

प्रातिपदिकात् वयस्यभिधेये भूतेऽर्थे ण्यत् प्रत्ययो भवति यप् च, चकाराद् औत्सर्गिकष्ठञपीष्यते ॥ उदा०—ण्यत्–षाण्मास्यः, यप्–षण्मास्यः, ठञ्–षाण्मासिकः ॥

भाषार्थः—[*षण्मासात्*] षण्मास प्रातिपदिक से अवस्था अभिधेय होने पर भूत अर्थ में [*ण्यत्*] ण्यत् [च] तथा यप् प्रत्यय होता है, चकार से औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय भी होता है, इस प्रकार तीन रूप बनेंगे ॥

यहाँ से '*षण्मासाण्ण्यत्*' की अनुवृत्ति ५।१।८३ तक जायेगी ॥

अवयसि ठंश्च ॥५।१।८३॥

अवयसि ७।१॥ ठन् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—न वयः, अवयस्तस्मिन् ...... नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—षण्मासाण्ण्यत्, भूतः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षण्मासप्रातिपदिकात् ठन् प्रत्ययो भवति ण्यत् चावयस्यभिधेये ॥ *उदा०*—षण्मासो भूतः षाण्मासिको रोगः[1], षाण्मास्यः ॥

भाषार्थः—षण्मास प्रातिपदिक से [*अवयसि*] अवस्था अभिधेय न हो तो [ठन्] ठन् [च] तथा ण्यत् प्रत्यय होता है, भूत अर्थ में ॥

समायाः खः ॥५।१।८४॥

समायाः ५।१॥ खः १।१॥ *अनु०*—तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात्

तत्र भगवता दयानन्देन संस्कृतवाक्यप्रबोधे 'षण्मासानन्तरं दास्यामि' इति प्रयोगः कृतः। तत्र शिवराजविजयोपन्यासलेखकेन अम्बिकादत्तव्यासेन भगवद्दयानन्दप्रयोगस्यापशब्दत्वं वदता 'षण्मास्यनन्तरम्' इति भवितव्यमित्युक्तमबोधनिवारणे। तदेतेन भगवतः प्रयोगस्य साधुत्वमुक्तं भवति। महाभारते चापि 'षण्मास' शब्दो बहुत्रोपलभ्यते।

१. संस्कृत भाषा में 'वयस्' शब्द प्राणियों के जन्मोत्तर व्यतीत काल का ही वाचक है। अतः रोगोत्पत्ति का उत्तर काल 'अवयस्' है। हिन्दी के अनुकरण पर संस्कृत में आजकल अनेक लोग वयस् के लिए आयु वा आयुष् का प्रयोग करते हैं वह चिन्त्य है।

समाप्रातिपदिकाद्, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इत्येतेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति ।। ठञोऽपवादः ।। *उदा०*—समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समीनः ।।

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*समायाः*] समा प्रातिपदिक से अधीष्ट भृत भूत भावी अर्थों में [*खः*] ख प्रत्यय होता है ।। कोई कोई सर्वत्र इस प्रकरण में तेन निर्वृत्तम् का अधिकार भी मानते हैं, सो समया निर्वृत्तः = समीनः भी बनेगा । वस्तुतः यह प्रयोगाधीन विषय है ।।

यहाँ से '*समायाः*' की अनुवृत्ति ५।१।८६ तक तथा '*खः*' की ५।१।८८ तक जायेगी ।।

द्विगोर्वा ।।५।१।८५।।

द्विगोः ५।१।। वा अ० ।। *अनु०*—समायाः खः, अधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् समाशब्दान्ताद् द्विगोरधीष्टादिष्वर्थेषु वा खः प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—द्विसमामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा = द्विसमीनः, द्वैसमिकः । त्रिसमीनः, त्रैसमिकः ।।

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ समाशब्द है अन्त में जिसके ऐसे [*द्विगोः*] द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से [*वा*] विकल्प करके ख प्रत्यय होता है ।। पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् होता है ।। *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः* (२।१।५१) से द्विसम, त्रिसम द्विगुसंज्ञक हैं ही ।।

यहाँ से '*द्विगोः*' की अनुवृत्ति ५।१।८९ तक तथा '*वा*' की अनुवृत्ति ५।१।८८ तक जायेगी ।।

रात्र्यहःसंवत्सराच्च ।।५।१।८६।।

रात्र्यहःसंवत्सरात् ५।१।। च अ० ।। *स०*—रात्रिश्च अहश्च संवत्सरश्च रात्र्य.....रम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—द्विगोर्वा, खः, तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् रात्रि अहः संवत्सर इत्येवमन्ताद् द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अधीष्टादिष्वर्थेषु वा खः प्रत्ययो भवति । पक्षे ठञ् भवति ।। *उदा०*—द्विरात्रीणः, द्वैरात्रिकः । त्रिरात्रीणः, त्रिरा-

त्रिक.। द्व्यहीनो, द्वैयह्निकः। त्र्यहीणः, त्रैयह्निकः। द्विसंवत्सरीणः, द्विसांवत्सरिकः। त्रिसंवत्सरीणः, त्रिसांवत्सरिकः॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*रात्र्यहःसंवत्सरात्*] रात्रि, अहन् संवत्सर ये शब्द अन्त में हैं जिसके ऐसे द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से [च] भी अधीष्टादि अर्थों में विकल्प करके ख प्रत्यय होता है॥ पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् होता है॥

वर्षाल्लुक् च ॥५।१।८७॥

वर्षात् ५।१॥ लुक् १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—द्विगोर्वा, खः, तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् वर्षान्ताद् द्विगोः प्रातिपदिकात् अधीष्टादिष्वर्थेषु वा खः प्रत्ययो भवति, पक्षे ठञ् तयोश्च वा लुग् भवति॥ तेन त्रैरूप्यं सिध्यति॥ *उदा०*—द्विवर्षीणो व्याधिः। द्विवार्षिकः। द्विवर्षः। त्रिवर्षीणः। त्रिवार्षिकः। त्रिवर्षः॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*वर्षात्*] वर्षा अन्त वाले द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से अधीष्टादि अर्थों में विकल्प करके ख प्रत्यय [च] तथा प्रत्यय का विकल्प करके [*लुक्*] लुक् होता है॥ पक्ष में ठञ् होता है, सो एक पक्ष में ख तथा दूसरे पक्ष में ठञ् एवं तीसरे पक्ष में ख तथा ठञ् का लुक् होकर तीन रूप बनते हैं॥

यहाँ से '*वर्षात्*' की अनुवृत्ति ५।१।८९ तक जायेगी॥

चित्तवति नित्यम् ॥५।१।८८॥

चित्तवति ७।१॥ नित्यम् १।१॥ *अनु०*—वर्षात्, द्विगोः, तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् वर्षाशब्दान्ताद् द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् चित्तवति प्रत्ययार्थेऽभिधेयेऽधीष्टादिष्वर्थेषूत्पन्नस्य प्रत्ययस्य नित्यं लुग् भवति॥ पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते वचनम्॥ *उदा०*—द्विवर्षो दारकः॥

भाषार्थः—[*चित्तवति*] चित्तवान् (चेतन) प्रत्ययार्थ अभिधेय हो तो द्वितीया समर्थ वर्षा शब्द अन्त वाले द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिकों से अधीष्टादि

अर्थों में उत्पन्न प्रत्यय का [*नित्यम्*] नित्य ही लुक् होता है ॥ पूर्व सूत्र से विकल्प प्राप्त था, नित्यार्थ यह वचन है ॥

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ॥५।१।८९॥

षष्टिकाः १।३॥ षष्टिरात्रेण ३।१। पच्यन्ते क्रिया० (कर्मवाच्ये बहुवचनेषु रूपमिदम्) ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्टिकशब्दो निपात्यते पच्यन्त इत्येतस्मिन्नर्थे । षष्टिरात्रशब्दात् तृतीयासमर्थात् कन् प्रत्ययो निपात्यते पच्यन्त इत्येतस्मिन्नर्थे, रात्रिशब्दस्य च लोपः ॥ *उदा०*—षष्टिरात्रेण पच्यन्ते = षष्टिकाः ॥

भाषार्थः—[*षष्टिकाः*] षष्टिक शब्द निपातन किया जाता है, [*पच्यन्ते*] 'पकाया जाता है' इस अर्थ में [*षष्टिरात्रेण*] तृतीयासमर्थ षष्टिरात्र शब्द से कन् प्रत्यय तथा रात्रि शब्द का लोप पकाया जाता है इस अर्थ में निपातन किया जाता है ॥ षष्टिकाः (साठी) यह धान्य विशेष की संज्ञा है, जो कि ६० रात अर्थात् २ मास में पकते हैं । षष्टिकाः में बहुवचन गौण है ॥

वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि ॥५।१।९०॥

वत्सरान्तात् ५।१॥ छः १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *स०*—वत्सर अन्तो यस्य स वत्सरान्तस्तस्मात्......बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् वत्सरान्तात्प्रातिपदिकाद् अधीष्टादिष्वर्थेषु छन्दसि विषये छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—इद्वत्सरीयः, इदावत्सरीयः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*वत्सरान्तात्*] वत्सर अन्त वाले प्रातिपदिकों से अधीष्टादि अर्थों में [*छन्दसि*] वेद विषय में [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥ छ को ईयादेश सिद्धि में हो ही जायेगा ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।१।९२ तक जायेगी ॥

संपरिपूर्वात् ख च ॥५।१।९१॥

संपरिपूर्वात् ५।१॥ ख लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—सञ्च परिश्च संपरि, संपरिपूर्वं यस्य स संपरिपूर्वस्तस्मात्......द्वन्द्वगर्भबहु-

व्रीहिः ॥ *अनु०*—वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि, तमधीष्टो भृतो भूतो भावी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् संपरिपूर्वाद् वत्सरान्तात् प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषयेऽधीष्टादिष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति चकाराच्छश्च ॥ *उदा०*— संवत्सरीणः, परिवत्सरीणः । छः—संवत्सरीयः, परिवत्सरीयः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*संपरिपूर्वात्*] सम् परि पूर्व में है जिसके ऐसे वत्सरान्त प्रातिपदिक से वेद विषय में अधीष्टादि अर्थों में [*ख*] ख प्रत्यय [*च*] तथा चकार से छ प्रत्यय होते हैं ॥ ख को 'ईन्' तथा छ को ईयादेश *आयनेयीनी०* (७।१।२) से हो ही जायेगा ॥

तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ॥५।१।९२॥

तेन ३।१॥ परि······रम् १।१॥ *स०*—परि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कालात्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तेनेति तृतीयासमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् परिजय्य, लभ्य, कार्य, सुकर इत्येतेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ परितः जेतुं योग्यः = परिजय्यः । एवं लब्धुं योग्यः लभ्यः ॥ *उदा०*—मासेन परिजय्यः = शक्यते जेतुं मासिको व्याधिः, सांवत्सरिकः । मासेन लभ्यो मासिकः पटः । मासेन कार्यं मासिकं चान्द्रायणम्, मासेन सुकरः मासिकः प्रासादः ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*परि··करम्*] परिजय्य = जीता जा सकता है, लभ्य = प्राप्त करने योग्य, कार्य = किया जा सके तथा सुकर = सुगमता से किया जाना, इन अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

तदस्य ब्रह्मचर्यम् ॥५।१।९३॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ ब्रह्मचर्यम् १।१॥ *अनु०*—कालात्, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ब्रह्मचर्यं चेद् गम्यते ॥ *उदा०*—मासोऽस्य ब्रह्मचर्यस्य मासिकं ब्रह्मचर्यम् । अत्र

केचित् तदिति द्वितीयासमर्थविभक्तिरिति मन्यन्ते, तस्मिन् पक्षेऽयं विग्रहः—मासं ब्रह्मचर्यमस्य मासिको ब्रह्मचारी ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है, [*ब्रह्मचर्यम्*] ब्रह्मचर्य गम्यमान होने पर ॥ विशेषः—तद् शब्द प्रथमा समर्थ तथा द्वितीया समर्थ दोनों ही कई लोगों ने माना है। प्रथमा समर्थ पक्ष में मासिक शब्द ब्रह्मचर्य का विशेषण होगा, किन्तु द्वितीया समर्थ पक्ष में मासिक शब्द ब्रह्मचारी का वाचक होगा। प्रथमा समर्थ में ब्रह्मचर्य के विशेषण वाला कालवाची का उदाहरण षट्त्रिंशदाब्दिकम् (ब्रह्मचर्यम्) ऐसा मनु० में मिलता है, किन्तु द्वितीया समर्थ ब्रह्मचारी वाच्य का उदाहरण अन्वेष्य है। यह विषय प्रयोगाधीन है। ऐसे उदाहरण मिलने पर द्वितीया समर्थ भी ठीक माना जा सकता है ॥

तस्य च दक्षिणायज्ञाख्येभ्यः ॥५।१।९४॥

तस्य ६।१॥ च अ० ॥ दक्षिणा १।१॥ यज्ञाख्येभ्यः ५।३॥ *स०*—यज्ञस्य आख्याः यज्ञाख्यास्तेभ्यः षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च। कालादित्यधिकारेऽपि, अत्र न सम्बध्यते ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो यज्ञाख्येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दक्षिणेत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिकी, वाजपेयिकी, राजसूयिकी ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ [*यज्ञाख्येभ्यः*] यज्ञ की आख्या वाले प्रातिपदिकों से [च] भी [*दक्षिणा*] दक्षिणा इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

तत्र च दीयते कार्यं भववत् ॥५।१।९५॥

तत्र अ० ॥ च अ० ॥ दीयते क्रिया० ॥ कार्यम् १।१॥ भववत् अ० ॥ भव इव भववत् ॥ *अनु०*—कालात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकात् दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोः भववत् प्रत्यया भवन्ति ॥ *उदा०*—यथा मासे भवं मासिकं सांवत्सरिकं प्रावृषेण्यं हैमन्तं हैमन्तिकं भवार्थे भवन्ति

तथैव दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरपि। मासे दीयते कार्यं वा मासिकं सांवत्सरिकं प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यमित्यादयो भवन्ति ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*दीयते*] दिया जाता है [*कार्यम्*] कार्य इन अर्थों में [*भववत्*] भव अर्थ के समान ही प्रत्यय हो जाते हैं, अर्थात् जैसे ४।३ में कालवाचियों से सामान्य शैषिक (भव अर्थ) अर्थों में ठञ् (४।३।११) एण्य (४।३।१७) आदि प्रत्यय कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी दीयते कार्यम् इन अर्थों में वे सब प्रत्यय हो जायेंगे ॥

यहाँ से '*तत्र दीयते कार्यं*' की अनुवृत्ति ५।१।९७ तक जायेगी ॥

व्युष्टादिभ्योऽण् ॥५।१।९६॥

व्युष्टादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—व्युष्ट आदिर्येषां ते व्युष्टादयस्तेभ्यः·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र, दीयते कार्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यो व्युष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यम् इत्यनयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम्, नैत्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*व्युष्टादिभ्यः*] व्युष्टादि प्रातिपदिकों से दीयते कार्यम् इन अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ *न य्वाभ्यां पदान्ता०* (७।३।३) से वैयुष्टम् में ऐच् आगम तथा आदि वृद्धि का निषेध होगा ॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्याम् णयतौ ॥५।१।९७॥

तेन ३।१॥ यथाकथाचहस्ताभ्याम् ५।२॥ णयतौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—दीयते कार्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां यथाकथाच, हस्त इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यं णयतौ प्रत्ययौ भवतः, दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोः ॥ *उदा०*—यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्, हस्तेन दीयते कार्यं हस्त्यम् ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ [*यथा··भ्याम्*] यथाकथाच, तथा हस्त प्रातिपदिकों से दीयते कार्यम् इन अर्थों में यथासङ्ख्य करके

तथैव दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरपि। मासे दीयते कार्यं वा मासिकं सांवत्सरिकं प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यमित्यादयो भवन्ति ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से [*दीयते*] दिया जाता है [*कार्यम्*] कार्य इन अर्थों में [*भववत्*] भव अर्थ के समान ही प्रत्यय हो जाते हैं, अर्थात् जैसे ४।३ में कालवाचियों से सामान्य शैषिक (भव अर्थ) अर्थों में ठञ् (४।३।११) एण्य (४।३।१७) आदि प्रत्यय कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी दीयते कार्यम् इन अर्थों में वे सब प्रत्यय हो जायेंगे ॥

यहाँ से '*तत्र दीयते कार्यं*' की अनुवृत्ति ५।१।९७ तक जायेगी ॥

व्युष्टादिभ्योऽण् ॥५।१।९६॥

व्युष्टादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—व्युष्ट आदिर्येषां ते व्युष्टादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र, दीयते कार्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यो व्युष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यम् इत्यनयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम्, नैत्यम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*व्युष्टादिभ्यः*] व्युष्टादि प्रातिपदिकों से दीयते कार्यम् इन अर्थों में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ *न य्वाभ्यां पदान्ता०* (७।३।३) से वैयुष्टम् में ऐच् आगम तथा आदि वृद्धि का निषेध होगा ॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्याम् णयतौ ॥५।१।९७॥

तेन ३।१॥ यथाकथाचहस्ताभ्याम् ५।२॥ णयतौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—दीयते कार्यम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां यथाकथाच, हस्त इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यं णयतौ प्रत्ययौ भवतः, दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोः ॥ *उदा०*—यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्, हस्तेन दीयते कार्यं हस्त्यम् ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ [*यथा··भ्याम्*] यथाकथाच, तथा हस्त प्रातिपदिकों से दीयते कार्यम् इन अर्थों में यथासङ्ख्य करके

[*ण्यतौ*] ण और यत् प्रत्यय होते हैं ॥ यथाकथाच शब्द अव्ययों का समुदाय है तथा अनादर अर्थ का वाचक है ॥

यहाँ से *'तेन'* की अनुवृत्ति ५।१।६६ तक जायेगी ॥

संम्पादिनि ॥५।१।९८॥

सम्पादिनि ७।१॥ *अनु०*—तेन, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्पादिन्यभिधेये ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि मुखं = कार्णवेष्टकिकं मुखम् । वास्त्रयुगिकं शरीरम् ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से [*सम्पादिनि*] शोभित किया इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से *'सम्पादिनि'* की अनुवृत्ति ५।१।६६ तक जायेगी ॥

कर्मवेषाद्यत् ॥५।१।९९॥

कर्म्मवेषात् ५।१॥ यत् १।१॥ *स०*—कर्म च वेषश्च, कर्मवेषम्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सम्पादिनि, तेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मन्-वेषशब्दाभ्यां सम्पादिनीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्मणा सम्पद्यते कर्मण्यं शरीरम्, वेषेण सम्पद्यते वेष्यो नटः, वेष्या नटिनी ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*कर्मवेषात्*] कर्मन् तथा वेष शब्दों से सम्पादित, शोभित किया इस अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥

तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥५।१।१००॥

तस्मै ४।१॥ प्रभवति क्रिया० ॥ संतापादिभ्यः ५।३॥ *स०*—संताप आदिर्येषां ते संतापादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थेभ्यः संतापादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—संतापाय प्रभवति = सांतापिकः, सान्नाहिकः ॥

भाषार्थः—[*तस्मै*] चतुर्थी समर्थ [*संतापादिभ्यः*] संतापादि प्रातिपदिकों से [*प्रभवति*] समर्थ है = शक्त है, इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तस्मै प्रभवति*' की अनुवृत्ति ५।१।१०२ तक जायेगी ॥

योगाद्यच्च ॥५।१।१०१॥

योगात् ५।१॥ यत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तस्मै प्रभवति, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थात् योगप्रातिपदिकात् प्रभवतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, ठञ् च ॥ *उदा०*—योगाय प्रभवति योग्यः, यौगिकः ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*योगात्*] योग प्रातिपदिक से प्रभवति इस अर्थ में [*यत्*] यत् [*च*] तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं ॥

कर्मण उकञ् ॥५।१।१०२॥

कर्मणः ५।१॥ उकञ् १।१॥ *अनु०*—तस्मै प्रभवति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चतुर्थीसमर्थात् कर्मणः प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्येतस्मिन्नर्थे उकञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्मणे प्रभवति कार्मुको धनुः ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [*कर्मणः*] कर्मन् प्रातिपदिक से प्रभवति = समर्थ है इस अर्थ में [*उकञ्*] उकञ् प्रत्यय होता है ॥ ठञ् का अपवाद यह सूत्र है ॥ कर्म में जो समर्थ है, वह कार्मुक कोई भी कहा जा सकता है, परन्तु इसका सामान्य अर्थ में अभिधान न होने से केवल यह धनुष अर्थ का ही वाचक है ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥५।१।१०३॥

समयः १।१॥ तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ प्राप्तम् १।१॥ *अनु०*—ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थात् समयप्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति यत्तद्प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत्तद् भवति ॥ *उदा०*—समयः प्राप्तोऽस्य = सामयिकं कार्यम् ॥

२१

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमा समर्थ [*समयः*] समय प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक [*प्राप्तम्*] प्राप्त समानाधिकरण हो तो ॥ जिसका समय प्राप्त हो गया है = आ चुका है, वह सामयिक कार्य कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*तदस्य*' की अनुवृत्ति ५।१।११३ तक तथा '*प्राप्तम्*' की अनुवृत्ति ५।१।१०६ तक जायेगी ॥

ऋतोरण् ॥५।१।१०४॥

ऋतोः ५।१॥ अण् १।१॥ *अनु०*—तदस्य प्राप्तम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाद् ऋतुप्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति प्राप्तमित्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—ऋतुः प्राप्तोऽस्य = आर्त्तवं पुष्पम् ॥

भाषार्थः—प्रथमा समर्थ [*ऋतोः*] ऋतु प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है, यदि वह ऋतु शब्द प्राप्त समानाधिकरण वाला हो तो ॥

यहाँ से '*ऋतोः*' की अनुवृत्ति ५।१।१०५ तक जायेगी ॥

छन्दसि घस् ॥५।१।१०५॥

छन्दसि ७।१॥ घस् १।१॥ *अनु०*—ऋतोः, तदस्य प्राप्तम्, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऋतुशब्दात् छन्दसि विषये घस् प्रत्ययो भवति, तदस्य प्राप्तमित्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—अयं ते योनिर्ऋत्वियः ॥

भाषार्थः—ऋतु शब्द से [*छन्दसि*] वेद विषय में तदस्य प्राप्तम् इस अर्थ में [*घस्*] घस् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र का यह अपवाद सूत्र है ॥ घस् परे रहते ऋतु शब्द की *सिति च* (१।४।१६) से पद संज्ञा होने से *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से गुण नहीं होता। यणादेश होकर ऋत्वियः बनता है ॥

कालाद्यत् ॥५।१।१०६॥

कालात् ५।१॥ यत् १।१॥ *अनु०*—तदस्य प्राप्तम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कालप्रातिपदिकात् तदस्य

प्राप्तमित्येतस्मिन् विषये यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कालः प्राप्तोऽस्य काल्यस्तापः, काल्यं शीतम् ॥

भाषार्थः—[*कालात्*] काल प्रातिपदिक से तदस्य प्राप्तम् इस विषय में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥ ठञ् का अपवाद यह सूत्र है ॥

यहाँ से '*कालात्*' की अनुवृत्ति ५।१।१०७ तक जायेगी ॥

प्रकृष्टे ठञ् ॥५।१।१०७॥

प्रकृष्टे ७।१॥ ठञ् १।१॥ *अनु०*—कालात्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रकर्षे वर्त्तमानात् प्रथमासमर्थात् कालशब्दात् ठञ् प्रत्ययो भवति, षष्ठ्यर्थे ॥ *उदा०*—प्रकृष्टो दीर्घः कालोऽस्य कालिकमृणम्, कालिकं वैरम् ॥

भाषार्थः—[*प्रकृष्टे*] प्रकर्ष में वर्त्तमान जो प्रथमा समर्थ काल शब्द, उससे षष्ठ्यर्थ में [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है ॥ जिसका प्रकृष्ट अर्थात् दीर्घ काल वाला ऋण या वैर हो वह ऋण या वैर कालिकम् कहा जायेगा ॥

प्रयोजनम् ॥५।१।१०८॥

प्रयोजनम् १।१॥ *अनु०*—तदस्य, ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रयोजनसमानाधिकरणवाचिनः प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य ऐन्द्रमहिकम्, गाङ्गामहिकम्, वितण्डा प्रयोजनमस्य वैतण्डिकः, धार्मिकः, पारीक्षिकः ॥

भाषार्थः—[*प्रयोजनम्*] प्रयोजन समानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ इन्द्रमह गङ्गामह उत्सव विशेष के वाचक हैं । वितण्डा निरर्थक बकवास का नाम है ॥

यहाँ से '*प्रयोजनम्*' की अनुवृत्ति ५।१।११२ तक जायेगी ॥

विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः ॥५।१।१०९॥

विशाखाषाढात् ५।१॥ अण् १।१॥ मन्थदण्डयोः ७।२॥ *स०*—विशा० इत्यत्र समाहारद्वन्द्वः । मन्थ० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—प्रयो-

जनम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विशाखा, अषाढ इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं मन्थदण्डयोरभिधेययोस्तदस्यप्रयोजनमित्येतस्मिन् विषयेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विशाखा प्रयोजनमस्य मन्थस्य वैशाखो मन्थः, आषाढो दण्डः ॥

भाषार्थः—[*विशाखाषाढात्*] विशाखा, अषाढ शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*मन्थदण्डयोः*] मन्थ तथा दण्ड अभिधेय हों तो [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है, तदस्य प्रयोजनम् इस विषय में ॥

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥५।१।११०॥

अनुप्रवचनादिभ्यः ५।३॥ छः १।१॥ *स०*—अनुप्रवचन आदिर्येषां ते अनुप्रवचनादयस्तेभ्यः...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—प्रयोजनम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनुप्रवचनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छः प्रत्ययो भवति तदस्य प्रयोजनमित्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्, उत्थापनीयम्, प्रवेशनीयम् ॥

भाषार्थः—[*अनुप्रवचनादिभ्यः*] अनुप्रवचनादि प्रातिपदिकों से तदस्य प्रयोजनम् इस विषय में [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ५।१।१११ तक जायेगी ॥

समापनात् सपूर्वपदात् ॥५।१।१११॥

समापनात् ५।१॥ सपूर्वपदात् ५।१॥ *स०*—विद्यमानः पूर्वपदं यस्य तत् सपूर्वपदं तस्मात्...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, प्रयोजनम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सपूर्वपदात् = विद्यमानपूर्वपदात् समापनप्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति तदस्य प्रयोजनमित्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—छन्दस्समापनं प्रयोजनमस्य छन्दःसमापनीयम्, व्याकरणसमापनीयम् ॥

भाषार्थः—[*सपूर्वपदात्*] विद्यमान है पूर्व पद जिसके ऐसे [*समापनात्*] समापन प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है, तदस्य प्रयोजनम् इस विषय में ॥

ऐकागारिकट् चौरे ॥५।१।११२॥

ऐकागारिकट् १।१॥ चौरे ७।१॥ *अनु०*—प्रयोजनम्, तदस्य, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऐकागारिकट् इति निपात्यते चौरेऽभिधेये, तदस्य प्रयोजनमित्येतस्मिन् विषये ॥ ऐकागारं प्रयोजनमस्य = ऐकागारिकः चौरः ॥

भाषार्थः—[*ऐकागारिकट्*] ऐकागारिकट् यह निपातन किया जाता है तदस्य प्रयोजनम् इस विषय में [*चौरे*] चोर अभिधेय होने पर, ऐकागार शब्द से इकट् प्रत्यय करके वृद्धि आदि होकर ऐकागारिकः बना। ऐकागारिकट् में टकार अनुबन्ध लगाया है, इससे स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होता है ॥ जिसका एक (अकेला) ही घर प्रयोजन है (चोरी के लिये) वह ऐकागारिकः चौरः कहायेगा ॥

आकालिकडाद्यन्तवचने ॥५।१।११३॥

आकालिकट् १।१॥ आद्यन्तवचने ७।१॥ *स०*—आदिश्च अन्तश्च, आद्यन्तौ, तयोर्वचनम् आद्यन्तवचनम्, तस्मिन्...... द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—प्रयोजनम्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—आकालिकडिति निपात्यते, आद्यन्तवचने विशेषणे। समानकालशब्दस्य, आकालशब्दादेशः, इकट् च प्रत्ययः, आद्यन्तयोश्चेद् विशेषणम् ॥ समानकालौ आद्यन्तौ यस्य स आकालिकः स्तनयित्नुः ॥

भाषार्थः—[*आकालिकट्*] आकालिकट् यह निपातन किया जाता है, यदि [*आद्यन्तवचने*] आद्यन्त विशेषण हो तो। समान काल शब्द को आकाल आदेश तथा इकट् प्रत्यय यहाँ निपातन किया गया है ॥ बिजली की चमक कब पैदा हुई और कब खतम हो गई इसका पता नहीं लगता, अर्थात् उसके आदि अन्त का पता नहीं सो उसे आकालिकः स्तनयित्नुः कहते हैं ॥ यहाँ से ठञ् का अधिकार समाप्त हुआ ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥५।१।११४॥

तेन ३।१॥ तुल्यम् १।१॥ क्रिया १।१॥ चेत् अ०॥ वतिः १।१॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तेनेति

तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तुल्यमित्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति यत्तत्तुल्यं क्रिया चेत्सा भवति ॥ *उदा०*—ब्राह्मणेन तुल्यं क्रिया ब्राह्मणवत् अधीते। राजवत् अनुशास्ति। स्थानिना तुल्यं वर्त्तते = क्रिया स्थानिवत् ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*तुल्यं क्रिया*] समान क्रिया [*चेत्*] यदि हो तो इस अर्थ में [*वतिः*] वति प्रत्यय होता है ॥ ब्राह्मण के समान (जो अध्ययन अध्यापन) क्रिया है, वह ब्राह्मणवत् कहायेगी ॥

यहाँ से '*वतिः*' की अनुवृत्ति ५।१।११७ तक जायेगी ॥

तत्र तस्येव ॥५।१।११५॥

तत्र अ० ॥ तस्य ६।१॥ इव अ० ॥ *अनु०*—वतिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत्रेति सप्तमीसमर्थात् तस्येति षष्ठीसमर्थाच्च प्रातिपदिकादिवार्थे वतिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मथुरायामिव मथुरावत्, पाटलिपुत्रवत्। षष्ठीसमर्थात्—देवदत्तस्येव देवदत्तवत् यज्ञदत्तस्य गावः। यज्ञदत्तस्येव देवदत्तस्य दन्ता यज्ञदत्तवत् ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से [*तस्य*] तथा षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से [*इव*] इव अर्थ में = समान अर्थ में वति प्रत्यय होता है ॥

तदर्हम् ॥५।१।११६॥

तत् २।१॥ अर्हम् २।१॥ *अनु०*—वतिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हणविशिष्टक्रियायां सत्यां वतिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—राजानमर्हति राजवत् पालनम्, ब्राह्मणवत् विद्याप्रचारः; ऋषिवत्, क्षत्रियवत् ॥

भाषार्थः—[*तद्*] द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से [*अर्हम्*] अर्हण विशिष्ट क्रिया वाच्य हो तो वति प्रत्यय होता है ॥ राजाओं के समान

अर्थात् जैसा लालन पालन राजाओं को ही योग्य[1] हो उचित हो वह राजवत् पालनम् होगा।

उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ॥५।१।११७॥

उपसर्गात् ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ धात्वर्थे ७।१॥ *स०*—धातोरर्थः, धात्वर्थस्तस्मिन्.......षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—वतिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—धात्वर्थे वर्त्तमानाद् उपसर्गात् छन्दसि विषये स्वार्थे वतिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—यद् उद्वतो निवतो यासि वप्सद् ॥

भाषार्थः—[*धात्वर्थे*] धात्वर्थ में वर्त्तमान [*उपसर्गात्*] उपसर्ग से स्वार्थ में वति प्रत्यय होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥ उत् तथा नि उपसर्ग उद्गत, निगत अर्थ में वर्त्तमान होने से धात्वर्थ में वर्त्तमान हैं, अतः इनसे वति प्रत्यय होकर उद्वतः निवतः बना है ॥

तस्य भावस्त्वतलौ ॥५।१।११८॥

तस्य ६।१॥ भावः १।१॥ त्वतलौ १।२॥ *स०*—त्वश्च तल् च त्वतलौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् भाव इत्येतस्मिन्नर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—मनुष्यस्य भावः मनुष्यत्वम्, मनुष्यता। अश्वत्वम्, अश्वता। गोत्वम्, गोता ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से [*भावः*] भाव अर्थ में [*त्वतलौ*] त्व और तल् प्रत्यय होते हैं ॥ जिस गुण के होने से किसी

---

१. महाभाष्य में इस सूत्र में ऊपर से 'क्रिया' की अनुवृत्ति लाकर यह दिखाया है, कि राजवत् आदि में सादृश्य का अभाव होने से *तेन तुल्यं* (५।१।११४) से वति प्रत्यय नही हो सकता, राजवत् पालनम् का यह अर्थ नहीं है कि राजा के समान किसी का पालन होता है, किन्तु यह है कि राजा को ही (स्वयं कर्त्ता को) जो योग्य क्रिया इस अर्थ में वति प्रत्यय हो, जैसे छत्र धारण, एवं चँवर डुलानादि कुछ क्रियायें ऐसी हैं जो राजा के लिये ही होती है। संक्षेप में यहाँ वति प्रत्यय स्वयं कर्त्ता को जो योग्य = उचित क्रिया उसमें होता है, सादृश्य में नहीं ॥

शब्द का किसी अर्थ के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध होता है, उसे ही यहाँ भाव शब्द से कहा गया है। भाव से यहाँ किसी का भाव = अभिप्रायादि नहीं लेना है। मनुष्यपन अर्थात् मनुष्य जैसा स्वभाव होने से ही वह मनुष्य कहायेगा (गाय या भैंस नहीं) इसलिये यह मनुष्यपन ही मनुष्य का भाव है, इसे ही मनुष्यत्व या मनुष्यता कहेंगे। इसी प्रकार अश्वत्व अश्वता आदि में जानें॥

यहाँ से '*तस्य भावः*' की अनुवृत्ति ५।१।१३५ तक जायेगी॥

आ च त्वात् ॥५।१।११९॥

आ० अ०॥ च अ०॥ त्वात् ५।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—इतः प्रभृति आ त्वात् = *ब्रह्मणस्त्वः* पर्यन्तं त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः॥ वक्ष्यति *पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा*, तत्र त्वतलावपि भवतः। *उदा०*—पृथुता पृथुत्वम्॥

भाषार्थः—[*आ च*] यहाँ से लेकर [*त्वात्*] *ब्रह्मणस्त्वः* (५।१।१३५) के त्व पर्यन्त त्व तल् प्रत्यय होते हैं, ऐसा अधिकार जानना चाहिये॥ यद्यपि त्व तल् का *ब्रह्मणस्त्वः* पर्यन्त अधिकार करने से भी काम चल जाता, पुनः यह सूत्र इसलिये है कि जहाँ त्व तल् के अपवाद रूप अन्य भाव प्रत्यय कहे हैं वहाँ भी त्व तल् हो जायें। जैसे पृथ्वादियों (५।१।१२१) से इमनिच् प्रत्यय त्व, तल् का अपवाद कहा है, वहाँ भी इमनिच् के साथ साथ त्व तल् प्रत्यय हो जायें॥

न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः ॥५।१।१२०॥

न अ०॥ नञ्पूर्वात् ५।१॥ तत्पुरुषात् ५।१॥ अचतुर····सेभ्यः ५।३॥ *स०*—नञ्पूर्वो यस्मिन् स नञ्पूर्वस्तस्मात्·····बहुव्रीहिः। अचतुरसं० इत्यत्र पूर्वम् इतरेतरद्वन्द्वस्ततो नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—इत उत्तरे ये भावप्रत्ययास्ते नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात् न भवन्ति, चतुर संगत लवण वट युध कत रस लस इत्येतान् शब्दान् वर्जयित्वा। तेषु प्रति-

षिद्धेषु नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात् त्वतलावेव भवतः ॥ *उदा०*—वक्ष्यति *पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्* तत्र नञ्पूर्वात् तत्पुषात् त्वतलावेव भवतो न तु यक्—अपतित्वम् अपतिता । अपटुत्वम् अपटुता, अत्र अण् (५।१।१३०) न भवति । अरमणीयत्वम् अरमणीयता, अत्र वुञ् (५।१।१३१) न भवति ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे जो भाव प्रत्यय कहेंगे वह [*नञ्पूर्वात्*] नञ्पूर्व वाले [*तत्पुरुषात्*] तत्पुरुष से [*न*] नहीं होंगे, [*अचतु*······*सेभ्यः*] चतुर, संगत, लवण, वट, युध, कत, रस, लस शब्दों को छोड़कर । चतुर् आदि शब्द यदि नञ्पूर्व तत्पुरुष समास में होंगे तो इनसे जो भावप्रत्यय आगे कहे जायेंगे वे हो ही जायेंगे, किन्तु अन्यों से नहीं होंगे । उन तत्तत् प्रत्ययों का प्रतिषेध हो जाने पर नञ्पूर्व तत्पुरुष से त्व, तल् ही हुआ करेंगे ॥ अपतित्वम् अपतिता आदि से यक् आदि प्रत्यय न होकर त्व तल् ही हुये हैं ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥५।१।१२१॥

पृथ्वादिभ्यः ५।३॥ इमनिच् १।१॥ वा अ० ॥ *स०*—पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयस्तेभ्यः···बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पृथ्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेनेमनिच् प्रत्ययो भवति, तस्य भाव इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—पृथोर्भावः प्रथिमा । पक्षे अण्—पार्थवम्, पृथुत्वम् पृथुता । म्रदिमा, मार्दवम्, मृदुत्वम्, मृदुता ॥

भाषार्थः—[*पृथ्वादिभ्यः*] पृथ्वादि प्रातिपदिकों से [*वा*] विकल्प से [*इमनिच्*] इमनिच् प्रत्यय होता है, तस्य भावः इस अर्थ में ॥ अधिकार होने से त्व तल् हो ही जायेंगे, तथा 'वा' कहने से पक्ष में पार्थवम् में *इगन्ताच्च लघुपूर्वात्* (५।१।१३०) से इगन्त वा लघुपूर्व होने से अण् होगा । प्रथिमा म्रदिमा में *तुरिष्ठेमेयस्सु* (६।४।१५४) से टि भाग का लोप तथा र ऋतो हलादेर्लघोः (६।४।१६१) से पृथु मृदु के ऋ को इमनिच् परे रहते र् हो गया है ॥

यहाँ से '*इमनिच्*' की अनुवृत्ति ५।१।१२२ तक जायेगी ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥५।१।१२२॥

वर्णदृढादिभ्यः ५।३॥ ष्यञ् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः, वर्णश्च दृढादयश्च, वर्णदृढादयस्तेभ्यः····बहुव्रीहिगर्भे-इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इमनिच्, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वर्णविशेषवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः ष्यञ् प्रत्ययो भवति, इमनिच्च तस्य भाव इत्येतस्मिन् विषये । *उदा०*—वर्णविशेषवाचिभ्यः—शुक्लस्य भावः = शौक्ल्यम् । इमनिच्—शुक्लिमा । शुक्लत्वम्, शुक्लता । कार्ष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता । दृढादिभ्यः—दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता ।

भाषार्थः—[*वर्णदृढादिभ्यः*] वर्णविशेषवाची तथा दृढादि प्रातिपदिकों से [*ष्यञ्*] ष्यञ् [*च*] तथा इमनिच् प्रत्यय होते हैं ॥ त्व तल् तो सर्वत्र होंगे ही । पूर्ववत् र *ऋतो हलादेर्लघोः* (६।४।१६१) से द्रढिमा में ऋ को र् हुआ है ॥

यहाँ से '*ष्यञ्*' की अनुवृत्ति ५।१।१२३ तक जायेगी ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥५।१।१२३॥

गुण····भ्यः ५।३॥ कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ गुणमुक्तवन्तो गुणवचनाः ॥ *स०*—ब्राह्मण आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः, बहुव्रीहिः । गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च, गुण····णादयस्तेभ्यः····इतरेतर-द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ष्यञ्, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः कर्मण्यभिधेये भावे च ष्यञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गुणवचनेभ्यः—जडस्य भावः, कर्म वा = जाड्यम्, जडत्वम्, जडता । ब्राह्मणादिभ्यः—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा = ब्राह्मण्यम्, ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता, माणव्यम्, माणवत्वम्, माणवता ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*गुण····भ्यः*] गुणवचन, तथा ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से [*कर्मणि*] कर्म अभिधेय होने पर [*च*] तथा भाव में ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥ जड का भाव या कर्म = क्रिया जाड्य कही जायेगी, इसी प्रकार औरों में जानें । कर्म से यहाँ क्रिया लेनी चाहिये ॥ गुण को जिसने कहा वह गुणवचन कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*कर्मणि*' की अनुवृत्ति ५।१।१२५ तक जायेगी ॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥५।१।१२४॥

स्तेनात् ५।१॥ यत् १।१॥ नलोपः १।१॥ च अ० ॥ *स०*—नकारस्य लोपः नलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् स्तेनप्रातिपदिकात् भावकर्मणोर्यत् प्रत्ययो भवति, नकारस्य च लोपः॥ *उदा०*—स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*स्तेनात्*] स्तेन प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है, तथा स्तेन शब्द के [*नलोपः*] न का लोप [*च*] भी हो जाता है॥ स्तेन + यत्, स्ते + य = स्तेयम् बन गया॥

सख्युर्यः ॥५।१।१२५॥

सख्युः ५।१॥ यः १।१॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् सखिप्रातिपदिकाद् यः प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः॥ *उदा०*—सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*सख्युः*] सखि प्रातिपदिक से [*यः*] य प्रत्यय होता है भाव और कर्म अर्थों में॥ सखिपन अर्थात् मित्रता या मित्र की क्रिया को सख्यम् कहेंगे॥

कपिज्ञात्योर्ढक् ॥५।१।१२६॥

कपिज्ञात्योः ६।२॥ ढक् १।१॥ *स०*—कपि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिज्ञातिप्रातिपदिकाभ्यां ढक् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः॥ *उदा०*—कपेर्भावः कर्म वा कापेयम्, ज्ञातेयम्॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*कपिज्ञात्योः*] कपि तथा ज्ञाति प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थों में [*ढक्*] ढक् प्रत्यय होता है॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥५।१।१२७॥

पत्य······भ्यः ५।३॥ यक् १।१॥ *स०*—पतिः शब्दोऽन्ते यस्य स पत्यन्तः, बहुव्रीहिः। पुरोहित आदिर्येषां ते पुरोहितादयः, बहुव्रीहिः।

पत्यन्तश्च पुरोहितादयश्च, पत्य·····दयस्तेभ्यः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च भावकर्मणोरर्थयोर्यक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पत्यन्तात्—सेनापतेर्भावः कर्म वा सैनापत्यम्, गार्हपत्यम्, प्राजापत्यम्। पुरोहितादिभ्यः—पुरोहितस्य भावः कर्म वा पौरोहित्यम्, राज्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*पत्य·····भ्यः*] पति शब्द अन्त वाले तथा पुरोहितादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थों में [*यक्*] यक् प्रत्यय होता है ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥५।१।१२८॥

प्राणभृ·····भ्यः ५।३॥ अञ् १।१॥ *स०*—उद्गातृ आदिर्येषां त उद्गात्रादयः, बहुव्रीहिः। प्राणभृज्जातिश्च, वयोवचनञ्च, उद्गात्रादयश्च, प्राण·····दयस्तेभ्यः·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणभृद्जातिवाचिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽञ् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः ॥ *उदा०*—प्राणभृद्जातिवाचिभ्यः—अश्वस्य भावः कर्म वा आश्वम्, औष्ट्रम्। अश्वत्वम् अश्वता, उष्ट्रत्वम्, उष्ट्रता। वयोवचनेभ्यः—कौमारम्, कैशोरम्, एवं त्वतलावपि बोध्यौ। उद्गात्रादिभ्यः—उद्गातुर्भावः कर्म वा औद्गात्रम्, औन्नेत्रम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*प्राण··दिभ्यः*] प्राणभृद्जाति = प्राणधारी जाति, अर्थात् जीवधारी जातिवाची प्रातिपदिकों से, वयोवचन = अवस्थावाची प्रातिपदिकों से तथा उद्गात्रादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ उद्गात्रदियों में जो ऋत्विग्विशेषवाची शब्द हैं, उनसे *होत्राभ्यश्छः* (५।१।१३४) से छ प्राप्त था तदपवाद अञ् कह दिया ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥५।१।१२९॥

हायनान्तयुवादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—हायनोऽन्ते यस्य स हायनान्तः, बहुव्रीहिः। युवन् आदिर्येषां ते युवादयः, बहुव्रीहिः। हाय-

नान्तश्च युवादयश्च, हायनान्तयुवादयस्तेभ्यः... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*— कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो हायनान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो युवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः ॥ *उदा०*— हायनान्तेभ्यः—द्विहायनस्य भावः कर्म वा द्वैहायनम्, त्रैहायनम्। युवादिभ्यः—यौवनम्। स्थाविरम्। सर्वत्र त्वतलावप्युदाहार्यौ ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*हाय...भ्यः*] हायन अन्त वाले, तथा युवादि प्रातिपदिकों से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है, भाव और कर्म अर्थों में ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ५।१।१३० तक जाती है ॥

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ॥५।१।१३०॥

इगन्तात् ५।१॥ च अ० ॥ लघुपूर्वात् ५।१॥ *स०*—इक् अन्ते यस्य स इगन्तस्तस्मात्..... बहुव्रीहिः। लघुः पूर्वं यस्य स लघुपूर्वस्तस्मात्... ...बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अण्, कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् लघुपूर्वाद् अण् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः ॥ *उदा०*— शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्। मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*लघुपूर्वात्*] लघु पूर्व में है जिसके ऐसे [*इगन्तात्*] इक् अन्त वाले प्रातिपदिक से [*च*] भी भाव और कर्म अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ शुचि और मुनि शब्द इगन्त भी हैं, तथा लघु अक्षर (*ह्रस्वं लघु* १।४।१०) पूर्व में भी है सो अण् हो गया है। त्व तल् तो हो ही जायेंगे ॥

योपधाद् गुरूपोत्तमाद्वुञ् ॥५।१।१३१॥

योपधात् ५।१॥ गुरूपोत्तमात् ५।१॥ वुञ् १।१॥ *स०*—यकार उपधा यस्य स योपधः, तस्मात्..... बहुव्रीहिः। उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम्, अव्ययीभावः। गुरु उपोत्तमं यस्य स गुरूपोत्तमः तस्मात्... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाद् योपधाद् गुरूपोत्त-

मात् प्रातिपदिकात् वुञ् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः ॥ उदा०— रमणीयस्य भावः कर्म वा रामणीयकम् , वासनीयकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*योपधात्*] यकार उपधा वाले [*गुरूपोत्तमात्*] गुरु है उपोत्तम जिसका ऐसे प्रातिपदिक से, भाव और कर्म अर्थों में [*वुञ्*] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ रमणीय, वासनीय शब्द यकार उपधा वाले एवं गुरूपोत्तम हैं ॥ गुरु का अभिप्राय *संयोगे गुरु, दीर्घं च* (१।४।११,१२) से ही है, तथा उपोत्तम की व्याख्या ४।१।७८ में कर चुके हैं, यहाँ रमणीय का 'य' उत्तम तथा उसके समीप जो 'णी' वह उपोत्तम है, उसकी *दीर्घं च* से गुरु संज्ञा भी है अतः वुञ् प्रत्यय हो गया है ॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ५।१।१३३ तक जायेगी ॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥५।१।१३२॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—मनोज्ञ आदिर्येषां ते मनोज्ञादयः, बहुव्रीहिः । द्वन्द्वश्च मनोज्ञादयश्च, द्वन्द्वमनोज्ञादयस्तेभ्यः··· इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ् , कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो द्वन्द्व-संज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः वुञ् प्रत्ययो भवति भावकर्म-णोरर्थयोः ॥ उदा०—द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यः—गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा गौपालपशुपालिका, शैष्योपाध्यायिका कौत्सकुशिकिका । मनोज्ञादिभ्यः—मानोज्ञकम् , काल्याणकम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः*] द्वन्द्व संज्ञक तथा मनोज्ञादि प्रातिपदिकों से [च] भी भाव और कर्म अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गौपालपशुपालिका (गोपाल और पशुपाल का कर्म वा भाव) शैष्योपाध्यायिका (शिष्य और उपाध्याय का कर्म वा भाव) मानो-ज्ञकम् (मनोज्ञ = सुन्दर का भाव वा कर्म) काल्याणकम् (कल्याण का भाव वा कर्म) ॥ *प्रत्ययस्थात्०* (७।३।४४) से गौपालपशुपालिकादि में इकारादेश हुआ है ॥

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ॥५।१।१३३॥

गोत्रचरणात् ५।१॥ श्लाघा·····तेषु ७।३॥ *स०*—गोत्र० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः । श्लाघा च अत्याकारश्च तदवेतश्च, श्ला·····वेता-

स्तेषु·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वुञ्, कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् श्लाघा, अत्याकार, तदवेत इत्येतेषु विषयभूतेपु भावकर्मणोरर्थयोर्वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—श्लाघायाम्—गार्गिकया(३।१) श्लाघते, काठिकया श्लाघते । अत्याकारे—गार्गिकया अत्याकुरुते, काठिकयाऽत्याकुरुते । तदवेते—गार्गिकामवेतः, काठिकामवेतः ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*गोत्रचरणात्*] गोत्रवाची तथा चरणवाची प्रातिपदिकों से [*श्ला*·····*वेतेषु*] श्लाघा, अत्याकार तदवेत विपय में भाव कर्म अर्थों से वुञ् प्रत्यय होता है ॥ श्लाघा कहते हैं प्रशंसा बड़ाई हाँकने को । अत्याकार अपमान करने को कहते हैं । तथा तदवेत, उससे युक्त को कहते हैं ॥ *उदा०*—श्लाघा में—गार्गिकया श्लाघते (गर्ग गोत्र होने के कारण श्लाघा = प्रशंसा करता है) काठिकया श्लाघते (कठ चरण होने के कारण श्लाघा करता है । अत्याकारे—गार्गिकयाऽत्याकुरुते (गर्ग गोत्र होने के कारण निन्दा करता है) । तदवेते—गार्गिकामवेतः (गर्ग गोत्रत्व को प्राप्त हुआ) ॥

होत्राभ्यश्छः ॥५।१।१३४॥

होत्राभ्यः ५।३॥ छः १।१॥ *अनु०*—कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—होत्राशब्दः ऋत्विग्विशेषवाची । होत्रा = ऋत्विग्विशेपवाचिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः भावकर्मणोरर्थयोश्छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अच्छावाकस्य भावः कर्म वा अच्छावाकीयम्, मित्रावरुणीयम्, ब्राह्मणाच्छंसीयम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*होत्राभ्यः*] ऋत्विग् विशेषवाची प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थों में [*छः*] छ प्रत्यय होता है ॥ होत्रा शब्द ऋत्विग् विशेषों का वाचक है ॥

यहाँ से '*होत्राभ्यः*' की अनुवृत्ति ५।१।१३५ तक जायेगी ॥

ब्रह्मणस्त्वः ॥५।१।१३५॥

ब्रह्मणः ५।१॥ त्वः १।१॥ *अनु०*—होत्राभ्यः, कर्मणि, तस्य भावस्त्वतलौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् होत्रावाचिनो ब्रह्मन्प्रातिपदिकात् भावकर्मणोरर्थयोस्त्वः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ब्रह्मणो भावः कर्म वा ब्रह्मत्वम् ॥

भाषार्थः—होत्रावाची = ऋत्विग्विशेषवाची षष्ठीसमर्थ [*ब्रह्मणः*] ब्रह्मन् प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थों में [*त्वः*] त्व प्रत्यय होता है॥ ऊपर से आ रहा होत्राभ्यः पद ब्रह्मणः का विशेषण बनकर यहाँ सम्बन्धित होता है ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

—:०:—

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥५।२।१॥

धान्यानाम् ६।३॥ भवने ७।१॥ क्षेत्रे ७।१॥ खञ् १।१॥ भवन्ति जायन्तेऽस्मिन्निति भवनम् ॥ निर्देशादेव षष्ठीसमर्थविभक्तिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽभिधेये खञ् प्रत्ययो भवति तच्चेद्भवनं क्षेत्रं भवति ॥ *उदा०*—मुद्गानां भवनं क्षेत्रं = मौद्गीनम्, कौद्रवीणम्, कौलत्थीनम् ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*धान्यानाम्*] धान्य विशेषवाची प्रातिपदिकों से [*भवने*] भवन = उत्पत्ति स्थान अभिधेय हो तो [*खञ्*] खञ् प्रत्यय होता है, यदि वह उत्पत्ति स्थान [*क्षेत्रे*] खेत हो तो ॥ 'धान्यानां' निर्देश से ही षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ मुद्गों = मूँगों की उत्पत्ति का जो स्थान = खेत वह मौद्गीन खेत कहा जायेगा अर्थात् जिस क्षेत्र में अन्य धान्यों की अपेक्षा मूँग अच्छे हों वह विशिष्ट खेत मौद्गीन कहाता है ॥ कोद्रव कोदों तथा कुलत्थ कुल्थ के वाचक हैं, उनकी उत्पत्ति का स्थान कौद्रवीणम् कौलत्थीनम् कहा जायेगा ॥

यहाँ से "*धान्यानां भवने क्षेत्रे*" की अनुवृत्ति ५।२।४ तक जायेगी ॥

व्रीहिशाल्योर्ढक् ॥५।२।२॥

व्रीहिशाल्योः ६।२॥ ढक् १।१॥ *स०*—व्रीहि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—धान्यानां भवने क्षेत्रे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां धान्यविशेषवाचिभ्यां व्रीहिशालिप्राति-पदिकाभ्यां ढक् प्रत्ययो भवति भवने क्षेत्रेऽभिधेये ॥ पूर्वस्यायमपवादः ॥ उदा०—व्रीहीणां भवनं क्षेत्रं = व्रैहेयम्, शालेयम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची [*व्रीहिशाल्योः*] व्रीहि तथा शालि प्रातिपदिकों से [ढक्] ढक् प्रत्यय होता है, उत्पत्ति स्थान क्षेत्र वाच्य हो तो॥ पूर्व सूत्र से खञ् की प्राप्ति थी, ढक् विधान कर दिया है ॥

यवयवकषष्टिकाद्यत् ॥५।२।३॥

यवयवकषष्टिकात् ५।१॥ यत् १।१॥ *स०*—यव० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—धान्यानां भवने क्षेत्रे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यो यव, यवक, षष्टिक इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवने क्षेत्रेऽभिधेये यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यवानां भवनं क्षेत्रं = यव्यम्, यवक्यम्, षष्टिक्यम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची [*यवयवकषष्टिकात्*] यव, यवक, तथा षष्टिक प्रातिपदिकों से उत्पत्ति स्थान क्षेत्र वाच्य हो तो [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र भी खञ् का अपवाद है ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।२।४ तक जायेगी ॥

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ॥५।२।४॥

विभाषा १।१॥ तिल··णुभ्यः ५।३॥ *स०*—तिल० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—यत्, धान्यानां भवने क्षेत्रे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यस्तिल, माष, उमा, भङ्गा, अणु इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विभाषा यत् प्रत्ययो भवति भवने क्षेत्रेऽभिधेये । पक्षे खञ् भवति ॥ उदा०—तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल्यम्, तैलीनम् । माष्यम्, माषीणम् । उम्यम्, औमीनम् । भङ्ग्यम्, भाङ्गीनम् । अणव्यम्, आणवीनम् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची [*तिल***णुभ्यः*] तिल, माष, उमा, भङ्गा और अणु प्रातिपदिकों से [*विभाषा*] विकल्प से यत् प्रत्यय होता है, यदि इनका उत्पत्ति स्थान क्षेत्र वाच्य हो तो ॥ यह सूत्र खञ् का अपवाद है, अतः पक्ष में खञ् ही होगा ॥ जिस खेत में तिल की उपज होती है वह खेत तिल्यम् या तैलीनम् कहा जायेगा। सर्वत्र 'धान्यानां' निर्देश से षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥

सर्वचर्मणः कृतः खखञौ ॥५।२।५॥

सर्वचर्मणः ५।१॥ कृतः १।१॥ खखञौ १।२॥ *स०*—खश्च खञ् च खखञौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् सर्वचर्मन् प्रातिपदिकात् कृत इत्येतस्मिन्नर्थे ख, खञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—सर्वचर्मणा कृतः[1] सर्वचर्मीणः, सार्वचर्मीणः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*सर्वचर्मणः*] सर्वचर्मन् प्रातिपदिक से [*कृतः*] किया हुआ इस अर्थ में [*खखञौ*] ख तथा खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ख तथा खञ् में वृद्धि ही विशेष है। कृत अर्थ की अपेक्षा से यहाँ तृतीया समर्थ की प्राप्ति जाननी चाहिए ॥

यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः ॥५।२।६॥

यथामुखसम्मुखस्य ६।१॥ दर्शनः १।१॥ खः १।१॥ *स०*—यथामुख० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थाभ्यां यथामुख, सम्मुख इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां दर्शन इत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ दृश्यतेऽस्मिन्निति दर्शनः = आदर्शादिरुच्यते ॥ मुखस्य सदृशम् यथामुखम् ॥ *उदा०*—यथामुखम् दर्शनः यथामुखीनः। समानस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*यथा**खस्य*] यथामुख, तथा सम्मुख प्रातिपदिकों से [*दर्शनः*] दर्शन अर्थ में [*खः*] ख प्रत्यय होता है ॥ जिसमें

१. यहाँ सर्वशब्द का 'कृतः' के साथ सम्बन्ध है, चर्मणा सर्वः कृतः यह अर्थ अभिप्रेत है। अतः असमर्थ होने पर भी निपातन से सर्व का चर्म के साथ समास जानना चाहिए ॥

अपना प्रतिबिम्ब देखा जाता है उसे दर्शन कहते हैं अर्थात् शीशा ॥ मुख के जो समान वह यथामुख है, निपातन से यहाँ सादृश्य अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ है। इसी प्रकार समान के 'आन भाग का लोप भी निपातन से हुआ है। 'दर्शन' यहाँ कृत् प्रत्यय के सामर्थ्य से षष्ठी विभक्ति जाननी चाहिए ॥ *उदा०*—यथामुखीनः (जैसा मुख ठीक वैसा दिखाने वाला शीशा), सम्मुखीनः (मुख के समान ही दिखाने वाला) ॥

यहाँ से '*खः*' की अनुवृत्ति ५।२।१५ तक जायेगी ॥

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥५।२।७॥

तत् २।१॥ सर्वादेः ५।१॥ पथ्य···पात्रम् २।१॥ व्याप्नोति क्रिया० ॥ *स०*—पथ्यङ्ग० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः। सर्वं आदिर्यस्य स सर्वादिः, तस्मात्·····बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात् सर्वादेः पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र, पात्र इत्येवमन्तात् प्रातिपदिकात् व्याप्नोतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सर्वपथं व्याप्नोति सर्वपथीनो रथः, सर्वाङ्गीणस्तापः, सर्वकर्मीणः पुरुषः, सर्वपत्रीणः सारथिः, सर्वपात्रीणः ओदनः ॥

भाषार्थः—[*तत्*] द्वितीया समर्थ [*सर्वादेः*] सर्व शब्द आदि वाले [*पथ्य··पात्रम्*] पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र, पात्र प्रातिपदिकों से [*व्याप्नोति*] व्याप्त होता है, इस अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—सर्वपथीनो रथः (सभी प्रकार के मार्गों पर चलने योग्य रथ) सर्वाङ्गीणस्तापः (सभी अङ्गों को तपाने वाला ताप अर्थात् प्रखर ताप) सर्वकर्मीणः पुरुषः (सब प्रकार के कर्मों को करने में समर्थ) सर्वपत्रीणः सारथिः (अश्व बैल गधा आदि सभी वाहनों को चलाने में समर्थ) सर्वपात्रीणः ओदनः (पतले मोटे सभी प्रकार के पात्रों में पक सकने योग्य ओदन) ॥

यहाँ से '*तत्*' की अनुवृत्ति ५।२।१७ तक जायेगी ॥

आप्रपदं प्राप्नोति ॥५।२।८॥

आप्रपदम् अ० ॥ प्राप्नोति क्रिया० ॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाद् आप्र-

पदप्रातिपदिकात् प्राप्नोतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आप्रपदं प्राप्नोति = आप्रपदीनः पटः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*आप्रपदम्*] आप्रपद प्रातिपदिक से [*प्राप्नोति*] प्राप्त होता है इस अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ प्रपद कहते हैं पैर के अग्र भाग टखने को। आङ् यहाँ मर्यादा में है सो आप्रपद कहेंगे टखने से पहले पहले भाग को। जो वस्त्र टखने तक प्राप्त हो, अर्थात् वहाँ तक नीचा हो वह आप्रपदीन वस्त्र होगा ॥

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ॥५।२।९॥

अनु......नयम् २।१॥ बद्धा......नेयेषु ७।३॥ *स०*—अनुपद० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः। बद्धा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्योऽनुपद, सर्वान्न, अयानय इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं बद्धा, भक्षयति, नेय इत्येतेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनुपदं बद्धाऽनुपदीना उपानत्, सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः, अयानयं नेयो अयानयीनः शारः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*अनु......नयम्*] अनुपद, सर्वान्न, अयानय प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*बद्धा...येषु*] बद्धा, भक्षयति = खाता है, नेय = ले जाने योग्य इन अर्थों में ख प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—अनुपदीना उपानत् (पैर के साथ पूर्णतया सम्बद्ध, न बड़ी न छोटी) सर्वान्नीनो भिक्षुः (सब प्रकार के अन्न जो भी भिक्षा में प्राप्त हो जाए उसे खाने वाला) अयानयीनः शारः (शतरंज क्रीडा में दायीं-बायीं ओर से जिस स्थान पर पांसे ले जाये जाते हैं, उसे अयानय = फलक शिर कहा जाता है, वहाँ स्थित पांसा अपानयीन कहलाता है) ॥

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति ॥५।२।१०॥

परोव......पौत्रम् २।१॥ अनुभवति क्रिया० ॥ *स०*—परो० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परोवर, परम्पर, पुत्रपौत्र इत्येतेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनुभवतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥

उदा०—पराँश्च अवरांश्चानुभवति परोवरीणः, पराँश्च परतरांश्चानुभवति परम्परीणः, पुत्रपौत्रानतुभवति पुत्रपौत्रीणः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*परो⋯पौत्रम्*] परोवर, परम्पर, पुत्रपौत्र प्रातिपदिकों से [*अनुभवति*] अनुभव करता है इस अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ पर अवर शब्द को प्रत्यय के साथ उत्व निपातन से हो जाता है, परोवरीणः = जो पर तथा अवर का अनुभव करे। इसी प्रकार पर-परतर को परम्पर भाव निपातन से होकर परम्परीणः बनता है ॥

अवारपारात्यन्तानुकामं गामी ॥५।२।११॥

अवार⋯कामम् २।१॥ गामी १।१॥ *स०*—अवार० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थेभ्योऽवारपार, अत्यन्त, अनुकाम इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गामीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अवारपारं गामी = अवारपारीणः, अत्यन्तं गामी = अत्यन्तीनः, अनुकामं गामी = अनुकामीनः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*अवा⋯कामम्*] अवारपार, अत्यन्त, अनुकाम प्रातिपदिकों से [*गामी*] गामी = भविष्य में जानेवाला अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—अवारपारीणः (एक साथ आर पार जाने वाला) अत्यन्तीनः (अत्यधिक जाने वाला) अनुकामीनः (कामना = इच्छानुकूल जितना चाहे जाने वाला) ॥

समांसमां विजायते ॥५।२।१२॥

समांसमाम् २।१॥ विजायते क्रिया० ॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थात्समांसमां शब्दाद्विजायतेऽर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—समांसमां विजायत इति समांसमीना गौः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*समांसमाम्*] समांसमां शब्द से [*विजायते*] बच्चा देती है इस अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ जो गाय प्रतिवर्ष बच्चा देती है वह समांसमीना गौः कहायेगी ॥

यहाँ से '*विजायते*' की अनुवृत्ति ५।२।१३ तक जायेगी ॥

अद्यश्वीनावष्टब्धे ॥५।२।१३॥

अद्यश्वीन लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अवष्टब्धे ७।१॥ *अनु०*—विजायते तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अद्यश्वीन इति निपात्यतेऽवष्टब्धे = आसन्ने विजने = प्रसवेऽर्थे । अद्यश्वस्-शब्दान् खप्रत्ययः, टिलोपश्च निपात्यते ॥ *उदा०*—अद्य वा श्वो वा विजायते, अद्यश्वीना गौः, अद्यश्वीना वडवा ।

भाषार्थः—[*अद्यश्वीन*] अद्यश्वीन यह शब्द निपातन किया जाता है [*अवष्टब्धे*] आसन्न = निकट प्रसव को कहना हो तो ॥ अद्यश्वस् शब्द से ख प्रत्यय तथा टि भाग (अस्) का लोप निपातन से किया जाता है । जो गाय आज या कल में ब्याने वाली हो वह अद्यश्वीना गौ कहायेगी ॥

आगवीनः ॥५।२।१४॥

आगवीनः १।१॥ *अनु०*—खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—आङ्पूर्वात् गोशब्दात् कर्मकारिणि वाच्ये खः प्रत्ययो निपात्यते ॥ आगवीनः कर्मकरः ॥

भाषार्थः—[*आगवीनः*] आगवीन शब्द आङ् पूर्वक गो शब्द से कर्मकर वाच्य हो तो ख प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है ॥ जिस कर्मकर को गौ देकर नौकर रखा हो वह जब तक वापस गौ न लौटाये तब तक कार्य करने वाला कर्मकर आगवीन कहाता है ॥

अनुग्वलंगामी ॥५।२।१५॥

अनुगु अ० ॥ अलंगामी १।१॥ *अनु०*—तत्, खः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीया समर्थाद् अनुगुप्रातिपदिकादलंगामीत्यर्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनुगु अलं पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालकः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*अनुगु*] अनुगु प्रातिपदिक से [*अलंगामी*] पर्याप्त जाता है, इस अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ गोः पश्चात् = अनुगु, गाय के जो पीछे पीछे चले, वह अनुगु होता है, इस प्रकार अनुगवीन

गोपालक को कहेंगे ॥ *ओर्गुणः* से गुण तथा *वान्तो यि०* (६।१।७६) से वान्तादेश होकर अनुगवीन बनेगा ॥

यहाँ से '*अलंगामी*' की अनुवृत्ति ५।२।१७ तक जायेगी ॥

अध्वनो यत्खौ ॥५।२।१६॥

अध्वनः ५।१॥ यत्खौ १।२॥ *स०*—यत् च खश्च, यत्खौ, इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अलंगामी, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थादध्वन्प्रातिपदिकाद् अलंगामी-त्येतस्मिन्नर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—अध्वानमलङ्गामी अध्वन्यः, अध्वनीनः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*अध्वनः*] अध्वन् प्रातिपदिक से अलंगामी इस अर्थ में [*यत्खौ*] यत् तथा ख प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*यत्खौ*' की अनुवृत्ति ५।२।१७ तक जायेगी ॥

अभ्यमित्राच्छ च ॥५।२।१७॥

अभ्यमित्रात् ५।१॥ छ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—यत्खौ, अलंगामी, तत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थादभ्यमित्रप्रातिपदिकाद् अलंगामीत्येतस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत्खौ च ॥ *उदा०*—अभ्यमित्रमलंगामी = अभ्यमित्रीयः, अभ्यमित्र्यः, अभ्यमित्रीणः ॥

भाषार्थः—द्वितीया समर्थ [*अभ्यमित्रात्*] अभ्यमित्र प्रातिपदिक से अलंगामी इस अर्थ में [*छ*] छ [*च*] तथा यत् और ख प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—अभ्यमित्रीयः (शत्रु के सामने समर्थ होकर जाने वाला अर्थात् शत्रु को हराने में समर्थ) अभ्यमित्र्यः, अभ्यमित्रीणः ॥

गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे ॥५।२।१८॥

गोष्ठात् ५।१॥ खञ् १।१॥ भूतपूर्वे ७।१॥ *अनु०*—तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भूतपूर्वेऽर्थे वर्त्तमानात् गोष्ठप्रातिपदिकात् खञ् प्रत्ययो भवति ॥ गावस्तिष्ठन्त्यत्र गोष्ठम् ॥ *उदा०*—गोष्ठो भूतपूर्वः गौष्ठीनो देशः ॥

भाषार्थः—[*भूतपूर्वे*] भूतपूर्व अर्थ में वर्त्तमान [*गोष्ठात्*] गोष्ठ प्रातिपदिक से [*खञ्*] खञ् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—गौष्ठीनो देशः (जहाँ पहले गायें बैठती थीं वह स्थान) ॥

यहाँ से '*खञ्*' की अनुवृत्ति ५।२।२३ तक जायेगी ॥

अश्वस्यैकाहगमः ॥५।२।१९॥

अश्वस्य ६।१॥ एकाहगमः १।१॥ एकाहेन गम्यत इत्येकाहगमः ॥ *अनु०*—खञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थादश्वप्रातिपदिकादेकाहगम इत्येतस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अश्वस्यैकाहगमोऽध्वा = आश्वीनः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*अश्वस्य*] अश्व प्रातिपदिक से [*एकाहगमः*] एकाहगम इस अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है॥ एक दिन में जितना जाया जा सके, उतना मार्ग एकाहगम कहलाता है ॥ यहाँ अश्वस्य निर्देश से ही षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ पूर्व काल में आश्वीन शब्द दूरी को मापने के लिए प्रयुक्त होता था ॥

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ॥५।२।२०॥

शालीनकौपीने १।२॥ अधृष्टाकार्ययोः ७।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—खञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शालीन, कौपीन इत्येतौ शब्दौ निपात्येते यथासङ्ख्यमधृष्टाकार्ययोर्वाच्ययोः । शालाप्रवेशन, कूपावतार आभ्यां शब्दाभ्यां खञ् प्रत्यय उत्तरपदलोपश्च निपात्यते ॥ *उदा०*—शालाप्रवेशनमर्हति = शालीनो भीरुः । कूपावतारमर्हति कौपीनं पापम् ॥

भाषार्थः—[*शालीनकौपीने*] शालीन, तथा कौपीन शब्द यथासङ्ख्य करके, [*अधृष्टाकार्ययोः*] अधृष्ट, और अकार्य वाच्य हों तो निपातन किये जाते हैं ॥ जो धृष्ट नहीं वह अधृष्ट अर्थात् भीरु, जो करने योग्य न हो वह अकार्य होगा, अर्थात् पाप, ये यथाक्रम से वाच्य हों तो ॥ शालीन शब्द में शालाप्रवेशन शब्द से खञ् प्रत्यय तथा उत्तरपद (प्रवेशन) का लोप निपातन है । इसी प्रकार 'कूपावतार' शब्द से भी खञ् प्रत्यय

तथा उत्तरपद (अवतार) का लोप निपातन है ॥ उदा०—शालीनः भीरुः, कौपीनं पापम् ॥

व्रातेन जीवति ॥५।२।२१॥

व्रातेन ३।१॥ जीवति क्रिया० ॥ *अनु०*—खञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थाद् व्रातप्रातिपदिकाज्जीवतीत्येतस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—व्रातेन जीवति व्रातीनः ॥

भाषार्थः—तृतीयासमर्थ [*व्रातेन*] व्रात प्रातिपदिक से [*जीवति*] जीता है, इस अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ व्रातेन निर्देश से ही तृतीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ भिन्न भिन्न जाति और अनियत वृत्ति वाले मनुष्य जो कि शारीरिक परिश्रम आदि करके जीविका कमाते हैं, उन (पहाड़ी) मनुष्यों के समूह को व्रात कहते हैं, उनका जो जीविकोपार्जन का काम है वह भी व्रात कहाता है, उस व्रात कर्म को करके जो जीते हैं वे व्रातीनः कहायेंगे ॥

साप्तपदीनं सख्यम् ॥५।२।२२॥

साप्तपदीनम् १।१॥ सख्यम् १।१॥ *अनु०*—खञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—साप्तपदीनमिति निपात्यते सख्ये वाच्ये सप्तपदशब्दात् खञ् प्रत्ययो निपात्यते ॥ *उदा०*—सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम्, सख्यं जनाः साप्तपदीनमाहुः ॥

भाषार्थः—[*साप्तपदीनम्*] 'साप्तपदीनम्' यह निपातन किया जाता है [*सख्यम्*] मित्रता वाच्य हो तो। सप्तपद शब्द से खञ् प्रत्यय का निपातन है ॥ शास्त्रीयमर्यादानुसार विवाह में सप्तपदी क्रिया से मित्र भाव की प्राप्ति कही गई है, उसी प्रकार थोड़ी देर के सहवास से जो मित्रता वह साप्तपदीन कहाती है।

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ॥५।२।२३॥

हैयङ्गवीनम् १।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—खञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये हैयङ्ग-

वीनमिति निपात्यते। ह्योगोदोहशब्दस्य स्थाने हियङ्गु आदेशः खञ् प्रत्ययश्च तस्य विकारेऽर्थे निपात्यते ॥ ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनम्। घृतस्य संज्ञा एषा ॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञायाम् विषय में [*हैयङ्गवीनम्*] हैयङ्गवीन यह शब्द निपातन किया जाता है। ह्योगोदोह शब्द के स्थान में हियङ्गु आदेश, तथा उसका विकार अर्थ में खञ् प्रत्यय निपातन से किया जाता है ॥ ह्योगोदोह का अर्थ है कल का जो दुहा, उसी कल के दुहे दूध को जमाकर मठा बिलोकर मक्खन निकाल कर घी बनाना सम्भव है, अतः हैयङ्गवीन घी को कहते हैं ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥५।२।२४॥

तस्य ६।१॥ पाकमूले ७।१॥ पील्वादिकर्णादिभ्यः ५।३॥ कुणब्जाहचौ १।२॥ *स०*—पाकश्च मूलञ्च, पाकमूलम्, तस्मिन्... समाहारो द्वन्द्वः। पीलु आदिर्येषां ते पील्वादयः कर्ण आदिर्येषां ते कर्णादयः, बहुव्रीहिः॥ पील्वादयश्च कर्णादयश्च, पील्वादिकर्णादयस्तेभ्यः...... इतरेतरद्वन्द्वः॥ कुणब्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तस्येति षष्ठीसमर्थेभ्यः पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यथासङ्ख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणप्, जाहच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—पीलूनां पाकः पीलुकुणः, कर्कन्धुकुणः। कर्णादिभ्यः—कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्, अक्षिजाहम्॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठीसमर्थ [*पील्वा ...भ्यः*] पील्वादि, तथा कर्णादि प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके [*पाकमूले*] पाक तथा मूल अर्थ हो तो [*कुणब्जाहचौ*] कुणप् तथा जाहच् प्रत्यय होते हैं॥ प्रत्यय भी यथासङ्ख्य करके होंगे, अतः पील्वादियों से पाक अर्थ में कुणप्, तथा कर्णादियों से मूल अर्थ में जाहच् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—पीलुकुणः (पीलु फलों का पकना) कर्कन्धुकुणः (बेरों का पकना) कर्णजाहम् (कान के नीचे का भाग) अक्षिजाहम् (आँख का नासिका की ओर का मूल भाग)॥

यहाँ से '*तस्य मूले*' की अनुवृत्ति ५।२।२५ जायेगी॥

पक्षात्तिः ॥५।२।२५॥

पक्षात् ५।१॥ तिः १।१॥ *अनु०*—तस्य मूले, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् पक्षप्रातिपदिकात् मूलेऽभिधेये तिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पक्षस्य मूलं = पक्षतिः प्रतिपत् ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*पक्षात्*] पक्ष प्रातिपदिक से मूल वाच्य हो तो [*तिः*] ति प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में ऊपर से केवल '*मूले*' की अनुवृत्ति आती है, पाके की नहीं ॥ *उदा०*—पक्षतिः प्रतिपत् (प्रत्येक पक्ष की पहली तिथि) ॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥५।२।२६॥

तेन ३।१॥ वित्तः १।१॥ चुञ्चुप्चणपौ १।२॥ *स०*—चुञ्चु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् वित्त इत्येतस्मिन्नर्थे चुञ्चुप् चणप् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—विद्यया वित्तः विद्याचुञ्चुः, विद्याचणः । केशैः वित्तः = केशचुञ्चुः, केशचणः ॥

भाषार्थः—[*तेन*] तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से [*वित्तः*] वित्त = प्रतीत = ज्ञात इस अर्थ में [*चुञ्चुप्चणपौ*] चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—विद्याचुञ्चुः (विद्या के द्वारा ज्ञात पुरुष) विद्याचणः, केशचुञ्चुः (केशविन्यास से ज्ञात पुरुष) केशचणः ॥

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह ॥५।२।२७॥

विनञ्भ्याम् ५।२॥ नानाञौ १।२॥ नसह अ० ॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वि, नञ् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यं ना, नाञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः नसह = पृथग्भावे इत्येतस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—विना, नाना ॥

भाषार्थः—[*विनञ्भ्याम्*] वि, नञ् इन प्रातिपदिकों से [*नसह*] नसह = साथ नहीं = पृथग्भाव अर्थ में यथासङ्ख्य करके [*नानाञौ*] ना

तथा नाञ् प्रत्यय होते हैं ॥ प्रथम भाग पृ० ७०६ परि० १।१।३७ में सिद्धि देखें ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥५।२।२८॥

वेः ५।१॥ शालच्छङ्कटचौ १।२॥ *स०*—शाल० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विप्रातिपदिकात् शालच् शङ्कटच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—विगते शृङ्गे विशाले, विशङ्कटे ॥

भाषार्थः—[*वेः*] वि उपसर्ग प्रातिपदिक से [*शालच्छङ्कटचौ*] शालच् तथा शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—विशाले शृङ्गे (दो बड़े सींग) विशङ्कटे शृङ्गे (दो बड़े सींग) ॥ यहाँ वि उपसर्ग गत अर्थ को साथ लेकर प्रत्यय को उत्पन्न करता है, क्योंकि उपसर्ग धात्वर्थ के विशेषक होते हैं ।; जहाँ धात्वर्थ साक्षात् नहीं होता वहाँ वह उपसर्ग के ही अन्तर्गत माना जाता है । ऐसा ही अगले सूत्रों में भी समझें ॥

यहाँ से 'वेः' की अनुवृत्ति ५।२।२९ तक जायेगी ॥

संप्रोदश्च कटच् ॥५।२।२९॥

संप्रोदः ५।१॥ च अ० ॥ कटच् १।१॥ *स०*—सम् च प्रश्च उद् च, संप्रोद्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वेः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सम्, प्र, उत्, वि इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कटच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सङ्कटम्, प्रकटम्, उत्कटम्, विकटम् ॥

भाषार्थः—[*संप्रोदः*] सम्, प्र, उत्, वि इन उपसर्ग प्रातिपदिकों से [*कटच्*] कटच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—सङ्कटम् (सम्मुख प्राप्त, दुःख आदि) प्रकटम् (विशेष रूप से प्रकाशित) उत्कटम् (अच्छे प्रकार प्राप्त = श्रेष्ठ) विकटम् (विशेष रूप से कठिन) । सम् + कटच् यहाँ म् को अनुस्वार (८।४।४४) तथा परसवर्ण (८।४।५७) होकर सङ्कटम् बना है ॥

यहाँ से 'कटच्' की अनुवृत्ति ५।२।३० तक जायेगी ॥

अवात् कुटारच्च ॥५।२।३०॥

अवात् ५।१॥ कुटारच् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—कटच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवप्रातिपदिकात् कुटारच् प्रत्ययो भवति कटच् च ॥ *उदा०*—अवकुटारम् अवकटम् ॥

भाषार्थः—[*अवात्*] अव उपसर्ग प्रातिपदिक से [*कुटारच्*] कुटारच् [च] तथा कटच् प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—अवकुटारम् (निम्न भू भाग) अवकटम् ॥

यहाँ से '*अवात्*' की अनुवृत्ति ५।२।३१ तक जायेगी ॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥५।२।३१॥

नते ७।१॥ नासिकायाः ६।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ टीटञ्नाटज्भ्रटचः १।३॥ *स०*—टीट० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अवात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवशब्दात् नासिकायाः सम्बन्धिनि नतेऽभिधेये संज्ञायां विषये टीटञ्, नाटच्, भ्रटच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ *उदा०*—नासिकाया नतम् अवटीटम्, अवनाटम्, अवभ्रटम् ॥

भाषार्थः—अव उपसर्ग प्रातिपदिक से [*नासिकायाः*] नासिका सम्बन्धी [*नते*] नत = झुकाव को कहना हो तो [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में [*टीट-*··*चः*] टीटञ्, नाटच् तथा भ्रटच् प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—अवटीटम् (झुकी हुई नाक) अवनाटम्, अवभ्रटम् । झुकी हुई नासिका के संयोग से वह पुरुष भी अवटीटः आदि शब्दों से कहा जायेगा ॥

यहाँ से '*नते नासिकाया.*' की अनुवृत्ति ५।२।३३ तक तथा '*संज्ञायां*' की ५।२।३४ तक जायेगी ॥

नेर्बिडज्बिरीसचौ ॥५।२।३२॥

नेः ५।१॥ बिडज्बिरीसचौ १।२॥ *स०*—बिड० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—नते नासिकायाः संज्ञायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—निशब्दात् नासिकाया नतेऽभिधेये संज्ञायां विषये बिडच्, बिरीसच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—निबिडम् निबिरीसम् ॥

भाषार्थः—[*नेः*] नि उपसर्ग प्रातिपदिक से नासिका का झुकाव अभिधेय हो तो संज्ञा विषय में [*बिडज्बिरीसचौ*] बिडच्, तथा बिरीसच् प्रत्यय होते हैं ।।*उदा०*—निबिडम् (झुकी हुई नासिका अथवा झुकी हुई नासिका वाला पुरुष) निबिरीसम् (पूर्ववत् यहाँ भी जानें) ।।

यहाँ से '*नेः*' की अनुवृत्ति ५।२।३३ तक जायेगी ।।

इनच्पिटच्चिकचि च ।।५।२।३३।।

इनचपिटच् १।१।। चिकचि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः।। च अ० ।। *स०*—इनच्० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। चिकचि इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—नेः, नते नासिकायाः संज्ञायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—नासिकाया नतेऽभिधेये निशब्दाद् इनच् पिटच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतस्तत्सन्नियोगेन च यथासङ्ख्यं निशब्दस्य चिक, चि इत्येतौ आदेशौ भवतः ।। *उदा०*—चिकिनः चिपिटः ।।

भाषार्थः—नासिका का झुकाव अभिधेय हो तो नि प्रातिपदिक से [*इनच्पिटच्*] इनच्, पिटच् ये आदेश होते हैं संज्ञा विषय में, तथा नि शब्द को यथासङ्ख्य करके प्रत्यय के साथ साथ [*चिकचि*] चिक तथा चि आदेश [*च*] भी हो जाते हैं। इनच् परे रहते चिक, पिटच् परे रहते चि आदेश होगा ।।

नि + इनच् = चिक + इनच् = यस्येति लोप होकर, चिक् + इन = चिकिनः (झुकी हुई नासिका अथवा पुरुप) बना। नि + पिटच् = चि + पिट = चिपिटः बन गया ।।

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ।।५।२।३४।।

उपाधिभ्याम् ५।२।। त्यकन् १।१।। आसन्नारूढयोः ७।२।। *स०*—उपा० आसन्न० इत्युभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*—संज्ञायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उप, अधि इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यम् आसन्न, आरूढ इत्येतयोरर्थयोः वर्त्तमानाभ्यां त्यकन् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये ।। *उदा०*—पर्वतस्यासन्नमुपत्यका, तस्यैवारूढमधित्यका ।।

भाषार्थः—[*उपाधिभ्याम्*] उप और अधि उपसर्ग शब्दों से यथासङ्ख्य करके यदि वह [*आसन्नारूढयोः*] आसन्न, और आरूढ अर्थों में वर्त्तमान हों तो, संज्ञा विषय में [*त्यकन्*] त्यकन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पर्वतस्यासन्नमुपत्यका (पहाड़ की तराई) अधित्यका (पहाड़ का पठार) ॥

कर्मणि घटोऽठच् ॥५।२।३५॥

कर्मणि ७।१॥ घटः १।१॥ अठच् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—निर्देशादेव सप्तमीसमर्थविभक्तिः। कर्मन्प्रातिपदिकात् सप्तमीसमर्थात् घट इत्येतस्मिन्नर्थेऽठच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्मणि घटते कर्मठः पुरुषः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*कर्मणि*] कर्मन् प्रातिपदिक से [*घटः*] घट = चेष्टा करने वाला इस अर्थ में [*अठच्*] अठच् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ कर्मणि निर्देश से ही समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ *उदा०*—कर्मठः पुरुषः (सदा कर्म शील = पुरुषार्थी पुरुष) ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥५।२।३६॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ संजातम् १।१॥ तारकादिभ्यः ५।३॥ इतच् १।१॥ *स०*—तारक आदिर्येषां ते तारकादयस्तेभ्यः ... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संजातसमानाधिकरणेभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थ इतच् प्रत्ययो भवति । *उदा०*—तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः, पुष्पितो वृक्षः, पण्डा संजाताऽस्य पण्डितः, मुद्रा सञ्जाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ [*संजातम्*] संजात समानाधिकरण [*तारकादिभ्यः*] तारकादि प्रातिपदिकों से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में [*इतच्*] इतच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—तारकितं नभः (ताराओं से शोभित आकाश) पुष्पितो वृक्षः (पुष्पों से युक्त वृक्ष), पण्डितः, मुद्रितं पुस्तकम् ॥

यहाँ से '*तदस्य*' की अनुवृत्ति ५।२।४४ तक जायेगी ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥५।२।३७॥

प्रमाणे ७।१॥ द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः १।३॥ *स०*—द्वयसजित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रमाणसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति॥ *उदा०*—ऊरुः प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्, जानुद्वयसम्, जानुदघ्नम्, जानुमात्रम्॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*प्रमाणे*] प्रमाण समानाधिकरणवाची प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः*] द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं॥ प्रमाण शब्द प्रायः लम्बाई के नापने में प्रयुक्त होता है। परन्तु यहाँ द्वयसच् और दघ्नच् प्रत्यय ऊँचाई नापने में व्यवहृत होते हैं, और मात्रच् प्रत्यय ऊँचाई लम्बाई सभी प्रकार के नाप के लिए प्रयुक्त होता है॥ *उदा०*—ऊरुद्वयसम् जलम् (जंघा तक गहरा जल) ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्, जानुद्वयसम् (घुटने तक गहरा जल) जानुदघ्नम्, जानुमात्रम्॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।२।३८ तक जायेगी॥

पुरुषहस्तिभ्यामण् च ॥५।२।३८॥

पुरुषहस्तिभ्याम् ५।२॥ अण् १।१॥ च अ०॥ *स०*—पुरुषश्च हस्ती, पुरुषहस्तिनौ, ताभ्यां.....इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः, तदस्य तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां पुरुष, हस्तिन् इत्येताभ्यां प्रमाणसमानाधिकरणाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् च॥ *उदा०*—पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्, पुरुषदघ्नम्, पुरुषमात्रम्। हास्तिनम्, हस्तिद्वयसम्, हस्तिदघ्नम्, हस्तिमात्रम्॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ प्रमाणसमानाधिकरणवाची [*पुरुषहस्तिभ्याम्*] पुरुष तथा हस्तिन् प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*अण्*] अण् [*च*] तथा द्वयसच्, दघ्नच्, और मात्रच् प्रत्यय होते हैं॥ *उदा०*—पौरुषम् (पुरुष की ऊँचाई परिमाण वाला = जिसमें पुरुष डूब जाए)। हास्तिनम् (हाथी की ऊँचाई परिमाण वाला जल = जिसमें हाथी डूब जाए)॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥५।२।३९॥

यत्तदेतेभ्यः ५।३॥ परिमाणे ७।१॥ वतुप् १।१॥ *स०*—यद् च तद् च एतद् च, यत्तदेते, तेभ्यः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्य, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्यो यद्, तद्, एतद्, इत्येतेभ्यः परिमाणसमानाधिकरणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—यत् परिमाणमस्य यावान्, तावान्, एतावान् ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*परिमाणे*] परिमाणसमानाधिकरणवाची [*यत्तदेतेभ्यः*] यद्, तद् तथा एतद् प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में [*वतुप्*] वतुप् प्रत्यय होता है ॥ जिसको चारों तरफ से नापा जाय जैसे काठ के बर्त्तन में अन्नादि नापा जाता है, वह परिमाण कहाता[1] है ॥ प्रथम भाग पृ० ६६५ परि० १।१।२२ में की हुई तावत्कृत्वः की सिद्धि के समान यहाँ भी यद् शब्द से यावत् बनाकर आगे सु लाये। पुनः चितवान् की सिद्धि के समान ही नुम् (७।१।७०) संयोगान्तलोप 'दीर्घ' तथा हल्ङ्यादिलोप करके यावान् बना, इसी प्रकार तावान् एतावान् में भी जानें ॥

यहाँ से '*वतुप्*' की अनुवृत्ति ५।२।४१ तक जायेगी ॥

किमिदम्भ्यां वो घः ॥५।२।४०॥

किमिदम्भ्याम् ५।२॥ वः ६।१॥ घः १।१॥ *स०*—किम् च इदम् च किमिदमौ, ताभ्यां·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्य, परिमाणे, वतुप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—किम्, इदम् प्रातिपदिकाभ्यां प्रथमासमर्थाभ्यां परिमाणे वर्तमानाभ्याम् अस्य परिमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति तस्य च वकारस्य घकारादेशः ॥ *उदा०*—कियान्, इयान् ॥

---

१. तराजू से तौले गये परिमाण के लिए संस्कृत में उन्मान शब्द का व्यवहार होता है। परिमाण शब्द सभी प्रकार के ऊँचाई, लम्बाई, भार आदि माप के लिए भी प्रयुक्त होता है ॥

भाषार्थः—परिमाण में वर्तमान प्रथमासमर्थ [*किमिदम्भ्याम्*] किम् और इदम् प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है और उसके [*वः*] वकार को [*घः*] घकार आदेश होता है ॥

यहाँ से 'वो घः' की अनुवृत्ति ५।२।४१ तक जायेगी ॥

किमः सङ्ख्यापरिमाणे डति च ॥५।२।४१॥

किमः ५।१॥ सङ्ख्यापरिमाणे ७।१॥ डति लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—सङ्ख्यायाः परिमाणं सङ्ख्यापरिमाणं, तस्मिन्...... षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—वतुप्, वो घः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यापरिमाणे वर्त्तमानात् प्रथमासमर्थात् किम्प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे डतिप्रत्ययो भवति वतुप् च, वतुपो वकारस्य घादेशो भवति ॥ *उदा०*—का सङ्ख्या परिमाणमेषां ब्राह्मणानां कति ब्राह्मणाः, कियन्तो ब्राह्मणाः ॥

भाषार्थः—[*सङ्ख्यापरिमाणे*] सङ्ख्या के परिमाण अर्थ में वर्त्तमान जो प्रथमासमर्थ [*किमः*] किम् प्रातिपदिक उससे षष्ठ्यर्थ में [*डति*] डति [*च*] तथा वतुप् प्रत्यय होते हैं, उस वतुप् के वकार के स्थान में घ आदेश भी हो जाता है ॥ कति की सिद्धि भाग १ पृ० ६९५ परि० १।१।२२ में देखें ॥

सङ्ख्याया अवयवे तयप् ॥५।२।४२॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ अवयवे ७।१॥ तयप् १।१॥ *अनु०*—तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अवयवेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रथमासमर्थात् सङ्ख्याप्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पञ्च अवयवा अस्य = पञ्चतयम्, दशतयम्, चतुष्टयम् चतुष्टयी ॥

भाषार्थः—[*अवयवे*] अवयव अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में [*तयप्*] तयप् प्रत्यय होता है ॥ चतुर्+तयप्=चतुः तय, यहाँ *इदुदुपधस्य चा०* (८।३।४१) से विसर्जनीय को षत्व होकर चतुष् तय ष्टुत्व होकर चतुष्टयम् बना, *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर चतुष्टयी बनेगा ॥ *उदा०*—

पञ्चतयम् (पाँच अवयवों वाला) दशतयम्, दशतयी (दश मण्डल रूप अवयववाली ऋक्संहिता) चतुष्टयम् चतुष्टयी ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥५।२।४३॥

द्वित्रिभ्याम् ५।२॥ तयस्य ६।१॥ अयच् १।१॥ वा अ० ॥ *स०*—द्वित्रि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाभ्यां द्वित्रिभ्यामुत्तरस्य षष्ठ्यर्थे विहितस्य तयपः स्थाने वाऽयच् आदेशो भवति ॥ *उदा०*—द्वौ अवयवौ अस्य द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम् त्रितयम् ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*द्वित्रिभ्याम्*] द्वि तथा त्रि शब्द से उत्तर षष्ठ्यर्थ में विहित [*तयस्य*] तयप् प्रत्यय के स्थान में [*वा*] विकल्प से [*अयच्*] अयच् आदेश होता है ॥ पूर्व सूत्र से द्वि, त्रि के सङ्ख्यावाची होने से तयप् प्रत्यय प्राप्त है, उसी के स्थान में विकल्प से अयच् विधान है ॥ द्वि तयप् = द्वि अयच्, यस्येति लोप होकर द्वयम् रहा, पक्ष में द्वितयम् होगा ॥

यहाँ से '*तयस्यायच्*' की अनुवृत्ति ५।२।४४ तक जायेगी ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥५।२।४४॥

उभात् ५।१॥ उदात्तः १।१॥ नित्यम् १।१॥ *अनु०*—तयस्यायच्, तदस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थाद् उभशब्दादुत्तरस्य नित्यं तयपः स्थानेऽयजादेशो भवति स चोदात्तः षष्ठ्यर्थे ॥ *उदा०*—उभयो' मणिः, उभये' देवमनुष्याः ॥ यद्यपि उभशब्दस्य न पारिभाषिकी संख्यासंज्ञा तथापि लोके द्व्यर्थे प्रयोगात् लौकिकी संख्यासंज्ञा ज्ञेया ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*उभात्*] उभ प्रातिपदिक से उत्तर [*नित्यम्*] नित्य ही तयप् के स्थान में षष्ठ्यर्थ में अयच् आदेश होता है [*उदात्तः*] और वह अयच् आद्युदात्त अर्थात् 'अ' उदात्त भी होता है ॥ यद्यपि उभ शब्द की शास्त्र में संख्या संज्ञा नहीं कही पुनरपि लोक में द्विसंख्या के अर्थ में प्रयुक्त होने से अन्य एक द्वि आदि के समान लौकिक (स्वाभाविक) संख्यासंज्ञा जाननी चाहिए। अयच् के चित् होने से

चितः (६।१।१५७) से अन्तोदात्तत्व प्राप्त होता है, परन्तु यहाँ 'उदात्त' कहने से अयच् आद्युदात्त होता है क्योंकि अयच् में दो अच् हैं 'अ' और य क अकार। य का अकार चित् होने से अन्तोदात्त हो ही जाता पुनः उदात्त कहने से दूसरा जो आदि का 'अ' अच् है वह उदात्त होता है॥ उभ अयच्। यस्येति लोप होकर उभ् अयं = उभयः॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥५।२।४५॥

तद् १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ अधिकम् १।१॥ इति अ०॥ दशान्तात् ५।१॥ डः १।१॥ *स०*—दश अन्ते यस्य स दशान्तस्तस्मात्''' बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् दशान्तात् प्रातिपदिकात् सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति, यत्तत्-प्रथमासमर्थमधिकं चेत्तद् भवति॥ *उदा०*—एकादश अधिका अस्मिन् शते एकादशं शतम्, एकादशं सहस्रम्। द्वादशं शतम्, द्वादशं सहस्रम्॥

भाषार्थः—[*तद्*] प्रथमासमर्थ [*दशान्तात्*] दशन् शब्द अन्त में हो जिसके, ऐसे प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में [*डः*] 'ड' प्रत्यय होता है [*अधिकमिति*] यदि वह प्रथमासमर्थ अधिक समानाधिकरण वाला हो तो॥ ड के डित् होने से एकादशन् के टि = अन् भाग का लोप *डित्सामर्थ्या०* (*वा०* ६।४।१४३) वार्त्तिक से होता है॥ *उदा०*—एकादशं शतम् (ग्यारह अधिक सौ में अर्थात् एक सौ ग्यारह) द्वादशं शतम् (एक सौ बारह)॥

यहाँ से '*तदस्मिन्नधिकम् डः*' की अनुवृत्ति ५।२।४६ तक जायेगी॥

शदन्तविंशतेश्च ॥५।२।४६॥

शदन्तविंशतेः ५।१॥ च अ०॥ *स०*—शत् शब्दोऽन्ते यस्य स शदन्तः, बहुव्रीहिः। शदन्तश्च विंशतिश्च, शद'''तिः, तस्मात्''''' समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्मिन्नधिकम् डः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अधिकसमानाधिकरणाभ्यां शदन्त, विंशति प्रातिपदिकाभ्यामस्मिन्निति सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—त्रिंशदधिका अस्मिन् शते त्रिंशं शतम्, विंशतिरधिका अस्मिन् शते विंशं शतम्॥

भाषार्थः—अधिकसमानाधिकरणवाची जो [*शदन्तविंशतेः*] शदन्त तथा विंशति प्रातिपदिक उनसे [च] भी सप्तम्यर्थ में ड प्रत्यय होता है ॥ त्रिंशत् ड पूर्ववत् टि भाग का लोप होकर त्रिंशम् शतम् (एक सौ से ऊपर तीस = १३०) बना । 'विंशति+ड' यहाँ *ति विंशतेर्डिति* (६।४।१४२) से विंशति के 'ति' का लोप होकर विंशं शतम् बन गया ॥

सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट् ॥५।२।४७॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ गुणस्य ६।१॥ निमाने ७।१॥ मयट् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च । तदस्य इत्यनुवर्तते, *तदस्य सञ्जातं०* (५।२।३६) इत्यतः मण्डूकप्लुतगत्या ॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थात् सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्य गुणस्य = भागस्य निमानं = मूल्यम् इत्येतस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—यवानां द्वौ भागौ निमानं मूल्यमस्य उदश्वित्भागस्य द्विमयमुदश्वित् यवानाम्, त्रिमयम्, चतुर्मयम् ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से इस [*गुणस्य*] गुण = भाग का यह [*निमाने*] निमान = मूल्य है, इस अर्थ में [*मयट्*] मयट् प्रत्यय होता है ॥ गुण का अर्थ यहाँ भाग तथा निमान का मूल्य है ॥ इस सूत्र में तदस्य की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुतगति से ५।२।३६ से समझनी चाहिये ॥ *उदा०*—द्विमयमुदश्वित् (इस उदश्वित् के भाग का मूल्य दो भाग यव हैं यथा एक सेर उदश्वित् का मूल्य दो सेर यव) । त्रिमयम् चतुर्मयम् ॥

यहाँ से '*सङ्ख्यायाः*' की अनुवृत्ति ५।२।५८ तक जायेगी ॥

तस्य पूरणे डट् ॥५।२।४८॥

तस्य ६।१॥ पूरणे ७।१॥ डट् १।१॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् पूरण इत्येतस्मिन्नर्थे डट् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्यत अनेनेति पूरणम् ॥ *उदा०*—एकादशानां पूरणः, एकादशः त्रयोदशः ॥

भाषार्थः—[*तस्य*] षष्ठी समर्थ सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से, [*पूरणे*] पूरण अर्थ में [*डट्*] डट् प्रत्यय होता है ॥ एकादश संख्या

को पूर्ण करने वाला व्यक्ति अर्थात् ग्यारहवाँ, दस के बाद ग्यारहवां व्यक्ति न हो तो ग्यारह संख्या नहीं बनती अतः दसवें के बाद वाला व्यक्ति ११ वीं संख्या का पूरक है ॥ एकादशन् डट् यहाँ टिलोप होकर एकादश् अ = एकादशः (ग्यारहवां) त्रयोदशः (तेरहवां) बना ॥

यहाँ से '*तस्य पूरणे*' की अनुवृत्ति ५।२।५८ तथा 'डट्' की ५।२।५३ तक जायेगी ॥

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ॥५।२।४९॥

नान्तात् ५।१॥ असङ्ख्यादेः ५।१॥ मट् १।१॥ *स०*—नकारोऽन्ते यस्य स नान्तः, तस्मात् बहुव्रीहिः । सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिः बहुव्रीहिः, न सङ्ख्यादिः, असङ्ख्यादिः, तस्मात्......नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तस्य पूरणे डट्, सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मडागमविधानात् डट् पष्ठ्यन्ते विपरिणमति । असङ्ख्यादेः सङ्ख्यावाचिनः षष्ठीसमर्थात् नान्तात् प्रातिपदिकात् पूरणे विहितस्य डटो मट् आगमो भवति ॥ *उदा०*—पञ्चानां पूरणः पञ्चमः, सप्तमः ॥

भाषार्थः—[*असंख्यादेः*] सङ्ख्या आदि में न हो जिसके ऐसे सङ्ख्यावाची षष्ठीसमर्थ [*नान्तात्*] नकारान्त प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में जो डट् प्रत्यय उसको [*मट्*] मट् का आगम होता है ॥ *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) से मट् डट् के आदि में होगा, सो पञ्चन् मट् डट् = पञ्च म् अ, नकार का लोप होकर पञ्चमः (पांचवां) सप्तमः (सातवां) बनेगा ॥

यहाँ से '*नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्*' की अनुवृत्ति ५।२।५० तक जायेगी ॥

थट् च छन्दसि ॥५।२।५०॥

थट् १।१॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—नान्तादसंख्यादेर्मट्, तस्य पूरणे डट्, सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—असङ्ख्यादेः षष्ठीसमर्थात् सङ्ख्यावाचिनः नान्तात् प्रातिपदिकात् परस्य पूरणे विहितस्य डटः छन्दसि विषये थट् आगमो भवति, मट् च ॥ *उदा०*—पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति । पञ्चथः सप्तथः । मट्—पञ्चममिन्द्रियमस्यापाक्रामन् ॥

भाषार्थः—सङ्ख्या आदि में न हो जिसके, ऐसे षष्ठी समर्थ सङ्ख्यावाची जो नकारान्त प्रातिपदिक उनसे परे पूरण अर्थ में आया जो डट् प्रत्यय उसको [*छन्दसि*] वेद विषय में [*थट्*] थट् [*च*] तथा मट् का आगम होता है ॥ ५।२।४८ से जो डट् प्रत्यय होता है, उसी को आदेश विधान हैं ॥ पञ्चन् थट् डट् = पञ्च थ् अ = पञ्चथः बना ॥

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ॥५।२।५१॥

षट्कतिकतिपयचतुराम् ६।३॥ थुक् १।१॥ *स०*—षट्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु*ः—तस्य पूरणे डट्, सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च । अर्थवशात् डट् सप्तम्यां विपरिणमते ॥ *अर्थः*—षट्, कति, कतिपय, चतुर् इत्येतेषां पूरणार्थे डटि परतस्थुक् आगमो भवति ॥ *उदा०*—षण्णां पूरणः = षष्ठः, कतिथः, कतिपयथः, चतुर्थः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*षट्···राम्*] षट्, कति, कतिपय, चतुर् इनके पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय के परे रहते [*थुक्*] थुक् आगम होता है ॥ कतिपय शब्द सङ्ख्यावाची नहीं है, सो इससे डट् प्रत्यय हो ही नहीं सकता पुनः डट् को थुक् आगम विधान व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करता है कि सङ्ख्यावाची न होते हुए भी कतिपय शब्द से इसी सूत्र से डट् प्रत्यय भी हो जाता है, तब आगम विधान सार्थक हुआ, शेष शब्दों से ५।२।४८ से डट् प्रत्यय हो ही जायेगा ॥ षष् थुक् डट्, ष्टुत्वादि होकर षष्ठः बन गया ॥ *आद्यन्तौ०* (१।१।४५) लगकर षष् के अन्त में थुक् आगम होगा ॥ *उदा०*—षष्ठः, कतिथः (कौन सा) कतिपयथः (कितनों का) चतुर्थः (चौथा) ॥

बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ॥५।२।५२॥

बहुपूगगणसङ्घस्य ६।१॥ तिथुक् १।१॥ *स०*—बहु० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तस्य पूरणे डट्, सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बहु, पूग, गण, संघ इत्येतेषां पूरणार्थे डटि परतस्तिथुक् आगमो भवति ॥ *उदा०*—बहूनां पूरणो बहुतिथः, पूगतिथः, गणतिथः, सङ्घतिथः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*बहु···स्य*] बहु, पूग, गण, सङ्घ इनको पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय के परे रहते [*तिथुक्*] तिथुक् आगम

होता है ॥ बहु, गण शब्दों की *बहुगण०* (१।१।२२) से सङ्ख्या संज्ञा है, सो डट् ५।२।४८ से हो जायेगा, पर पूग, सङ्घ शब्द सङ्ख्यावाची नहीं हैं, सो इस सूत्र में डट् परे तिथुक् आगम के विधान रूप ज्ञापक से ही डट् प्रत्यय होगा ॥ *उदा०*—बहुतिथः (बहुतों का) पूगतिथः (श्रमजीवी समूहों का) गणतिथः (समूहों का) सङ्घतिथः (समूहों का)

वतोरिथुक् ॥५।२।५३॥

वतोः ६।१॥ इथुक् १।१॥ *अनु०*—तस्य पूरणे डट्, सङ्ख्यायाः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यावाचिनो वत्वन्तस्य प्रातिपदिकस्य पूरणार्थे डटि परत इथुग् आगमो भवति ॥ *उदा०*—यावतां पूरणो यावतिथः, तावतिथः एतावतिथः ॥

भाषार्थः—[*वतोः*] वत्वन्त प्रातिपदिक को पूरण अर्थ में विहित डट् परे रहते [इथुक्] इथुक् आगम होता है ॥ *बहुगणवतु०* से वत्वन्त प्रातिपदिक की सङ्ख्या संज्ञा है ही सो डट् प्रत्यय हो जायेगा। यावत् तावत् की सिद्धि भी भाग १ पृ० ६९५ परि० १।१।२२ में ही देखें ॥ यावत् + इथुक् डट् = यावत् इथ् अ = यावतिथः (जितनों का) बन गया।

इसी प्रकार तावतिथः (उतनों का) एतावतिथः (इतनों का) समझें ॥

द्वेस्तीयः ॥५।२।५४॥

द्वेः ५।१॥ तीयः १।१॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः, तस्य पूरणे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थात् द्विप्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [द्वेः] द्वि प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में [*तीयः*] तीय प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तीयः*' की अनुवृत्ति ५।२।५५ तक जायेगी ॥

त्रेः सम्प्रसारणञ्च ॥५।२।५५॥

त्रेः ५।१॥ सम्प्रसारणम् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तीयः, सङ्ख्यायाः, तस्य, पूरणे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—

षष्ठीसमर्थात् त्रिप्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन त्रेः सम्प्रसारणं च भवति ॥ उदा०—त्रयाणां पूरणस्तृतीयः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [त्रेः] त्रि प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है [च] तथा प्रत्यय के साथ साथ त्रि को [*सम्प्रसारणम्*] सम्प्रसारण भी हो जाता ॥ *इग्यणः सम्प्र०* (१।१।४४) लगकर त्रि के र को ऋ सम्प्रसारण और *सम्प्रसारणाच्च* (६।१।१०४) से पूर्वरूप होकर तृ + तीय = तृतीयः बनेगा ॥ द्वि, त्रि शब्द सङ्ख्यावाची ही हैं, अतः अर्थ में सङ्ख्यावाची नहीं रखा केवल अनुवृत्ति में सम्बन्ध दिखाने के लिए सङ्ख्यायाः रखा है ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥५।२।५६॥

विंशत्यादिभ्यः ५।३॥ तमट् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१ ॥ *स०*—विंशतिः आदिर्येषां ते विंशत्यादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः, तस्य पूरणे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थेभ्यो विंशत्यादिभ्यः सङ्ख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः डटस्तमट् आगमो भवत्यन्यतरस्याम् ॥ सामान्येन तस्य पूरणे डट् इत्यनेन सङ्ख्यावाचिभ्यः डट् विहितस्तस्यात्र तमडागमो विधीयते ॥ *उदा०*—विंशतेः पूरणः विंशतितमः पक्षे विंशः । एकविंशतितमः, एकविंशः । त्रयोविंशतितमः, त्रयोविंशः । त्रिंशत्तमः, त्रिंशः । एकत्रिंशत्तमः, एकत्रिंशः ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ सङ्ख्यावाची [*विंशत्यादिभ्यः*] विंशत्यादि प्रातिपदिकों से जो पूरण अर्थ में डट् विहित है उसको [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*तमट्*] तमट् आगम होता है ॥ सामान्य करके *तस्य पूरणे०* (५।२।४८) से सङ्ख्यावाचियों से डट् कहा है, सो उसी को यहाँ तमट् आगम विकल्प से कह दिया है ॥ *उदा०*—विंशतितमः (बीसवां) विंशः, एकविंशतितमः (इक्कीसवाँ) एकविंशः । विंशति तमट् डट् = विंशति तम् अ विंशतितमः बना । जिस पक्ष में तमट् आगम नहीं हुआ तब *ति विंशतेर्डिति* (६।४।१४४) से 'ति' भाग का लोप होकर विंशः बन गया । त्रयोविंशतितमः त्रयोविंशः में *त्रेस्त्रयः* (६।३।४६) से त्रयस् आदेश होता है । त्रिंशः में त्रिंशत् डट् यहाँ *डित्सामार्थ्या०* (वा० ६।४।१४३) वार्त्तिक से टि भाग

(अत्) का लोप होकर त्रिश् अ = त्रिशः बन गया ॥

यहाँ से 'तमट्' की अनुवृत्ति ५।२।५८ तक जायेगी ॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥५।२।५७॥

नित्यम् १।१॥ शता·····सरात् ५।१॥ च अ० ॥ स०—शतम् आदिर्येषां ते शतादयः, शतादयश्च मासश्च अर्द्धमासश्च संवत्सरश्च, शता···त्सरम् तस्मात्·····बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तमट्, तस्य पूरणे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—षष्ठीसमर्थेभ्यः शतादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मास, अर्द्धमास, संवत्सर इत्येतेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यः पूरणेऽर्थे डट् विहितस्तस्य नित्यं तमडागमो भवति ॥ उदा०—शतस्य पूरणः शततमः, सहस्रतमः, लक्षतमः । मासस्य पूरणो मासतमो दिवसः, अर्द्धमासतमः संवत्सरतमः ॥

भाषार्थः—षष्ठीसमर्थ [*शता · सरात्*] शतादि प्रातिपदिकों से तथा मास, अर्द्धमास और संवत्सर प्रातिपदिकों से उत्तर [च] पूरण अर्थ में हुये डट् प्रत्यय को तमट् का आगम [*नित्यम्*] नित्य ही हो जाता है ॥ मास, अर्द्धमास संवत्सर शब्द यद्यपि सङ्ख्यावाची नहीं हैं तथापि उनसे डट् प्रत्यय इसी सूत्र में डट् को तमट् आगम विधानरूप ज्ञापक से हो जाता है ॥ उदा०—शततमः (सौवां), सहस्रतमः । मासतमः (मास को पूरण करने वाला अन्तिम दिन), अर्द्धमासतमः (पन्द्रहवां दिन), संवत्सरतमः (वर्ष का अन्तिम दिन) ॥

यहाँ से '*नित्यम्*' की अनुवृत्ति ५।२।५८ तक जायेगी ॥

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ॥५।२।५८॥

षष्ट्यादेः ५।१॥ च अ०॥ असङ्ख्यादेः ५।१॥ स०—षष्टिः आदिर्यस्य स षष्ट्यादिः, तस्मात्··बहुव्रीहिः । सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिः बहुव्रीहिः, न सङ्ख्यादिः असङ्ख्यादिस्तस्मात्· नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—नित्यम्, तमट्, सङ्ख्यायाः, तस्य पूरणे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठीसमर्थादसङ्ख्यादेः सङ्ख्यावाचिनः षष्ट्यादेः प्रातिपदिकात् परस्य पूरणेऽर्थे विहितो यो डट् तस्य नित्यं तमडागमो भवति ॥ उदा०—षष्टेः पूरणः षष्टितमः सप्ततितमः ॥

भाषार्थः—षष्ठी समर्थ [*असङ्ख्यादेः*] सङ्ख्या आदि में न हो जिसके, ऐसे सङ्ख्यावाची [*षष्ट्यादेः*] षष्ट्यादि प्रातिपदिकों से [*च*] भी पूरण अर्थ में विहित जो डट् प्रत्यय उसको नित्य ही तमट् आगम होता है ॥

मतौ छः सूक्तसाम्नोः ॥५।२।५९॥

मतौ ७।१॥ छः १।१॥ सूक्तसाम्नोः ७।२॥ *स०*—सूक्तञ्च साम च सूक्तसाम्नी, तयोः इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*- प्रातिपदिकमात्रात् मत्वर्थे छः प्रत्ययो भवति सूक्ते सामनि चाभिधेये ॥ *उदा०*—अस्यवाम शब्दोऽस्मिन्नस्तीति अस्यवामीयं सूक्तम्, मित्रावरुणीयम्। यज्ञायज्ञीयं साम, वारवन्तीयं साम ॥

भाषार्थः—प्रातिपदिक मात्र से [*मतौ*] मत्वर्थ में [*छः*] छ प्रत्यय होता है, [*सूक्तसाम्नोः*] सूक्त और साम (सामवेद के मन्त्र का गान) वाच्य हों तो ॥ यह इसका है या इसमें है इस अर्थ में *तदस्यास्त्यस्मिन्निति* (५।२।९४) से मतुप् होता है, सो यही अर्थ मत्वर्थ है ॥*उदा०*—अस्यवामीयं सूक्तम् (ऋ० १।१६४ सूक्त में अस्यवाम शब्द पढ़ा है वह अस्यवामीय सूक्त कहाता है) मित्रावरुणीयम्। यज्ञायज्ञीयं साम (यज्ञायज्ञा शब्द जिस साम में है वह यज्ञायज्ञीय कहाता है) वारवन्तीयम्[1] ॥

यहाँ से '*मतौ*' की अनुवृत्ति ५।२।६२ तक तथा 'छः' की ५।२।६० तक जायेगी ॥

अध्यायानुवाकयोर्लुक् ॥५।२।६०॥

अध्या.....योः ७।२॥ लुक् १।१॥ *स०*—अध्या० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*- मतौ छः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः मत्वर्थ उत्पन्नस्य छस्य लुक् भवति ॥ *उदा०*—गर्दभाण्ड शब्दोऽस्मिन्नस्तीति गर्दभाण्डोऽध्यायः, गर्दभाण्डोऽनुवाकः, दीर्घजीवितोऽध्यायोऽनुवाको वा ॥

---

१. 'यज्ञायज्ञा वो गिरा' साममन्त्र मे गेय सामगान का नाम यज्ञायज्ञीय है। इसी प्रकार 'अश्वं न त्वा वारवन्तम्' ऋ० १।२७।१ मन्त्र में गेय साम वारवन्तीय कहाता है ॥

भाषार्थः—[*अध्यायानुवाकयोः*] अध्याय और अनुवाक अभिधेय होने पर मत्वर्थ में विहित जो छ प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् होता है ॥ यहाँ देखना यह है कि पूर्व सूत्र में सूक्त साम अभिधेय होने पर छ प्रत्यय मत्वर्थ में कहा है, अध्याय अनुवाक अभिधेय होने पर तो छ प्रत्यय किसी से कहा ही नहीं, पुनः लुक् कैसे कहा, तब लुक् कहना व्यर्थ होकर यह ज्ञापक निकला कि मत्वर्थ में छ अध्याय अनुवाक अभिधेय होने पर भी होता है, तब लुक् कहना सार्थक हुआ ॥

यहाँ महाभाष्य के वचनानुसार यह लुक् विकल्प से होता है, सो पक्ष में छ का लुक् न होकर, गर्दभाण्डीयोऽध्यायः, दीर्घजीवितीयः[1] रूप भी बनेंगे ॥

यहाँ से '*अध्यायानुवाकयोः*' की अनुवृत्ति ५।२।६२ तक जायेगी ॥

विमुक्तादिभ्योऽण् ॥५।२।६१॥

विमुक्तादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—विमुक्त आदिर्येषां ते विमुक्तादयस्तेभ्यः ''''' बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अध्यायानुवाकयोः, मतौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विमुक्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोरण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्तीति वैमुक्तोऽध्यायो अनुवाको वा, दैवासुरः ॥

भाषार्थः—[*विमुक्तादिभ्यः*] विमुक्तादि प्रातिपदिकों से अध्याय और अनुवाक अभिधेय हों तो मत्वर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥

गोषदादिभ्यो वुन् ॥५।२।६२॥

गोषदादिभ्यः ५।३॥ वुन् १।१॥ *स०*—गोषद आदिर्येषां ते गोषदादयस्तेभ्यः ''' बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अध्यायानुवाकयोः, मतौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गोषदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्वुन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा, इषेत्वकः, मातरिश्वकः ॥

---

१. देखो—'अथातो दीर्घंजीवितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः' (चरकसूत्र० १।१)

भाषार्थः—[*गोषदादिभ्यः*] गोषदादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में, अध्याय, और अनुवाक अभिधेय हों तो [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'वुन्' की अनुवृत्ति ५।२।६३ तक जायेगी ॥

तत्र कुशलः पथः ॥५।२।६३॥

तत्र अ० ॥ कुशलः १।१॥ पथः ५।१॥ *अनु०*—वुन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत्रेति सप्तमीसमर्थात् पथिन्प्रातिपदिकात् कुशल इत्येतस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पथि कुशलः = पथकः ॥

भाषार्थः—[*तत्र*] सप्तमीसमर्थ [*पथः*] पथिन् प्रातिपदिक से [*कुशलः*] कुशल इस अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पथकः (यात्रा कर्म में चतुर) ॥

यहाँ से '*तत्र*' की अनुवृत्ति ५।२।६७ तक तथा '*कुशलः*' की ५।२।६४ तक जायेगी ॥

आकर्षादिभ्यः कन् ॥५।२।६४॥

आकर्षादिभ्यः ५।३॥ कन् १।१॥ *स०*—आकर्ष आदिर्येषां त आकर्षादयस्तेभ्यः····· बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तत्र, कुशलः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्य आकर्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—आकर्षे कुशलः आकर्षकः, त्सरुकः ॥

भाषार्थः—सप्तमी समर्थ [*आकर्षादिभ्यः*] आकर्षादि प्रातिपदिकों से कुशल इस अर्थ में [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आकर्षकः (कसौटी पर सोना आदि परखने में चतुर) त्सरुकः (तलवार चलाने में चतुर) ॥

यहाँ से '*कन्*' की अनुवृत्ति ५।२।८२ तक जायेगी ॥

धनहिरण्यात् कामे ॥५।२।६५॥

धनहिरण्यात् ५।१॥ कामे ७।१॥ *स०*—धन० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—कन्, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाभ्यां धन, हिरण्य प्रातिपदिकाभ्यां काम इत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—धने कामः धनको देवदत्तस्य, हिरण्यकः ॥

भाषार्थः—सप्तमीसमर्थ [*धनहिरण्यात्*] धन और हिरण्य प्रातिपदिकों से [*कामे*] काम = इच्छा अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—धनको देवदत्तस्य (देवदत्त की धन विषयक इच्छा) हिरण्यको देवदत्तस्य (देवदत्त की सुवर्ण विषयक इच्छा) ॥

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ॥५।२।६६॥

स्वाङ्गेभ्यः ५।३॥ प्रसिते ७।१॥ स्वम् अङ्गं स्वाङ्गम् ॥ *अनु०*—कन् तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थेभ्यः स्वाङ्गवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रसित इत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—केशेषु प्रसितः केशकः, दन्तकः, ओष्ठकः ॥

भाषार्थः—सप्तमीसमर्थ [*स्वाङ्गेभ्यः*] स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकों से [*प्रसिते*] प्रसित = प्रसक्त, तत्पर अर्थ में कन प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—केशकः (जो केश को सँवारने में बड़ा तत्पर अर्थात् आसक्त हो) दन्तौष्ठकः ॥

यहाँ से '*प्रसिते*' की अनुवृत्ति ५।२।६७ तक जायेगी ॥

उदराट्ठगाद्यूने ॥५।२।६७॥

उदरात् ५।१॥ ठक् १।१॥ आद्यूने ७।१॥ *अनु०*—प्रसिते, तत्र, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीसमर्थाद् उदरप्रातिपदिकात् ठक् प्रत्ययो भवति प्रसित इत्येतस्मिन्नर्थे आद्यूने वाच्ये ॥ आदिरेव ऊनमस्य = आद्यूनः । प्रथमखादनक्रियासमाप्तेः पूर्वमेव य उदरं मे रिक्तं जातमिति मन्यते स आद्यून उच्यते अर्थात् यः सर्वदा चर्वणं करोति ॥ *उदा०*—उदरे प्रसितः औदरिक आद्यूनः ॥

भाषार्थः—सप्तमीसमर्थ [*उदरात्*] उदरप्रातिपदिक से [*आद्यूने*] आद्यून वाच्य हो तो प्रसक्त अर्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ जो सदा खाने की ही इच्छा करता रहता है, उसे आद्यून = पेटू कहते

हैं ॥ इस सूत्र में ठक् प्रत्यय कहा है, अतः कन् की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं लगेगा ॥ उदा०—औदरिकः (सदा खाते रहने वाला पेटू पुरुष) ॥

सस्येन परिजातः ॥५।२।६८॥

सस्येन ३।१॥ परिजातः १।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् सस्यप्रातिपदिकात् परिजात इत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति । निर्देशादेव समर्थविभक्तिः ॥ उदा०—सस्येन परिजातः सस्यकः शालिः, सस्यकः साधुः ॥

भाषार्थः—सस्येन निर्देश से ही यहाँ समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ तृतीया समर्थ [*सस्येन*] सस्य प्रातिपदिक से [*परिजातः*] परिजात = सब ओर से उत्पन्न इस अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सस्यकः शालिः (सस्य शब्द का अर्थ है गुण और परि का अर्थ है सब ओर से, अर्थात् गुणों से भरपूर, जिसमें किसी प्रकार की कमी न हो । सस्यकः साधुः (पूर्ण साधु गुणों से युक्त) ॥

अंशं हारी ॥५।२।६९॥

अंशम् २।१॥ हारी १।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाद् अंशप्रातिपदिकात् हारीत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । उदा०—अंशं हारी = अंशको दायादः ॥

भाषार्थः—यहाँ अंशं निर्देश से ही द्वितीया समर्थ विभक्ति ली है ॥ द्वितीया समर्थ [*अंशम्*] अंश प्रातिपदिक से [*हारी*] हारी = हरण करने वाला इस अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अंशको दायादः (परम्परा प्राप्त धन के भाग को प्राप्त होने वाला) ॥

तन्त्रादचिरापहृते ॥५।२।७०॥

तन्त्रात् ५।१॥ अचिरापहृते ७।१॥ तन्यते तन्तवोऽनेनेति तन्त्रं, तन्तुवायशलाका उच्यते ॥ *स०*—न चिरः अचिरः, नञ्तत्पुरुषः । अचिरशब्दः कालवाची । अचिरः (कालः) अपहृतस्य = अचिरापहृतः, तस्मिन् ''तत्पुरुषः । *कालाः परिमाणिनेत्यनेन* समासः ॥ *अनु०*—कन्,

तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पञ्चमीसमर्थात् तन्त्रप्रातिपदिकाद् अचिरापहृत इत्येतस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—तन्त्रादचिरापहृतस्तन्त्रकः पटः ॥

भाषार्थः—पञ्चमी समर्थ [*तन्त्रात्*] तन्त्र प्रातिपदिक से [*अचिरापहृते*] अचिरापहृत इस अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ तन्त्र कहते हैं जुलाहे की खड्डी को, जिससे वह कपड़े बुनता है। अचिरापहृत का अर्थ है अचिर = थोड़ा काल अपहृत, खड्डी से बाहर निकालने को बीता है अर्थात् तत्काल बुना हुआ ॥ निर्देश से ही यहाँ भी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है ॥ *उदा०*—तन्त्रकः पटः (जुलाहे द्वारा बुन कर थोड़ी देर पूर्व खड्डी से पृथक् किया गया वस्त्र) ॥

ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् ॥५।२।७१॥

ब्राह्मणकोष्णिके १।२॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—ब्राह्म० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ब्राह्मणक उष्णिक इत्येतौ शब्दौ कन्प्रत्ययान्तौ निपात्येते संज्ञायां विषये ॥ *उदा०*—ब्राह्मणको देशः, उष्णिका यवागूः ॥ अल्पान्नशब्दस्योष्णादेशो निपातनात् ॥

भाषार्थः—[*ब्राह्मणकोष्णिके*] ब्राह्मणक और उष्णिक शब्द कन् प्रत्ययान्त [*संज्ञायाम्*] सञ्ज्ञा विषय में निपातन किये जाते हैं ॥ अल्पान्न शब्द को निपातन से उष्ण आदेश होता है। जिस देश में शस्त्रजीवी ब्राह्मण रहते हों उस देश की ब्राह्मणक सञ्ज्ञा है ॥ जिसमें थोड़ा अन्न हो अर्थात् जिसमें जलांश अधिक हो उस लप्सी की उष्णिका संज्ञा है ॥

शीतोष्णाभ्यां कारिणि ॥५।२।७२॥

शीतोष्णाभ्याम् ५।२॥ कारिणि ७।१॥ *स०*—शीतो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासमर्थाभ्यां शीत, उष्ण इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां कारिणि वाच्ये कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शीतं करोति शीतकः, उष्णं करोति उष्णकः ॥

भाषार्थः—द्वितीयासमर्थ [*शीतोष्णाभ्याम्*] शीत, उष्ण प्रातिपदिकों से [*कारिणि*] कारी = करने वाला अभिधेय हो तो कन् प्रत्यय होता है ॥

शीत, उष्ण शब्द क्रिया (करोति) के विशेषण हैं, क्रियाविशेषण में द्वितीया विभक्ति ही होती है, अतः यहाँ क्रियाविशेषण होने से द्वितीया समर्थ का ग्रहण किया है ।। शीतकः आलसी को कहते हैं । जाड़े में काम करने में आलसपना रहता ही है सो शीतक आलसी को ही कहेंगे । इसी प्रकार उष्णकः जो जल्दी-जल्दी काम करे उसे कहेंगे । गर्मी में काम करने में फुर्ती होती है ।।

अधिकम् ।।५।२।७३।।

अधिकम् १।१।। *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अधिकमिति निपात्यते । अध्यारूढशब्दस्योत्तरपदलोपः कन् च प्रत्ययो निपात्यते ।। उदा०—अधिकम् ।।

भाषार्थः—[*अधिकम्*] अधिकम् यह निपातन किया जाता है । अध्यारूढ शब्द के उत्तरपद अर्थात् आरूढ शब्द का लोप तथा कन् प्रत्यय निपातन से किया जाता है ।। अध्यारूढ कन् = अधिक = अधिकम् (ज्यादा) बना ।। अधिक शब्द सापेक्ष है, अधिक के लिए उससे अल्प होना आवश्यक है जैसे *शतादधिकम्* सौ के अधि ऊपर चढ़ा हुआ अर्थात् सौ से अधिक ।।

अनुकाभिकाभीकः कमिता ।।५।२।७४।।

अनुकाभिकाभीकः १।१।। कमिता १।१।। *स०*—अनुकश्च अभिकश्च अभीकश्च समाहारो द्वन्द्वः । सौत्रत्वात् पौंस्नम् ।। *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अनुक, अभिक, अभीक इत्येते शब्दाः कन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते कमितेत्येतस्मिन्नर्थे । अनुकामयते अनुकः, अभिकः । पक्षे अभेः दीर्घत्वं निपात्यते अभीकः ।।

भाषार्थः—[*अनु...कः*] अनुक, अभिक, अभीक शब्द [*कमिता*] इच्छा करने वाला इस अर्थ में निपातन किये जाते हैं । अनु, अभि इन उपसर्ग शब्दों से निपातन द्वारा कन् प्रत्यय किया जाता है, पक्ष में अभि को दीर्घ होता है, सो अनुक (कामना करने वाला) अभिकः (कामुक अथवा क्रूर) अभीकः (कामुक अथवा क्रूर) रूप बनेंगे ।।

पार्श्वेनान्विच्छति ॥५।२।७५॥

पार्श्वेन ३।१॥ अन्विच्छति क्रिया० ॥ निर्देशादेव समर्थविभक्तिः ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तृतीयासमर्थात् पार्श्वशब्दात् कन् प्रत्ययो भवत्यन्विच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ॥ पार्श्वमिव पार्श्वम् यथा पार्श्वास्थि अनृजु कुटिलं भवति तथा अनृजुरुपायः पार्श्वशब्देनेहोच्यते ॥ *उदा०*—पार्श्वेन अर्थानन्विच्छति = पार्श्वकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*पार्श्वेन*] पार्श्व प्रातिपदिक से [*अन्विच्छति*] चाहता है इस अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ पार्श्व कुटिल उपायों को कहते हैं, जो कुटिल उपायों से पैसा द्रव्योपार्जन करे वह पार्श्वक कहा जाता है अर्थात् धोखा आदि देकर द्रव्योपार्जन करने वाला॥

यहाँ से '*अन्विच्छति*' की अनुवृत्ति ५।२।७६ तक जायेगी ॥

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ॥५।२।७६॥

अयः⋯⋯भ्याम् ३।२॥ ठक्ठञौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अन्विच्छति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*.—तृतीयासमर्थाभ्याम्, अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यमन्विच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक्ठञौ प्रत्ययौ भवतः । अयः-शूलमिव अयःशूलम्—तीक्ष्ण उपायः एवं दण्डश्चाजिनं च दण्डाजिनम् ब्रह्मचारिवेष उच्यते । *उदा०*—अयःशूलेनान्विच्छति आयःशूलिकः साहसिकः, दाण्डाजिनिकः, दाम्भिकः ॥

भाषार्थः—तृतीया समर्थ [*अयः⋯⋯भ्याम्*] अयःशूल तथा दण्डाजिन प्रातिपदिकों से यथासङ्ख्य करके अन्विच्छति इस अर्थ में [*ठक्ठञौ*] ठक् तथा ठञ् प्रत्यय होते हैं ॥ अयःशूल शब्द से यहां तीक्ष्ण उपायों का ग्रहण है सो आयःशूलिकः का अर्थ साहसिक होगा तथा दण्ड और अजिन = मृगचर्म ब्रह्मचारिवेष को धोखा देने के लिए जो धारण करे वह दाण्डाजिनिकः अर्थात् दाम्भिक कहाता है ॥ ठक् और ठञ् में केवल स्वर का ही भेद है ॥

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ॥५।२।७७॥

तावतिथम् १।१॥ ग्रहणम् १।१॥ इति अ० ॥ लुक् १।१॥ वा अ० ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ तावतां

पूरणं तावतिथम्। गृह्यते अनेनेति ग्रहणम्॥ तावतिथमिति पूरणप्रत्ययान्तानां सामान्यनिर्देशोऽस्ति यथा तस्यापत्यमित्यत्र षष्ठ्यन्तानां (प्रातिपदिकानाम्) सामान्यनिर्देशो वर्त्तते॥ *अर्थः*—पूरणप्रत्ययान्तात् ग्रहणसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति तस्य च पूरणप्रत्ययस्य वा लुग् भवति॥ *उदा०*—द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति द्विकं ग्रहणम्, द्वितीयकम्। त्रिकं तृतीयकम्, चतुष्कम्, चतुर्थकम्॥

भाषार्थः—[*तावतिथम्*] पूरणप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जो [*ग्रहणमिति*] ग्रहण = क्रिया का समानाधिकरण है उससे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है, तथा पूरण प्रत्यय का [*वा*] विकल्प से [*लुक्*] लुक् भी होता है॥ उतने (किसी संख्या का) का जो पूरण करने वाला, वह तावतिथं कहायेगा। उतने का पूरण करने वाला, यह अर्थ पूरण प्रत्यय ही देगा सो तावतिथं का अर्थ होगा, पूरणप्रत्ययान्त। इस सूत्र में पूरणप्रत्ययान्त स्पष्ट निर्देश न करके तावतिथं सामान्य निर्देश किया है, सो उसका अर्थ पूरण प्रत्ययान्त ही लेना चाहिये, जिस प्रकार *तस्यापत्यम्* में तस्य सामान्य निर्देश से षष्ठ्यन्त का ही ग्रहण होता है॥ *द्वेस्तीयः* (५।२।५४) से द्वि शब्द से तीय पूरण प्रत्यय हुआ है, उसी का लुक् तथा पक्ष में अलुक् होता है। द्विकं, द्वितीयकम् = दूसरी बार सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करना अर्थ यहाँ विवक्षित है। इसी प्रकार औरों में जानें॥

स एषां ग्रामणीः ॥५।२।७८॥

सः १।१॥ एषाम् ६।३॥ ग्रामणीः १।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं ग्रामणीश्चेत् स भवति॥ ग्रामणीः प्रधानो मुख्य इत्यर्थः॥ *उदा०*—देवदत्तो ग्रामणीरेषां = देवदत्तकाः, यज्ञदत्तकाः॥

भाषार्थः—[*सः*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से जो [*ग्रामणीः*] ग्राम का मुखिया हो उससे [*एषां*] षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है॥ ग्रामणी प्रधान को कहते हैं॥ *उदा०*—देवदत्तकाः (देवदत्त इन ग्रामवासियों का मुखिया है), यज्ञदत्तकाः॥

शृङ्खलमस्य बन्धनं करभ ॥५।२।७९॥

शृङ्खलम् १।१॥ अस्य ६।१॥ बन्धनम् १।१॥ करभे ७।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् शृङ्खलप्रातिपदिकात्, षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति यत्तत् प्रथमासमर्थं बन्धनं चेत्तद् भवति, यत्तदस्येति निर्दिष्टं करभश्चेत् स भवति ॥ निर्देशादेव प्रथमासमर्थविभक्तिः ॥ *उदा०*—शृङ्खलं बन्धनमस्य करभस्य शृङ्खलकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*शृङ्खलम्*] शृङ्खल प्रातिपदिक से [*अस्य*] षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमासमर्थ [*बन्धनम्*] बन्धन बन रहा हो तो तथा जो षष्ठी से निर्दिष्ट हो वह [*करभे*] करभ हो तो ॥ ऊंटों के छोटे बच्चों को करभ कहते हैं। उनके पैरों में लकड़ी का बना हुआ जो बन्धन लगा दिया जाता है, जिससे जल्दी इधर उधर न भाग सकें वह बन्धन शृङ्खल कहाता है ॥ *उदा०*—शृङ्खलकः। (काठ का शृङ्खल बन्धन है जिस ऊँट के बच्चे का, वह शृङ्खलक कहाता है, इससे करभ की अवस्था विशेष द्योतित होती है) ॥

उत्क उन्मनाः ॥५।२।८०॥

उत्कः १।१॥ उन्मनाः १।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ उद्गतं मनो यस्य स उन्मनाः ॥ *अर्थः*—उत्क इति निपात्यते, उन्मना इत्यस्मिन्नर्थे। उत् शब्दात् कन् प्रत्ययो निपात्यते ॥ उत्कः प्रवासी ॥

भाषार्थः—[*उत्कः*] उत्क यह शब्द निपातन किया जाता है, [*उन्मनाः*] उन्मन अर्थ में। उत् शब्द से कन् प्रत्यय का निपातन है ॥ जिसका मन इधर उधर हो अर्थात् उदास हो विक्षिप्त हो वह उन्मनाः कहा जायेगा। उत्कः प्रवासी। उत्कः का समान्य अर्थ है उदास मन वाला। परदेशी प्रायः घर से दूर रहने के कारण उदास रहता है, अतः उदाहरण में उत्क प्रवासी का विशेषण है ॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥५।२।८१॥

कालप्रयोजनात् ५।१॥ रोगे ७।१॥ *स०*—काल० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

सामर्थ्येन यथायोगं समर्थविभक्तिर्लभ्यते ॥ *अर्थः*—कालवाचिनः प्रातिपदिकात् प्रयोजनवाचिनश्च रोगेऽभिधेये कन् प्रत्ययो भवति ॥ प्रयोजनं कारणं फलं वा ॥ *उदा०*—द्वितीयेऽह्नि भवो द्वितीयको ज्वरः, चतुर्थकः । प्रयोजनवाचिनः—विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पको ज्वरः, काशपुष्पकः । उष्णं कार्यमस्य उष्णकः, शीतकः ॥

भाषार्थः—[*कालप्रयोजनात्*] कालवाची तथा प्रयोजनवाची = कारणवाची प्रातिपदिकों से [*रोगे*] रोग अभिधेय हो तो कन् प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में सामर्थ्य से जहाँ जैसी विभक्ति युक्त हो वैसी समर्थ विभक्ति लगा लेनी है, सो कालवाचियों से सप्तमी समर्थ विभक्ति युक्त है तथा प्रयोजनवाचियों से तृतीया, सो उसी प्रकार लगाना है ॥ *उदा०*—कालवाचियों से—द्वितीयकः (प्रतिदिन ज्वर उतरकर दूसरे दिन पुनः होने वाला ज्वर) तृतीयकः (एक दिन छोड़कर तीसरे दिन होने वाला तृतीयक 'तैया' ज्वर) चतुर्थकः (दो दिन छोड़कर चौथे दिन होने वाला चतुर्थकः चौथिया ज्वर) । प्रयोजनवाचियों से—विषपुष्पको ज्वरः (विषपुष्प = मैनफल के कारण उत्पन्न हुआ ज्वर) काशपुष्पकः (काशः = सरकण्डों के फल के स्पर्शादि के कारण उत्पन्न ज्वर) उष्णकः (जिस ज्वर की परिणति उष्णता में हो) शीतकः (जिस ज्वर की परिणति शीतलता में हो) ॥

तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् ॥५।२।८२॥

तत् १।१॥ अस्मिन् ७।१॥ अन्नम् १।१॥ प्राये ७।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये यत्तत् प्रथमासमर्थं प्रायविषयकमन्नं चेत्तद्भवति ॥ *उदा०*—गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्यां पौर्णमास्यां गुडापूपिका पौर्णमासी, तिलापूपिका ॥

भाषार्थः—[*तद्*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*अस्मिन्*] सप्तम्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमासमर्थ [*प्राये*] बहुत करके [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में [*अन्नम्*] अन्न विषयक हो तो ॥ *उदा०*—गुडापूपिका (जिस पूर्णिमा में बहुत गुड वाला अपूप अन्न = भक्ष्य

होता है वह गुडापूपिका कहाती है) तिलापूपिका (तिलप्रधान पूए भक्ष्य वाली पूर्णिमा) ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।२।८३ तक जायेगी ॥

कुल्माषादञ् ॥५।२।८३॥

कुल्माषात् ५।१॥ अञ् १।१। अनु०—तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—कुल्माषप्रातिपदिकात् तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् इत्येतस्मिन् विषयेऽञ् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वसूत्रस्यायमपवादः ॥ उदा०—कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां कौल्माषी पौर्णमासी ॥

भाषार्थः—[*कुल्माषात्*] कुल्माष प्रातिपदिक से *तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम्* इस विषय में [*अञ्*] अञ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से कन् की प्राप्ति में अञ् विधान है ॥ उदा०—कौल्माषी पौर्णमासी (कुल्माष = कुलत्थ प्रधान भक्ष्य जिसमें हो वह पूर्णिमा) । *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् हो जायेगा ॥

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ॥५।२।८४॥

श्रोत्रियन् १।१॥ छन्दः १।१॥ अधीते क्रिया० ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—श्रोत्रियन् इति निपात्यते छन्दोऽधीत इत्येतस्मिन्नर्थे । छन्दःशब्दस्य श्रोत्रभावो घन् च प्रत्ययो निपात्यते ॥ उदा०—यश्छन्दोऽधीते स श्रोत्रियो ब्राह्मणः ॥

भाषार्थः—[*छन्दोऽधीते*] वेद को पढ़ता है, इस अर्थ में [*श्रोत्रियन्*] श्रोत्रियन् यह शब्द निपातन किया जाता है । छन्दस् शब्द के स्थान में श्रोत्र भाव तथा घन् प्रत्यय निपातन से किया जाता है ॥ श्रोत्रियन् में नकार स्वरार्थ *ञ्नित्यादि०* (६।१।१९१) से आद्युदात्त करने के लिये है ॥ जो छन्द = वेद को पढ़ता है वह *श्रोत्रिय* कहाता है ॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥५।२।८५॥

श्राद्धम् १।१॥ अनेन ३।१॥ भुक्तम् १।१॥ इनिठनौ १।२॥ *स०*—इनि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्,

प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् श्राद्धप्रातिपदिकात् भुक्तसमानाधिकरणाद् अनेनेत्येतस्मिन्नर्थ इनि ठन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ निर्देशादेव प्रथमासमर्थविभक्तिः ॥ *उदा०*—श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्धी, श्राद्धिकः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*श्राद्धम्*] श्राद्ध प्रातिपदिक जो [*भुक्तम्*] भुक्त क्रिया का समानाधिकरण है उससे [*अनेन*] इसके द्वारा इस अर्थ में [*इनिठनौ*] इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ श्राद्ध इनि= श्राद्धिन् सु, यहाँ ६।४।१३ से दीर्घ तथा नकार लोप एवं हल्ङ्यादि लोप होकर श्राद्धी बन गया ॥ श्राद्धिकः में ठ को इक हो जाता है ॥

यहाँ से '*अनेन*' की अनुवृत्ति ५।२।८८ तक जायेगी ॥

पूर्वादिनिः ॥५।२।८६॥

पूर्वात् ५।१॥ इनिः १।१॥ *अनु०*—अनेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् पूर्वप्रातिपदिकाद् अनेनेत्येतस्मिन्नर्थ इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पूर्वं गतमनेन पूर्वी, पूर्वं पीतं भुक्तं वा अनेन पूर्वी पूर्विणौ पूर्विणः ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*पूर्वात्*] पूर्व प्रातिपदिक से अनेन अर्थ में [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है ॥ पूर्वी आदि में गत भुक्त पीत आदि क्रिया की पूर्व शब्द के सामर्थ्य से प्रतीति होती है ॥

यहाँ से '*पूर्वात्*' की अनुवृत्ति ५।२।८७ तक तथा '*इनिः*' की ५।२।६१ तक जायेगी ॥

सपूर्वाच्च ॥५।२।८७॥

सपूर्वात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—विद्यमानं पूर्वं यस्मात् तत् सपूर्वं तस्मात्.....अस्वपदविग्रहबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—पूर्वात्, इनिः, अनेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विद्यमानपूर्वात् प्रथमासमर्थात् पूर्वान्तप्रातिपदिकादनेनेत्येतस्मिन्नर्थ इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पूर्वं कृतमनेन कृतपूर्वी कटम्, भुक्तपूर्वी ओदनम् ॥

भाषार्थः—[*सपूर्वात्*] विद्यमान है पूर्व में (कोई शब्द) जिस पूर्व प्रातिपदिक के ऐसे प्रथमासमर्थ पूर्व शब्द से [*च*] भी इनि प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र द्वारा केवल पूर्व शब्द से इनि प्रत्यय प्राप्त था, यहाँ तदन्त

से भी इनि हो जाये इसलिये यह सूत्र बनाया ॥ कृतपूर्वी आदि में *निष्ठा* (२।२।३६) से निष्ठान्त का पूर्व निपात हुआ है ॥

इष्टादिभ्यश्च ॥५।२।८८॥

इष्टादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—इष्ट आदिर्येषां त इष्टादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिः, अनेन, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थेभ्य इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनेनेत्येतस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—इष्टमनेन इष्टी, पूर्ती, अधीतमनेन अधीती ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*इष्टादिभ्यः*] इष्टादि प्रातिपदिकों से [च] भी अनेन इस अर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—इष्टी (जिसने यज्ञ किया) पूर्त्ती (जिसने पूर्त = प्याऊ धर्मशाला बगीचा आदि बनाया) अधीती (जिसने पढ़ा) ॥

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ॥५।२।८९॥

छन्दसि ७।१॥ परि.....रिणौ १।२॥ पर्यवस्थातरि ७।१॥ *स०*—परि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इनिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—छन्दसि विषये परिपन्थिन् परिपरिन् इत्येतौ शब्दौ निपात्येते पर्यवस्थातरि वाच्ये । परिपन्थिन् शब्दाद् इनिप्रत्ययः, प्रकृतिगतस्य इन्मात्रस्य च लोपो निपात्यते, एवं परिशब्दाद् इनि-प्रत्ययः, इकारमात्रस्य लोपः, परिशब्दस्य च द्विर्वचनं निपात्यते ॥ पर्यवस्थाता सम्पन्नप्रतिपक्ष उच्यते, इह तु प्रतिपक्षभूतो बाधको मार्ग-स्यावरोधकः स्तेनादिरुच्यते ॥ *उदा०*—मा त्वा परिपन्थिनो विदन् । मा त्वा परिपरिणो विदन् ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*परि...रिणौ*] परिपन्थिन् और परिपरिन् यह शब्द [*पर्यवस्थातरि*] पर्यवस्थाता वाच्य हो तो निपातन किये जाते हैं ॥ पर्यवस्थाता = सम्पन्न बलवान् प्रतिपक्षी को कहते हैं ॥ परन्तु यहाँ पर बाधक मार्ग का अवरोधक लुटेरा आदि अर्थ विवक्षित है । परिपन्थिन् शब्द से इनि प्रत्यय तथा इन् भाग का लोप परिपन्थिन् शब्द में निपातन है । इसी प्रकार परिपरिन् में परि शब्द से इनि प्रत्यय परि को द्वित्व तथा इकारमात्र का लोप निपातन है ॥ *उदा०*—

मा त्वा परिपन्थिनो विदन् (तुझे परिपन्थिन् मार्ग रोक कर और परि-परिन् सब ओर से घेरकर लूटने वाले लुटेरे न मिलें) मा त्वा परिपरिणो विदन् ॥

अनुपद्यन्वेष्टा ॥५।२।९०॥

अनुपदी १।१॥ अन्वेष्टा १।१॥ *अनु०*—इनिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अन्वेष्टा इत्येतस्मिन्नर्थे अनुपदी इति निपात्यते। अनुपदशब्दात् इनि प्रत्ययो निपात्यते॥ पदस्य पश्चात् अनुपदम्। अनुपदमन्वेष्टा अनुपदी गवाम्॥

भाषार्थः—[*अन्वेष्टा*] अन्वेष्टा = पीछे जाने वाला इस अर्थ में [*अनुपदी*] अनुपदी शब्द निपातन किया जाता है। अनुपद शब्द से इनि प्रत्यय निपातन करके अनुपदी शब्द बनता है॥ *उदा०*—अनुपदी गवाम् (गौवों के पीछे चलने वाला चरवाहा)॥

साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥५।२।९१॥

साक्षात् अ०॥ द्रष्टरि ७।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—इनिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—'साक्षात्' शब्दोऽव्ययम्, तस्मादिनिः प्रत्ययो भवति द्रष्टरि वाच्ये संज्ञायां विषये॥ *उदा०*—साक्षात् द्रष्टा साक्षी॥

भाषार्थः—[*साक्षात्*] साक्षात् यह शब्द अव्यय है, इससे [*द्रष्टरि*] द्रष्टा वाच्य हो तो [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में इनि प्रत्यय होता है॥ साक्षात् के टि भाग का लोप इनि परे रहते, *अव्ययानां भमात्रे०* (*वा०* (७।३।१४४) इस वार्त्तिक से होकर साक्ष् इनि = साक्षी (प्रत्यक्ष द्रष्टा) बनेगा॥

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ॥५।२।९२॥

क्षेत्रियच् १।१॥ परक्षेत्रे ७।१॥ चिकित्स्यः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—क्षेत्रियच् इति निपात्यते परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्येतस्मिन्नर्थे॥ परक्षेत्रशब्दात् सप्तमीसमर्थात् घच् प्रत्ययः परशब्दलोपश्च निपात्यते॥ *उदा०*—परक्षेत्रे चिकित्स्यः = क्षेत्रियो व्याधिः, क्षेत्रियम् कुष्ठम्॥

भाषार्थः—[*क्षेत्रियच्*] क्षेत्रियच् यह शब्द निपातन किया जाता है, [*परक्षेत्रे चिकित्स्यः*] दूसरे क्षेत्र = शरीर में चिकित्सा किया जाने योग्य इस अर्थ में। यहाँ परक्षेत्र शब्द से घच् प्रत्यय तथा पर शब्द का लोप निपातन से किया है॥ *उदा०*—क्षेत्रियो व्याधिः (दूसरे शरीर में ठीक होने वाली अर्थात् मरणान्त रहने वाली व्याधि)॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥५।२।९३॥

इन्द्रियम् १।१॥ इन्द्रलिङ्गम् इत्यादिषु प्रत्येकम् १।१॥ इति अ० ॥ वा० अ० ॥ *स०*—इन्द्रलिङ्ग० इत्यत्र तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इन्द्रियमिति लिङ्गादिष्वर्थेषु निपात्यते, वा ॥ इन्द्रशब्दात् षष्ठीसमर्थात् लिङ्गम् इत्येतस्मिन्नर्थे-घच् प्रत्ययो निपात्यते। एवमन्यत्रापि तृतीयासमर्थाद् इन्द्रशब्दात् दृष्टादिष्वर्थेषु घच् प्रत्ययो निपात्यते॥ *उदा०*—इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्, इन्द्रेण दृष्टम् इन्द्रियम्, इन्द्रेण सृष्टम् इन्द्रियमित्यादिः ॥

भाषार्थः—[*इन्द्रियम्*] इन्द्रियम् यह शब्द निपातन किया जाता है, [*इन्द्रलि······दत्तमिति*] इन्द्रलिङ्गादि अर्थों में [*वा*] विकल्प से॥ षष्ठी समर्थ इन्द्र शब्द से लिङ्ग अर्थ में घच् प्रत्यय निपातन है। इसी प्रकार औरों में भी तृतीया समर्थ इन्द्र शब्द से घच् प्रत्यय का निपातन समझना चाहिये॥ *उदा०*—इन्द्रस्य लिङ्गम् इन्द्रियम्, यहाँ इन्द्र नाम जीवात्मा, तथा लिङ्ग नाम चिह्न का है। जीवात्मा का जो चिह्न वह इन्द्रिय कहायेगा। इन्द्रेण जीवेन दृष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण जीवेन सृष्टम्, इन्द्रियम्। इन्द्रेण जुष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण जीवात्मना दत्तम्, इन्द्रियम् यहाँ ईश्वर का ग्रहण है॥ 'वा' कहने से यहाँ इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट इत्यादि सब अर्थों में प्रकारान्तर से 'इन्द्रिय' शब्द की व्युत्पत्ति होती है, यह दिखाने के लिए है, इस प्रकार 'वा' का अर्थ यहाँ 'अथवा' हो सकता है॥ इतिकरण सूत्र में निर्दिष्ट अर्थों से अन्य अर्थों में भी सम्भव होने पर इन्द्रिय शब्द की व्युत्पत्ति हो जाये इसलिये है॥

[मत्वर्थप्रकरणम्]

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥५।२।९४॥

तत् १।१॥ अस्य ६।१॥ अस्ति क्रिया० ॥ अस्मिन् ७।१॥ इति अ० ॥ मतुप् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तदिति प्रथमासमर्थाद् अस्तिसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः। सप्तम्यर्थे—वृक्षा अस्मिन् सन्तीति वृक्षवान् पर्वतः, प्लक्षवान् , यवमान् ॥

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से [*अस्य, अस्ति, अस्मिन्निति*] इसका यह है अथवा इसमें यह है, इस अर्थ में [*मतुप्*] मतुप् प्रत्यय होता है ॥ *मादुपधायाश्च०* (८।२।९) से वृक्षवान् आदि में मतुप् के म को व हुआ है, शेष सिद्धि चितवान् भाग १ पृ० ६७७ (परि० १।१।५) के समान जानें ॥ *उदा०*—गोमान् (गायों वाला) वृक्षवान् पर्वतः (वृक्ष वाला पर्वत) ॥ इस प्रकरण के प्रत्यय प्रायः भू=अधिक, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, श्रेष्ठता आदि की विवक्षा में होते हैं ॥

यहाँ से *तदस्यास्त्यस्मिन्निति* की अनुवृत्ति ५।२।१४० तक तथा '*मतुप्*' की ५।२।९५ तक जायेगी ॥

रसादिभ्यश्च ॥५।२।९५॥

रसादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—रस आदिर्येषां ते रसादयस्तेभ्यः बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् , तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अस्तिसमानाधिकरणेभ्यः रसादिभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मतुप् प्रत्ययो भवति, अस्य अस्मिन् वा इत्यस्मिन्नर्थे ॥ *उदा०*—रसोऽस्मिन्नस्तीति रसवान् , रूपवान् ॥

भाषार्थः—प्रथमासमर्थ [*रसादिभ्यः*] रसादि प्रातिपदिकों से [च] भी इसका यह है, या इसमें यह है, इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से ही रसादियों से भी मतुप् हो ही जाता पुनर्वचन *अत इनिठनौ* (५।२।११५) आदि से जो इनि, ठन् आदि मत्वर्थ प्रत्यय

प्राप्त थे, उनको भी बाधकर मतुप् ही हो इसलिये है, अर्थात् इन्द्रिय-ग्राह्य रसादि से मतुप् ही हो अन्य नहीं ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥५।२।९६॥

प्राणिस्थात् ५।१॥ आतः ५।१॥ लच् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—प्राणिषु तिष्ठतीति प्राणिस्थः, तस्मात् तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्राणिस्थवाचिन आकारान्तात् प्रातिपदिकात् लच् प्रत्ययो भवति विकल्पेन, तदस्यास्त्यस्मिन्नित्येतस्मिन् विषये ॥ *उदा०*—चूडाऽस्यास्तीति चूडालः । पक्षे मतुप्—चूडावान् । कर्णिकालः कर्णिकावान् । जिह्वालः, जिह्वावान् । जङ्घालः, जङ्घावान् ॥

भाषार्थः—[*प्राणिस्थात्*] प्राणिस्थवाची [*आतः*] आकारान्त प्रातिपदिकों से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*लच्*] लच् प्रत्यय होता है, तदस्यास्त्यस्मिन् इस अर्थ में ॥ पक्ष में मतुप् होता है ॥ *उदा०*—चूडालः (अच्छी चोटी वाला) चूडावान् । कर्णिकालः (कान के पहनने वाले अलंकार से युक्त) कर्णिकावान् ॥

यहाँ से '*लच्*' की अनुवृत्ति ५।२।९९ तक तथा '*अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति ५।२।१४० तक के सभी सूत्रों में जायेगी ॥ परन्तु उससे विहित प्रत्यय का विकल्प न होकर मतुप् का समुच्चय मात्र होगा ॥ प्रत्यय का विकल्प मानने पर पक्ष में अन्य यथाप्राप्त प्रत्ययों की प्राप्ति होती है । अतः यहाँ अन्यतरस्याम् समुच्चयार्थक माना गया है, (द्र० ५।२।१०९ सूत्र) इसलिए इसका अनुवृत्ति में सर्वत्र निर्देश नहीं करेंगे ।

सिध्मादिभ्यश्च ॥५।२।९७॥

सिध्मादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—सिध्मम् आदि येषां ते सिध्मादयस्तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—लच्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सिध्मादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे लच् प्रत्ययो विकल्पेन भवति पक्षे मतुप् ॥ *उदा०*—सिध्ममस्यास्तीति सिध्मलः, सिध्मवान्, गडुलः, गडुमान्, मणिलः मणिमान् ॥

भाषार्थः—[*सिध्मादिभ्यः*] सिध्मादि प्रातिपदिकों से [च] भी मत्वर्थ में लच् प्रत्यय विकल्प से होता है। पक्ष में यथाप्राप्त मतुप् होगा॥ 'यह इसका है, यह इसमें है' इसी अर्थ में मतुप् होता है सो मत्वर्थ कहने से यही अर्थ ग्रहण करना चाहिये॥ *उदा०*—सिध्मलः (सिध्म = कुष्ठभेद उससे युक्त) गडुलः (उन्नत घेंटुआ वाला)॥

वत्सांसाभ्यां कामबले ॥५।२।९८॥

वत्सांसाभ्याम् ५।२॥ कामबले ७।१॥ *स०*—वत्सां० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। काम० इत्यत्र च समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—लच्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—वत्स अंस शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं मत्वर्थे कामबलयोरर्थयोः गम्यमानयोः लच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०* —वत्सलः, अंसलः॥

भाषार्थः—[*वत्सांसाभ्याम्*] वत्स और अंस प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में यथासङ्ख्य करके [*कामबले*] काम और बल अर्थ गम्यमान हो तो लच् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—वत्सलः (छोटों पर स्नेह रखने वाला) अंसलः (बलवान्)॥

फेनादिलच्च ॥५।२।९९॥

फेनात् ५।१॥ इलच् १।१॥ च अ०॥ *अनु०*—लच्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—फेनशब्दात् मत्वर्थ इलच् प्रत्ययो भवति लच् च विकल्पेन॥ *उदा०*—फेनमस्ति अस्य अस्मिन् वा फेनिलः, फेनलः, फेनवान्॥

भाषार्थः—[*फेनात्*] फेन प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*इलच्*] इलच् [च] तथा लच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। पक्ष में मतुप् होगा सो तीन रूप बनेंगे॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥५।२।१००॥

लोमा·····भ्यः ५।३॥ शनेलचः १।३॥ *स०*—लोमन् आदि येषां ते लोमादयः, बहुव्रीहिः। पामन् आदिर्येषां ते पामादयः, बहुव्रीहिः। पिच्छम् आदि येषां ते पिच्छादयः, बहुव्रीहिः। लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छा-

दयश्च, लोमा······च्छादयस्तेभ्यः······इतरेतरद्वन्द्वः। शने० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—लोमादिभ्यः, पामादिभ्यः, पिच्छादिभ्यश्च त्रिगणस्थेभ्यो यथासङ्ख्यं श, न, इलच् इत्येते प्रत्ययाः भवन्ति विकल्पेन मत्वर्थे॥ *उदा०*—लोमादिभ्यः—लोमानि अस्य सन्तीति लोमशः पुरुषः, पक्षे लोमवान्। पामादिभ्यः—पामा अस्यास्तीति पामनः, पामवान्। पिच्छादिभ्यः—पिच्छमत्रास्तीति पिच्छिलः, पिच्छवान्॥

भाषार्थः—[*लोमा··भ्य*] लोमादि, पामादि तथा पिच्छादि इन तीन गणपठित शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*शनेलचः*] श, न, तथा इलच् प्रत्यय विकल्प से मत्वर्थ में होते हैं॥ *उदा०*—लोमशः (अधिक लोम वाला पुरुष) लोमवान्। पामनः (पामा = चम्बल रोग वाला) पामवान्। पिच्छिलः (फिसलन वाला देश) पिच्छवान्॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः॥५।२।१०१॥

प्रज्ञा··भ्यः ५।३॥ णः १।१॥ *स०*—प्रज्ञा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रज्ञा, श्रद्धा, अर्चा इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन मतुबर्थे णः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—प्रज्ञाऽस्यास्तीति प्राज्ञः, प्रज्ञावान्, श्राद्धः श्रद्धावान्, आर्चः अर्चावान्॥

भाषार्थः—[*प्रज्ञा··भ्यः*] प्रज्ञा, श्रद्धा, अर्चा इन प्रातिपदिकों से विकल्प से मतुबर्थ में [*णः*] ण प्रत्यय होता है॥ पक्ष में मतुप् होगा ही॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी॥५।२।१०२॥

तपःसहस्राभ्याम् ५।२॥ विनीनी १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—तपः, सहस्र इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं विनि इनि इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे॥ *उदा०*—तपोऽस्याऽस्मिन् वा विद्यते तपस्वी, सहस्री॥

भाषार्थः—[*तपःसहस्राभ्याम्*] तपस् और सहस्र शब्दों से यथा-सङ्ख्य करके मत्वर्थ में [*विनीनी*] विनि तथा इनि प्रत्यय होते हैं ॥

यहाँ से '*तपः सहस्राभ्याम्*' की अनुवृत्ति ५।२।१०३ तक जायेगी ॥

अण् च ॥५।२।१०३॥

अण् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तपःसहस्राभ्यां, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तपःसहस्र-शब्दाभ्यां मत्वर्थेऽण् च प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—तापसः, साहस्रः ॥

भाषार्थः—तपस् और सहस्र शब्दों से मत्वर्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय [*च*] भी होता है ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ५।२।१०५ तक जायेगी ॥

सिकताशर्कराभ्यां च ॥५।२।१०४॥

सिकताशर्कराभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *स०*—सिक० इत्यत्रेतरेतर-द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अण्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-कात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सिकता, शर्करा इत्येताभ्यां प्रातिपदि-काभ्यामण् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ *उदा०*—सैकतो घटः, शार्करं मधु ॥

भाषार्थः—[*सिकताशर्कराभ्याम्*] सिकता, और शर्करा शब्दों से मत्वर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*सिकताशर्कराभ्याम्*' की अनुवृत्ति ५।२।१०५ तक जायेगी ॥

देशे लुबिलचौ च ॥५।२।१०५॥

देशे ७।१॥ लुबिलचौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*—लुबि० इत्यत्रेतरेतर-द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सिकताशर्कराभ्याम्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सिकताशर्करा-शब्दाभ्यां देशेऽभिधेये लुप्, इलच् इत्येतौ प्रत्ययौ विकल्पेन भवतोऽण् च ॥ प्रत्ययस्यादर्शनस्य लुप् संज्ञा, तत्र विशेषाभावात् मतुबादीनाम-न्यतमस्य लुब् भवति ॥ *उदा०*—सिकता (बालू) अस्मिन् विद्यन्ते

सिकता देशः, सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान् । शर्कराः (कंकड़) अस्मिन् विद्यन्ते शर्करा देशः, शर्करिलः, शार्करः, शर्करावान् ॥

भाषार्थः—सिकता और शर्करा शब्दों से [*देशे*] देश अभिधेय हो तो [*लुबिलचौ*] लुप् और इलच् तथा अण् प्रत्यय विकल्प से होते हैं, सो ४ रूप बनेंगे ॥ प्रत्यय के अदर्शन की लुप् संज्ञा की है, यहाँ किसी विशेष प्रत्यय का लुप् तो कहा नहीं है, अतः मतुप् आदियों में से किसी का भी लुप् हो जायेगा ॥ सिकता इलच् = यस्येति लोप होकर सिकत् इल = सिकतिलः बन गया ॥

दन्त उन्नत उरच् ॥५।२।१०६॥

दन्तः १।१ पञ्चम्यर्थे प्रथमा ॥ उन्नतः १।१॥ उरच् १।१॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उन्नतसमानाधिकरणान् दन्तशब्दाद् उरच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ उदा०—दन्ता उन्नताऽस्य सन्ति = दन्तुरः ॥

भाषार्थः—[*उन्नतः*] उन्नतसमानाधिकरण वाले [*दन्तः*] दन्त शब्द से [*उरच्*] उरच् प्रत्यय होता है, मत्वर्थ में ॥ *उदा०*—दन्तुरः (जिसके उन्नत अर्थात् ऊपर को निकले हुये दांत हैं) ॥

ऊषसुषिमुष्कमधो रः ॥५।२।१०७॥

ऊष·····धोः ५।१॥ रः १।१॥ *स०*—ऊष० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊष, सुषि, मुष्क, मधु इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो रः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ *उदा०*—ऊषरं क्षेत्रम्, सुषिरं काष्ठम्, मुष्करः पशुः, मधुरो गुडः ॥

भाषार्थः—[*ऊष···धोः*] ऊष, सुषि, मुष्क, मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*रः*] र प्रत्यय होता है ॥

द्युद्रुभ्यां मः ॥५।२।१०८॥

द्युद्रुभ्याम् ५।२॥ मः १।१॥ *स०*—द्यु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—द्यु, द्रु इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां मत्वर्थे मः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्युमः, द्रुमः ॥

भाषार्थः—[*द्युद्रुभ्याम्*] द्यु तथा द्रु शब्दों से मत्वर्थ में [*मः*] म प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—द्युमः (सूर्य) द्रुमः (वृक्ष) ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥५।२।१०९॥

केशात् ५।१॥ वः १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—केशशब्दात् मत्वर्थे वः प्रत्ययो भवति विकल्पेन ॥ उपरिष्टाद् योऽन्यतरस्यामनुवर्त्तते तेन मतुप् समुच्चीयतेऽअनेन तु वकारो विकल्प्यते, तेन पक्षे इनिठनौ भवतः ॥ *उदा०*—प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः, केशी, केशिक· केशवान् ॥

भाषार्थः—[*केशात्*] केश शब्द से मत्वर्थ में [*वः*] व प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है ॥ इस सूत्र में ऊपर से एक 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति आ रही है, सो उससे पक्ष में मतुप् का समुच्चय करते हैं तथा यहाँ पुनः अन्यतरस्याम् कहने से *अत इनिठनौ* (५।२।११५) से प्राप्त (केश शब्द के अदन्त होने से) इनि तथा ठन् प्रत्यय होते हैं, सो ४ रूप बनेंगे ॥

यहाँ से '*वः*' की अनुवृत्ति ५।२।११० तक जायेगी ॥

गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम् ॥५।२।११०॥

गाण्ड्यजगात् ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—गाण्डी च अजगश्च, गाण्ड्यजगम्, तस्मात् ····समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—वः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गाण्डी, अजग इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां संज्ञायाम् विषये मत्वर्थे वः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—गाण्डीवं धनुः, अजगवं धनुः ॥

भाषार्थः—[*गाण्ड्यजगात्*] गाण्डी तथा अजग प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—

गाण्डीवं धनुः (अर्जुन के धनुष का नाम) अजगवं धनुः (शिव के धनुष की संज्ञा) ॥

काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ॥५।२।१११॥

काण्डाण्डात् ५।१॥ ईरन्नीरचौ १।२॥ *स०*—काण्डश्च अण्डश्च, काण्डाण्डम् तस्मात्......समाहारो द्वन्द्वः। ईर० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—काण्ड, अण्ड इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां यथासङ्ख्यम् ईरन्, ईरच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवत मत्वर्थे॥ *उदा०*—काण्डमस्यास्तीति काण्डीरः, अण्डीरः॥

भाषार्थः—[*काण्डाण्डात्*] काण्ड तथा अण्ड शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*ईरन्नीरचौ*] ईरन् तथा ईरच् प्रत्यय मत्वर्थ में होते हैं॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥५।२।११२॥

रजः......षदः ५।१॥ वलच् १।१॥ *स०*—रजः० इत्यत्र समाहारो-द्वन्द्वः॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—रजः, कृषि, आसुति, परिषद् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे॥ *उदा०*—रजस्वला स्त्री, कृषीवलः कुटुम्बी, आसुतीवलः शौण्डिकः, परिषद्वलो राजा॥

भाषार्थः—[*रज...षदः*] रजस्, कृषि, आसुति, परिषद् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*वलच्*] वलच् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—रजस्वला स्त्री (मासिक धर्म से युक्ता स्त्री) कृषीवलः (कृषि करने वाला किसान) आसुतीवलः (आसुति=मद्य से युक्त, शराब वेचने वाला) परिषद्वलः (विशिष्ट सभाओं से युक्त राजा)॥ कृषीवलः, आसुतीवलः में *वले* (६।३।११६) में 'वल' परे रहते इकार को दीर्घ हुआ है॥

यहाँ से '*वलच्*' की अनुवृत्ति ५।२।११३ तक जायेगी॥

दन्तशिखात् संज्ञायाम् ॥५।२।११३॥

दन्तशिखात् ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *स०*—दन्त० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—वलच्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदि-

कात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दन्तशिखाशब्दाभ्यां वलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे संज्ञायां विषये ॥ *उदा०*—दन्तावलः सैन्यः, दन्तावलो गजः, शिखावलं नगरम्, शिखावला स्थूणा ॥

भाषार्थः—[*दन्तशिखात्*] दन्त और शिखा शब्दों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में वलच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—दन्तावलः गजः (बड़े दांतों वाला हाथी) शिखावलं नगरम् ॥ दन्तावलः में वले (६।३।११६) दीर्घ हुआ है ॥

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ॥५।२।११४॥

ज्यो.....मसाः १।३॥ *स०*—ज्यो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन् मलिन, मलीमस इत्येते शब्दा निपात्यन्ते मत्वर्थे ॥ ज्योत्स्ना इत्यत्र ज्योतिष उपधालोपो नप्रत्ययश्च निपात्यते, ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा ॥ तमिस्रा इत्यत्र तमस उपधाया इकारो रश्च प्रत्ययो निपात्यते तमिस्रं नभः ॥ शृङ्गशब्दाद् इनच् प्रत्ययो निपात्यते, शृङ्गिणः ॥ ऊर्जोऽसुक् आगमो विनिवलचौ च प्रत्ययौ भवतः । ऊर्जस्वी, ऊर्जस्वलः । गोर्मिनि प्रत्ययो निपात्यते गोमी ॥ मलशब्दात्, इनच्, ईमसच् प्रत्ययौ निपात्येते, मलिनः मलीमसः ॥

भाषार्थः—[*ज्यो..मसाः*] ज्योत्स्ना आदि शब्द मत्वर्थ में निपातन किये जाते हैं ॥ ज्योत्स्ना शब्द में ज्योतिष् शब्द से उपधा लोप तथा न प्रत्यय निपातन से किया है ॥ ज्योत्स् न टाप् = ज्योत्स्ना ॥ तमिस्रा में तमस् शब्द की उपधा को इकार तथा 'र' प्रत्यय निपातन है, तमिस् र टाप् = तमिस्रा । शृङ्गिणः में शृङ्ग शब्द से इनच् प्रत्यय निपातन है ॥ ऊर्जस्वी, ऊर्जस्वल शब्दों में असुक् आगम तथा पर्याय से विनि, वलच् प्रत्यय निपातन हैं, ऊर्ज् असुक् विनि = ऊर्ज् अस् विन् = ऊर्जस्वी। ऊर्ज् असुक् वलच्, ऊर्जस्वल = ऊर्जस्वलः ॥ गोमिन् शब्द में गो शब्द से मिनि प्रत्यय निपातन है ॥ मलिन. तथा मलीमस शब्दों में क्रम से इनच् और ईमसच् प्रत्यय निपातन से हैं । मल इनच् यस्येति लोप होकर मलिनः । मल ईमसच् = पूर्ववत् मलीमसः बना ॥

अत इनिठनौ ॥५।२।११५॥

अतः ५।१॥ इनिठनौ १।२॥ स०—इनि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अकारान्तात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी । ठन्—दण्डिकः। छत्री छत्रिकः । मतुप् तु समुच्चीयत एव—दण्डवान्, छत्रवान् ॥

भाषार्थः—[*अतः*] अकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*इनिठनौ*] इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ दण्ड, छत्र अकारान्त हैं, सो इनि ठन् हो गये हैं 'अन्यतरस्याम्' से मतुप् का समुच्चय तो होता ही है ॥

यहाँ से '*इनिठनौ*' की अनुवृत्ति ५।२।११७ तक जायेगी ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥५।२।११६॥

व्रीह्यादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—व्रीहिः आदिर्येषां ते व्रीह्यादयस्तेभ्यः…बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिठनौ, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—व्रीह्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इनिठनौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे। मतुप् समुच्चीयत एव ॥ *उदा०*—व्रीह्योऽस्य अस्मिन् वा सन्ति, व्रीही, व्रीहिकः, व्रीहिमान् । मायी, मायिकः, मायावान् ॥

भाषार्थः—[*व्रीह्यादिभ्यः*] व्रीह्यादि शब्दों से [च] भी मत्वर्थ में इनि ठन् प्रत्यय विकल्प से होते हैं । मतुप् का समुच्चय होता ही है ॥

तुन्दादिभ्य इलच्च ॥५।२।११७॥

तुन्दादिभ्यः ५।३॥ इलच् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—तुन्द आदिर्येषां ते तुन्दादयस्तेभ्यः……बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिठनौ, तदस्यास्त्यस्मिन्निति तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तुन्दादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इलच् प्रत्ययो भवति, चकाराद् इनिठनौ च । मतुप् तु समुच्चीयत एव ॥ *उदा०*—इलच्—तुन्दिलः । इनि—तुन्दी । ठन्—तुन्दिकः । मतुप्—तुन्दवान्, उदरिलः, उदरी, उदरिकः, उदरवान् ॥

भाषार्थः—[*तुन्दादिभ्यः*] तुन्दादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*इलच्*] इलच् तथा [*च*] चकार से इनि, ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ मतुप् का समुच्चय भी होता है ॥ इस प्रकार चार चार रूप तुन्दादियों से बनते हैं ॥

एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ॥५।२।११८॥

एकगोपूर्वात् ५।१॥ ठञ् १।१॥ नित्यम् १।१॥ *स०*—एकश्च गौश्च एकगावौ, तौ पूर्वौ यस्य, एकगोपूर्वस्तस्मात् द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—एकपूर्वाद् गोपूर्वाच्च च प्रातिपदिकात् नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ *उदा०*—एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिकः, ऐकसहस्रिकः । गोपूर्वात्— गौशतिकः, गौसहस्रिकः ॥

भाषार्थः—[*एकगोपूर्वात्*] एक जिस शब्द के पूर्व में हो, तथा गो शब्द जिसके पूर्व में हो, ऐसे प्रातिपदिक से [*नित्यम्*] नित्य ही [*ठञ्*] ठञ् प्रत्यय होता है मत्वर्थ में ॥ *उदा०*—ऐकशतिकः (एक सौ रुपये वाला) । गोपूर्वात्—गौशतिकः (सौ गौवों वाला) गौसहस्रिकः (सहस्र गौवों वाला) ॥

यहाँ से 'ठञ्' की अनुवृत्ति ५।२।११९ तक जायेगी ॥

शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ॥५।२।११९॥

शतसहस्रान्तात् ५।१॥ च अ० ॥ निष्कात् ५।१॥ *स०*—शतञ्च सहस्रञ्च, शतसहस्रे, शतसहस्रेऽन्ते यस्य तत् शत····न्तम् तस्मात्·· द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ठञ् तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शतान्तात् सहस्रान्ताच्च निष्कशब्दात् ठञ् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ *उदा०*—निष्कशतमस्यास्ति नैष्कशतिकः, नैष्कसहस्रिकः ॥

भाषार्थः—[*शत····त्*] शत शब्द अन्त वाले तथा सहस्र शब्द अन्त वाले [*निष्कात्*] निष्क प्रातिपदिक से [*च*] भी मत्वर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ॥५।२।१२०॥

रूपात् ५।१॥ आह···योः ७।२॥ यप् १।१॥ स०—आह० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आहतप्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् रूपशब्दात् यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आहतं रूपमस्य रूप्यो दीनारः, रूप्यं कार्षापणम् । प्रशंसायाम्—प्रशस्तं रूपमस्यास्ति = रूप्यः पुरुषः ॥

भाषार्थः—[*आहतप्रशंसयोः*] आहत और प्रशंसा अर्थों में वर्त्तमान [*रूपात्*] रूप प्रातिपदिक से [*यप्*] यप् प्रत्यय मत्वर्थ में होता है ॥ सांचे में ठोंककर रूप निखार कर बनाई जाने वाली मुद्राएं आहत कहाती हैं[1] । *उदा०*—रूप्यो दीनारः (सांचे में ठोंक कर बनाया गया दीनार) रूप्यः पुरुषः (प्रशंसित रूप वाला पुरुष) ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ॥५।२।१२१॥

अस्मायामेधास्रजः ५।१॥ विनिः १।१॥ स०—अस् च माया च मेधा च स्रक् च, अस्मा····क् तस्मात्·······समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असन्तात् प्रातिपदिकात् माया मेधा स्रक् इत्येतेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । मतुप् समुच्चीयत एव ॥ उदा०—असन्तात्-पयोऽस्यास्ति = पयस्वी, पयस्वान् । यशस्वी, यशस्वान् । मायावी, मायावान् । मेधावी मेधावान् । स्रग्वी स्रग्वान् ॥

भाषार्थः—[*अस्मा····जः*] अस् अन्त वाले, तथा माया, मेधा स्रज् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*विनिः*] विनि प्रत्यय होता है ॥ मतुप् का समुच्चय पूर्ववत् होता ही है ।

यहाँ से '*विनिः*' की अनुवृत्ति ५।२।१२२ तक जायेगी ॥

---

१. प्राचीन काल में दो प्रकार से मुद्राएं बनती थीं, सांचे में ठोंक कर और सांचे में ढालकर । सांचे में ठोक कर बनाई गई आहत मुद्राएं अधिक प्राचीन मानी जाती हैं ॥

बहुलं छन्दसि ॥५।२।१२२॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—विनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये मत्वर्थे बहुलं विनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अग्ने तेजस्विन् । बहुलग्रहणात् न च भवति—सूर्यो वर्चस्वान् ॥

भाषार्थः—प्रातिपदिकों से [*छन्दसि*] वैदिक प्रयोग विषय में [*बहुलम्*] बहुल करके मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है ॥ बहुल कहने से तेजस्विन् में विनि हो गया है, तथा वर्चस्वान् में नहीं भी हुआ ॥

ऊर्णाया युस् ॥५।२।१२३॥

ऊर्णायाः ५।१॥ युस् १।१॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऊर्णाशब्दात् युस् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ॥ *उदा०*—ऊर्णा विद्यतेऽस्यास्मिन् वा ऊर्णायुः ॥

भाषार्थः—[*ऊर्णायाः*] ऊर्णा प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*युस्*] युस् प्रत्यय होता है ॥ ऊर्णायुः की सिद्धि भाग १ पृ० ८२७ परि० १।४।१६ में देखें ॥

वाचो ग्मिनिः ॥५।२।१२४॥

वाचः ५।१॥ ग्मिनिः १।१॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वाच्शब्दात् मत्वर्थे ग्मिनिः प्रत्ययो भवति[1] ॥ *उदा०*—प्रशस्ता वाग् विद्यतेऽस्यास्मिन् वा वाग्मी वाग्मिनौ वाग्मिनः ॥

भाषार्थः—[*वाचः*] वाच् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में [*ग्मिनिः*] ग्मिनि प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—वाग्मी (धारा प्रवाह शुद्ध भाषा में बोलने के सामर्थ्य वाला) ॥

यहाँ से '*वाचः*' की अनुवृत्ति ५।२।१२५ तक जायेगी ॥

---

१. वाग्मी में ग्मिनि प्रत्यय करने पर दो गकार प्राप्त होते है। अतः कई व्याख्याकार गकार अन्तादेश और मिनि प्रत्यय का विधान मानते हैं। गकार विधान सामर्थ्य से *प्रत्यये भाषायां नित्यवचनम्* से अनुनासिक नहीं होता ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥५।२।१२५॥

आलजाटचौ १।२॥ बहुभाषिणि ७।१॥ *स०*—आल० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—वाचः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—वाच्शब्दाद्, आलच्, आटच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः मत्वर्थे बहुभाषिण्यभिधेये॥ *उदा०*—वाचालः, वाचाटः॥

भाषार्थः—वाच् प्रातिपदिक से [*आलजाटचौ*] आलच् और आटच् मत्वर्थ में प्रत्यय होते हैं [*बहुभाषिणि*] बहुत भाषण=बोलने वाला अभिधेय हो तो॥ जो व्यर्थ[1] की बातें बहुत बड़-बड़ करे वह वाचालः वाचाटः कहा जायेगा॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ॥५।२।१२६॥

स्वामिन् १।१॥ ऐश्वर्ये ७।१॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—ऐश्वर्ये वाच्ये स्वामिन् इति निपात्यते मत्वर्थे। स्वशब्दात् आमिन् प्रत्ययो निपात्यते॥ *उदा०*—स्वम्=ऐश्वर्यमस्यास्ति स्वामी स्वामिनौ स्वामिनः॥

भाषार्थः—[*स्वामिन्*] स्वामिन् यह शब्द आमिन् प्रत्ययान्त मत्वर्थ में निपातन किया जाता है [*ऐश्वर्ये*] ऐश्वर्य गम्यमान हो तो॥

अर्शआदिभ्योऽच् ॥५।२।१२७॥

अर्शआदिभ्यः ५।३॥ अच् १।१॥ *स०*—अर्शस् आदि येषां ते अर्शआदयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अर्शस् इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो मत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—अर्शांसि अस्य विद्यन्ते, अर्शसः, उरसः॥

---

१. यह अर्थ महाभाष्य के '*कुत्सित इति वक्तव्यम्*' इस वार्त्तिक से लिया गया है, जो उचित भाषण करे, वह वाग्मी होगा॥

भाषार्थः—[*अर्श*···*भ्यः*] अर्शस् आदि गण पठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*अच्*] अच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—अर्शसः (बवासीर रोग वाला) उरसः (बलवान्) ॥

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः ॥५।२।१२८॥

द्वन्द्वो·····र्ह्यात् ५।१॥ प्राणिस्थात् ५।१॥ इनिः १।१॥ *स०*—द्वन्द्वो० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च। अत इत्यनुवर्त्ततेऽत्र मण्डूकप्लुतगत्या, *अत इनिठनौ* इत्यतः ॥ *अर्थः*—प्राणिस्थवाचिनो द्वन्द्वसंज्ञका उपतापवाचिनः, गर्ह्यवाचिनश्च ये अदन्तास्तेभ्यो मत्वर्थ इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वन्द्वात्—कटकश्च वलयश्च, कटकवलयम्, तदस्यास्तीति कटकवलयिनी, शङ्खनूपुरिणी। उपतापात्—कुष्ठी, किलासी। गर्ह्यात्—ककुदावर्त्ती, काकतालुकी ॥

भाषार्थः—[*द्वन्द्वो*···*त्*] द्वन्द्व समास, उपताप = रोग, गर्ह्य = निन्द्य इनको कहने वाले [*प्राणिस्थात्*] प्राणि में स्थित जो अदन्त शब्द उनसे मत्वर्थ में [*इनिः*] इनि प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—कटकवलयिनी (कटक = कड़ा और वलय = हाथ पैर के गहनों वाली) शङ्खनूपुरिणी (शङ्ख और नूपुर = बिछुओं वाली) कुष्ठी (कुष्ठ रोग वाला) किलासी (सफेद दाग रोग वाला) ककुदावर्त्ती (ककुदस्थ आवर्त रोग वाला बैल) काकतालुकी ॥

यहाँ से '*इनिः*' की अनुवृत्ति ५।२।१२९ तक जायेगी ॥

वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥५।२।१२९॥

वाता·····भ्यां ५।२॥ कुक् १।१॥ च अ० ॥ *स०*—वाता० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वात, अतीसार इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन च तयोः कुग् आगमो भवति ॥ *उदा०*—वातोऽस्यास्तीति = वातकी, अतीसारकी ॥

भाषार्थः—[*वातातीसाराभ्याम्*] वात और अतिसार शब्दों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है, तथा इन शब्दों को [*कुक्*] कुक् आगम [*च*]

भी होता है ॥ वात अतीसार रोगवाची शब्द हैं, सो इनसे पूर्व सूत्र से ही इनि प्रत्यय सिद्ध था, यह पुनर्वचन कुक् आगम के लिये है ॥ *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) से अन्त में कुक् होकर वात कुक् इनि = वातकी पूर्ववत् बना है ॥ *उदा०*—वातकी (वात रोग वाला) अतीसारकी (अतीसार = दस्त रोग वाला) ॥

वयसि पूरणात् ॥५।२।१३०॥

वयसि ७।१॥ पूरणात् ५।१॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूरणप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् वयसि गम्यमाने मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पञ्चमोऽस्यास्ति मासः संवत्सरो वा पञ्चमी उष्ट्रः, नवमी, दशमी ॥

भाषार्थः—[*पूरणात्*] पूरण प्रत्ययान्त शब्दों से [*वयसि*] अवस्था गम्यमान हो तो मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पञ्चमी उष्ट्रः (पांच मास के वय = अवस्था वाला) ॥

सुखादिभ्यश्च ॥५।२।१३१॥

सुखादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—सुखम् आदि येषां ते सुखादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सुखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सुखमस्यास्तीति सुखी, दुःखी ॥

भाषार्थः—[*सुखादिभ्यः*] सुखादि प्रातिपदिकों से [च] भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ सुख जिसको है वह सुखी, दुःख जिसको है, वह दुःखी कहायेगा ॥

धर्मशीलवर्णान्ताच्च ॥५।२।१३२॥

धर्मशीलवर्णान्तात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—धर्मश्च शीलञ्च वर्णश्च, धर्मशीलवर्णाः, इत्येते अन्ते यस्य स धर्म ...न्तः, तस्मात् ...... द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—धर्मान्तात् शीलान्तात् वर्णान्ताच्च प्रातिपदिकात् मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ब्राह्मणस्य धर्मः ब्राह्मणधर्मः, सोऽस्यास्तीति ब्राह्मणधर्मी, ब्राह्मणशीली, ब्राह्मणवर्णी ॥

भाषार्थः—[*धर्मशीलवर्णान्तात्*] धर्म शब्द अन्त वाले, शील अन्त वाले, तथा वर्ण अन्त वाले प्रातिपदिकों से [च] भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥

हस्ताज्जातौ ॥५।२।१३३॥

हस्तात् ५।१॥ जातौ ७।१॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—हस्तशब्दादिनिः प्रत्ययो भवति, मत्वर्थे जातौ वाच्यायाम् ॥ *उदा०*—हस्तोऽस्यास्तीति, हस्ती, हस्तिनौ, हस्तिनः ॥

भाषार्थः—[*हस्तात्*] हस्त शब्द से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है [*जातौ*] जाति वाच्य हो तो ॥ हस्ती हाथी को कहते हैं ॥ हाथी की सूंड के लिये संस्कृत में हस्त और कर का प्रयोग होता है । हस्त से हस्ती और कर से करी प्रयोग बनता है ॥

वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ॥५।२।१३४॥

वर्णात् ५।१॥ ब्रह्मचारिणि ७।१॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वर्णशब्दात् तद्ब्रह्मचारिणि वाच्ये मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वर्णोऽस्यास्तीति वर्णी ब्रह्मचारी ॥

भाषार्थः—[*वर्णात्*] वर्ण प्रातिपदिक से [*ब्रह्मचारिणि*] ब्रह्मचारी वाच्य हो तो मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ॥५।२।१३५॥

पुष्करादिभ्यः ५।३॥ देशे ७।१॥ *स०*—पुष्करम् आदि येषां ते पुष्करादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पुष्करादिभ्यः प्राति-

पदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति देशे वाच्ये ॥ उदा०—पुष्करिणी, पद्मिनी ॥

भाषार्थः—[*पुष्करादिभ्यः*] पुष्करादि प्रातिपदिकों से, मत्वर्थ में [*देशे*] देश वाच्य होने पर इनि प्रत्यय होता है ॥ पुष्करिणी और पद्मिनी उस तलैया (छोटे तालाब) को कहते हैं, जिसमें कमल खिले हुए हों ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥५।२।१३६॥

बलादिभ्यः ५।३॥ मतुप् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—बलम् आदि येषां ते बलादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मतुप् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे अन्यतरस्याम् ॥ अन्यतरस्यां ग्रहणेन पक्षे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बलमस्यास्तीति बलवान्, बली । उत्साहवान्, उत्साही ॥

भाषार्थः—[*बलादिभ्यः*] बलादि प्रातिपदिकों से [*मतुप्*] मतुप् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से मत्वर्थ में होता है ॥ पक्ष में प्रकरणस्थ ऊपर से आने वाला इनि प्रत्यय होगा ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥५।२।१३७॥

संज्ञायाम् ७।१॥ मन्माभ्याम् ५।२॥ *स०*—मन् च मश्च, मन्मौ, ताभ्यां······इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इनिः, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मन्नन्तात् मशब्दान्ताच्च प्रातिपदिकात् संज्ञायां विषये मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मन्नन्तात्—प्रथिमा विद्यतेऽस्याः प्रथमिनी, दामिनी । मशब्दान्तात्—होमो विद्यतेऽस्याः होमिनी, सोमिनी ॥

भाषार्थः—[*मन्माभ्याम्*] मन् अन्त वाले, तथा मशब्दान्त प्रातिपदिकों से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—प्रथमिनी (विस्तार वाली) दामिनी (विद्युत्) होमिनी (होम करने वाली) सोमिनी (सोम यज्ञ करने वाली) ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥५।२।१३८॥

कंशंभ्याम् ५।२॥ बभयुस्तितुतयसः १।३॥ स०—कम् च शम् च, कंशमौ ताभ्यां ··· इतरेतरद्वन्द्वः। बभ० इत्यत्रापि इतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कम् शम् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस् इत्येते सप्त प्रत्यया भवन्ति मत्वर्थे॥ उदा०—कम् अस्याऽस्मिन् वा विद्यते कम्बः, शम्बः। कम्भः, शम्भः। कंयुः शंयुः। कन्तिः, तन्तिः। कन्तुः, शन्तुः। कन्तः, शन्तः। कम्यः, शम्यः॥

भाषार्थः—[*कंशंम्याम्*] कम् तथा शम् शब्दों से मत्वर्थ में [*ब··· ···यसः*] ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस् ये सात प्रत्यय होते हैं॥ कम् शब्द जल का वाचक तथा शम् शब्द सुख का वाचक है॥ युस्, तथा यस् में सकार *सिति च* (१।४।१६) से पद संज्ञा करने के लिये है, सो पदसंज्ञा होकर *मोऽनुस्वारः* (८।३।२३) से म को अनुस्वार, तथा *अनुस्वारस्य०* (८।४।५७) से परसवर्ण होकर कय्यंः शय्यंः बनेगा, कन्तिः शन्तिः में भी 'म्' को अनुस्वार तथा परसवर्ण होकर ही 'न्' हुआ है॥

तुन्दिवलिवटेर्भः ॥५।२।१३९॥

तुन्दि·····टेः ५।१॥ भः १।१॥ स०—तुन्दि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—तुन्दि, वलि, वटि इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योः भः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे॥ उदा०—तुन्दिरस्यास्तीति तुन्दिभः, वलिभः, वटिभः॥

भाषार्थः—[*तुन्दिवलिवटेः*] तुन्दि, वलि, वटि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में [*भः*] भ प्रत्यय होता है॥ तुन्दि बड़ी निकली हुई नाभि को कहते हैं॥ उदा०—तुन्दिभः (बड़े पेट वाला) वलिभः (झुर्रियों वाला) वटिभः (मोदक वाला)॥

अहंशुभमोर्युस् ॥५।२।१४०॥

अहंशुभमोः ६।२॥ युस् १।१॥ स०—अहम्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ अर्थः—अहं, शुभम् इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां मत्वर्थे युस् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अहंयुः, शुभंयुः ॥

भाषार्थः—अहं, शुभम् यह अव्यय संज्ञक शब्द हैं, अहं घमण्ड अर्थ में तथा शुभम् कल्याण के अर्थ में होता है ॥ [*अहंशुभमोः*] अहं तथा शुभम् शब्दों से मत्वर्थ में [*युस्*] युस् प्रत्यय होता है ॥ अहंयुः का अर्थ घमण्डी एवं शुभंयुः का कल्याण वाला है ॥ पूर्ववत् *सिति* च (१।४।१६) से पदसंज्ञा होकर अनुस्वारादि हुये हैं ॥

॥ इति द्वितीयः पादः ॥

—:०:—

तृतीयः पादः

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥५।३।१॥

प्राक् अ० ॥ दिशः ५।१॥ विभक्तिः १।१॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इतोऽग्रे *दिक्शब्देभ्यः*० (५।३।२७) इत्यतस्मात् प्राक् वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञका भवन्तीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ *उदा०*—ततः, यतः ॥

भाषार्थः—[*प्राक्*] यहाँ से आगे [*दिशः*] *दिक्शब्देभ्यः*० सूत्र से पहले पहले जितने प्रत्यय कहे हैं, उन सबकी [*विभक्तिः*] विभक्ति संज्ञा होती है ॥ तसिल् आदि की विभक्ति संज्ञा होने से *त्यदादीनामः* (७।२।१०२) से विभक्ति परे मानकर अकारादेश हो जाता है। पूरी सिद्धि भाग १ पृ० ७०५ परि० १।१।३७ में देखें ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।३।२६ तक जायेगी ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥५।३।२॥

किं······भ्यः ५।३॥ अद्व्यादिभ्यः ५।३॥ *स०*—किं० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। द्विः आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयः, अद्व्यादयस्तेभ्यः ······बहुव्रीहिगर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—प्राग्दिशः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्राक् दिश इति यावत् किं,

सर्वनाम, बहु इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वक्ष्यमाणाः प्रत्यया भवन्ति द्व्यादीन् वर्जयित्वा ॥ *उदा०*—कुतः, कुत्र । सर्वनामभ्यः—यतः, यत्र । ततः, तत्र । बहुतः, बहुत्र ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे *दिग्शब्दे०* (५।३।२७) तक जितने प्रत्यय कहे हैं वे सब [*किस***भ्यः*] किं सर्वनाम तथा बहु शब्दों से ही होते हैं, [*अद्व्यादिभ्यः*] द्व्यादि शब्दों को छोड़कर ॥ यह भी अधिकार सूत्र है, आगे आगे इसका अधिकार जानना चाहिये । सर्वनाम शब्दों में द्व्यादि भी पढ़े हैं, सो सर्वनाम कहने से प्राप्ति थी निषेध कर दिया । किम् शब्द द्व्यादि के अन्तर्गत आता है, अतः उससे प्रत्यय का निषेध प्राप्त होने से 'किम्' का पृथक् निर्देश किया है ॥ सारी सिद्धि प्रथम भाग पृ० ७०५ परि० १।१।३७ में देखें । कुतः कुत्र में किम् शब्द से विभक्ति संज्ञक तसिल् तथा त्रल् परे रहते *कु तिहोः* (७।२।१०४) से किम् के स्थान में कु आदेश होता है, शेष सब पूर्ववत् होकर कुतः (कहाँ से) कुत्र (कहाँ) बनेगा ॥

इदम इश् ॥५।३।३॥

इदमः ६।१॥ इश् १।१॥ *अनु०*—प्राग्दिशः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ *अर्थः*—प्राग्दिशीयेषु प्रत्ययेषु परतः इदमः स्थाने इश् आदेशो भवति ॥ *उदा०*—इह ॥

भाषार्थः—*दिग्शब्देभ्यः०* (५।३।२७) सूत्र तक कहे जाने वाले प्रत्ययों के परे रहते [*इदमः*] इदम् के स्थान में [*इश्*] इश् आदेश होता है ॥ *इदमो हः* (५।३।११) से इदम् शब्द से 'ह' प्रत्यय कहा है, उसके परे रहते *अनेकाल्शित्०* (१।१।५४) से पूरे इदम् के स्थान में इश् आदेश होकर इह (यहाँ) बन गया ॥

यहाँ से '*इदमः*' की अनुवृत्ति ५।३।४ तक जायेगी ॥

एतेतौ रथोः ॥५।३।४॥

एतेतौ १।२॥ रथोः ७।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इदमः, प्राग्दिशः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ *अर्थ*—इदमः स्थाने रेफादौ थकारादौ च प्रत्यये परतो यथासङ्ख्यम् एत इत् इत्येतावादेशौ भवतः ॥ *उदा०*—एतर्हि, इत्थम् ॥

भाषार्थः—इदम् शब्द के स्थान में [*रथोः*] रेफादि तथा थकारादि-प्रत्यय के परे रहते यथासङ्ख्य करके [*एतेतौ*] एत् तथा इत् आदेश होते हैं ॥ यहाँ *इदमोर्हिल्* (५।३।१६) से रेफादि र्हिल् प्रत्यय हुआ है, सो प्रकृत सूत्र से एत आदेश होकर एतर्हि बन गया ॥ इत्थम् में *इदमस्थमुः* (५।३।२४) से थमु प्रत्यय हुआ है, सो इत् आदेश थमु के परे रहते होकर इत्थम् (इस प्रकार) बना है ॥

एतदोऽन् ॥५।३।५॥

एतदः ६।१॥ अन् १।१॥ *अनु०*—प्राग्दिशः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ *अर्थः*—प्राग्दिशीयेषु प्रत्ययेषु परत एतदः स्थानेऽन् आदेशो भवति ॥ *उदा०*—अतः, अत्र ॥

भाषार्थः—प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे रहते [*एतदः*] एतद् के स्थान में [*अन्*] अन् आदेश होता है ॥ अन् अनेकाल् है सो सारे एतद् के स्थान में अन् आदेश होकर; पीछे इस न् का न *लोपः०* (८।२।७) से लोप हो जायेगा। शेष सिद्धि प्रथम भाग परि० १।१।३७ के अतः अत्र के समान ही जानें ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥५।३।६॥

सर्वस्य ६।१॥ सः १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ दि ७।१॥ *अनु०*—ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ *अर्थः*—सर्वस्य स्थाने स आदेशो भवति विकल्पेन दकारादौ प्रत्यये परतः ॥ *उदा०*—सर्वस्मिन् काले = सदा, सर्वदा ॥

भाषार्थः—[*सर्वस्य*] सर्व शब्द के स्थान में [*सः*] स आदेश [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है [*दि*] दकारादि प्रत्यय के परे रहते ॥ *सर्वैकान्यकिय०* (५।३।१५) से सर्व शब्द से दा प्रत्यय होता है, उसके परे स आदेश होकर सदा बना, जब आदेश नहीं हुआ तो सर्वदा बना ॥

पञ्चम्यास्तसिल् ॥५।३।७॥

पञ्चम्याः ५।१॥ तसिल् १।१॥ *अनु०*—किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः, विभक्तिः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—कि, सर्वनाम, बहु इत्येतेभ्यः पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तसिल् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कुतः, यतः, ततः, बहुतः ॥

भाषार्थः—[*पञ्चम्याः*] पञ्चम्यन्त किं सर्वनाम तथा बहु शब्दों से [*तसिल्*] तसिल् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि प्रथम भाग परि० १।१।३७ में देखें ॥

यहाँ से '*तसिल्*' की अनुवृत्ति ५।३।६ तक जायेगी ॥

तसेश्च ॥५।३।८॥

तसेः ६।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तसिल्, किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ *अर्थः*—किंसर्वनामबहुभ्यः परस्य तसेः स्थाने तसिलादेशो भवति ॥ *उदा०*—कुतः, यतः, ततः, बहुतः ॥

भाषार्थः—*प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः* (५।४।४४) *अपादाने चाहीयरुहोः* (५।४।४५) इनसे तसि प्रत्यय कहा है, उसी के स्थान में यहाँ तसिल आदेश करते हैं ॥

कि सर्वनाम तथा बहु से उत्तर जो तसि उस [*तसेः*] तसि के स्थान में [*च*] भी तसिल् आदेश होता है ॥ तसिल् आदेश हो जाने पर तसिल् की विभक्ति संज्ञा होने से *कु तिहोः*, *त्यदादीनामः* आदि से विहित कार्य हो जाते हैं, इसीलिये तसिल् आदेश किया है ॥ *लिति च* (६।१।१८७) से लित् स्वर भी तसिल् आदेश होने से होता है ॥

पर्यभिभ्यां च ॥५।३।९॥

पर्यभिभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ *अनु०*—तसिल्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—परि, अभि इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां तसिल् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—परितः सर्वत इत्यर्थः । अभित उभयत इत्यर्थः ॥

भाषार्थः—[*पर्यभिभ्याम्*] परि अभि शब्दों से [*च*] भी तसिल् प्रत्यय होता है ॥ परितः अर्थात् चारों ओर से एवं अभितः का दोनों ओर से अर्थ है ॥

२६

सप्तम्यास्त्रल् ॥५।३।१०॥

सप्तम्याः ५।१॥ त्रल् १।१॥ अनु०—किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्तेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः त्रल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुत्र, यत्र, तत्र, बहुत्र ॥

भाषार्थः—किं, सर्वनाम और बहु [*सप्तम्याः*] सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से [*त्रल्*] त्रल् प्रत्यय होता है॥ सिद्धि भाग १ परि० १।१।३७ में देखें ॥

यहाँ से '*सप्तम्याः*' की अनुवृत्ति ५।३।२२ तक जायेगी ॥

इदमो हः ॥५।३।११॥

इदमः ५।१॥ हः १।१॥ अनु०—सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्ताद् इदमः स्थाने हः प्रत्ययो भवति । पूर्वेण त्रल् प्राप्ते हो विधीयते ॥ *उदा०*—इह ॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त [*इदमः*] इदम् शब्द से [*हः*] ह प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि ५।३।३ सूत्र पर ही देखे। इश् आदेश होकर 'इ ङि ह', *सुपो धा०* (२।४।७१) से ङि का लुक् होकर 'इह' बन गया है ॥

किमोऽत् ॥५।३।१२॥

किमः ५।१॥ अत् १।१॥ *अनु०*—सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्तात् किमोऽत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा*—क ॥

भाषार्थ—सप्तम्यन्त [*किम*] किम् शब्द से [*अत्*] अत् प्रत्यय होता है ॥ *क्वाति* (७।२।१०५) से किम् को अत् परे रहते क आदेश होकर क ङि अ = क अ सु = *यस्येति* च, (६।४।१४८) से अकार लोप तथा १।१।३७ से अव्यय संज्ञा एवं सु लुक् होकर क बना है ॥

यहाँ से '*किमः*' की अनुवृत्ति ५।३।१३ तक जायेगी ॥

वा ह च च्छन्दसि ॥५।३।१३॥

वा अ० ॥ ह लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—किमः, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्तात् किमो वा हः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—कुह । पक्षे यथाप्राप्तं—कुत्र चिदस्य दूरे, क्व ब्राह्मणस्य वाचकाः ॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त किम् शब्द से [*वा*] विकल्प से [*ह*] ह प्रत्यय होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥ पक्ष में यथाप्राप्त त्रल् तथा अत् ही होंगे ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥५।३।१४॥

इतराभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यन्ते क्रिया० ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इतराभ्योऽपि विभक्तिभ्यः तसिलादयो दृश्यन्ते । पञ्चमीसप्तम्यपेक्षमितरत्वम् ॥ *उदा०*—स भवान् = ततो भवान्, तत्र भवान् । तं भवन्तम् = ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम् । तेन भवता = ततो भवता, तत्र भवता । तस्मै भवते = ततो भवते, तत्र भवते । तस्माद् भवतः = ततो भवतः, तत्र भवतः ॥ तस्य भवतः = ततो भवतः, तत्र भवतः । तस्मिन् भवति = ततो भवति, तत्र भवति ॥

भाषार्थः—[*इतराभ्यः*] पञ्चमी, सप्तमी से अन्य भी जो विभक्ति तदन्त शब्दों से [*अपि*] भी तसिलादि प्रत्यय [*दृश्यन्ते*] देखे जाते हैं ॥ पञ्चम्यन्त तथा सप्तम्यन्त से तसिल् तथा त्रल् प्रत्यय का विधान है, सो इस सूत्र में पञ्चमी सप्तमी से अन्य जो विभक्तियाँ, उन विभक्त्यन्तों से भी तसिलादि का विधान कर दिया है ॥ यथा स भवान् में सः प्रथमान्त, तं भवन्तं में तं द्वितीयान्त, इसी प्रकार तृतीयान्तादि से भी तसिल् त्रल् प्रत्यय होकर ततः तत्र बने हैं ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥५।३।१५॥

सर्वै.....दः ५।१॥ काले ७।१॥ दा १।१॥ *स०*—सर्वश्च एकश्च अन्यश्च किम् च यत् च तत् च, सर्वै.....तत्, तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्तेभ्यः सर्व, एक, अन्य किं, यत् तद् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दा प्रत्ययो भवति कालार्थे ॥ *उदा०*—सर्वस्मिन् काले

सर्वदा, एकस्मिन् काले एकदा, अन्यस्मिन् काले अन्यदा, कस्मिन् काले कदा, यस्मिन् काले यदा, तस्मिन् काले तदा ॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त [*सर्वै......दः*] सर्व, एक, अन्य, किम्, यत्, तत् प्रातिपदिकों से [*काले*] काल अर्थ में [*दा*] दा प्रत्यय होता है ॥ त्रल् सप्तम्यन्तों से प्राप्त था, उसी का अपवाद है ॥ कदा (कब) में किम् दा 'यहाँ' दा विभक्तिसंज्ञक (५।३।१) प्रत्यय के परे रहते *किमः कः* (७।२।१०३) से किम् को क आदेश होकर कदा बना है ॥ यदा, तदा की सिद्धि भाग १ परि० १।१।३७ में देखें ॥

यहाँ से '*काले*' की अनुवृत्ति ५।३।२२ तक जायेगी ॥

इदमोर्हिल् ॥५।३।१६॥

इदमः ५।१॥ र्हिल् १।१॥ *अनु०*—काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तम्यन्ताद् इदमो र्हिल् प्रत्ययो भवति कालेऽर्थे ॥ उदा०—अस्मिन् काले एतर्हि ॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त [*इदमः*] इदम् शब्द से [*र्हिल्*] र्हिल् प्रत्यय होता है ॥ *एतेतौ रथोः* (५।३।४) से इदम् को एत आदेश होकर एतर्हि बना है ॥

यहाँ से '*इदमः*' की अनुवृत्ति ५।३।१८ तक जायेगी ॥

अधुना ॥५।३।१७॥

अधुना १।१॥ *अनु०*—इदमः, काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अधुना इति निपात्यते । सप्तम्यन्तस्य इदमः स्थानेऽश् आदेशो निपात्यते धुना च प्रत्ययः, अथवा इदमऽधुना च प्रत्ययः ॥

भाषार्थः—[*अधुना*] अधुना यह शब्द निपातन किया जाता है ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द के स्थान में अश् आदेश तथा धुना प्रत्यय निपातन है । अथवा इदम् शब्द से अधुना प्रत्यय करके *इदम इश्* से इदम् को इश् भाव तथा यस्येति लोप होकर भी अधुना शब्द सिद्ध हो सकता है । अधुना = अब =

दानीं च ॥५।३।१८॥

दानीम् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—इदमः, काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—काले वर्त्तमानात् सप्तम्यन्ताद् इदमो दानीं प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अस्मिन् काले इदानीम् ॥

भाषार्थः—सप्तम्यन्त इदम् शब्द से [*दानीम्*] दानीम् प्रत्यय [*च*] होता है ॥ इदानीम् = अब ॥

यहाँ से '*दानीम्*' की अनुवृत्ति ५।३।१६ तक जायेगी ॥

तदो दा च ॥५।३।१९॥

तदः ५।१॥ दा अ०॥ च १।१॥ अनु०—दानीं, काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सप्तम्यन्तात् काले वर्त्तमानात् तद् शब्दात् दा प्रत्ययो भवति दानीं च ॥ उदा०—तस्मिन् काले = तदा, तदानीम् ॥

भाषार्थः—काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त [*तदः*] तद् शब्द से [*दा*] दा [*च*] तथा दानीम् प्रत्यय होते हैं ॥

तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि ॥५।३।२०॥

तयोः ६।२॥ दार्हिलौ १।२॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ स०—दार्हिलौ, इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तयोः = इदमः तदश्च यथासङ्ख्यं दा, र्हिल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतश्छन्दसि विषये, चकाराद्यथाप्राप्तं च ॥ उदा०—अस्मिन् काले इदा, तस्मिन् काले तर्हि । इदानीम्, तदानीम् ॥

भाषार्थः—तयोः पद से इदम् तथा तद् का परामर्ष तद् है ॥ [*तयोः*] इन दोनों इदम् और तद् से यथासङ्ख्य करके [*छन्दसि*] वेद विषय में, [*दार्हिलौ*] दा और र्हिल् प्रत्यय होते हैं, [*च*] चकार से यथाप्राप्त दानीम् प्रत्यय भी होता है ॥ इदम इश् से इश् भाव हो ही जायेगा ॥

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ॥५।३।२१॥

अनद्यतने ७।१॥ र्हिल् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—काले, सप्तम्याः, किंसर्वनामबहुभ्यः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—किंसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो र्हिल् प्रत्ययो भवति विकल्पेनानद्यतने कालविशेषे ॥ उदा०—कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा ॥

भाषार्थः—किम् सर्वनाम और बहु जो सप्तम्यन्त शब्द उनसे [*र्हिल्*] र्हिल् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है [*अनद्यतने*] अनद्यतन काल विशेष को कहना हो तो ॥ पक्ष में दा प्रत्यय हुआ है ॥

सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥५।३।२२॥

सद्यः······रेद्युः, सर्वाणि अव्ययानि ॥ *अनु०*—काले, सप्तम्याः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सद्य आदयः शब्दा निपात्यन्ते। सद्य इत्यत्र समानस्य सभावो द्यश्च[1] प्रत्ययो निपात्यते अहन्यभिधेये, समानेऽहनि सद्यः। परुत् इत्यत्र पूर्वशब्दस्य पर भावः, उत् च प्रत्ययः संवत्सरेऽभिधेये, पूर्वस्मिन् संवत्सरे परुत्। एवं परारीत्यत्र पूर्वतरशब्दस्य परभावः, आरिश्च प्रत्ययः संवत्सरेऽभिधेये। पूर्वतरस्मिन् संवत्सरे परारि। ऐषमः इत्यत्र इदम इश्भावः समसण् च प्रत्ययः संवत्सरेऽभिधेये निपात्यते। णित्वात् वृद्धिर्भवति। इश् समसण् = इ समस् = (अस्मिन् संवत्सरे) ऐषमः। परेद्यवि इत्यत्र परशब्दाद् एद्यविः प्रत्ययोऽहन्यभिधेये निपात्यते। परस्मिन्नहनि परेद्यवि। अद्य इत्यत्र इदमो अश् भावो द्यश्च प्रत्ययोऽहन्यभिधेये। अस्मिन्नहनि अद्य। एवं पूर्वेद्युः अन्येद्युः······इत्यादिषु क्रमेण पूर्व, अन्य, अन्यतर, इतर, अपर, अधर, उत्तर इत्येतेभ्यः शब्देभ्यः एद्युसुच्[2] प्रत्ययो निपात्यतेऽहन्यभिधेये। पूर्वस्मिन् अहनि पूर्वेद्युः। अन्य-

१. द्यस् सकारान्त. प्रत्ययो ज्ञेयः।

२. चित्त्वादन्तोदात्तत्वम्। अन्येद्युः, अपरेद्युः इत्यत्रान्तोदात्तत्वं दृश्यते (अन्यशब्देसु स्वरो नोपलभ्यते) ॥

स्मिन्नहनि अन्येद्युः। अन्यतरस्मिन् अहनि अन्यतरेद्युः। इतरस्मिन्नहनि इतरेद्युः। अपरस्मिन् अहनि अपरेद्युः। अधरस्मिन्नहनि अधरेद्युः। उभयोरह्नोः उभयेद्युः। उत्तरस्मिन्नहनि उत्तरेद्युः॥

भाषार्थः—[*सद्यः ... रेद्युः*] सद्यः आदि शब्द सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से काल विशेष में निपातन किये जाते हैं॥ सद्यः यहाँ समान शब्द को स भाव तथा द्यस् प्रत्यय दिन अभिधेय होने पर निपातन है। परुत् शब्द में पूर्व शब्द को पर भाव तथा उत् प्रत्यय संवत्सर अभिधेय होने पर निपातन है। परारि शब्द में पूर्वतर शब्द को पर भाव तथा आरि प्रत्यय संवत्सर अभिधेय होने पर निपातन है। ऐषमः शब्द में इदम शब्द से समसण् प्रत्यय संवत्सर अभिधेय होने पर निपातन है। णित् होने से वृद्धि(७।२।११५)तथा षत्व, एवं रुत्व विसर्ग होकर ऐषमः बना है। परेद्यवि शब्द में पर शब्द से एद्यवि प्रत्यय दिन अभिधेय होने पर निपातन है। अद्य शब्द में इदम् शब्द को अश् भाव एवं द्य प्रत्यय दिन अभिधेय होने पर निपातन है। इसी प्रकार आगे पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः में क्रम से पूर्व, अन्य, अन्यतर, इतर, अपर, अधर, उभय, उत्तर शब्दों से दिन अभिधेय होने पर, एद्सुयच् प्रत्यय निपातन है॥

प्रकारवचने थाल्॥५।३।२३॥

प्रकारवचने ७।१॥ थाल् १।१॥ *अनु०*—किंसर्वनामबहुभ्यः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रकारवचने वर्त्तमानेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—तेन प्रकारेण तथा, यथा, सर्वथा, बहुभिः प्रकारैः बहुथा॥

भाषार्थः—[*प्रकारवचने*] प्रकारवचन में वर्त्तमान किं सर्वनाम और बहु शब्दों से [*थाल्*] थाल् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—तथा (उस प्रकार) यथा (जिस प्रकार)॥

यहाँ से '*प्रकारवचने*' की अनुवृत्ति ५।३।२६ तक जायेगी॥

इदमस्थमुः॥५।३।२४॥

इदमः ५।१॥ थमुः १।१॥ *अनु०*—प्रकारवचने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रकारवचने वर्त्तमानाद्

इदंशब्दात् थमुः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ उदा०—अनेन प्रकारेण इत्थम् ॥

भाषार्थः—[*इदमः*] इदम् शब्द प्रकारवचन अर्थ में वर्त्तमान हो तो स्वार्थ में [*थमुः*] थमु प्रत्यय होता है ॥ *एतेतौ रथोः* (५।३।४) से इदम् को इत् आदेश होकर इत् + थमु = इत्थम् (इस प्रकार का) बना है ॥

यहाँ से '*थमुः*' की अनुवृत्ति ५।३।२५ तक जायेगी ॥

किमश्च ॥५।३।२५॥

किमः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—थमुः, प्रकारवचने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रकारवचने वर्त्तमानात् किम्शब्दात् थमुः प्रत्ययो भवति स्वार्थे । *उदा०*—केन प्रकारेण कथम् ॥

भाषार्थः—प्रकारवचन में वर्त्तमान [*किमः*] किम् शब्द से [*च*] भी थमु प्रत्यय होता है ॥ *किमः कः* (७।२।१०३) से किम् को क आदेश होकर कथम् (किस प्रकार) बना है ॥

यहाँ से '*किमः*' की अनुवृत्ति ५।३।२६ तक जायेगी ॥

था हेतौ च च्छन्दसि ॥५।३।२६॥

था १।१॥ हेतौ ७।१॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—किमः, प्रकारवचने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—हेतौ प्रकारवचने च वर्त्तमानात् किम्शब्दात् था प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—हेतौ—कथा ग्रामं न पृच्छसि । प्रकारवचने—कथा देवा आसन् पुराविदः ॥

भाषार्थः—[*हेतौ*] हेतु [*च*] तथा प्रकारवचन अर्थ में वर्त्तमान जो किम् शब्द उससे [*था*] था प्रत्यय होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥ उदा०—कथा ग्रामं न पृच्छसि (किस हेतु से गाँव को नहीं पूछते) कथा देवा आसन् पुराविदः (पुराविद् = पुरातन इतिहास को जानने वाले विद्वान् कैसे थे) ॥

दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥५।३।२७॥

दिक्शब्देभ्यः ५।३॥ सप्त·····भ्यः ५।३॥ दिग्दे···षु ७।३॥ अस्तातिः १।१॥ *स०*—दिशां शब्दाः दिक्शब्दास्तेभ्यः·····षष्ठीतत्पुरुषः ।

उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिग्, देश, काल इत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तमानेभ्यः सप्तमी-पञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्य अस्तातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ उदा०—सप्तम्यन्तेभ्यः—पुरस्ताद् वसति, अधस्तात् वसति। पञ्चम्यन्तेभ्यः—पुरस्तादागतः, अधस्तादागतः। प्रथमान्तेभ्यः—पुरस्ताद् रमणीयम्, अधस्ताद् रमणीयम् ॥

भाषार्थः—[*दिग्देशकालेषु*] दिशा, देश और काल अर्थों में वर्त्तमान जो [*सप्त····भ्यः*] सप्तमी, पञ्चमी, प्रथमान्त [*दिग्शब्देभ्यः*] दिशावाची प्रातिपदिक उनसे स्वार्थ में [*अस्तातिः*] अस्ताति प्रत्यय होता है ॥ पूर्व और अधर शब्द दिशावाची हैं, उनको अस्ताति प्रत्यय परे रहते, *अस्ताति* च (५।३।४०) से क्रम से पुर् अध् आदेश होकर, पुर् ङि अस्ताति(२।४।७१ से ङि लुक्) पुर् अस्तात् सु, *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सुब्लुक् होकर पुरस्तात् अधस्तात् बना। *उदा०*—पुरस्तात् वसति (पूर्व दिशा या देश या काल में बसता है) पुरस्तात् आगतः (पूर्व दिशा या देश या काल से आया) पुरस्तात् रमणीयम् (पूर्व दिशा या देश या काल रमणीय है) ॥

यहाँ से '*दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु*' की अनुवृत्ति ५।३।४१ तक जायेगी ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥५।३।२८॥

दक्षि···भ्याम् ५।२॥ अतसुच् १।१॥ *स०*—दक्षि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमी-पञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिग्देशकालेषु वर्त्तमानाभ्यां दक्षिण-उत्तर-शब्दाभ्याम् अतसुच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सप्तम्यन्तात्—दक्षिणतो वसति, उत्तरतो वसति। पञ्चम्यन्तात्—दक्षिणत आगतः, उत्तरत आगतः। प्रथमान्तात्—दक्षिणतो रमणीयम्, उत्तरतो रमणीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमान्त, दिग्देश तथा काल अर्थ में वर्त्तमान जो [*दक्षि·····म्*] दक्षिण और उत्तर शब्द उनसे स्वार्थ में [*अतसुच्*] अतसुच् प्रत्यय होता है ॥ दक्षिण अतसुच् = दक्षिण् अतस् = दक्षिणतः ॥

यहाँ से '*अतसुच्*' की अनुवृत्ति ५।३।२९ तक जायेगी ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥५।३।२९॥

विभाषा १।१॥ परा······म् ५।२॥ *स०*—परा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अतसुच् दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिग्देशकालेषु वर्त्तमानाभ्यां पर, अवर इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां विभाषाऽतसुच् प्रत्ययो भवति, पक्षे अस्तातिः ॥ *उदा०*—परतो वसति, परस्ताद् वसति, अवरतो वसति अवस्तात् वसति। परत आगतः, परस्ताद् आगतः। अवरत आगतः अवस्ताद् आगतः। परतो रमणीयम् परस्तात् रमणीयम्, अवरतो रमणीम् अवस्तात् रमणीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमान्त दिग्देशकाल अर्थ में वर्त्तमान [*परावराभ्याम्*] पर अवर शब्दों से [*विभाषा*] विकल्प से स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होता है। पत्त में ५।३।२७ का अपवाद होने से अस्ताति ही होगा ॥

अञ्चेर्लुक् ॥५।३।३०॥

अञ्चेः ५।१॥ लुक् १।१॥ *अनु०*—दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिग्देशकालेषु वर्त्तमानेभ्योऽञ्चत्यन्तेभ्यो दिग्शब्देभ्य उत्तरस्यास्तातिप्रत्ययस्य लुग् भवति ॥ *उदा०*—प्राच्यां दिशि वसति प्राग्वसति, प्रागागतः, प्राग् रमणीयम् ॥

भाषार्थः—सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्त दिग्देशकाल में वर्त्तमान जो [*अञ्चेः*] अञ्चु धातु अन्त वाला दिग्शब्द उससे परे जो अस्ताति प्रत्यय उसका [*लुक्*] लुक् होता है ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥५।३।३१॥

उपर्युपरिष्टात् १।१॥ *स०*—उप० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उपरि, उपरिष्टात् इत्येतौ शब्दौ निपात्येते अस्तातेरर्थे। ऊर्ध्वशब्दस्य उपभावः रिलूरिष्टातिलौ

च प्रत्ययौ निपात्येते। ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति, उपरि आगतः, उपरि रमणीयम्। उपरिष्टात् वसति, उपरिष्टाद् आगतः, उपरिष्टात् रमणीयम्॥

भाषार्थः—[*उपर्युपरिष्टात्*] उपरि और उपरिष्टात् यह शब्द निपातन किये जाते हैं अस्ताति के अर्थ में। ऊर्ध्व शब्द को उप भाव, रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय निपातन से किये जाते हैं॥ अस्ताति प्रत्यय, सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्त से दिग्देशकाल अर्थ में होता है, सो 'अस्ताति अर्थ में' ऐसा कहने से उपर्युक्त सब ही अर्थ अभिप्रेत होगा॥

पश्चात् ॥५।३।३२॥

पश्चात् १।१॥ *अनु०*—दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पश्चात् इत्ययं शब्दो निपात्यते, अस्तातेरर्थे। अपरशब्दस्य पश्चभावः, आतिश्च प्रत्ययो निपात्यते॥ अपरस्यां दिशि वसति पश्चात् वसति, पश्चादागतः, पश्चात् रमणीयम्॥

भाषार्थः—[*पश्चात्*] पश्चात् यह शब्द निपातन किया जाता है। अपर शब्द को पश्च भाव तथा आति प्रत्यय निपातन से किया जाता है॥ पश्च आति = पश्च् आत् = पश्चात्॥

यहाँ से '*पश्चात्*' की अनुवृत्ति ५।३।३३ तक जायेगी॥

पश्च पश्चा च च्छन्दसि ॥५।३।३३॥

पश्च १।१॥ पश्चा १।१॥ च अ०॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—पश्चात्, दिग्दशब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—पश्च, पश्चा इत्येतौ शब्दौ निपात्येते छन्दसि विषये, अस्तातेरर्थे चकारात् पश्चाच्च। अपरशब्दस्य पश्च भावः, अकारआकारौ च प्रत्ययौ निपात्येते। पश्च सिंहः, पश्चा सिंहः, पश्चात् सिंहः॥

भाषार्थः—[*पश्च पश्चा*] पश्च, पश्चा शब्द [*च*] भी [*छन्दसि*] वेद विषय में अस्ताति अर्थ में निपातन किये जाते हैं, चकार से पश्चात्

शब्द भी छन्द में निपातन है। अपर शब्द को पश्च भाव तथा अकार और आकार प्रत्यय निपातन किये हैं। पश्चात् में पूर्ववत् निपातन कार्य हुये हैं॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥५।३।३४॥

उत्त·····णात् ५।१॥ आतिः १।१॥ *स०*—उत्त० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—उत्तर, अधर, दक्षिण इत्येतेभ्यो दिग्शब्देभ्यः आतिः प्रत्ययो भवत्यस्तातेरर्थे॥ *उदा०*—उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तरात् वसति, उत्तरादागतः उत्तरात् रमणीयम्। अधरात् वसति, अधरादागतः, अधरात् रमणीयम्। दक्षिणात् वसति, दक्षिणादागतः दक्षिणात् रमणीयम्॥

भाषार्थः—[*उत्त·····णात्*] उत्तर, अधर, दक्षिण इन दिशावाची शब्दों से अस्ताति अर्थ में [*आतिः*] आति प्रत्यय होता है॥ उत्तर आति = उत्तर् आत् = उत्तरात्॥

यहाँ से '*उत्तराधरदक्षिणात्*' की अनुवृत्ति ५।३।३५ तक जायेगी॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥५।३।३५॥

एनप् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ अदूरे ७।१॥ अपञ्चम्याः ५।१॥ *स०*—अदूरे, अपञ्चम्या उभयत्र नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—उत्तराधरदक्षिणात्, दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—उत्तराधरदक्षिणशब्देभ्योऽपञ्चम्यन्तेभ्य एनप् प्रत्ययो भवति विकल्पेन, अदूरे गम्यमानेऽस्तातेरर्थे॥ *उदा०*—उत्तरेण वसति उत्तराद्वसति उत्तरतो वसति। उत्तरेण रमणीयम् उत्तरात् रमणीयम्, उत्तरतो रमणीयम्। अधरेण वसति अधरात् वसति, अधस्तात् वसति। अधरेण रमणीयम् अधरात् रमणीयम् अधस्तात् रमणीयम्। दक्षिणेन वसति, दक्षिणात्, वसति, दक्षिणतो वसति। दक्षिणेन रमणीयम्, दक्षिणात् रमणीयम् दक्षिणतो रमणीयम्॥

भाषार्थः—[*अपञ्चम्याः*] अपञ्चम्यन्त उत्तर अधर दक्षिण दिग्शब्दों से [*एनप्*] एनप् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है, [*अदूरे*] अदूर = निकटता गम्यमान हो तो॥

सप्तमी पञ्चमी प्रथमान्त से ही इस प्रकरण में प्रत्यय हो रहे थे सो अपञ्चम्याः निषेध कर दिया कि पञ्चम्यन्तों से न हो, तो शेष सप्तम्यन्त प्रथमान्त से ही होंगे। अन्यतरस्याम् कहने से पक्ष में पूर्व सूत्र से प्राप्त आति प्रत्यय एवं ५।३।२८ से उत्तर दक्षिण शब्दों से अतसुच् भी होगा। अधर शब्द से आति (५।३।३४) तथा अस्ताति (५।३।२७) दोनों ही पक्ष में हुये हैं। जब अस्ताति प्रत्यय अधर शब्द से होगा तब अधर को अध् आदेश भी *अस्ताति* च से हो जायेगा॥ उत्तर एनप् यहाँ *यस्येति* च (६।४।१४८) से अकार लोप तथा णत्व होकर उत्तरेण बना॥

यहाँ से '*अपञ्चम्याः*' की अनुवृत्ति ५।३।३८ तक जायेगी॥

दक्षिणादाच् ॥५।३।३६॥

दक्षिणात् ५।१॥ आच् १।१॥ *अनु०*—अपञ्चम्याः, दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अपञ्चम्यन्तात् सप्तमीप्रथमान्तात् दिग्वाचिनो दक्षिणशब्दादस्तातेरर्थे आच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—दक्षिणा वसति, दक्षिणा रमणीयम्॥

भाषार्थः—पञ्चम्यन्त को छोड़ कर सप्तमीप्रथमान्त [*दक्षिणात्*] दक्षिण दिग् शब्द से [*आच्*] आच् प्रत्यय होता है, अस्ताति अर्थ में॥

यहाँ से '*दक्षिणात्*' की अनुवृत्ति ५।३।३७ तक तथा '*आच्*' की ५।३।३८ तक जायेगी॥

आहि च दूरे ॥५।३।३७॥

आहि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ०॥ दूरे ७।१॥ *अनु०*—दक्षिणादाच्, अपञ्चम्याः, दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अपञ्चम्यन्ताद् दक्षिणशब्दाद् आहि प्रत्ययो भवत्याच् च, अस्तातेरर्थे दूरे वाच्ये॥ *उदा०*—दक्षिणाहि वसति दक्षिणा वसति। दक्षिणाहि रमणीयम्, दक्षिणा रमणीयम्॥

भाषार्थः—अपञ्चम्यन्त अर्थात् सप्तम्यन्त और प्रथमान्त दक्षिणा शब्द से [*आहि*] आहि [*च*] तथा आच् प्रत्यय होते हैं, [*दूरे*] दूर वाच्य

हो तो ॥ उदा०—दक्षिणाहि वसति (दक्षिण देश या दिशा में बसता है) दक्षिणा वसति, दक्षिणाहि रमणीयम् (दक्षिण देश या दिशा रमणीय है) दक्षिणा रमणीयम् ॥ इस प्रकार दक्षिण शब्द से स्वार्थ में कुल ५ प्रत्यय हुये। अतसुच्, आति, एनप्, आच् और आहि। इन सब प्रत्ययों की १।१।३७ से अव्यय संज्ञा होने से २।४।८२ से सर्वत्र सु लुक् हो ही जायेगा ॥

यहाँ से '*आहि दूरे*' की अनुवृत्ति ५।३।३८ तक जायेगी ॥

उत्तराच्च ॥५।३।३८॥

उत्तरात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—आहि दूरे, आच्, अपञ्चम्याः, दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अपञ्चम्यन्ताद् उत्तरशब्दात् आच्, आहि इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो दूरे वाच्येऽस्तातेरर्थे ॥ *उदा०*—उत्तरा वसति, उत्तराहि वसति। उत्तरा रमणीयम्, उत्तराहि रमणीयम् ॥

भाषार्थः—[*उत्तरात्*] अपञ्चम्यन्त उत्तर शब्द से [च] भी अस्ताति अर्थ में आच् और आहि प्रत्यय होते हैं ॥ पूर्ववत् उत्तर शब्द से भी ५ प्रत्यय होते हैं ॥

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ॥५।३।३९॥

पूर्वा·····णाम् ६।३॥ असि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ पुरधवः १।३॥ च अ० ॥ एषाम् ६।३॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूर्व, अधर, अवर इत्येतेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यः शब्देभ्योऽसिः प्रत्ययो भवत्यस्तातेरर्थे, तत्सन्नियोगेन चैषां यथाक्रमं पुर्, अध्, अव् इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ *उदा०*—पूर्वस्यां दिशि वसति = पुरो वसति, पुर आगतः, पुरो रमणीयम्। अधो वसति, अध आगतः, अधो रमणीयम्। अवो वसति, अव आगतः, अवो रमणीयम् ॥

भाषार्थः—[*पूर्वा·····म्*] सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्त जो पूर्व अधर अवर शब्द उनसे अस्ताति के अर्थ में [*असि*] असि प्रत्यय होता है

[च] और प्रत्यय के साथ साथ [एषाम्] पूर्व, अधर, अवर शब्दों को यथासङ्ख्य करके [पुरधवः] पुर्, अध्, अव् आदेश होते हैं ।।

यहाँ से '*पूर्वाधरावराणाम् पुरधवः*' की अनुवृत्ति ५।३।४० तक जायेगी ।।

अस्ताति च ।।५।३।४०।।

अस्ताति ७।१।। च अ० ।। *अनु०*—पूर्वाधरावराणाम् पुरधवः, दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अस्ताति प्रत्यये च परतः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तानां पूर्वादीनां यथाक्रमं पुरादय आदेशा भवन्ति ।। *उदा०*—पुरस्तात् वसति, पुरस्तादागतः, पुरस्तात् रमणीयम् ।।

भाषार्थः—सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्त जो पूर्व, अधर, अवर शब्द उनको [*अस्ताति*] अस्ताति प्रत्यय परे रहते [च] भी पुर् अध् अव् आदेश हो जाते हैं ।। अस्तात् से सप्तमी में अस्ताति करके निर्देश किया है ।।

यहाँ से '*अस्ताति*' की अनुवृत्ति ५।३।४१ तक जायेगी ।।

विभाषाऽवरस्य ।।५।३।४१।।

विभाषा १।१।। अवरस्य ६।१।। *अनु०*—अस्ताति, दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, प्रत्यय ।। *अर्थः*—अस्ताति प्रत्यये परतोऽवरशब्दस्य, अव् आदेशो भवति विकल्पेन ।। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते ।। *उदा०*—अवस्तात् वसति, अवरस्तात् वसति । अवस्तादागतः अवरस्तादागतः । अवस्तात् रमणीयम्, अवरस्तात् रमणीयम् ।।

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से नित्य अवादेश की प्राप्ति में यह विकल्प विधान है ।। सप्तमी पञ्चमी प्रथमान्तदिग्देशकाल वाची [*अवरस्य*] अवर शब्द को [*विभाषा*] विकल्प से अव् आदेश होता है, अस्ताति प्रत्यय परे रहते । पक्ष में अवर ऐसा ही रहेगा ।।

सङ्ख्याया विधार्थे धा ।।५।३।४२।।

सङ्ख्यायाः ५।१।। विधार्थे ७।१।। धा १।१।। *स०*—विधायाः अर्थः विधार्थस्तस्मिन्........षष्ठीतत्पुरुषः ।। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिप-

दिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विधार्थे वर्त्तमानेभ्यः सङ्ख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो धा प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—एकधा भुङ्क्ते, द्विधा गच्छति, त्रिधा, चतुर्धा ॥

भाषार्थः—[*विधार्थे*] विधा=प्रकार (क्रिया के प्रकार) अर्थ में वर्त्तमान [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से [*धा*] प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—एकधा भुङ्क्ते (एक प्रकार से खाता है) द्विधा गच्छति (दो प्रकार से जाता है) ॥

यहाँ से '*सङ्ख्यायाः धा*' की अनुवृत्ति ५।३।४३ तक जायेगी ॥

अधिकरणविचाले च ॥५।३।४३॥

अधिकरणविचाले ७।१॥ च० ॥ *स०*—अधिकरणस्य द्रव्यस्य विचालोऽधिकरणविचालस्तस्मिन्''''''षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः धा, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अधिकरणविचाले गम्यमाने सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् धा प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ *उदा०*—एकं राशिं पञ्चधा कुरु, अष्टधा कुरु, अनेकधा कुरु ॥

भाषार्थः—अधिकरण शब्द यहाँ द्रव्य का वाचक है, उसका जो विचाल अर्थात् अनेक सङ्ख्याओं में बदलना वह अधिकरणविचाल कहलाया ॥ [*अधिकरणविचाले*] द्रव्य का विचाल गम्यमान हो तो सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से धा प्रत्यय स्वार्थ में होता है ॥ यहां एक राशि=ढेर (द्रव्य) के पाँच भाग कर देना है, सो यही द्रव्य का विचाल=अनेक सङ्ख्याओं में बदलना है अर्थात् १ को ५ में बदल दिया ॥

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ॥५।३।४४॥

एकात् ५।१॥ धः ६।१॥ ध्यमुञ् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—एकशब्दात् परस्य धाप्रत्ययस्य स्थाने ध्यमुञ् आदेशो भवति विकल्पेन ॥ *उदा०*—एकधा राशिं कुरु, ऐकध्यं राशिं कुरु । एकधा भुङ्क्ते ऐकध्यं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[*एकात्*] एक शब्द से उत्तर जो [*धः*] धा प्रत्यय उसके स्थान में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से ध्यमुञ् आदेश होता है ॥ । दो सूत्रों से ही विधार्थ एवं अधिकरण विचाल अर्थ में धा प्रत्यय विधान है उसी को यहाँ ध्यमुञ् आदेश विकल्प से कर दिया है ॥ मुञ् के ञित् होने से वृद्धि (७।२।११५) होकर ऐकध्यं बना है ॥

यहाँ से '*धः अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति ५।३।४६ तक जायेगी ॥

द्वित्र्योश्च धमुञ् ॥५।३।४५॥

द्वित्र्योः ६।२॥ च अ० ॥ धमुञ् १।१॥ *स०*—द्वित्र्योः, इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—धः, अन्यतरस्याम् तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विधार्थेऽधिकरणविचाले च विहितस्य द्वित्र्योः सम्बन्धिनो धाप्रत्ययस्य धमुञ् आदेशो भवति विकल्पेन ॥ *उदा०*—द्विधा, द्वैधम् । त्रिधा, त्रैधम् ॥

भाषार्थः—विधार्थ एवं अधिकरण विचाल अर्थ में विहित जो [*द्वित्र्योः*] द्वि तथा त्रि सम्बन्धी धा प्रत्यय उसको [*च*] भी विकल्प से [*धमुञ्*] धमुञ् आदेश होता है ॥ द्वि+धा = द्वि धमुञ् = द्वै+धम् सु यहाँ *तद्धितश्चासर्व०* (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा एवं २।४।८२ से सु का लुक् होकर द्वैधम् बना ॥

यहाँ से '*द्वित्र्योः*' की अनुवृत्ति ५।३।४६ तक जायेगी ॥

एधाच् च ॥५।३।४६॥

एधाच् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—द्वित्र्योः, धः, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वित्र्योः सम्बन्धिनो धा प्रत्ययस्य विकल्पेन एधाच् आदेशोऽपि भवति ॥ *उदा०*—द्वेधा, द्विधा, द्वैधम् । त्रेधा, त्रिधा, त्रैधम् ॥

भाषार्थः—विधार्थ एवं अधिकरणविचाल अर्थ में विहित जो द्वि त्रि सम्बन्धी धा प्रत्यय उसको विकल्प से [*एधाच्*] एधाच् आदेश [*च*] भी होता है ॥ इस प्रकार एधाच्, धा एवं धमुञ् प्रत्यय लग कर तीन रूप बनेंगे ॥ द्वि+एधाच् *यस्येति* च से इकार लोप होकर द्वेधा रूप बना है ॥

याप्ये पाशप् ॥५।३।४७॥

याप्ये ७।१॥ पाशप् १।१॥ *अर्थः*—याप्ये वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे पाशप् प्रत्ययो भवति॥ याप्यः कुत्सित उच्यते॥ *उदा०*—कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः, याज्ञिकपाशः॥

भाषार्थः—[*याप्ये*] याप्य = निन्दा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से [*पाशप्*] पाशप् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—वैयाकरणपाशः (निन्दित वैयाकरण)॥

पूरणाद्भागे तीयादन् ॥५।३।४८॥

पूरणात् ५।१॥ भागे ७।१॥ तीयात् ५।१॥ अन् १।१॥ *अर्थः*—पूरण-प्रत्ययो यस्तीयस्तदन्तात् भागे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—द्वितीयो भागः, तृतीयो भागः॥

भाषार्थः—[*पूरणात् तीयात्*] पूरण तीय प्रत्यय अन्त वाले [*भागे*] भाग अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में [*अन्*] अन् प्रत्यय होता है॥ *द्वेस्तीयः, त्रेः सम्प्र०* (५।२।५५) से पूरण प्रत्यय तीय होकर द्वितीय, तृतीय रूप बनता है तदन्त से फिर अन् करेंगे, सो द्वितीयः तृतीयः रूप ही पूर्ववत् बनेगा, केवल स्वर में ही भेद पड़ेगा। अन् करने पर *ञ्नित्या०* (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होगा, अन्यथा *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) लगकर प्रत्यय स्वर मध्यस्वरित (द्वितीयः) पाता था॥

यहाँ से '*पूरणात्*' की अनुवृत्ति ५।३।४९ तक '*भागे*' की अनुवृत्ति ५।३।५१ तक तथा '*अन्*' की ५।३।५० तक जायेगी॥

प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि ॥५।३।४९॥

प्राक् १।१॥ एकादशभ्यः ५।३॥ अच्छन्दसि ७।१॥ *स०*—न छन्दः अच्छन्दः, तस्मिन्......नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—पूरणाद्भागे अन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्राक् एकादशभ्यः सङ्ख्यावाचिभ्य. पूरणप्रत्ययान्तेभ्यः भागे वर्त्तमानेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽन् प्रत्ययो भवति स्वार्थे छन्दोविषयं वर्जयित्वा॥ *उदा०*—पञ्चमः, सप्तमः, नवमः, दशमः॥

भाषार्थः—पूरणप्रत्ययान्त, भाग अर्थ में वर्त्तमान [एकादशभ्यः प्राक्] एकादश सङ्ख्या से पहले पहले जो सङ्ख्यावाची शब्द, उनसे स्वार्थ में [अच्छन्दसि] वेद विषय को छोड़कर अर्थात् केवल भाषा विषय में अन् प्रत्यय होता है ॥ पञ्च, सप्त, नव, दश आदि एकादश से पहले पहले की सङ्ख्या हैं, सो इनसे पूरणप्रत्यय डट् मट् होकर तदन्त से अन् हुआ है। यहाँ भी स्वरार्थ ही अन् प्रत्यय किया है रूप तो पूर्ववत् ही बनेगा ॥

यहाँ से 'अच्छन्दसि' की अनुवृत्ति ५।३।५० तक जायेगी ॥

षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ॥५।३।५०॥

षष्ठाष्टमाभ्याम् ५।२॥ ञ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *स०*—षष्ठा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अच्छन्दसि, भागे, अन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—भागे वर्त्तमानाभ्यां षष्ठ, अष्टम इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां स्वार्थे ञः प्रत्ययो भवति अन् च छन्दोविषयं वर्जयित्वा ॥ *उदा०*—षाष्ठो भागः, षष्ठो भागः। आष्टमः भागः, अष्टमः भागः ॥

भाषार्थः—भाग अर्थ में वर्त्तमान [*षष्ठाष्टमाभ्याम्*] षष्ठ और अष्टम शब्दों से छन्द विषय को छोड़कर [ञ] ञ [च] तथा अन् प्रत्यय होता है ॥ स्वार्थ में ञ करने से वृद्धि होगी यह विशेष है ॥ षष्ठ अष्टम शब्द पूरणप्रत्ययान्त ही हैं, सो अनावश्यक होने से पूरणात् की अनुवृत्ति नहीं लाये हैं, उसका सम्बन्ध तो है ही ॥ जो षष्ठः अष्टमः (छठा आठवां) का अर्थ है वही षाष्ठः, षष्ठः; आष्टमः, अष्टमः का होगा, क्योंकि ये प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं ॥

यहाँ से '*षष्ठाष्टमाभ्याम्*' की अनुवृत्ति ५।३।५१ तक जायेगी ॥

मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ॥५।३।५१॥

मानपश्वङ्गयोः ७।२॥ कन्लुकौ १।२॥ च अ० ॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—षष्ठाष्टमाभ्याम्, भागे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठाष्टमाभ्यां यथासङ्ख्यं कन्लुकौ च प्रत्ययौ भवतः मानपश्वङ्गयोर्भागयोरभिधेययोः चकारात् यथाप्राप्तं

अन्लुकौ च ।। *उदा०*—षष्ठको भागो मानं चेत्तद्भवति[1], षाष्टः, षष्टः । अष्टमो भागः पश्वङ्गञ्चेत्तद्भवति आष्टमः, अष्टमः ।।

भाषार्थः—[*मानपश्वङ्गयोः*] मान = माप पश्वङ्ग (पशु का अङ्ग) रूपी षष्ठ और अष्टम शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*कन्लुकौ*] कन् तथा लुक् प्रत्यय होते हैं, भाग अभिधेय हो तो ।।

लुक् प्रत्यय के अदर्शन की संज्ञा है सो ञ अथवा अन् किसी का भी लुक् हो जाता है, क्योंकि किसी विशेष का तो लुक् कहा नहीं है ।।

यहाँ से '*कन्लुकौ*' की अनुवृत्ति ५।३।५२ तक जायेगी ।।

एकादाकिनिच्चासहाये ।।५।३।५२।।

एकात् ५।१।। आकिनिच् १।१।। असहाये ७।१।। *स०*—अस० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ।। *अनु०*—कन्लुकौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—असहायेऽर्थे वर्त्तमानाद् एकशब्दात् स्वार्थ आकिनिच् प्रत्ययो भवति कन्लुकौ च ।। *उदा०*—एकाकी, एकाकिनौ, एकाकिनः । कन्—एककः । लुक्—एकः ।।

भाषार्थः—[*असहाये*] असहाय = अकेले अर्थ में वर्त्तमान [*एकात्*] एक शब्द से [*आकिनिच्*] आकिनिच्, [च] चकार से कन् प्रत्यय तथा लुक् भी होते हैं । यहाँ भी सामान्य रूप से किसी का भी लुक् हो जायेगा ।। 'एक आकिनिच् = एकाकिन् सु' यहाँ दीर्घ, हल्ङ्यादि लोप तथा नकार लोप होकर एकाकी (अकेला, सहाय हीन) बन गया ।।

भूतपूर्वे चरट् ।।५।३।५३।।

भूतपूर्वे ७।१।। चरट् १।१।। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—भूतपूर्वत्वेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे चरट् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—आढ्यो भूतपूर्वः = आढ्यचरः, सुकुमारचरः ।।

---

१. छ व्रीहि (सतुष = छिलका सहित चावल) का एक रत्ती परिमाण होता है (८ तुषरहित चावल = १ रत्ती) ।

भाषार्थः—जो समय बीत गया (अतीत) उसे भूतपूर्व कहते हैं ॥ [*भूतपूर्वे*] भूतपूर्व अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से [चरट्] चरट् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आढ्यचरः (जो पहले आढ्य = धनवान् था) सुकुमारचरः (जो पहले सुकुमार था) ॥

यहाँ से 'भूतपूर्वे चरट्' की अनुवृत्ति ५।३।५४ तक जायेगी ॥

षष्ठ्या रूप्य च ॥५।३।५४॥

षष्ठ्याः ५।१॥ रूप्य लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—भूतपूर्वे चरट्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकात् रूप्यः प्रत्ययो भवति चरट् च भूतपूर्वेऽर्थे ॥ *उदा०*—देवदत्तस्य भूतपूर्वो गौः देवदत्तरूप्यः, देवदत्तचरः ॥

भाषार्थः—भूतपूर्व अर्थ में [*षष्ठ्याः*] षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से [*रूप्य*] रूप्य [च] और चरट् प्रत्यय होते हैं ॥

[*आतिशायिकाः प्रत्ययाः*]

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥५।३।५५॥

अतिशायने ७।१॥ तमबिष्ठनौ १।२॥ *स०*—तम० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अतिपूर्वात् शीङो धातोर्ल्युट् प्रत्ययः अतिशयनम्। अतिशयनमेवातिशायनम् निपातनाद् दीर्घः[1] ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अतिशायनेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तमप् इष्ठन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—सर्वे इमे आढ्या अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः, दर्शनीयतमः सुकुमारतमः । सर्वे इमे पटवः अयमेषामतिशयेन पटुः पटिष्ठः, लघिष्ठः, गरिष्ठः ॥

भाषार्थः—[*अतिशायने*] अत्यन्त प्रकर्ष अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में [*तमबिष्ठनौ*] तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ सब धनवान् हैं, उनमें से यह एक सबसे अधिक धनवान् है, इस प्रकार उसके धन की प्रकर्षता कही जा रही है ॥ *उदा०*—आढ्यतमः (सबसे अधिक धनवान्) पटिष्ठः (सबसे अधिक चतुर) ॥ पटु सु इष्ठन् = यहाँ टेः (६।४।१४३) से पटु के टि भाग का लोप तथा पूर्ववत् सब

१. यद्वा स्वार्थणिजन्तात् शीङ्धातोर्ल्युटि रूपम् ।

कार्य होकर 'पट् इष्ठ सु' = पटिष्ठः बना। लघु से लघिष्ठः भी इसी प्रकार जानें। गुरु को *प्रियस्थिरस्फिरोरु०* (६।४।१५७) से गर् आदेश तथा पूर्ववत् सब होकर गरिष्ठः बनेगा॥

यहाँ से *'अतिशायने'* की अनुवृत्ति ५।३।५७ तक तथा *'तमबिष्ठनौ'* की ५।३।५६ तक जायेगी॥

तिङश्च ॥५।३।५६॥

तिङः ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—अतिशायने, तमप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अतिशायने द्योत्ये तिङन्तादपि तमप् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—सर्वे इमे पचन्तीत्ययमेषामतिशयेन पचति = पचतितमाम्, जल्पतितमाम्॥

भाषार्थः—अतिशायन द्योतित हो रहा हो तो [*तिङः*] तिङन्त से [च] भी तमप् प्रत्यय होता है॥ *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* का अधिकार होने से प्रातिपदिक से ही प्रत्यय प्राप्त थे, तिङन्त से भी विधान कर दिया॥

यहाँ 'इष्ठन्' की अनुवृत्ति ऊपर से आते हुये भी सम्बन्धित नहीं होती, क्योंकि इष्ठन् प्रत्यय गुणवचन प्रातिपदिकों से ही हो ऐसा नियम आगे (५।३।५८) किया है, तिङन्त क्रियावाचक हैं, गुणवचन नहीं हैं॥

यहाँ से तिङः की अनुवृत्ति ५।३।६५ तक जाती है, परन्तु ५८–६५ तथा ६८–७० तक असम्भव होने से संबद्ध नहीं होती॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥५।३।५७॥

द्विवचनविभज्योपपदे ७।१॥ तरबीयसुनौ १।२॥ विभक्तुं योग्यं विभज्यम्, विभज्यं च तदुपपदं च विभज्योपपदम् तत्पुरुषः। द्विवचनं च विभज्योपपदं च द्विवचनविभज्योपपदम्, तस्मिन्...समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—अतिशायने तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—द्वयोरर्थयोः विभज्ये चोपपदे ङ्याप्प्रातिपदिकात्तिङन्ताच्चाशायने तरबीयसुनौ प्रत्ययौ भवतः। यथासंख्यमत्र न भवति॥ *उदा०*—द्वौ इमौ आढ्यौ अयमनयोरतिशयेन आढ्यः आढ्यतरः, सुकुमारतरः॥ द्वौ इमौ पटू अयमनयोरतिशयेन पटुरिति पटीयान्,

लघीयान् । विभज्योपपदे—माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः, सुकुमारतराः, पटीयांसः, लघीयांसः ॥

भाषार्थः—[*द्विवचनविभज्योपपदे*] द्व्यर्थ तथा विभज्य = विभाग करने योग्य शब्द उपपद हों तो प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से [*तरबीयसुनौ*] तरप् तथा ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ द्वौ इमौ आढ्यौ अयमनयोरतिशयेन आढ्यः आढ्यतरः, ये दोनों धनवान् हैं इनमें से यह अधिक धनवान् हैं, यहाँ दोनों धनवान् हैं अतः द्व्यर्थता है ही ॥ इसी प्रकार औरों में भी जानें। मथुरा के लोग पाटलिपुत्र वालों से अधिक धनवान् हैं, यहाँ पाटलिपुत्र से मथुरा का विभाग उपपद है सो तरप् ईयसुन् हो गया है ॥

अजादी गुणवचनादेव ॥५।३।५८॥

अजादी १।२॥ गुणवचनात् ५।१॥ एव अ० ॥ गुणमुक्तवान् गुणवचनः, तस्मात् ॥ *स०*—अच् आदिर्ययोस्तौ अजादी, बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अजादी = इष्ठन् ईयसुन् इत्येतौ प्रत्ययौ गुणवचनाद् एव भवतः ॥ *उदा०*—पटीयान्, लघीयान् । पटिष्ठः, लघिष्ठः ॥

भाषार्थः—[*अजादी*] अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् ईयसुन् जो इस प्रकरण में कहे हैं, वे [*गुणवचनात्*] गुणवाची प्रातिपदिक से [*एव*] ही होते हैं ॥ पटु, लघु आदि गुणवाची शब्द हैं ॥ पूर्व सूत्रों से इष्ठन् ईयसुन् का विधान कर आये हैं, यहाँ उसका विषय नियम करते हैं, कि वह गुणवचन प्रातिपदिक से ही हों औरों से नहीं। तरप् तमप् का नियमन होने से वे गुणवचनों से भी हो जाते हैं, यथा पटुतरः पटुतमः, लघुतरः लघुतमः ॥

यहाँ से *अजादी* की अनुवृत्ति ५।३।६५ तक जायेगी ॥

तुश्छन्दसि ॥५।३।५९॥

तुः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—छन्दसि विषये त्रन्तात् प्रातिपदिकाद् अजादी प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—आसुतिं करिष्ठः, दोहीयसी धेनुः ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*तुः*] तृ = तृन्, तृच् अन्त वाले प्रातिपदिकों से अजादी = इष्ठन् ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ पूर्व सूत्र से गुणवाची शब्दों से ही अजादि प्रत्यय प्राप्त थे, यहां त्रन्त से भी विधान कर दिया है ॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥५।३।६०॥

प्रशस्यस्य ६।१॥ श्रः १।१॥ *अनु०*—अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रशस्यशब्दस्य स्थानेऽजाद्योः प्रत्यययोः परतः श्र इत्ययमादेशो भवति ॥ *उदा०*—सर्वे इमे प्रशस्याः अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः । उभाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः = श्रेयान् ॥

भाषार्थः—[*प्रशस्यस्य*] प्रशस्य शब्द के स्थान में अजादि अर्थात् इष्ठन्, ईयसुन् प्रत्यय परे रहते [*श्रः*] श्र आदेश होता है ॥ प्रशस्य इष्ठन् = श्र इष्ठ यहाँ टेः (६।४।१५५) से भसंज्ञक श्र के टि भाग का जो लोप पाया उसका *प्रकृत्यैकाच्* (६।४।१६३) से प्रकृति भाव हो गया, पुनः *आद् गुणः* (६।१।८४) लगकर श्रेष्ठः बना । श्रेयान् में चेता की सिद्धि के समान ही नुमादि समझें ॥

यहाँ से '*प्रशस्यस्य*' की अनुवृत्ति ५।३।६१ तक जायेगी ॥

ज्य च ॥५।३।६१॥

ज्य लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ *अनु०*—प्रशस्यस्य, अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रशस्यशब्दस्य स्थाने ज्य आदेशोऽपि भवति अजाद्योः प्रत्यययोः परतः ॥ *उदा०*—सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः ज्येष्ठः, उभाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः ज्यायान् ॥

भाषार्थः—प्रशस्य शब्द के स्थान में [*ज्य*] ज्य आदेश [*च*] भी होता है अजादि प्रत्ययों के परे रहते ॥ ज्येष्ठः, ज्यायान् में पूर्ववत् ही टि भाग का लोप प्राप्त होने पर *प्रकृत्यैकाच्* से उसका निषेध हो गया है शेष सब सुस्पष्ट ही है ॥

यहाँ से '*ज्य*' की अनुवृत्ति ५।३।६२ तक जायेगी ॥

वृद्धस्य च ॥५।३।६२॥

वृद्धस्य ६।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—ज्य, अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वृद्धशब्दस्य च 'ज्य' आदेशो भवति, अजाद्योः प्रत्यययोः परतः ॥ *उदा०*—सर्वे इमे वृद्धा अयमेषामतिशयेन वृद्धः ज्येष्ठः, उभाविमौ वृद्धावयमनयोरतिशयेन वृद्धः ज्यायान् ॥

भाषार्थः—[*वृद्धस्य*] वृद्ध शब्द के स्थान में [च] भी अजादि प्रत्यय परे रहते, ज्य आदेश होता है ॥ ज्येष्ठः (सबसे अधिक आयु वाला) ज्यायान् (दो में अधिक आयु वाला) ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥५।३।६३॥

अन्तिकबाढयोः ६।२॥ नेदसाधौ १।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अन्तिक बाढ इत्येतयोः स्थाने यथासङ्ख्यं नेद, साध इत्येतावादेशौ भवतः अजाद्योः प्रत्यययोः परतः ॥ *उदा०*—सर्वाणीमान्यन्तिकानि इदमेषामतिशयेनान्तिकम् नेदिष्ठम्, उभे इमे अन्तिके इदमनयोरतिशयेनान्तिकम् = नेदीयः । सर्वे इमे बाढमधीयतेऽयमेषामतिशयेन बाढमधीते साधिष्ठम्, उभाविमावतिशयेन बाढमधीयाते अयमनयोरतिशयेन बाढमधीते साधीयः ॥

भाषार्थः—[*अन्तिकबाढयोः*] अन्तिक, बाढ शब्दों को यथासङ्ख्य करके अजादि प्रत्ययों के परे रहते [*नेदसाधौ*] नेद, साध आदेश होते हैं ॥ *उदा०*—नेदिष्ठम् (सबसे अधिक समीप) नेदीयः, साधिष्ठम् (सबसे अधिक अच्छा) साधीयः ॥

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥५।३।६४॥

युवाल्पयोः ६।२॥ कन् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—युव, अल्प इत्येतयोः स्थाने कन् इत्ययमादेशो भवति विकल्पेन, अजाद्योः प्रत्यययोः परतः ॥ *उदा०*—सर्वे इमे युवानः अयमेषामतिशयेन युवा, कनिष्ठः, यविष्ठः । द्वाविमौ युवानौ, अयमनयोरतिशयेन युवानः कनीयान्, यवीयान् ॥

भाषार्थः—[*युवाल्पयोः*] युव और अल्प के स्थान में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से अजादि प्रत्ययों के परे रहते [*कन्*] कन् आदेश होता है ॥ जब कन् आदेश पक्ष में नहीं हुआ तो इयसुन् परे रहते स्थूलदूरयुवह्रस्व० (६।४।१५६) से युवन् के यणादि = वन् भाग का लोप तथा यु के उ को 'ओ' गुण तथा अवादेश होकर य् अव् इष्ठन् = यविष्ठः ॥ (सबमें अधिक युवा) यवीयान् (दो में अधिक युवा) बन गया ॥

विन्मतोर्लुक् ॥५।३।६५॥

विन्मतोः ६।२॥ लुक् १।१॥ *स०*—विन्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अजादी, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विनो मतुपश्च लुग् भवति, अजाद्योः प्रत्यययोः परतः ॥ *उदा०*—सर्व इमे स्रग्विणः, अयमेषामतिशयेन स्रग्वी, स्रजिष्ठः । उभाविमौ स्रग्विणौ, अयमनयोरतिशयेन स्रग्वी, स्रजीयान् । मतोः—सर्व इमे त्वग्वन्तः, अयमेषामतिशयेन त्वग्वान् = त्वचिष्ठः । उभाविमौ त्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन त्वग्वान् = त्वचीयान् ॥

भाषार्थः—[*विन्मतोः*] विन् और मतुप् का [*लुक्*] लुक् होता है, अजादि प्रत्ययों के परे रहते ॥ स्रग्वी में स्रज् प्रादिपदिक से विनि प्रत्यय हुआ है, सो इष्ठन् ईयसुन् के परे रहते उसका लोप कर दिया तो स्रज् इष्ठ = स्रजिष्ठः (सबसे अधिक माला वाला) बना । इसी प्रकार त्वग्वान् में त्वच् शब्द से मतुप् हुआ है, उसी का लुक् इष्ठन् ईयसुन् के परे रहते हो गया तो त्वच् इष्ठन् = त्वचिष्ठः (सबसे अच्छी त्वचा वाला) त्वचीयान (दोनों में अच्छी त्वचा वाला) बना । *प्रकृत्यैकाच्* (६।४।१६३) से प्रकृति भाव होने से टेः (६।४।१५५) से टि भाग का लोप भी नहीं होगा ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥५।३।६६॥

प्रशंसायाम् ७।१॥ रूपप् १।१॥ *अनु०*—तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे रूपप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः, याज्ञिकरूपः । तिङन्तादपि—पचतिरूपम् जल्पतिरूपम् ॥

भाषार्थः—[*प्रशंसायाम्*] प्रशंसा विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक तथा तिङन्त से स्वार्थ में [*रूपप्*] रूपप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—वैयाकरणरूपः (अच्छा वैयाकरण) याज्ञिकरूपः (अच्छा याज्ञिक), पचतिरूपम् (अच्छा पकाता है) जल्पतिरूपम् (अच्छा बोलता है) ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥५।३।६७॥

ईष······प्तौ ७।१॥ कल्प···यरः १।३॥ *स०*—कल्प० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। ईषच्चासावसमाप्तिश्च, ईषदसमाप्तिः,तस्याम्···कर्मधारयस्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ पदार्थानां सम्पूर्णता समाप्तिः, स्तोकेनासम्पूर्णता, ईषदसमाप्तिस्तस्याम्··॥ *अर्थः*—ईषदसमाप्तावर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच् च कल्पप्, देश्य, देशीयर् इत्येते प्रत्यया भवन्ति॥ *उदा०*—ईषदसमाप्तः = किञ्चित् न्यूनः पटुः = पटुकल्पः, पटुदेश्यः, पटुदेशीयः, मृदुकल्पः, मृदुदेश्यः, मृदुदेशीयः। तिङन्तात्—पचतिकल्पम्, पचतिदेश्यम्, पचतिदेशीयम् ॥

भाषार्थः—[*ईषदसमाप्तौ*] ईषद् = थोड़ी असमाप्ति अर्थात् किञ्चित् न्यून अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से [*कल्प···रः*] कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—पटुकल्पः (पूरा पटु होने में कुछ न्यून) मृदुकल्पः (पूर्ण मृदु में कुछ न्यून) मृदुदेश्यः मृदुदेशीयः। पचतिकल्पम् ('पकाता है' में कुछ न्यूनता है) ॥

यहाँ से '*ईषदसमाप्तौ*' की अनुवृत्ति ५।३।६८ तक जायेगी ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥५।३।६८॥

विभाषा १।१॥ सुपः ५।१॥ बहुच् १।१॥ पुरस्तात् अ० ॥ तु अ० ॥ *अनु०*—ईषदसमाप्तौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ईषदसमप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् सुबन्ताद् विभाषा बहुच् प्रत्ययो भवति, स च बहुच् पुरस्तादेव भवति न परतः ॥ *उदा०*—ईषदसमाप्तः लेखः, बहुलेखः, बहुपटुः, बहुमृदुः। पक्षे कल्पबादयो भवन्ति = लेखकल्पः, लेखदेश्यः, लेखदेशीयः ॥

भाषार्थः—ईषदसमाप्ति अर्थ में वर्त्तमान [*सुपः*] सुबन्त से [*विभाषा*] विकल्प से [*बहुच्*] बहुच् प्रत्यय होता है, और वह *परश्च* के नियम से परे न होकर [*पुरस्तात्*] पूर्व में [*तु*] ही (सुबन्त से) होता है ॥ पक्ष में कल्पप् आदि हो जाते हैं ॥ 'लेख सु', 'बहुच् लेख सु' *सुपो धा०* (२।४।७१) लगाकर बहुलेखः (लेख में कुछ न्यून) बना ॥ सब प्रत्ययों में बहुच् ही एक ऐसा प्रत्यय है, जो पूर्व में बैठता है, अन्य सब परश्च (३।१।२) के कारण परे ही बैठते हैं ॥

यहाँ से सुपः की अनुवृत्ति ५।३।७१ तक जाती है ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥५।३।६९॥

प्रकारवचने ७।१॥ जातीयर् १।१॥ *अर्थः*—प्रकारविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पटुप्रकारः पटुजातीयः, मृदुजातीयः, दर्शनीयजातीयः ॥

भाषार्थः—[*प्रकारवचने*] प्रकार विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रतिपदिक से स्वार्थ में [*जातीयर्*] जातीयर् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पटुजातीयः (पटुसदृश) मृदुजातीयः (मृदुसदृश) दर्शनीयजातीयः (दर्शनीय सदृश) ॥

प्रागिवात्कः ॥५।३।७०॥

प्राक् १।१॥ इवात् ५।१॥ कः १।१॥ *अनु०*— सुपः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*- इवे प्रतिकृतौ (५।३।९६) इत्येतस्मात् प्राक् कः प्रत्ययो भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ *उदा०*—अश्वकः, गर्दभकः ॥

भाषार्थः—[*इवात्*] *इवे प्रतिकृतौ* से [*प्राक्*] पहले पहले [*कः*] क प्रत्यय होता है, यह अधिकार जानना चाहिये ॥ *अज्ञाते* (५।३।७३) से अश्वकः में क हुआ है ॥ सुपः की अनुवृत्ति होने से यहाँ ऊपर से आने वाली '*तिङः*' की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं लगता ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ॥५।३।७१॥

अव्ययसर्वनाम्नाम् ६।३॥ अकच् १।१॥ प्राक् १।१॥ टेः ५।१॥ *स०*—अव्ययानि च सर्वनामानि च, अव्य··मानि, तेषाम्·····इत-

रेतरद्वन्द्वः ।। अनु०—सुपः, प्रागिवात् , तिङश्च, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अव्ययेभ्यः सर्वनामभ्यस्तिङश्च प्रागिवार्थेऽकच् प्रत्ययो भवति स च टेः प्राग् भवति ।। उच्चकैः नीचकैः, सर्वके विश्वके, पचतकि जल्पतकि । अस्मिन् सूत्रे प्रातिपदिकात् सुपः इत्युभयमनुवर्त्तते तेन क्वचित् प्रातिपदिकस्य टेः प्राग् अकज् भवति यथा—युवकयोः आवकयोः । क्वचित् सुपः प्राग् भवति । यथा–त्वयका मयका ।

भाषार्थः—[*अव्ययसर्वनाम्नाम्*] अव्यय तथा सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से एवं तिङन्तों से इवार्थ से पहले पहले [*अकच्*] अकच् प्रत्यय होता है और वह अकच् [टेः] टि से [*प्राक्*] पूर्व होता है ।। इस सूत्र में 'प्रातिपदिकात्' तथा 'सुपः' दोनों की अनुवृत्ति है, अतः कहीं प्रातिपदिक के टि भाग से पूर्व अकच् होता है, तो कहीं सुबन्त के टि भाग से पूर्व होता है । जब प्रातिपदिक के टि से पूर्व होगा तो युवयोः आवयोः के ओस् से पूर्व अकच् होकर युवकयोः, आवकयोः बनेगा । जब सुबन्त से पूर्व होगा तो त्वया मया सुबन्त के टि से पूर्व अकच् होकर त्वयका मयका बनेगा ।।

यहाँ से आगे *इवे प्रतिकृतौ* (५।३।९६) से पहले पहले इस सूत्र का भी अधिकार जाता है, एवं *प्रागिवात्कः* का भी जाता है, सो अव्यय सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से तथा तिङन्तों से अकच् एवं अन्यों से 'क' प्रत्यय *प्रागिवात्कः* तक होगा ऐसा जानना चाहिये ।।

कस्य च दः ।।५।३।७२।।

कस्य ६।१।। च अ० ।। दः १।१।। अनु०—अव्ययम्, अकच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—ककारान्तस्याऽव्ययस्य प्रातिपदिकस्याकच्सन्नियोगेन दकारादेशो भवति ।। *उदा०*—धिक्–धकित् । हिरुक्—हिरकुत् । पृथक्—पृथकत् ।।

भाषार्थः—[*कस्य*] ककारान्त अव्यय को अकच् प्रत्यय के साथ साथ [दः] दकारादेश [च] भी होता है ।। अव्ययों को पूर्व सूत्र से अकच् प्रत्यय प्राप्त ही था, उनको यहाँ दकारादेश विधान करते

हैं ।। सर्वनाम शब्द ककारान्त हैं ही नहीं, अतः सामर्थ्य से यहाँ अव्यय का ही सम्बन्ध लगता है, सर्वनाम का नहीं ।। *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्तिम अल् 'क्' को 'द्' होगा ।। 'धिक्' की टि इक् है सो टि से पहले 'अकच्' (५।३।७१) होकर ध् अकच् इक्, क् को द् होकर ध् अक् इद् = धकिद्, चर्त्व होकर धकित् बना । हिरुक् की टि उक् है, सो हिर् अकच् उक् = हिरक् उद् = हिरकुत् बना है ।। इसी प्रकार पृथक् से पृथ् अकच् अक् = पृथक् अत् = पृथकत् बना है ।।

अज्ञाते ।।५।३।७३।।

अज्ञाते ७।१।। *स०*—अज्ञाते, इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ।। *अनु०*—अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः, प्रागिवात् कः, तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अज्ञातेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—अज्ञातोऽश्वः = अश्वकः, गर्दभकः । उच्चकैः, नीचकैः । सर्वके, विश्वके । पचतकि, जल्पतकि ।।

भाषार्थः—[*अज्ञाते*] अज्ञात अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से स्वार्थ में यथाविहित (अर्थात् अव्यय सर्वनाम तथा तिङन्तों से अकच् एवं अन्य प्रातिपदिकों से क) प्रत्यय होते हैं ।। *उदा०*—अश्वकः (जिसका स्वामी अज्ञात हो वह अश्व) पचतकि (जिसकी पाक क्रिया अज्ञात हो) ।।

कुत्सिते ।।५।३।७४।।

कुत्सिते ७।१।। *अनु०*—अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः, प्रागिवात् कः, तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—कुत्सितेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—कुत्सितोऽश्वः अश्वकः, गर्दभकः । अव्ययात्—उच्चकैः, नीचकैः । तिङन्तात्—पचतकि, जल्पतकि ।।

भाषार्थः—[*कुत्सिते*] कुत्सित अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से यथाविहित (अकच् तथा क) प्रत्यय होते हैं ।।

यहाँ से '*कुत्सिते*' की अनुवृत्ति ५।३।७५ तक जायेगी ।।

संज्ञायां कन् ॥५।३।७५॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कन् १।१॥ *अनु०*—प्रागिवात्, कुत्सिते, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुत्सितेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति संज्ञायां गम्यमानायाम् ॥ *उदा०*—कुत्सितः शूद्रः = शूद्रकः, धारकः, पूर्णकः ॥

भाषार्थः—कुत्सित = निन्दित अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है [*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान होने पर ॥ तिङन्त से कन् करने पर संज्ञा गम्यमान नहीं होती, अतः यहाँ 'तिङः' का संबन्ध नहीं लगता ॥ *उदा०*—शूद्रकः (निन्दित शूद्र) धारकः (अधर्मी) पूर्णकः (वृक्ष विशेष) ॥

अनुकम्पायाम् ॥५।३।७६॥

अनुकम्पायाम् ७।१॥ *अनु०*—तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनुकम्पायां गम्यमानायां प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनुकम्पितः पुत्रः पुत्रकः, वत्सकः, दुर्बलकः । विश्वसितकि, स्वपितकि ॥

भाषार्थः—[*अनुकम्पायाम्*] अनुकम्पा गम्यमान हो तो प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से यथाविहित (अव्यय सर्वनाम तथा तिङन्त से अकच् तथा अन्य प्रातिपदिकों से क) प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—दया करके किसी के प्रति उपकार = दुःख निवारण को अनुकम्पा कहते हैं ॥ पुत्रकः (जिसके प्रति दया की गई ऐसा पुत्र) वत्सकः, दुर्बलकः (जिसके प्रति दया की गई ऐसी दुर्बल) ॥ विश्वसितकि (अनुकम्पनीय विश्वास क्रिया करता है) स्वपितकि (अनुकम्पनीय शयन क्रिया करता है) ॥

यहाँ से '*अनुकम्पायाम्*' की अनुवृत्ति ५।३।८२ तक जायेगी ॥

नीतौ च तद्युक्तात् ॥५।३।७७॥

नीतौ ७।१॥ च अ०॥ तद्युक्तात् ५।१॥ *स०*—तया अनुकम्पया युक्तः तद्युक्तः, तस्मात् ···· तृतीयातत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अनुकम्पायाम्, तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नीतौ च गम्यमानायां, तद्युक्तात् = अनुकम्पायुक्तात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथा-

विहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—हन्त ते तिलकाः स्युः, हन्त ते धानकाः। तिङन्तात्—एहकि अद्धकि ॥

भाषार्थः—[*नीतौ*] नीति गम्यमान हो तो [च] भी [*तद्युक्तात्*] उससे = अनुकम्पा से सम्बद्ध प्रातिपदिक से तथा तिङन्त से यथाविहित प्रत्यय होता है ॥

नीति नाम साम दान दण्ड और भेद का है। परन्तु अनुकम्पा का सम्बन्ध होने से साम दान दो का ही यहाँ संबन्ध होता है। हन्त ते धानकाः = दयनीय तुम्हारे लिये धान हों अर्थात् किसी दयनीय स्थिति वाले को धान आदि देकर उसे अपने अनुकूल करता है। पूर्व सूत्र में साक्षात् अनुकम्पायुक्त वत्सादि से प्रत्यय का विधान किया है यहाँ जिस वस्तु की दानादि द्वारा अनुकम्पा प्रकट की जा रही है, उससे प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*नीतौ तद्युक्तात्*' की अनुवृत्ति ५।३।८१ तक जायेगी ॥

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ॥५।३।७८॥

बह्वचः ५।१॥ मनुष्यनाम्नः ५।१॥ ठच् १।१॥ वा अ० ॥ *स०*—बहवोः अचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्मात्······बहुव्रीहिः। मनुष्यस्य-नाम मनुष्यनाम, तस्मात् षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—नीतौ तद्युक्तात्, अनुकम्पायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मनुष्यनामधेयात् बह्वचः प्रातिपदिकाद् अनुकम्पायां नीतौ च तद्युक्तात् ठच् प्रत्ययो वा भवति ॥ *उदा०*—देविकः देवदत्तकः, यज्ञिकः, यज्ञदत्तकः ॥

भाषार्थः—[*बह्वचः*] बहुत अच् वाले [*मनुष्यनाम्नः*] मनुष्यनामधेय प्रातिपदिक से अनुकम्पा गम्यमान होने पर और अनुकम्पा से युक्त नीति-गम्यमान होने पर ठच् प्रत्यय होता है पक्ष में क होगा ॥ जिस पक्ष में ठच् होगा, उस पक्ष में *ठाजादावूर्ध्वं द्वि०* (५।३।३) से देवदत्त यज्ञदत्त के द्वितीय अच् के बाद के भाग अर्थात् दत्त शब्द का लोप होकर देव इक, यज्ञ इक रहा, यस्येति लोप होकर देविकः, यज्ञिकः (अनुकम्पा युक्त देवदत्त) बना ॥ देवदत्त यज्ञदत्त शब्द बह्वच् तथा मनुष्यनामधेय वाला है ही ॥

यहाँ से '*बह्वचः ठज्वा*' की अनुवृत्ति ५।३।८० तक तथा '*मनुष्यनाम्नः*' की ५।३।८४ तक जायेगी ॥

घनिलचौ च ।।५।३।७९।।

घनिलचौ १।२।। च अ० ।। *स०*— घनि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*—बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा, नीतौ च तद्युक्ताद्, अनुकम्पायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—बह्वचो मनुष्यनामधेयात् प्रातिपदिकात् अनुकम्पायां तद्युक्तान् नीतौ च गम्यमानायाम् घन् इलच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः, ठच् च भवति विकल्पेन ।। *उदा०*— घन्—देवियः, इलच्—देविलः । ठच्—देविकः । पक्षे कः—देवदत्तकः ।।

भाषार्थः—बह्वच् मनुष्यनामधेय वाले प्रातिपदिकों से अनुकम्पा और अनुकम्पा से युक्त नीति गम्यमान हो तो [*घनिलचौ*] घन् इलच् [*च*] तथा ठच् प्रत्यय विकल्प से होता है । सो चार रूप बनेंगे ।।

घन् के घ को ७।१।२ से इय् हो ही जायेगा, इस प्रकार घन्, इलच् दोनों ही अजादि प्रत्यय हुए, सो इनके परे रहते भी देवदत्त के दत्त का लोप पूर्ववत् ५।३।८३ से हो जायेगा । शेष सिद्धि पूर्ववत् है ।।

यहाँ से '*घनिलचौ*' की अनुवृत्ति ५।३।८० तक जायेगी ।।

प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ।।५।३।८०।।

प्राचाम् ६।३।। उपादेः ५।१।। अडज्वुचौ १।२।। *स०*—उप आदिर्यस्य स उपादिः, तस्मात् ..... बहुव्रीहिः । अड० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ।। *अनु०*— घनिलचौ, बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा नीतौ च तद्युक्तात् अनुकम्पायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उपादेः बह्वचो मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकात् अडच् वुच् घन् इलच् च प्रत्ययाः भवन्ति ठच् च विकल्पेन भवति तद्युक्तान् नीतौ अनुकम्पायां च गम्यमानायाम् प्राचामाचार्याणां मतेन, तेन षड्रूप्य सम्पद्यते ।। *उदा०*— उपेन्द्रदत्तः कस्यचित् नाम स अनुकम्पितः उपडः, उपकः उपियः उपिलः उपिकः उपेन्द्रदत्तकः ।।

भाषार्थः—[*उपादेः*] उप शब्द आदि वाले बह्वच् मनुष्यनामधेय प्रातिपदिक से नीति और अनुकम्पा गम्यमान होने पर [*अडज्वुचौ*] अडच् वुच् [*च*] तथा घन् इलच् और ठच् प्रत्यय विकल्प से [*प्राचाम्*] प्राग्देशीय आचार्यों के मत में होते हैं । इस प्रकार ६ रूप बना करेंगे ।।

उपेन्द्रदत्त किसी पुरुष का नाम है, सो उससे ये सब प्रत्यय हुये ॥ अडच्, वुच् के परे रहते भी ५।३।८३ से इन्द्रदत्त का लोप होकर उप + अड रहा । यस्येति लोप होकर उपडः, तथा वुच् में उपकः बना । शेष पूर्ववत् ही हैं ॥

जातिनाम्नः कन् ॥५।३।८१॥

जातिनाम्नः ५।१॥ कन् १।१॥ *स०*—जातेर्नाम जातिनाम, तस्मात् षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—मनुष्यनाम्नः, नीतौ च तद्युक्तात् अनुकम्पायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मनुष्यनामधेयो यो जातिशब्दस्तस्मात् कन् प्रत्ययो भवति नीतावनुकम्पायां च गम्यमानायाम् ॥ *उदा०*—व्याघ्रकः, सिंहकः ॥

भाषार्थः—मनुष्यनामधेय जो [*जातिनाम्नः*] जातिवाची शब्द उससे [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है, नीति तथा अनुकम्पा गम्यमान हो तो ॥ व्याघ्र, सिंह जातिवाची शब्द होते हुए भी यहाँ किसी व्यक्ति विशेष के नाम हैं, सो कन् हो गया है ॥ *उदा०*—व्याघ्रकः (अनुकम्पित व्याघ्र नाम वाला पुरुष) सिंहकः ॥

यहाँ से 'कन्' की अनुवृत्ति ५।३।८२ तक जायेगी ॥

अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ॥५।३।८२॥

अजिनान्तस्य ६।१॥ उत्तरपदलोपः १।१॥ च अ० ॥ *स०*—अजिन शब्दोऽन्ते यस्य स अजिनान्तस्तस्य ······ बहुव्रीहिः । उत्तरपदस्य लोपः उत्तरपदलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—कन्, मनुष्यनाम्नः, अनुकम्पायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मनुष्यनाम्नः अजिनशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवत्यनुकम्पायां गम्यमानायाम्, उत्तरपदस्य च लोपो भवति ॥ *उदा०*—व्याघ्राजिनो नाम कश्चित् मनुष्यः स अनुकम्पितः, व्याघ्रकः, सिंहकः ॥

भाषार्थः—[*अजिनान्तस्य*] अजिन शब्द अन्त वाले मनुष्यनामधेय प्रातिपदिक से अनुकम्पा गम्यमान होने पर कन् प्रत्यय होता है, और उस अजिनान्त शब्द के [*उत्तरपदलोपः*] उत्तरपद का लोप [*च*] भी हो जाता है ॥

व्याघ्राजिन एवं सिंहाजिन किसी व्यक्ति के नाम हैं, सो इनसे कन् प्रत्यय तथा उत्तरपद अजिन का लोप हो गया। तो 'व्याघ्र कन्', 'सिंह कन्' होकर व्याघ्रकः सिंहकः (अनुकम्पित सिंहाजिन नाम वाला) बना। उत्तर-पद के ग्रहण से यह लोप सम्पूर्ण उत्तर पद का अदर्शन करता है ॥

यहाँ से *'लोपः'* की अनुवृत्ति ५।३।८४ तक जायेगी ॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥५।३।८३॥

ठाजादौ ७।१॥ ऊर्ध्वम् १।१॥ द्वितीयात् ५।१॥ अचः ५।१॥ *स०*—अच् आदिर्यस्य स अजादिः, बहुव्रीहिः। ठश्च अजादिश्च ठाजादिस्त-स्मिन् समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—लोपः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अस्मिन् प्रकरणे यष्ठः अजादिश्च प्रत्ययस्त-स्मिन् परतो द्वितीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति ॥ उदा०—अनुकम्पितो देवदत्तः देविकः। अजादिः—देवियः, देविलः। उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः। ठः—उपिकः ॥

भाषार्थः—इस प्रकरण में अर्थात् ५।३।७८ से यहाँ तक, जो भी [*ठाजादौ*] ठ तथा अजादि प्रत्यय कहे हैं, उनके परे रहते [*द्वितीयात् अचः*] द्वितीय अच् से [*ऊर्ध्वम्*] बाद की जो प्रकृति (शब्दरूप) उसका लोप हो जाता है ॥ जहाँ जहाँ उपर्युक्त उदाहरण आये हैं वहाँ वहाँ इनकी सिद्धि कर ही दी है, सो वहीं देखें। देवदत्त में देव, उपेन्द्रदत्त में उप द्वितीय अच् तक की प्रकृति है, सो इससे बाद के भाग का लोप हो गया। यहाँ भी 'ऊर्ध्वम्' ग्रहण से सम्पूर्ण भाग का लोप होता है ॥

यहाँ से *'ठाजादावूर्ध्वम् अचः'* की अनुवृत्ति ५।३।८४ तक जायेगी ॥

शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ॥५।३।८४॥

शेव....दीनाम् ६।३॥ तृतीयात् ५।१॥ *स०*—शेवलश्च सुपरिश्च विशालश्च वरुणश्च अर्यमा च, शेव...र्यमा इत्येते आदयो येषां ते शेव...मादयस्तेषाम्.....द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ठाजादावूर्ध्वम् अचः, लोपः, मनुष्यनाम्नः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां मनुष्यनामवाचिनां शब्दानां

ठाजादौ प्रत्यये परतस्तृतीयादच ऊर्ध्वं यत् शब्दरूपं तस्य लोपो भवति ॥ उदा०—अनुकम्पितः शेवलदत्तः = शेवलिकः, शेवलियः शेवलिलः । सुपरिकः, सुपरियः सुपरिलः । विशालिकः, विशालियः विशालिलः । वरुणिकः, वरुणियः, वरुणिलः । अर्यमिकः, अर्यमियः, अर्यमिलः ॥

भाषार्थः—[*शेव*······*दीनाम्*] शेवल सुपरि, विशाल, वरुण, अर्यमा मनुष्यनामवाची ये शब्द आदि में हैं जिनके ऐसे शब्दों के [*तृतीयात्*] तृतीय अच् के बाद की जो प्रकृति, उसका लोप हो जाता है, ठ और अजादि प्रत्ययों के परे रहते ॥ शेवलदत्त, सुपरिदत्त, विशालदत्त आदि मनुष्यनामवाची शब्द हैं, उनसे पूर्वोक्त सूत्रों से (५।३।७८,७९) ठच्, घन्, इलच् प्रत्यय होकर तृतीय अच् के बाद अर्थात् 'दत्त' का लोप हो गया, तो शेवलिकः आदि रूप बन गये ॥

अल्पे ॥५।३।८५॥

अल्पे ७।१॥ *अनु०*—तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अल्पेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अल्पं तैलं = तैलकम्, घृतकम् । सर्वनाम्नः अकच्—सर्वकम्, विश्वकम् । तिङन्तादकच्—पचतकि, जल्पतकि ॥

भाषार्थः—[*अल्पे*] अल्प = थोड़ा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक तथा तिङन्त से यथाविहित (जिससे जो कह आये हैं) प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—तैलकम् (थोड़ा तैल) पचतकि (अल्प पकाता है) ॥

ह्रस्वे ॥५।३।८६॥

ह्रस्वे ७।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ह्रस्वेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ह्रस्वो वृक्षः = वृक्षकः, प्लक्षकः, स्तम्भकः ॥

भाषार्थः—[*ह्रस्वे*] ह्रस्व अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ अर्थात् ह्रस्व = छोटे वृक्ष को वृक्षकः, एवं छोटे खम्भे को स्तम्भकः कहेंगे ॥ ह्रस्वार्थ का तिङन्त के साथ योग न होने से यहाँ तिङन्त का उदाहरण नहीं दिया ॥

यहाँ से 'ह्रस्वे' की अनुवृत्ति ५।३।९० तक जायेगी ॥

संज्ञायां कन् ॥५।३।८७॥

संज्ञायाम् ७।१॥ कन् १।१॥ *अनु०*—ह्रस्वे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ह्रस्वेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम् ॥ पूर्वस्यायमपवादः ॥ *उदा०*—ह्रस्वो वंशो वंशकः, वेणुकः, दण्डकः ॥

भाषार्थः—ह्रस्व अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से [*संज्ञायाम्*] संज्ञा गम्यमान हो तो [कन्] कन् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से प्राप्त 'क' का यह अपवाद है ॥ क तथा कन् में केवल स्वर का ही भेद है ॥ छोटे छोटे बाँस के पेड़ों की वंशकः संज्ञा है ॥

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ॥५।३।८८॥

कुटी·····भ्यः ५।३॥ रः १।१॥ *स०*—कुटी० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ह्रस्वे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ह्रस्वार्थे द्योत्ये कुटी, शमी, शुण्डा इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो रः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ह्रस्वा कुटी कुटीरः, शमीरः, शुण्डारः ॥

भाषार्थः—ह्रस्वत्व द्योत्य हो तो [*कुटीशमीशुण्डाभ्यः*] कुटी, शमी और शुण्डा शब्दों से [*रः*] र प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*— कुटीरः (छोटी कुटी = कुटिया) शमीरः (शमी का छोटा वृक्ष) शुण्डारः (छोटी सूँड) ॥

कुत्वा डुपच् ॥५।३।८९॥

कुत्वाः ५।१॥ डुपच् १।१॥ *अनु०*—ह्रस्वे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ह्रस्वत्वे द्योत्ये कुतूशब्दाड्डुपच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ह्रस्वा कुतूः = कुतुपम् ॥

भाषार्थः—ह्रस्वत्व द्योतित हो तो [*कुत्वाः*] कुतू शब्द से [*डुपच्*] डुपच् प्रत्यय होता है ॥ कुतू डुपच् = कुतू उप, टि भाग का टेः (६।४।१४३) से लोप होकर कुत् उप सु = कुतुपम् (चमड़े का बना चिकनाई रखने का पात्र, यह ऊँट के चर्म का बना होता है) ॥

कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ॥५।३।९०॥

कासूगोणीभ्याम् ५।२॥ ष्टरच् १।१॥ स०—कासू० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—ह्रस्वे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—कासू गोणी इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां ह्रस्वत्वे द्योत्ये ष्टरच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—ह्रस्वा कासूः कासूतरी गोणीतरी॥

भाषार्थः—[कासूगोणीभ्याम्] कासू तथा गोणी शब्दों से ह्रस्वत्व अर्थ द्योतित हो तो [ष्टरच्] प्रत्यय होता है॥ षित् होने से ४।१।४१ से ङीष् होगा। 'कासू ष्टरच्' यहाँ इत्संज्ञक षकार का लोप होने पर, षकार के योग में जो ष्टरच् के त् को ष्टुत्व होकर ट् हुआ था वह भी हट गया सो तर रहा। कासू तर ङीप् = कासूतरी (लघु शक्ति नामका अस्त्र) गोणीतरी (आधी बोरी = कट्टा) बना॥

यहाँ से 'ष्टरच्' की अनुवृत्ति ५।३।९१ तक जायेगी॥

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ॥५।३।९१॥

वत्सो···भ्यः ५।३॥ च अ०॥ तनुत्वे ७।१॥ स०—वत्सो० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—ष्टरच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—वत्स, उक्षन्, अश्व, ऋषभ इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तनुत्वे द्योत्ये ष्टरच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—वत्सतरः, उक्षतरः, अश्वतरः, ऋषभतरः॥

भाषार्थः—[वत्सो······भ्यः] वत्स, उक्षन्, अश्व, ऋषभ इन प्रातिपदिकों से [तनुत्वे] तनुत्व = अल्पता द्योतित हो रही हो, तो ष्टरच् प्रत्यय होता है॥ जिस शब्द का जिस गुण के कारण से प्रयोग होता है उसका तनुत्व यहाँ अभिप्रेत है॥ वत्स यहाँ गाय के बछड़े को कहा है, प्रथम अवस्था तक वत्स कहा जायेगा, उस प्रथम अवस्था को पार कर जो द्वितीय अवस्था में पहुँच गया है, अर्थात् जिसके वत्सत्व धर्म (प्रथम अवस्था) में न्यूनता आ चुकी है उसे वत्सतरः कहेंगे, यही उसका तनुत्व = न्यूनपना है। इसी प्रकार जवान बैल को उक्षन् कहते है, उस युवावस्था को पार कर जो तृतीय अवस्था में पहुँच गया है, वह उक्षतरः कहा जायेगा। युवावस्था को छोड़ देना ही उसका तनुत्व है। अश्वतरः

खच्चर को कहेंगे, अश्व से अश्वा में उत्पन्न अश्व कहाता है परन्तु अश्व से जो गर्दभी में अथवा गर्दभ से अश्वा में उत्पन्न हो वह अश्वतर कहा जाता है, यहाँ अश्व का तनुत्व अन्यजातकता है। ऋषभ बैल को कहते हैं। सो जो बैल भार ढोने में कम सामर्थ्य रखता हो वह ऋषभतर कहा जायेगा, यही उसका तनुत्व है॥

किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच ॥५।३।९२॥

कियत्तदः ५।१॥ निर्धारणे ७।१॥ द्वयोः ७।२॥ एकस्य ६।१॥ डतरच् १।१॥ *स०*—किं च यच्च तत् च कियत्तत् तस्मात्.... समाहारो द्वन्द्वः॥ *अर्थः*—किम् यद् तद् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो द्वयोरेकस्य निर्धारणे डतरच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—कतरो भवतोः कठः। एवं यतरः, ततरः। कतरो भवतोः कारकः, एवं यतरः ततरः। कतरो भवतोः पटुः, एवं यतरः ततरः॥

भाषार्थः—[*कियत्तदः*] किम्, यद्, तद् इन शब्दों से [*द्वयोः, एकस्य, निर्धारणे*] दो में से एक का निर्धारण = पृथक्करण अर्थ में [*डतरच्*] डतरच् प्रत्यय होता है॥ कतरो भवतोः कठः = आप दोनों में से कतरः = कौन कठ है? यहाँ दो में से एक कठ का प्रश्न होने से स्पष्ट ही निर्धारण = पृथक्करण है, सो डतरच् हो गया। इसी प्रकार यतरो भवतोः कठः (आप दोनों में से जो कठ है) ततरो भवतोः कठः (आप दोनों में से वह कठ है) में भी जानें॥ 'किम् डतरच्' यहाँ टेः (६।४।१४३) से टि भाग का लोप होकर क अतर = कतर बना। यद् अतर = य् अतर = यतरः। तद् अतर = त् अतर = ततरः[1]॥

यहाँ से '*कियत्तद*' की अनुवृत्ति ५।३।९३ तक तथा *निर्धारणे एकस्य डतरच्*' की ५।३।९४ तक जायेगी॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥५।३।९३॥

वा अ०॥ बहूनाम् ६।३॥ जातिपरिप्रश्ने ७।१॥ डतमच् १।१॥ *स०*—जातेः परि (परितः) प्रश्नः जातिपरिप्रश्नस्तस्मिन्.... षष्ठी

---

१. *कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने* (२।१।६३) ज्ञापकात् 'डतरच्' उत्तर सूत्र अनुवर्त्तते स च परिप्रश्नविषय एव सम्बध्यते॥

तत्पुरुषः ।। *अनु०*—किंयत्तदो निर्धारणे एकस्य, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—जातिपरिप्रश्नविषयेभ्यः किंयत्तदित्येतेभ्यः शब्देभ्यो बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे गम्यमाने वा डतमच् प्रत्ययो भवति ।। सर्वनामशब्देभ्योऽकच्प्राप्तेः पक्षे स एव भवति ।। *उदा०*—कतमो भवतां कठः । यतमो भवतां कठः ततम आगच्छतु । पक्षे—यको भवतां कठः सक आगच्छतु ।।

भाषार्थः—[*जातिपरिप्रश्ने*] जातिपरिप्रश्न अर्थात् जाति को पूछने विषय में किम्, यद्, तद् शब्दों से [*बहूनाम्*] बहुतों में से एक का निर्धारण गम्यमान हो तो [*वा*] विकल्प से [*डतमच्*] डतमच् प्रत्यय होता है ।। दो में से एक के निर्धारण में पूर्व सूत्र से डतरच् प्रत्यय कहा था, यहाँ बहुतों में से एक के निर्धारण में डतमच् कह दिया ।। पक्ष में किम् यद् तद् के सर्वनाम होने से ५।३।७१ से अकच् होगा ।। किम् से अकच् होने पर महाभाष्य के "*कादेशः खल्वप्यवश्यं साकच्कार्थो वक्तव्यः*" (७।२।१०२) इस वचन से उस अकच् सहित किम् को क आदेश *किमः कः* (७।२।१०३) से होगा, सो अकच् पक्ष में भी 'कः' (को भवतां कठः) रूप ही बनेगा ।। त् अकच् अद् = तकद् सु परि० १।१।५१ के अनुसार द् का अ तथा त का स होकर सकः बना । य् अकच् अद् सु यकः बनेगा । कतमः आदि में कुछ भी विशेष नहीं, केवल टि भाग का ६।४।१४३ से लोप ही करना है ।। *कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने* (२।१।६३) के ज्ञापक से जातिपरिप्रश्न में डतरच् प्रत्यय भी होता है ।।

यहाँ से '*बहूनां डतमच्*' की अनुवृत्ति ५।३।९४ तक जायेगी ।।

एकाच्च प्राचाम् ।।५।३।९४।।

एकात् ५।१।। च अ० ।। प्राचाम् ६।३।। *अनु०*—बहूनां डतमच्, निर्धारणे एकस्य डतरच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—एकशब्दात् प्राचामाचार्याणां मतेन डतरच्डतमचौ प्रत्ययौ भवतः स्वस्मिन् विषये ।। *उदा०*—एकतरो भवतोर्देवदत्तः । एकतमो भवतां देवदत्तः ।।

भाषार्थः—[*एकात्*] एक शब्द से [च] भी [*प्राचाम्*] प्राचीन आचार्यों के मत में अपने अपने विषय में अर्थात् दो में से एक के निर्धारण में

डतरच् तथा बहुतों में से एक के निर्धारण में डतमच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—एकतरो भवतोर्देवदत्तः (आप दोनों में से एक देवदत्त है) एकतमो भवतां देवदत्तः (आप सबों में एक देवदत्त है)॥

अवक्षेपणे कन् ॥५।३।९५॥

अवक्षेपणे ७।१॥ कन् १।१॥ अवक्षिप्यते येन तदवक्षेपणम्, तस्मिन्॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अवक्षेपणेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—व्याकरणकेन नाम त्वं गर्वितः, याज्ञिक्यकेन नाम त्वं गर्वितः॥

भाषार्थः—[*अवक्षेपणे*] अवक्षेपण अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है॥ दूसरे की निन्दा के लिये जिस विषय का निर्देश किया जाय तद्वाचक शब्द से यहां प्रत्यय होता है। '*कुत्सिते*' में उसी से कन् होता है जिसकी निन्दा की जाए। यह दोनों में अन्तर है॥ *उदा०*—व्याकरणकेन नाम त्वं गर्वितः (व्याकरण ज्ञान के कारण तू अभिमान में है)॥

यहाँ से '*कन्*' की अनुवृत्ति ५।३।१०० तक जायेगी॥

इवे प्रतिकृतौ ॥५।३।९६॥

इवे ७।१॥ प्रतिकृतौ ७।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रतिकृतौ विषय इवार्थे यत् प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्मात् कन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—अश्व इवायमश्वप्रतिकृतिरश्वकः, उष्ट्रकः, गर्दभकः॥

भाषार्थः—[*प्रतिकृतौ*] प्रतिकृति = प्रतिमा, तस्वीर विषयक [*इवे*] इवार्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से '*इवे*' की अनुवृत्ति ५।३।१११ तक तथा '*प्रतिकृतौ*' की अनुवृत्ति ५।३।१०० तक जायेगी॥

संज्ञायां च ॥५।३।९७॥

संज्ञायाम् ७।१॥ च अ०॥ *अनु०*—इवे, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—इवार्थे गम्यमाने संज्ञायां विषये,

प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— अश्वकः, उष्ट्रकः, गर्दभकः ॥ अप्रतिकृतिविषयार्थत्वान्नेह प्रतिकृतिग्रहणं संबद्ध्यते ॥

भाषार्थः—इवार्थ गम्यमान हो तो [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में [*च*] भी कन् प्रत्यय होता है ॥ अश्व के जो सदृश उसे अश्वकः कहेंगे ॥ अप्रतिकृति के लिए यह सूत्र है, अतः यहां प्रतिकृति की अनुवृत्ति संबद्ध नहीं होती ।

यहाँ से '*संज्ञायाम्*' की अनुवृत्ति ५।३।१०० तक जायेगी ॥

लुम्मनुष्ये ॥५।३।९८॥

लुप् १।१॥ मनुष्ये ७।१॥ *अनु०*— इवे, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इवार्थे संज्ञायाम् विहितस्य कनो मनुष्येऽभिधेये लुब् भवति ॥ *उदा०*—चञ्चेव चञ्चा । पूर्वसूत्रविषयकत्वादेवेहापि प्रतिकृतिग्रहणं न संबद्ध्यते ।

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से संज्ञा विषय में विहित कन् का [*मनुष्ये*] मनुष्य अभिधेय होने पर [*लुप्*] लुप् होता है ॥ चञ्चेव चञ्चा (तृण निर्मित पुरुष = चञ्चा, उसके समान थोड़े से आघात को न सहने वाला व्यक्ति चञ्चा कहाता है, यहाँ *लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने* (१।२।५१) से युक्तवद् भाव होता है । यह सूत्र पूर्व सूत्र विहित प्रत्यय का लोप करता है, अतः यहां भी प्रतिकृति ग्रहण संबद्ध नहीं होता ।

जीविकार्थे चापण्ये ॥५।३।९९॥

जीविकार्थे ७।१॥ च अ० । अपण्ये ७।१॥ *स०*—जीविकायै इदम् जीविकार्थम्, तस्मिन्..... तत्पुरुषः । न पण्यम् अपण्यम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः । *अनु०*—लुप् मनुष्ये कन् प्रतिकृतौ, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—जीविकायै या अपण्या मनुष्यप्रतिकृतिः तस्यामभिधेयायां कनो लुब् भवति । *इवे प्रतिकृतौ* (५।३।९६) इत्यनेनोत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुबनेन विधीयते ॥ *उदा०*—वासुदेवः, शिवः, स्कन्दः, विष्णुः ॥ वासुदेवादीनां मानार्हाणां महापुरुषाणां प्रतिकृतीनां विक्रयः पुराकाले प्रतिषिद्ध आसीद् यथा घृतदुग्धतैलादीनाम् ॥ तस्माद् एतेषां

प्रतिकृतय अपण्या = अविक्रेया अभूवन्। ता यत्र तत्र देशदेशान्तरे प्रदर्श्य केचन जीविकामर्जयन्ति स्म[1]। अत एता प्रतिकृतयो जीविकार्थाः सत्योऽपण्या अविक्रेया आसन्॥

भाषार्थः—[*जीविकार्थे*] जीविकोपार्जन के लिये जो [च *अपण्ये*] न बेचने योग्य मनुष्य की प्रतिकृति उसके अभिधेय होने पर कन् का लुप् होता है॥ इवे प्रतिकृतौ से उत्पन्न कन् प्रत्यय का यहाँ लुप् विधान किया है॥ पूजा के योग्य वासुदेवादि महापुरुषों की प्रतिकृतियों का बेचना प्राचीन काल में निषिद्ध था, जिस प्रकार घी दूध तैलादि का निषिद्ध था। इस प्रकार ये प्रतिकृतियाँ अपण्य हुईं। कहीं-कहीं इन्हीं प्रतिकृतियों को दिखाकर कई लोग जीविकोपार्जन करते हैं, अतः ये प्रतिकृतियां अपण्य होते हुये जीविकार्थ भी हो गईं॥

देवपथादिभ्यश्च ॥५।३।१००॥

देवपथादिभ्यः ५।३॥ च अ०॥ *स०*—देवपथ आदिर्येषां ते देवपथादयस्तेभ्यः बहुव्रीहिः। *अनु०*—इवे प्रतिकृतौ, कन्, लुप्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—देवपथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थे प्रतिकृतावुत्पन्नस्य कनो लुप् भवति॥ *उदा०*—देवपथः, जलपथः, राजपथः॥ देवपथादीनां प्रतिकृतयोऽपि देवपथादि-शब्दैर्व्यवह्रियन्ते तत्रोत्पन्नस्य कनो लुब्भवति॥

भाषार्थः—[*देवपथादिभ्यः*] देवपथादि शब्दों से इवार्थ प्रतिकृति को कहने में उत्पन्न प्रत्यय का [च] भी लुप् होता है॥ इवे *प्रतिकृतौ*, *संज्ञायाम्* (५।३।९६, ९७) से उत्पन्न प्रत्यय का यहाँ लुप् होता है॥ देवपथादियों की प्रतिकृतियाँ भी देवपथादि शब्दों द्वारा व्यवहृत की जाती है॥

---

१. विविध दर्शनीय स्थानो वा पुरुषो की प्रतिकृतियां बालकों को दिखाकर आज कल भी अनेक व्यक्ति जीविकार्जन करते है। परन्तु यह प्रवृत्ति अब प्रायः उठ गई है। २०-२५ वर्ष पूर्व पर्याप्त थी।

वस्तेर्ढञ् ॥५।३।१०१॥

वस्तेः ५।१॥ ढञ् १।१॥ अनु०—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वस्तिशब्दाद् इवार्थे द्योत्ये ढञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—बस्तिरिव = वास्तेयः, वास्तेयी ॥

भाषार्थः—[वस्तेः] वस्ति शब्द से इव का अर्थ द्योतित हो रहा हो तो [ढञ्] ढञ् प्रत्यय होता है ॥ *टिड्ढाणञ्०* (४।१।१५) से ङीप् होकर वास्तेयी बनेगा ॥ यहाँ से आगे सामान्य करके प्रतिकृति या अप्रतिकृति दोनों विषयों में प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—वास्तेयः (नाभि के अधोभाग को आच्छादित करने वाले वस्त्र के समान) ॥

शिलाया ढः ॥५।३।१०२॥

शिलायाः ५।१॥ ढः १।१॥ अनु०—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शिलाशब्दाद् इवार्थे द्योत्ये ढः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शिला इव शिलेयं दधि ॥

भाषार्थः—[*शिलायाः*] शिला शब्द से इवार्थ में [ढः] ढ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शिलेयम् दधि (पत्थर के समान दृढ़ जमा हुआ दही) ॥

शाखादिभ्यो यत् ॥५।३।१०३॥

शाखादिभ्यः ५।३॥ यत् १।१॥ स०—शाखा आदिर्येषां ते शाखादयस्तेभ्यः.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शाखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शाखा इव शाख्यो मनुष्यः (गौणः) मुखम् इव मुख्यः (प्रधानः) ॥

भाषार्थः—[*शाखादिभ्यः*] शाखादि प्रातिपदिकों से इवार्थ में [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।३।१०४ तक जायेगी ॥

द्रव्यं च भव्ये ॥५।३।१०४॥

द्रव्यम् १।१॥ च अ० ॥ भव्ये ७।१॥ *अनु०*—यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थ*—द्रव्यशब्दो निपात्यते, भव्ये अभिधेये। किन्निपात्यते? द्रुशब्दाद् यत् प्रत्ययो निपात्यते भव्येऽभिधेये ॥

भाषार्थः—[द्रव्यम्] द्रव्य शब्द निपातन किया जाता है। सो क्या निपातन है? यह कहते हैं—द्रु शब्द से [च] भी [भव्ये] भव्य (आत्मवत्त्व = पात्रत्व) अभिधेय होने पर यत् प्रत्यय निपातन है॥ निपातन से इवार्थ संबद्ध नहीं होता॥ *उदा०*—द्रव्योऽयं राजपुत्रः (राजपुत्रादि गुणों का पात्र है, यह राजपुत्र) द्रव्योऽयं माणवकः ॥

कुशाग्राच्छः ॥५।३।१०५॥

कुशाग्रात् ५।१॥ छः १।१॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुशाग्रशब्दाद्, इवार्थे द्योत्ये छः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—कुशाग्रमिव सूक्ष्मत्वात् कुशाग्रीया बुद्धिः, कुशाग्रीयं वस्त्रम् ॥

भाषार्थः—[कुशाग्रात्] कुशाग्र शब्द से इवार्थ में [छः] छ प्रत्यय होता है॥ कुशा (तृण विशेष) का अग्र भाग बड़ा सूक्ष्म तीक्ष्ण नुकीला होता है, ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि को कुशाग्रीया बुद्धि कहेंगे॥

यहाँ से 'छः' की अनुवृत्ति ५।३।१०६ तक जायेगी ॥

समासाच्च तद्विषयात् ॥५।३।१०६॥

समासात् ५।१॥ च अ० ॥ तद्विषयात् ५।१॥ *स०*—स (इवार्थः) विषयो यस्य स तद्विषयस्तस्मात्.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तद्विषयात् = इवार्थविषयात् समासात् प्रातिपदिकाद् अपरस्मिन् इवार्थे द्योत्ये छः प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालम्, इत्येकस्मिन् इवार्थे समासः, अपरस्मिन् इवार्थे छः प्रत्ययः। काकतालमिव यत् कार्यम् तत् काकतालीयम्, अजाकृपाणीयम् अन्धकवर्त्तीयम् ॥

भाषार्थः—तद्विषयात् यहाँ तद् शब्द से प्रकरणस्थ इवार्थ ही लिया है। [*तद्विषयात्*] इवार्थ विषय है जिसका ऐसे [*समासात्*] समास में वर्त्तमान प्रातिपदिक से [च] भी छ प्रत्यय इवार्थ में होता है॥

तद्विषयात् कहने से एक इवार्थ में तो समास हुआ है यथा काकागमनमिव तालपतनमिव = कौए के आगमन के समान, ताल (पेड़) के गिरने के समान इस एक इवार्थ में काकताल ऐसा समास हुआ। उस काकताल के समान जो कार्य वह काकतालीय कार्य कहायेगा, इस दूसरे इवार्थ में छ प्रत्यय हुआ है, इसी को काकतालीय न्याय कहते हैं॥

किसी ताल के पेड़ के नीचे यों ही उड़ता हुआ कौआ आकर बैठ गया, उसके बैठते ही अकस्मात् यों ही स्वाभाविक रूप से ही ताल का पेड़ गिर पड़ा, सो उसके गिरते ही कौआ दबकर मर गया। किसी ने कुछ किया नहीं यों ही कौए की मृत्यु हो गई। यह काकतालीय कार्य हुआ। यह एक इवार्थ = उपमार्थ हुआ जिसमें काकताल का समास हुआ। उसी प्रकार कोई व्यक्ति यों ही कहीं पहुँच जाये, उसके वहाँ जाते ही चोर बिना उस व्यक्ति को जाने ही वहाँ पहुँच जायें और वह उसे मार दें तो यह उस व्यक्ति का वहाँ जाना, तथा चोरों का आना और उसका मारा जाना काकतालसदृश हुआ, सो यह मरना काकताल के वध के समान हुआ, यह दूसरा उपमार्थ है जिसमें 'छ' प्रत्यय हुआ। इस प्रकार उस व्यक्ति के वध को काकतालीय वध कहेंगे॥ इसी प्रकार अजाकृपाणीयम् यहाँ अजा का अकस्मात् कृपाण = तलवार के नीचे पड़ना, तलवार का अचानक गिरना, उससे अजा का वध होना, ऐसा आकस्मिक वधयोग अजाकृपाणीय कहाता है। अन्धकवर्तकीयम यहाँ अन्धे का आकस्मिक हाथ फैलाना और बतख का उसके हाथ पर बैठना अन्धे के द्वारा उसका पकड़ा जाना, ऐसा आकस्मिक प्राप्ति, योग अन्धकवर्तकीय कहाता है॥

शर्करादिभ्योऽण् ॥५।३।१०७॥

शर्करादिभ्यः ५।३॥ अण् १।१॥ *स०*—शर्करा आदिर्येषां ते शर्करादयस्तेभ्यः····बहुव्रीहिः॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्राति-

पदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शर्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा० शर्करा इव शार्करम्, कापालिकम् ॥

भाषार्थः—[*शर्करादिभ्यः*] शर्करादि प्रातिपदिकों से [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है इवार्थ में ॥ उदा०—शार्करम् (शर्करा के समान) कापालिकम् (कपाल के समान) ॥

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ॥५।३।१०८॥

अङ्गुल्यादिभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *स०*—अङ्गुली आदिर्येषां ते अङ्गुल्यादयस्तेभ्यः...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अङ्गुल्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अङ्गुलीवाङ्गुलिकः, भारुजिकः ॥

भाषार्थः—[*अङ्गुल्यादिभ्यः*] अङ्गुल्यादि प्रातिपदिकों से इवार्थ में [*ठक्*] ठक् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आङ्गुलिकः (उँगली के समान) भारुजिकः ॥

एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ॥५।३।१०९॥

एकशालायाः ५।१॥ ठच् १।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—एकशालाशब्दाद् इवार्थे ठच् प्रत्ययो भवति विकल्पेन । पक्षेऽनन्तरष्ठक् भवति ॥ *उदा०*—एकशाला इव एकशालिकः, ऐकशालिकः, ॥

भाषार्थः—[*एकशालायाः*] एकशाला प्रातिपदिक से इवार्थ में [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*ठच्*] ठच् प्रत्यय होता है । पक्ष में पूर्व सूत्र में कहा हुआ ठक् होगा । ठक् होने पर वृद्धि ७।२।११८ से होगी यही विशेष है ॥ *उदा०*—एकशालिकः (एकशाला=कमरे के समान छोटा घर) ऐकशालिकः ॥

कर्कलोहितादीकक् ॥५।३।११०॥

कर्कलोहितात् ५।१॥ ईकक् १।१॥ *स०*—कर्क० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—कर्क, लोहित इत्येताभ्यां शब्दाभ्याम् इवार्थे द्योत्य ईकक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्क (शुक्लोऽश्वः) इव कार्क्कीकः, लोहित इव लौहितीकः स्फटिकः ॥

भाषार्थः—[*कर्कलोहितात्*] कर्क (सफेद घोड़ा) लोहित शब्दों से इवार्थ द्योत्य हो तो [*ईकक्*] ईकक् प्रत्यय होता है ॥ कर्क+ईकक् = कर्क ईक = कार्क्कीकः (श्वेत अश्व के समान मूल्यवान्)। लौहितीकः (लाल रंग वाले मणि के समान स्फटिक। स्वयं श्वेत होता हुआ भी स्फटिक रक्तवर्ण वाले आधार के कारण लाल दिखाई देता है वह इस प्रकार कहा जाता है) ॥

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि ॥५।३।१११॥

प्रत्न·····मात् ५।१॥ थाल् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *स०*—प्रत्न० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—इवे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रत्न, पूर्व, विश्व, इम इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थे थाल् प्रत्ययो भवति, छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—प्रत्न इव प्रत्नथा। विश्व इव विश्वथा। इमथा। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ०५।४४।१) ॥

भाषार्थः—[*प्रत्न···मात्*] प्रत्न, पूर्व, विश्व, इम प्रातिपदिकों से इवार्थ में [*थाल्*] थाल् प्रत्यय होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥५।३।११२॥

पूगात् ५।१॥ ञ्यः १।१॥ अग्रामणीपूर्वात् ५।१॥ *स०*—ग्रामणी पूर्वोऽवयवो यस्य स ग्रामणीपूर्वः, न ग्रामणीपूर्वः अग्रामणीपूर्वस्तस्मात् ······बहुव्रीहिगर्भ नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अग्रामणीपूर्वात् पूगवाचिनः शब्दात् ञ्यः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ पूर्व शब्द इहावयववचनः ॥ *उदा०*—लौहध्वज्यः लौहध्वज्यौ लोहध्वजाः, शैब्यः शैब्यौ शिबयः ॥

भाषार्थः—अर्थ और काम में आसक्त पुरुषों के नानाजातीय और अनियत वृत्ति वाले समूह को पूग कहते हैं। [*अग्रामणीपूर्वात्*] ग्रामणी यदि पूर्व अवयव न हो जिसके ऐसे [*पूगात्*] पूगवाची प्रातिपदिक से

[*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥ लौहध्वज्यः । लोहध्वज नाम का पुरुष पूर्व अवयव = प्रधान है जिसका वह समुदाय भी लोहध्वज कहाता है उसी समुदायवाचक लोहध्वज शब्द से स्वार्थ में ञ्य होता है । इसी प्रकार शैब्यः में शिबिप्रधान समुदाय से ञ्य जानना चाहिए । जहाँ किसी पूग का ग्रामणीवाचक अवयव होगा वहाँ ञ्य नहीं होगा जैसे देवदत्त ग्रामणी अवयव है इस पूग का, इस अर्थ में देवदत्तकाः में *स एषां ग्रामणीः* (५।२।७८) से कन् होता है ॥ *ञ्यादयस्तद्राजाः*(५।३।११९) से यहाँ से लेकर, पाद की समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय कहे हैं, उनकी तद्राज संज्ञा कही है सो यहाँ '*लोहध्वजाः*' बहुवचन में *तद्राजस्य बहुषु०* (२।४।६२) से तद्राजसंज्ञक 'ञ्य' का लुक् हो गया है, ञ्य के हट जाने पर न *लुमताङ्गस्य* के नियम से वृद्धि आदि भी नहीं हुई । इसी प्रकार तद्राज संज्ञा का फल (बहुवचन में प्रत्यय का लुक् होना) अन्यत्र भी यही जानते जायें ॥

यहाँ से '*ञ्यः*' की अनुवृत्ति ५।३।११३ तक जायेगी ॥

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥५।३।११३॥

व्रातच्फञोः ६।२॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ *स०*—व्रातश्च च्फञ् च, व्रातच्फञौ, तयोः...... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ञ्यः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—व्रातवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः च्फञ् प्रत्ययान्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवत्यस्त्रियाम् ॥ *उदा०*— व्रातेभ्यः–कापोतपाक्यः कापोतपाक्यौ कपोतपाकाः । व्रैहिमत्यः व्रैहिमत्यौ व्रीहिमताः । च्फञ्प्रत्ययान्तेभ्यः—कौञ्जायन्यः कौञ्जायन्यौ कौञ्जायनाः, ब्राध्नायन्यः, ब्राध्नायन्यौ, ब्राध्नायनाः ॥

भाषार्थः—जो लोग जीवों को मार मार कर जीविका करें शस्त्रोपजीवी हों उनके संघ को व्रात कहते हैं ॥ [*व्रातच्फञोः*] व्रातवाची तथा च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है [*अस्त्रियाम्*] स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर ॥ कौञ्जायन्यः की सिद्धि परि० ४।१।९८ में देखें ॥

आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ॥५।३।११४॥

आयु...... ङ्घात् ५।१॥ ञ्यट् १।१॥ वाहीकेषु ७।१॥ अब्राह्मणराजन्यात् ५।१॥ *स०*—आयुधजीविनां सङ्घः आयुधजीविसङ्घः,

तस्मात्‌ ... षष्ठीतत्पुरुषः । ब्राह्मणश्च राजन्यश्च, ब्रा...न्यम्‌, न ब्राह्मण-राजन्यम्‌, अब्रा...न्यम्‌ तस्मात्‌— द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*— तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वाहीकदेश-विशेषेषु य आयुधजीविसङ्घस्तद्वाचिनो ब्राह्मणराजन्यवर्जितात्‌ प्राति-पदिकात्‌ स्वार्थे ञ्यट्‌ प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कौण्डीबृस्यः, कौण्डी-बृस्यौ, कौण्डीबृसाः । क्षौद्रक्यः, क्षौद्रक्यौ, क्षुद्रकाः । मालव्यः, मालव्यौ, मालवाः ॥

भाषार्थः—[*वाहीकेषु*] वाहीक देश विशेष में जो [*आयु.....ङ्घात्*] शस्त्र से जीविका कमाने वाले पुरुषों के समूहवाची प्रातिपदिक [*अब्रा.....त्*] ब्राह्मण और राजन्य को छोड़कर उनसे [*ञ्यट्*] ञ्यट्‌ प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*— कौण्डीबृस्य(कौण्डीबृस नाम वालों का संघ) ॥

यहाँ से '*आयुधजीविसङ्घात्*' की अनुवृत्ति ५।३।११७ तक जायेगी ॥

वृकाट्टेण्यण्‌ ॥५।३।११५॥

वृकात्‌ ५।१॥ टेण्यण्‌ १।१॥ *अनु०*— आयुधजीविसङ्घात्‌, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*— आयुधजीविसङ्घवा-चिनो वृकप्रातिपदिकात्‌ स्वार्थे टेण्यण्‌ प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*— वार्केण्यः, वार्केण्यौ, वृकाः ॥

भाषार्थः—आयुधजीविसङ्घवाची [*वृकात्*] वृक शब्द से [*टेण्यण्*] टेण्यण्‌ प्रत्यय स्वार्थ में होता है ॥ वृक + टेण्यण्‌=वृक्‌ एण्य = वार्केण्यः ॥

दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥५।३।११६॥

दाम.....ष्ठात्‌ ५।१॥ छः १।१॥ *स०*—दामनिरादिर्येषां ते दाम-न्यादयः, त्रिगर्तः षष्ठो येषां ते त्रिगर्तषष्ठाः, दामन्यादयश्च, त्रिगर्त्तषष्ठश्च. दा.....ष्ठम्‌ तस्मात्‌ ... बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*— आयुधजीविसङ्घात्‌, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्‌, प्रत्ययः, परश्च । *अर्थः*—दामन्यादिभ्यः त्रिगर्तषष्ठेभ्यश्च आयुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिप दिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । *उदा०*—दामनीयः दामनीयौ दाम

नयः। औलपीयः औलपीयौ औलपयः। त्रिगर्तषष्ठेभ्यः—कौण्डोपरथीयः कौण्डोपरथीयौ कौण्डोपरथाः, दाण्डकीयः, दाण्डकीयौ, दाण्डकयः।

भाषार्थः—[*दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठात्*] दामन्यादि गण पठित तथा त्रिगर्त्तषष्ठ शब्द जो आयुधजीविसङ्घवाची उनसे स्वार्थ में [*छः*] छ प्रत्यय होता है॥

त्रिगर्तषष्ठ ये गिनाए हैं—कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्रोष्टकि, जालमानि, ब्राह्मगुप्त, जानकि। जानकि का ही दूसरा नाम त्रिगर्त है॥

पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ ॥५।३।११७॥

पर्श्वा.....भ्याम् ५।२॥ अणञौ १।२॥ *स०*—पर्शु आदिर्येषां ते पर्श्वादयः बहुव्रीहिः। यौधेय आदिर्येषां ते यौधेयादयः बहुव्रीहि। पर्श्वादयश्च यौधेयादयश्च, पर्श्व...दयः ताभ्याम्.....इतरेतरद्वन्द्वः। अण् च अञ् च अणञौ इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—आयुधजीविसङ्घात्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—आयुधजीविसङ्घवाचिभ्यः पर्श्वादिभ्यः यौधेयादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यथासङ्ख्यमण् अञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः॥ *उदा०*—पार्शवः, पार्शवौ, पर्शवः। आसुरः, आसुरौ, असुराः। यौधेयादिभ्यः—यौधेयः शौक्रेयः॥

भाषार्थः—आयुधजीविसङ्घवाची [*पर्श्वा...भ्याम्*] पर्श्वादि तथा यौधेयादि गण पठित शब्दों से स्वार्थ में यथासङ्ख्य करके [*अणञौ*] अण् तथा अञ् प्रत्यय होते हैं॥ यौधेयः, शौक्रेयः में अञ् होने से आद्युदात्त स्वर होता है। यौधेयाः शौक्रेयाः दोनों बहुवचनान्त अन्तोदात्त हैं॥

अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रु-मदणो यञ् ॥५।३।११८॥

अभिजिद्.....दणः ५।१॥ यञ् १।१॥ *स०*—अभिजिच्च विदभृच्च शालावच्च शिखावच्च शमीवच्च ऊर्णावच्च श्रुमच्च अभिजि...श्रुमतः, इत्येतेषां अभिजिद्...श्रुमताम्, एष सम्बन्धी अण् अभिजिद्...श्रुमदण् तस्मात् द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—अभिजिदादिभ्योऽणन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अभिजितोऽपत्यमित्यण्-आभिजितः, तदन्ताद्यञ्—आभिजित्यः आभिजित्यौ आभिजिताः। वैदभृत्यः वैदभृत्यौ वैदभृताः। शालावत्यः शालावत्यौ शालावताः। शैखावत्यः शैखावत्यौ शैखावताः। शामीवत्यः शामीवत्यौ शामीवताः। और्णावत्यः और्णावत्यौ और्णावताः। श्रौमत्यः श्रौमत्यौ श्रौमताः। अत्रापत्यार्थकोऽण् विवक्षितो नान्यः ॥

भाषार्थः—[*अभिजि*...*दणः*] अभिजित्, विदभृत्, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत्, श्रुमत् सम्बन्धी जो अणन्त शब्द अर्थात् इन प्रातिपदिकों से उत्पन्न जो अण् प्रत्यय तदन्त शब्द से स्वार्थ में [*यञ्*] यञ् प्रत्यय होता है ॥ सर्वत्र उदाहरणों में अपत्यार्थक अण् की ही विवक्षा है, सो अभिजित् आदि शब्दों से *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) से अण् होकर पश्चात् यञ् प्रकृत सूत्र से हुआ है ॥ स्वार्थ में यञ् प्रत्यय होने से आभिजित्यः आदि का अर्थ अभिजित् का अपत्य इतना ही होगा ॥

ञ्यादयस्तद्राजाः ॥५।३।११९॥

ञ्यादयः १।३॥ तद्राजाः १।३॥ *स०*—ञ्य आदिर्येषां ते ञ्यादयः, बहुव्रीहिः ॥ *अर्थः*—ञ्यादयः प्रत्यया अर्थात् *पूगाञ्ञ्योऽग्रा०* (५।३।११२) इत्यतः प्रभृति ये प्रत्यया विहितास्ते तद्राजसंज्ञा भवन्ति ॥ तद्राजसंज्ञकस्य बहुषु लुग्भवति। तथा चैवोदाहृतम् ॥

भाषार्थः—[*ञ्यादयः*] ञ्यादि प्रत्ययों की, अर्थात् *पूगाञ्ञ्यो०* से लेकर यहाँ तक कहे गये प्रत्ययों की [*तद्राजाः*] तद्राज संज्ञा होती है ॥ तद्राज संज्ञा होने से *तद्राजस्य बहुषु०* (२।४।६२) से बहुवचन में प्रत्यय का लुक् हो जाता है, सो सर्वत्र ऐसा ही दिखा आये हैं ॥

॥ *इति तृतीयः पादः* ॥

—:०:—

चतुर्थः पादः

पादशतस्य सङ्ख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ॥५।४।१॥

पादशतस्य ६।१॥ सङ्ख्यादेः ६।१॥ वीप्सायाम् ७।१॥ वुन् १।१॥ लोपः १।१॥ च अ० ॥ स०—पादश्च शतञ्च, पादशतम् तस्य...... समाहारो द्वन्द्वः। सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिस्तस्मात्...... बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पादशतान्तस्य सङ्ख्यादेः प्रातिपदिकस्य वीप्सायां गम्यमानायाम् वुन् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन पादशतशब्दयोरन्तस्य लोपो भवति ॥ *उदा०*—द्वौ द्वौ पादौ ददाति = द्विपदिकां ददाति। द्वे द्वे शते ददाति = द्विशतिकां ददाति ॥

भाषार्थः—[*पादशतस्य*] पाद और शत शब्द अन्त वाले और [*सङ्ख्यादेः*] सङ्ख्यादि प्रातिपदिकों से [*वीप्सायाम्*] वीप्सा गम्यमान हो तो [*वुन्*] वुन् प्रत्यय होता है तथा प्रत्यय के साथ साथ पादशत का [*लोपः*] लोप [*च*] भी होता है॥ *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से पादशत के अन्त अकार का ही लोप होगा॥ 'द्वि औ पाद औ' यहाँ *तद्धितार्थो०* (२।१।५०) से समासादि होकर द्वि पाद = वुन् तथा पाद के अ का लोप होकर द्विपाद् वुन् रहा *पादः पत्* (६।४।१३०) से पद् आदेश होकर, द्विपद् अक टाप् *प्रत्ययस्थात् कात्०* (७।३।४४) लगकर द्विपदिकाम् (पाद = कार्षापण का चतुर्थ भाग, दो दो पाद देता है) द्विशतिकाम् (दो दो सौ देता है) बन गया॥

यहाँ से '*पादशतस्य सङ्ख्यादेः वुन् लोपश्च*' की अनुवृत्ति ५।४।२ तक जायेगी॥

दण्डव्यवसर्गयोश्च ॥५।४।२॥

दण्डव्यवसर्गयोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—दण्ड० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—पादशतस्य सङ्ख्यादेः वुन् लोपश्च, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दण्डव्यवसर्गयोर्गम्यमानयोः पादशतान्तस्य सङ्ख्यादेः प्रातिपदिकस्य वुन् प्रत्ययो भवति, अन्तलोपश्च ॥

उदा०—दण्डे—द्वौ पादौ दण्डितः द्विपदिकां दण्डितः, द्विशतिकां दण्डितः। व्यवसर्गे—द्वौ पादौ व्यवसृजति द्विपदिकां व्यवसृजति, द्विशतिकां, त्रिशतिकाम् ॥

भाषार्थः—[दण्डव्यवसर्गयोः] दण्ड तथा व्यवसर्ग = दान गम्यमान हो तो पाद तथा शतान्त सङ्ख्या आदि वाले प्रातिपदिकों से [च] भी वुन् प्रत्यय होता है, तथा पाद शत के अन्त का लोप भी होता है ॥ उदा०—द्विपदिकां दण्डितः (दो पाद दण्ड दिया गया) द्विशतिकाम् (दो सौ दण्ड दिया गया) द्विपदिकां व्यवसृजति (दो पाद दान देता है) द्विशतिकाम् (दो सौ दान देता है) ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥५।४।३॥

स्थूलादिभ्यः ५।३॥ प्रकारवचने ७।१॥ कन् १।१॥ *स०*—स्थूल आदिर्येषां ते स्थूलादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*-प्रकारवचने द्योत्ये स्थूलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—स्थूलप्रकारः = स्थूलकः अणुकः, माषकः ॥

भाषार्थः—[*स्थूलादिभ्यः*] स्थूलादि प्रातिपदिकों से [*प्रकारवचने*] प्रकारवचन द्योत्य हो तो [कन्] कन् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—स्थूलकः (स्थूल के समान बलवान्) अणुकः (अणु = व्रीहि विशेष उसके समान छोटा) माषकः (माष के समान मोटे मूँग आदि) ॥

यहाँ से 'कन्' की अनुवृत्ति ५।४।६ तक जायेगी ॥

अनत्यन्तगतौ क्तात् ॥५।४।४॥

अनत्यन्तगतौ ७।१॥ क्तात् ५।१॥ *स०*—अनत्य० इत्यत्र नञ्-तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनत्यन्तगतौ गम्यमानायां क्तान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भिन्नकः, छिन्नकः ॥

भाषार्थः—[*क्तात्*] क्त (प्रत्यय) अन्त वाले प्रातिपदिकों से [*अनत्यन्तगतौ*] अनत्यन्तगति = निरन्तर सम्बन्ध गम्यमान न हो तो कन् प्रत्यय

होता है ॥ *उदा०*—भिन्नकः (बीच बीच में से टूटा हुआ) छिन्नकः (बीच बीच में से कटा हुआ) ॥

यहाँ से 'क्तात्' की अनुवृत्ति ५।४।५ तक जायेगी ॥

न सामिवचने ॥५।४।५॥

न अ० ॥ सामिवचने ७।१॥ *अनु०*—क्तात्, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सामिवचन उपपदे क्तान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—सामिकृतम् सामिभुक्तम् । वचनग्रहणात् पर्यायेभ्योऽपि—अर्धकृतम् नेमकृतम् ॥

भाषार्थः—सामि आधे का वाचक शब्द है। [*सामिवचने*] सामिवाची शब्द उपपद हों तो क्तान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय [*न*] नहीं होता ॥ सामि आधे का वाचक है उस आधे भाग के साथ सम्बन्ध होने से पूर्व सूत्र से कन् प्राप्त था वचनग्रहण से सामि के पर्याय वाचियों से भी निषेध होता है ॥ *उदा०*—सामिकृतम् (आधा किया) नेमकृतम् (आधा किया) ॥

बृहत्या आच्छादने ॥५।४।६॥

बृहत्याः ५।१॥ आच्छादने ७।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—आच्छादने वर्त्तमानात् बृहतीशब्दात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बृहतिका ॥

भाषार्थः—[*आच्छादने*] आच्छादन=ढकने अर्थ में वर्त्तमान [*बृहत्याः*] बृहती प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ बृहतिका (उत्तरीय वस्त्र—स्त्रियों की ओढनी) ॥

अषडक्षाशितंग्वलंकर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥५।४।७॥

अष·····पदात् ५।१॥ खः १।१॥ *स०*—अधि उत्तरपदं यस्य स अध्युत्तरपदः, बहुव्रीहिः । ततोऽषड० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अषडक्ष, आशितंगु, अलंकर्मन्, अलंपुरुष इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽध्युत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—न विद्यन्ते षडक्षीणि

यस्मिन् स अषडक्षीणो मन्त्रः, आशिता गावोऽस्मिन्नरण्ये आशितङ्गवीनमरण्यम् । अलंकर्मणेऽलंकर्मीणः । अलंपुरुषाय अलंपुरुषीणः । अध्युत्तरपदात्—राजाधीनः ॥

भाषार्थः—[*अष .....पदात्*] अषडक्ष आशितंगु अलंकर्म, अलंपुरुष शब्दों से तथा अधिशब्द उत्तरपदवाले प्रातिपदिकों से स्वार्थ में [*खः*] ख प्रत्यय होता है ॥

विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ॥५।४।८॥

विभाषा १।१॥ अञ्चेः ५।१॥ अदिक्स्त्रियाम् ७।१॥ *स०*—दिक् चासौ स्त्री च दिक्स्त्री कर्मधारयस्तत्पुरुषः । न दिक्स्त्री अदिक्स्त्री तस्यां ...नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अञ्चत्यन्तात् प्रातिपदिकात् अदिक्स्त्रियां वर्तमानात् स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्राक्, प्राचीनम्, अर्वाक् अर्वाचीनम् ।

भाषार्थः—[*अञ्चेः*] अञ्चति उत्तरपद में है जिसके ऐसा जो प्रातिपदिक [*अदिक्स्त्रियाम्*] दिग्वाचक स्त्रीलिङ्ग न हो तो उससे स्वार्थ में [*विभाषा*] विकल्प से ख प्रत्यय होता है ॥

जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ॥५।४।९॥

जात्यन्तात् ५।१॥ छ अविभक्त्यन्तनिर्देशः ॥ बन्धुनि ७।१॥ *स०*—जातिरन्ते यस्य स जात्यन्तस्तस्मात् बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—जात्यन्तात् प्रातिपदिकात बन्धुनि = द्रव्ये वर्त्तमानात् स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—ब्राह्मणजातीयः ब्राह्मण इत्यर्थः, क्षत्रियजातीयः । जातिरस्मिन् बध्यते व्यज्यते तद् बन्धु द्रव्यमिति यावत् । द्वयोर्विभाषयोर्मध्येऽयं विधिरिति कृत्वा नित्यो भवति ॥

भाषार्थः—बन्धु शब्द से जाति जिसमें बद्ध हो वा व्यक्त हो वह द्रव्य कहाता है अर्थात् जाति की अभिव्यक्ति द्रव्याधीन होने से द्रव्य जाति का बन्धु कहाता है ॥ [*जात्यन्तात्*] जाति अन्त में है जिसके ऐसे प्रातिपदिक से [*बन्धुनि*] बन्धु = द्रव्य गम्यमान हो तो स्वार्थ में

[छ] छ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ब्राह्मणजातीयः = (ब्राह्मण जाति वाला अर्थात् ब्राह्मण व्यक्ति) क्षत्रियजातीयः ।

यहाँ से 'छ' की अनुवृत्ति ५।४।१० तक जायेगी ।

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥५।४।१०॥

स्थानान्तात् ५।१॥ विभाषा १।१॥ सस्थानेन ३।१॥ इति अ० ॥ चेत् अ० ॥ *स०*—स्थानशब्दः अन्ते यस्य स स्थानान्तस्तस्मात् बहुव्रीहिः ॥ समानं स्थानं यस्य तत् सस्थानं तेन.....बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—छः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्थानान्तात् प्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो विभाषा भवति सस्थानेन तुल्येन चेत् स्थानान्तमर्थवद् भवति ॥ *उदा०*—पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः । मातृस्थानीयः, मातृस्थानः ॥

भाषार्थः—[*स्थानान्तात्*] स्थानान्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प से होता है [*चेत्*] यदि [*सस्थानेनेति*] सस्थान तुल्य से स्थानान्त अर्थवत् हो ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥५।४।११॥

किमे.....घात् ५।१॥ आमु लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अद्रव्यप्रकर्षे ७।१॥ *स०*—किम् च एत् च तिङ् च अव्ययञ्च किमे...यानि, तेभ्यो विहितो यो घः किमे..... घः, तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः ॥ अद्र० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—किमः, एकारान्तात्, तिङन्तात्, अव्ययेभ्यश्च विहितो यो घस्तदन्तात् प्रातिपदिकाद् द्रव्यप्रकर्ष आमुः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—किंतराम् किंतमाम् । एकारान्तात्—पूर्वाह्णेतराम्, पूर्वाह्णेतमाम् । तिङन्तात्—पचतितराम् पचतितमाम् । अव्ययेभ्यः—उच्चैस्तराम् उच्चैस्तमाम् ॥

भाषार्थः—[*किमे.....घात्*] किम् एकारान्त तथा अव्ययों से विहित जो घ (तरप् तमप् प्रत्यय) तदन्त से [*आमु*] आमु प्रत्यय होता है [*अद्रव्यप्रकर्षे*] द्रव्य का प्रकर्ष न कहना हो तो ॥ *तरतमपौ घः*

(१।१।२१) से तरप् तमप् की घ संज्ञा कही है, सो वही यहाँ लेना है ।। किम् तरप् आम् = कितराम् (दो[1] में से अधिक कुत्सित)

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।४।१२ तक जायेगी ।।

अमु च च्छन्दसि ।।५।४।१२।।

अमु लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ।। च अ० ।। छन्दसि ७।१।। अनु०—किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—किम् एकारान्तात् तिङन्तात् अव्ययेभ्यश्च विहितो यो घः तदन्तात् अद्रव्यप्रकर्षे अमु, आमु च प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये ।। *उदा०*—प्रतरं नयामः । प्रतरां वस्यः ।।

भाषार्थः—किम्, एकारान्त, तिङन्त तथा अव्ययों से विहित जो घ प्रत्यय (तरप् तमप्) तदन्त से अद्रव्यप्रकर्ष अर्थ में [*छन्दसि*] वेद विषय में [*अमु*] अमु [*च*] तथा आमु प्रत्यय हो जाते हैं ।।

प्रतर् अमु = प्रतरम् । प्रतर् आमु = प्रतराम् । *स्वरादिनिपात०* (१।१।३६) से अव्यय संज्ञा होने से सु का लुक् (२।४।७१) हो जाता है ।।

अनुगादिनष्ठक् ।।५।४।१३।।

अनुगादिनः ५।१।। ठक् १।१।। अनुगदतीत्यनुगादी ।। अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—अनुगादिन्-शब्दात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—अनुगादी एव आनुगादिकः ।।

भाषार्थः—[*अनुगादिनः*] अनुगादिन् शब्द से स्वार्थ में [*ठक्*] ठक प्रत्यय होता है ।। *उदा०*—आनुगादिकः (पीछे बोलने वाला) ।।

णचः स्त्रियामञ् ।।५।४।१४।।

णचः ५।१।। स्त्रियाम् ७।१।। अञ् १।१।। *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—णजन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति स्त्रियां विषये ।। *उदा०*—व्यावक्रोशी, व्यावहासी ।।

---

१. यहाँ किम् शब्द कुत्सा में है । देखो शब्दकल्पद्रुम ।।

भाषार्थः—*कर्मव्यतिहारे णच्०* (३।३।४३) सूत्र से णच् प्रत्यय कहा है, उस [*णचः*] णजन्त प्रातिपदिक से [*अञ्*] अञ् प्रत्यय स्वार्थ में [*स्त्रियाम्*] स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥ सिद्धि ३।३।४३ सूत्र पर ही देखें ॥

अणिनुणः ॥५।४।१५॥

अण् १।१॥ इनुणः ५।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—इनुणन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—सांराविणम्, सांकूटिनम् ॥

भाषार्थः—*अभिविधौ भाव* इनुण् (३।३।४४) सूत्र से इनुण् प्रत्यय कहा है, तदन्त=[*इनुणः*] इनुणन्त शब्द से स्वार्थ में [*अण्*] अण् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि भाग १ पृ० ९०७—३।३।४४ सूत्र पर ही देखें ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ५।४।१६ तक जायेगी ॥

विसारिणो मत्स्ये ॥५।४।१६॥

विसारिणः ५।१॥ मत्स्ये ७।१॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विसारिन्शब्दात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति मत्स्येऽभिधेये ॥ *उदा०*—वैसारिणो मत्स्यः ॥

भाषार्थः—[*विसारिणः*] विसारिन् शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है [*मत्स्ये*] मत्स्य (मछली) अभिधेय हो तो ॥ *उदा०*—वैसारिणो मत्स्यः (विचरने वाली मछली) ॥

सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥५।४।१७॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ क्रियाभ्यावृत्तिगणने ७।१॥ कृत्वसुच् १।१॥ वर्त्तनं वृत्तिः ॥ अभितः आसमन्तात् वर्त्तनम् अभ्यावृत्तिः, (पौनःपुन्यमित्यर्थः) गतितत्पुरुषः । क्रियाया अभ्यावृत्तिः, क्रियाभ्यावृत्तिः षष्ठीतत्पुरुषः । क्रियाभ्यावृत्तेः गणनम् क्रिया···नम् तस्मिन्···षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानेभ्यः सङ्ख्यावाचिभ्यः शब्देभ्यः स्वार्थे कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वः, सप्तकृत्वः ॥

भाषार्थः—[*क्रि·····णने*] क्रिया के बार बार आवृत्ति=गणन अर्थ में वर्त्तमान [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से [*कृत्वसुच्*]

कृत्वसुच् प्रत्यय होता है ॥ पञ्चकृत्वः में पाँच बार (दिन में) हुई खाना क्रिया का गणन (गिनना) है, सो सङ्ख्यावाची पञ्चन् शब्द से कृत्वसुच् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने*' की अनुवृत्ति ५।४।२० तक जायेगी ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥५।४।१८॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः ५।३॥ सुच् १।१॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वि, त्रि, चतुर् इत्येतेभ्यः सङ्ख्याशब्देभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानेभ्यः सुच् प्रत्ययो भवति ॥ कृत्वसुचोऽपवादः ॥ *उदा०*—द्विर्भुङ्क्ते, त्रिर्भुङ्क्ते चतुर्भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[*द्वित्रिचतुर्भ्यः*] द्वि, त्रि, चतुर् इन सङ्ख्यावाची शब्दों से क्रियाभ्यावृत्तिगणन में वर्त्तमान हों तो [सुच्] सुच् प्रत्यय होता है ॥ द्वि + सुच् = द्वि स् = द्विः (दो बार) ॥

यहाँ से '*सुच्*' की अनुवृत्ति ५।४।१९ तक जायेगी ॥

एकस्य सकृच्च ॥५।४।१९॥

एकस्य ६।१॥ सकृत् १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—सुच्, क्रियाभ्यावृत्तिगणने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अभ्यावृत्तिस्त्विह न सम्बद्ध्यते, असम्भवात् ॥ *अर्थः*—एकशब्दस्य स्थाने सकृद् आदेशो भवति सुच् च प्रत्ययः क्रियागणनेऽर्थे ॥ *उदा०*—सकृद् भुङ्क्ते, सकृदधीते ॥

भाषार्थः—[*एकस्य*] एक शब्द के स्थान में [*सकृत्*] सकृत् आदेश होता है [च] तथा सुच् प्रत्यय होता है ॥ यह भी कृत्वसुच् का अपवाद है ॥ इस सूत्र में अभ्यावृत्ति की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं बैठता केवल क्रियागणने का ही लगेगा, क्योंकि एक में अभ्यावृत्ति = पौनः पुन्य सम्भव नहीं ॥ सकृत् सुच = सकृत् स् *संयोगान्तस्य लोपः*

(८।२।२३) से स् का लोप होकर सकृद् भुङ्क्ते (एक बार खाता है) ऐसा रहा ॥

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ॥५।४।२०॥

विभाषा १।१॥ बहोः ५।१॥ धा १।१॥ अविप्रकृष्टकाले ७।१॥ स०—विप्रकृष्टश्चासौ कालश्च विप्रकृष्टकालः, न विप्रकृष्टकालः अविप्रकृष्टकालः, कर्मधारयगर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानाद् बहुशब्दात् विभाषा धा प्रत्ययो भवत्यविप्रकृष्टकाले गम्यमाने ॥ कृत्वसुचोऽपवादः पक्षे सोऽपि भवति ॥ *उदा०*—बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते, बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[*अविप्रकृष्टकाले*] अविप्रकृष्टकालिक = आसन्नकालिक (अर्थात् शीघ्र होने वाली) क्रिया की अभ्यावृत्तिगणन अर्थ में वर्त्तमान [*बहोः*] बहु शब्द से [*विभाषा*] विकल्प से [*धा*] धा प्रत्यय होता है ॥ कृत्वसुच् का अपवाद है, सो पक्ष में वह भी होता है ॥ पूर्वसूत्र विहित कृत्वसुच् और सुच् विप्रकृष्ट क्रिया अभ्यावृत्ति के गणन में भी होता है यथा मासस्य पक्षस्य सप्ताहस्य वा पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते, चतुः भुङ्क्ते । धा प्रत्यय समीपवर्ती क्रिया अभ्यावृत्ति के गणन में ही होता है । *उदा०*—बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते (दिन में बहुत बार खाता है) बहुकृत्वः ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥५।४।२१॥

तत् १।१॥ प्रकृतवचने ७।१॥ मयट् १।१॥ *स०*—प्राचुर्येण कृतं प्रकृतम् गतिसमासः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रकृतवचने प्राचुर्येऽर्थे वर्तमानात् मयट् प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ *उदा०*—अन्नं प्रकृतम् = प्रभूतम् अन्नमयम्, अन्नमयी । अपूपमयम्, अपूपमयी । टकारो ङीबर्थः ॥

द्वितीयोऽर्थः—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रकृतवचनेऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अन्नमयं भोजनम्, अपूपमयं पर्व । प्रथमार्थे स्वार्थे प्रत्ययः, तेन अन्नस्यैव प्राचुर्यं द्योत्यते । द्वितीयार्थे अन्यार्थे प्रत्ययः । तेन अन्नस्य प्राचुर्यं यत्र तदुच्यते ।

भाषार्थः—[*तत्*] प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से जो [*प्रकृतवचने*] प्रकृत = प्रभूत अर्थ में वर्तमान है, उससे स्वार्थ में [*मयट्*] मयट् प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र के दो अर्थ हो सकते हैं सो द्वितीय अर्थ इस प्रकार है- प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से प्रकृत=प्रभूत अर्थ को कहने में मयट् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*— अन्नमयं भोजनम् (जिसमें अन्न की प्रधानता है ऐसा भोजन।) (अपूपमयं पर्व अपूपों की जिसमें अधिकता है वह पर्व)। प्रथम अर्थ में प्रथमा समर्थ की प्रभूतता को कहने में ही प्रत्यय होने से स्वार्थ में होता है। द्वितीय अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से प्रभूत अर्थ को कहने में प्रत्यय होता है, अर्थात् प्रभूत प्रत्ययार्थ बनता है ॥

यहाँ से '*तत्प्रकृतवचने*' की अनुवृत्ति ५।४।२२ तक जाएगी ॥

समूहवच्च बहुषु ॥५।४।२२॥

समूहवत् अ० ॥ च अ० ॥ बहुषु ७।३॥ *अनु०*—तत्प्रकृतवचने, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् बहुषुप्रकृतेषूच्यमानेषु समूहवत् प्रत्यया भवन्ति चकारात् मयट् च ॥ *उदा०*— मोदकाः प्राचुर्येण प्रस्तुताः—मौदकिकम् मोदकमयम्। शाष्कुलिकम् शष्कुलीमयम्। द्वितीयेऽर्थे—मौदकिकं मोदकमयं भोजनम्, आपूपिकम् अपूपमयं पर्व।

भाषार्थः—[*बहुषु*] बहुत प्रभूत अर्थ को कहने में प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से [*समूहवत्*] समूह अर्थो (४।२।३६) के अधिकार में जिस प्रकार प्रत्यय कहे हैं वे यहाँ भी हो जाते हैं, तथा [*च*] चकार से मयट् भी होता है ॥ यहाँ भी दो प्रकार का अर्थ है सो द्वितीय अर्थ इस प्रकार है—प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से बहुत प्रभूत अर्थ अभिधेय हो तो समूह अर्थों में कहे हुये के समान ही यहाँ भी प्रत्यय हो जाते हैं। पूर्व सूत्र में कहे अनुसार ही दोनों अर्थों का भेद समझ लेना चाहिये। द्वितीय अर्थ में—मौदकिकम् मोदकमयं जिस भोजन में मोदकों का प्राचुर्य है उसे कहा जायेगा मौदकिकं, शाष्कुलिकं में समूह अर्थों में कहा *अचित्तहस्ति०* (४।२।४६) से ठक् प्रत्यय होता है ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ् ञ्यः ॥५।४।२३॥

अनन्ता·····त् ५।१॥ ञ्यः १।१॥ स०—अनन्ता० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च । अर्थः—अनन्त, आवसथ, इतिह, भेषज इत्येतेभ्यः शब्देभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ उदा०—अनन्तम् एव आनन्त्यम्, आवसथ्यम्, ऐतिह्यम्, भैषज्यम् ॥

भाषार्थः—[*अन·····जात्*] अनन्त, आवसथ, इतिह, भेषज इन शब्दों से स्वार्थ में [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आनन्त्यम् (अनन्त) आवसथ्यम् (आवसथ = गृह) ऐतिह्यम् (इतिह = इतिहास) भैषज्यम् (भेषज = ओषधि) ॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥५।४।२४॥

देवतान्तात् ५।१॥ तादर्थ्ये ७।१॥ यत् १।१॥ तदर्थ एव तादर्थ्यम्, चातुर्वर्ण्यादित्वात् (५।१।१२३) स्वार्थे ष्यञ् ॥ अनु०—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—देवतान्तात् प्रातिपदिकात् (चतुर्थीसमर्थात्) तादर्थ्ये वाच्ये यत् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अग्निदेवतायै इदम् अग्निदेवत्यम् पितृदेवत्यम् ॥

भाषार्थः—[*देवतान्तात्*] देवता अन्त वाले प्रातिपदिक से [*तादर्थ्ये*] तादर्थ्य वाच्य हो तो [*यत्*] यत् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तादर्थ्ये*' की अनुवृत्ति ५।४।२६ तक तथा '*यत्*' की अनुवृत्ति ५।४।२५ तक जायेगी ॥

पादार्घाभ्यां च ॥५।४।२५॥

पादार्घाभ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ स०—पादा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ अनु०—तादर्थ्ये, यत्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पाद, अर्घ इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां (चतुर्थीसमर्थाभ्यां) तादर्थ्ये वाच्ये यत् प्रत्ययो भवति । तादर्थ्ये प्रत्ययविधानात् चतुर्थीसमर्थविभक्ति-र्लभ्यते ॥ *उदा०*—पादार्थमुदकं पाद्यम् । अर्घ्यार्थमुदकम् अर्घ्यम् ॥

भाषार्थः—[*पादार्घाभ्याम्*] पा~~द और अर्घ शब्दों से [च] भी तादर्थ्य~~ वाच्य हो तो यत् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—पाद्यम् (पैर धोने का जल) अर्घ्यम् (मुँह धोने का जल) ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥५।४।२६॥

अतिथेः ५।१॥ ञ्यः १।१॥ *अनु०*—तादर्थ्ये, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तादर्थ्ये वाच्येऽतिथिशब्दात् चतुर्थीसमर्थात् ञ्यः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अतिथये इदम् आतिथ्यम् ॥

भाषार्थः—तादर्थ्य वाच्य हो तो [*अतिथेः*] अतिथि शब्द से [*ञ्यः*] ञ्य प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—आतिथ्यम् (अतिथि के लिए किया गया सेवादि कर्म) ॥

देवात्तल् ॥५।४।२७॥

देवात् ५।१॥ तल् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—देवशब्दात् स्वार्थे तल् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—देव एव देवता ॥

भाषार्थः—[*देवात्*] देव शब्द से [*तल्*] तल् प्रत्यय होता है, स्वार्थ में ॥

अवेः कः ॥५।४।२८॥

अवेः ५।१॥ कः १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अविशब्दात् स्वार्थे कः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अविरेव अविकः ॥

भाषार्थः—[*अवेः*] अवि शब्द से स्वार्थ में [*कः*] क प्रत्यय होता है ॥ अवि भेड़ को कहते हैं सो अविकः भी भेड़ को कहेंगे ॥

यावादिभ्यः कन् ॥५।४।२९॥

यावादिभ्यः ५।३॥ कन् १।१॥ *स०*—याव आदिर्येषां ते यावादयस्तेभ्यः ...... बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यावादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—याव एव यावकः, मणिकः ॥

भाषार्थः—[*यावादिभ्यः*] यावादि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में [*कन्*] कन् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—यावकः (यव एव यावः, याव एव यावकः = जौ) मणिकः (मणि)॥

यहाँ से 'कन्' की अनुवृत्ति ५।४।३३ तक जायेगी॥

लोहितान्मणौ ॥५।४।३०॥

लोहितात् ५।१॥ मणौ ७।१॥ *अनु०*—कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—मणौ वर्तमानात् लोहितशब्दात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—लोहितो मणिः = लोहितकः॥

भाषार्थः—[*मणौ*] मणि विशेष में वर्त्तमान [*लोहितात्*] लोहित शब्द से कन् प्रत्यय स्वार्थ में होता है॥

यहाँ से '*लोहितात्*' की अनुवृत्ति ५।४।३२ तक जायेगी॥

वर्णे चानित्ये ॥५।४।३१॥

वर्णे ७।१॥ च अ०॥ अनित्ये ७।१॥ *अनु०*—लोहितात्, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अनित्ये वर्णे वर्त्तमानात् लोहितशब्दात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—लोहितकः कोपेन, लोहितकः पीडनेन॥

भाषार्थः—[*अनित्ये*] अनित्य [*वर्णे*] वर्ण में वर्त्तमान लोहित शब्द से [*च*] भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है॥ गुस्से से या पीडन = दबाने से मुख का लाल हो जाना क्षणिक अर्थात् अनित्य है, सो कन् हो गया॥

रक्ते ॥५।४।३२॥

रक्ते ७।१॥ *अनु०*—लोहितात्, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—रक्ते वर्त्तमानात् लोहितशब्दात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—लोहितकः कम्बलः, लोहितकः पटः॥

भाषार्थः—[*रक्ते*] रक्त = रङ्गा हुआ में वर्त्तमान लोहित शब्द से कन् प्रत्यय होता है॥

यहाँ से '*रक्ते*' की अनुवृत्ति ५।४।३३ तक जायेगी॥

कालाच्च ॥५।४।३३॥

कालात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*— रक्ते, कन्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ वर्णे चानित्ये इत्यप्यनुवर्त्तते मण्डूकप्लुतगत्या ॥ *अर्थः*—अनित्ये वर्णे, रक्ते च वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनित्ये वर्णे—कालकं मुखं वैलक्ष्येण । रक्ते—कालकः पटः ॥

भाषार्थः—अनित्य वर्ण, में तथा रक्त = रङ्गा हुआ, में वर्त्तमान [*कालात्*] काल प्रातिपदिक से [च] भी कन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०— कालकं मुखं वैलक्ष्येण (वैलक्ष्य = लज्जा से क्षणिक काला हुआ मुख) कालकः पटः (काले रंग से रङ्गा वस्त्र) ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ॥५।४।३४॥

विनयादिभ्यः ५।३॥ ठक् १।१॥ *स०*—विनय आदिर्येषां ते विनयादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—विनयादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—विनय एव वैनयिकः, सामयिकः, औपयिकः ॥

भाषार्थः—[*विनयादिभ्यः*] विनयादि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में [ठक्] ठक् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—वैनयिकः (विनयशील) सामयिकः (समय पर हुआ) औपयिकः (न्याय से मिली वस्तु) ॥

यहाँ से 'ठक्' की अनुवृत्ति ५।४।३५ तक जायेगी ॥

वाचो व्याहृतार्थायाम् ॥५।४।३५॥

वाचः ५।१॥ व्याहृतार्थायाम् ७।१॥ *स०*—व्याहृतः = प्रकाशितोऽर्थो यस्याः सा व्याहृतार्था वाक्, तस्यां······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—व्याहृतार्थायां वाचि वर्त्तमानायां वाक्शब्दात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—वाचिकं कथयति ॥

भाषार्थः—[*व्याहृतार्थायाम्*] व्याहृत = प्रकाशित वाणी अर्थ में वर्तमान [*वाचः*] वाच् शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ पहले

किसी ने कुछ संदेशा कहा, उस बात को उस संदेशवाहक ने जाकर कहा इसी को व्याहृतार्थ वाणी कहेंगे। *उदा०*—वाचिकं कथयति (संदेशा कहता है) ॥

यहाँ से '*व्याहृतार्थायाम्*' की अनुवृत्ति ५।४।३६ तक जायेगी ॥

तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ॥५।४।३६॥

तद्युक्तात् ५।१॥ कर्मणः ५।१॥ अण् १।१॥ *स०*—तया युक्तः तद्युक्तस्तस्मात्''तृतीयातत्पुरुषः ॥ *अनु०*—व्याहृतार्थायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तद्युक्तात् = व्याहृतार्थया वाचा युक्तात् कर्मन्शब्दात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कर्मैव कार्मणम् ॥

भाषार्थः—[*तद्युक्तात्*] उस व्याहृत वाणी से युक्त जो कर्म उस [*कर्मणः*] कर्मन् शब्द से [*अण्*] अण् प्रत्यय स्वार्थ में होता है ॥ संदेशवाणी को सुनकर, जो उसी संदेश के अनुसार काम किया जाता है, उसे कार्मणम् कहेंगे। यही उस 'कर्म' शब्द की तद्युक्तता है, कि उसी प्रकार (संदेशवाणी के अनुसार) काम किया गया ॥

यहाँ से '*अण्*' की अनुवृत्ति ५।४।३८ तक जायेगी ॥

ओषधेरजातौ ॥५।४।३७॥

ओषधेः ५।१॥ अजातौ ७।१॥ *स०*—अजातावित्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अजातौ वर्त्तमानाद् ओषधिशब्दात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—औषधं पिबन्ति, औषधं ददाति ॥

भाषार्थः—[*अजातौ*] जाति में वर्त्तमान न हो तो [*ओषधेः*] ओषधि शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ उदाहरण में ओषधि शब्द द्रव्य में वर्त्तमान है न कि जाति में ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ॥५।४।३८॥

प्रज्ञादिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—प्रज्ञ आदिर्येषां ते प्रज्ञादयस्तेभ्यः''''''बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—अण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रा-

तिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रज्ञादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रज्ञ एव प्राज्ञः ॥ वणिगेव वाणिजः ।

भाषार्थः—[*प्रज्ञादिभ्यः*] प्रज्ञादि प्रातिपदिकों से [च] भी स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥

मृदस्तिकन् ॥५।४।३९॥

मृदः ५।१॥ तिकन् १।१॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—मृत्प्रातिपदिकात् स्वार्थे तिकन् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मृदेव मृत्तिका ॥

भाषार्थः—[*मृदः*] मृद् प्रातिपदिक से [*तिकन्*] तिकन् प्रत्यय स्वार्थ में होता है ॥

यहाँ से '*मृदः*' की अनुवृत्ति ५।४।४० तक जायेगी ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥५।४।३०॥

सस्नौ १।२॥ प्रशंसायाम् ७।१॥ *अनु०*—मृदः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् मृद्शब्दात् स, स्न इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ *उदा०*—प्रशस्ता मृद् मृत्सा, मृत्स्ना ॥

भाषार्थः—[*प्रशसायाम्*] प्रशंसाविशिष्टअर्थ में वर्त्तमान मृद् शब्द से [*सस्नौ*] स तथा स्न प्रत्यय होते हैं ॥ *उदा०*—मृत्सा (उत्तम मिट्टी) मृत्स्ना ॥

यहाँ से '*प्रशंसायाम्*' की अनुवृत्ति ५।४।४१ तक जायेगी ॥

वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि ॥५।४।४१॥

वृकज्येष्ठाभ्याम् ५।२॥ तिल्तातिलौ १।२॥ च अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—प्रशंसायाम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानाभ्यां वृक, ज्येष्ठ इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासङ्ख्यं तिल् तातिल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतश्छन्दसि विषये ॥ *उदा०*—वृकतिः, ज्येष्ठतातिः ॥

भाषार्थः—प्रशंसा विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान [*वृकज्येष्ठाभ्याम्*] वृक तथा ज्येष्ठ शब्दों से यथासङ्ख्य करके [*तिल्तातिलौ*] तिल् तथा तातिल् प्रत्यय [*च*] भी होते हैं [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥ *उदा०*—वृकतिः (अधिक आदाता)ज्येष्ठतातिः (अधिक ज्येष्ठ) ॥

बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् ॥५।४।४२॥

बह्वल्पार्थात् ५।१॥ शस् १।१॥ कारकात् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—बहुश्च अल्पश्च बह्वल्पौ, बह्वल्पावर्थौ यस्य स बह्वल्पार्थस्तस्मात्...द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बह्वर्थात्, अल्पार्थाच्च कारकाभिधायिनः प्रातिपदिकात् विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बहूनि ददाति-बहुशो ददाति, बहुभिर्ददाति-बहुशो ददाति, भूरिशो ददाति । अल्पार्थेभ्यः—अल्पं ददाति-अल्पशो ददाति, अल्पेन ददाति—अल्पशो ददाति, स्तोकशो ददाति ॥

भाषार्थः—[*बह्वल्पार्थात्*] बहु अर्थ वाले तथा अल्प अर्थ वाले [*कारकात्*] कारकाभिधायी शब्दों से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से [*शस्*] शस् प्रत्यय होता है ॥ कारक सामान्य कहने से यहाँ छहों कारक लिये जायेंगे । 'कारकाभिधायी बहु, अल्प' ऐसा कहने से सम्बन्ध सम्बोधन विभक्ति वाले बह्वल्पार्थक शब्दों से शस् प्रत्यय नहीं होगा ॥ हमने छहों कारकों में उदाहरण गौरव होने से नहीं दिखाये हैं पाठक सब में समझ लें, रूप तो पूर्ववत् ही बनेंगे, केवल विग्रह वाक्य में ही भेद रहेगा ॥ अन्यतरस्याम् कहने से पक्ष में विग्रह वाक्य रहेगा ॥

यहाँ से 'शस्' की अनुवृत्ति ५।४।४३ तक तथा '*अन्यतरस्याम्*' की ५।४।४९ तक जायेगी ॥

सङ्ख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ॥५।४।४३॥

सङ्ख्यैकवचनात् ५।१॥ च अ० ॥ वीप्सायाम् ७।१॥ *स०*—उच्यत इति वचनम्, एकस्य वचनम् एकवचनम्, सङ्ख्या च एकवचनञ्च सङ्ख्यैकवचनम् तस्मात्.....'समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—शस्, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यावाचिभ्यः

प्रातिपदिकेभ्य एकवचनाच्च वीप्सायां द्योत्यायां विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सङ्ख्यावाचिभ्यः—द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति द्विशो ददाति, त्रिशो ददाति। एकवचनात्—कार्षापणं कार्षापणं ददाति कार्षापणशो ददाति, माषशो ददाति, पादशो ददाति ॥

भाषार्थः—[*सङ्ख्यैकवचनात्*] सङ्ख्यावाची प्रातिपदिकों से तथा एकवचन अर्थात् एक अर्थ को कहने वाले प्रातिपदिक से [च] भी विकल्प से [*वीप्सायाम्*] वीप्सा द्योतित हो रही हो तो शस् प्रत्यय होता है ॥ कार्षापण आदि शब्द परिमाणवाचक हैं। परिमाणी के बहुत्व होने पर भी परिमाणरूप में एक ही अर्थ कार्षापण आदि शब्दों से कहा जाता है ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥५।४।४४॥

प्रतियोगे ७।१॥ पञ्चम्याः ५।१॥ तसिः १।१॥ *स०*—प्रतिना योगः प्रतियोगस्तस्मिन् तृतीयातत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कर्मप्रवचनीयसंज्ञकेन प्रतिना योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात् तसिः प्रत्ययोऽन्यतरस्यां भवति ॥ *उदा०*—प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति, वासुदेवात् प्रति। अभिमन्युरर्जुनतः प्रति, अर्जुनात् प्रति ॥

भाषार्थः—कर्मप्रवचनीयसंज्ञक [*प्रतियोगे*] प्रतिशब्द के योग में जो पञ्चमी का विधान है [*पञ्चम्याः*] तदन्त पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से [*तसिः*] तसि प्रत्यय विकल्प से होता है ॥

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (१।४।९१) से प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा तथा *प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्* (२।३।११) से पञ्चमी विभक्ति कही है उस पञ्चम्यन्त वासुदेव तथा अभिमन्यु शब्दों से इस सूत्र से तसि प्रत्यय हो गया है। 'वासुदेव ङसि तसि' *सुपो धातु०* (२।४।७१) से विभक्ति लुक् होकर वासुदेव तस् सु रहा। *तद्धितश्चासर्ववि०* (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा एवं २।४।७१ से विभक्ति लुक् होकर वासुदेवतस् = वासुदेवतः बन गया ॥

यहाँ से '*पञ्चम्याः*' की अनुवृत्ति ५।४।४५ तक तथा '*तसि*' की ५।४।४९ तक जायेगी ॥

अपादाने चाहीयरुहोः ॥५।४।४५॥

अपादाने ७।१॥ च अ० ॥ अहीयरुहोः ६।२॥ स०—अहीय० इत्यत्र पूर्वं द्वन्द्वस्ततो नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—पञ्चम्याः, तसिः अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अपादाने या पञ्चमी विहिता तदन्तात् तसिः प्रत्ययो विकल्पेन भवति, तच्चेदपादानं हीयरुहोः सम्बन्धि न भवति ॥ *उदा०*—ग्रामत आगच्छति, ग्रामात् आगच्छति। चोरतो बिभेति, चोरात् बिभेति। अध्ययनत. पराजयते, अध्ययनात् पराजयते ॥

भाषार्थः—[*अपादाने*] अपादान कारक में [च] भी जो पञ्चमी विभक्ति, तदन्त से तसि प्रत्यय विकल्प से होता है, यदि वह अपादान कारक [*अहीयरुहोः*] हीय और रुह् सम्बन्धी न हो तो ॥ सिद्धि पूर्ववत् जानें ॥

अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्त्तरि तृतीयायाः ॥५।४।४६॥

अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु ७।३॥ अकर्त्तरि ७।१॥ तृतीयायाः ५।१॥ स०—अतिग्र० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः। अक० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तसिः, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अतिग्रह, अव्यथन, क्षेप इत्येतेषु विषयेषु या तृतीया तदन्तात् विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति, सा चेत् तृतीया कर्त्तरि न भवति ॥ *उदा०*—अतिग्रहे—वृत्तेनातिगृह्यते = वृत्ततो अतिगृह्यते, चारित्रेणातिगृह्यते—चारित्रतोऽतिगृह्यते। अव्यथने—वृत्तेन न व्यथते = वृत्ततो न व्यथते, चारित्रेण न व्यथते चारित्रतो न व्यथते। क्षेपे—वृत्तेन क्षिप्तः = वृत्ततः क्षिप्तः, चारित्रेण क्षिप्तः = चारित्रतः क्षिप्तः ॥

भाषार्थः—[*अति·····पेषु*] अतिग्रह, अव्यथन, क्षेप इन-इन विषयों में वर्त्तमान जो [*तृतीयायाः*] तृतीया विभक्ति तदन्त शब्द से तसि प्रत्यय होता है यदि वह तृतीया [*अकर्त्तरि*] कर्त्ता में न हुई हो ॥ कर्त्ता में तृतीया का निषेध करने से करण में जो तृतीया हुई होगी तदन्त से ही 'तसि' होगा। विकल्प कहने से विग्रह वाक्य भी पक्ष में रहेगा ॥ अतिग्रह = अन्यों को चरित्रादि के द्वारा अतिक्रमण करके गृहीत होना। अव्यथन = चलायमान = दुःखी न होना। क्षेप = निन्दा ॥ *उदा०*—वृत्ततोऽतिगृह्यते (वृत्त = उत्तम आचरण से अन्यों का अतिक्रमण करके

गृहीत होना) चारित्रतोऽतिगृह्यते। वृत्ततो न व्यथते (वृत्त = श्रेष्ठ आचार की कठोरता से चलायमान नहीं होता) चारित्रतो न व्यथते। वृत्ततो क्षिप्तः (दुराचार से निन्दित) चारित्रतः क्षिप्तः ॥

यहाँ से '*अकर्त्तरि तृतीयायाः*' की अनुवृत्ति ५।४।४७ तक जायेगी ॥

हीयमानपापयोगाच्च ॥५।४।४७॥

हीयमानपापयोगात् ५।१॥ च अ० ॥ *स०*—हीयमानश्च पापश्च, हीयमानपापे, हीय······भ्यां योगो यस्य हीय·····योगस्तस्मात्······ द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः॥ *अनु०*—अकर्त्तरि तृतीयायाः तसिः, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः परश्च ॥ *अर्थः*—हीयमानेन योगो यस्य पापेन च योगो यस्य तद्वाचिनः शब्दात् परा या तृतीया विभक्तिस्तदन्तात् वा तसिः प्रत्ययो विकल्पेन भवति, सा चेत् तृतीयाऽकर्त्तरि भवति ॥ *उदा०*—हीयमानेन योगात्—वृत्तेन हीयते = वृत्ततो हीयते, चारित्रेण हीयते, चारित्रतो हीयते। पापयोगात्—वृत्तेन पापः = वृत्ततः पापः, चारित्रेण पापः = चारित्रतः पापः ॥

भाषार्थः—[*हीय···त्*] हीयमान (रहित होने वाला) शब्द के साथ योग है जिस शब्द का तथा पाप शब्द के साथ योग (सम्बन्ध) है जिस शब्द का, ऐसे शब्दों से परे [च]भी जो तृतीया विभक्ति, तदन्त से तसि प्रत्यय विकल्प से होता है, यदि वह तृतीया कर्त्ता में न हुई हो तो ॥ वृत्त तथा चरित्र शब्द का हीयमान एवं पाप के साथ योग है सो तदन्त तृतीयान्त से तसि हो गया है ॥ *उदा०*—वृत्ततो हीयते (चरित्र से रहित होता है) वृत्ततः पापः (चरित्र से पापी) ॥

षष्ठ्या व्याश्रये ॥५।४।४८॥

षष्ठ्याः ५।१॥ व्याश्रये ७।१॥ नानापक्षसमाश्रयो व्याश्रयः ॥ *अनु०*—तसिः, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—व्याश्रये गम्यमाने षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकात् वा तसिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—देवा अर्जुनतोऽभवन्, आदित्याः कर्णतोऽभवन् ॥

भाषार्थः—[*व्याश्रये*] व्याश्रय गम्यमान हो तो [*षष्ठ्याः*] षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तसि प्रत्यय होता है ॥ भिन्न भिन्न पक्षों के आश्रयण करने को व्याश्रय कहते हैं ॥ *उदा०*—देवा अर्जुनतोऽभवन् (देव अर्जुन के पक्ष में हुए) आदित्याः कर्णतोऽभवन् (आदित्य कर्ण के पक्ष में हुए) ॥

यहाँ से '*षष्ठ्याः*' की अनुवृत्ति ५।४।४९ तक जायेगी ॥

रोगाच्चापनयने ॥५।४।४९॥

रोगात् ५।१॥ च अ० ॥ अपनयने ७।१॥ *अनु०*—षष्ठ्याः, तसिः, अन्यतरस्याम्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—रोगवाचिनः शब्दात् परा या षष्ठी विभक्तिस्तदन्तात् वा तसिः प्रत्ययो विकल्पेन भवत्यपनयने गम्यमाने ॥ अपनयनं प्रतीकारः, चिकित्सा ॥ *उदा०*—प्रवाहिकातः कुरु, कासतः कुरु, छर्दिकातः कुरु ॥

भाषार्थः—[*अपनयने*] अपनयन = चिकित्सा गम्यमान हो तो [*रोगात्*] रोगवाची शब्द से परे जो [च] भी षष्ठी विभक्ति तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तसि प्रत्यय होता है ॥ प्रवाहिका, कास आदि रोगवाची शब्द हैं ॥ *उदा०*—प्रवाहिकातः कुरुः (दस्त की चिकित्सा कर) कासतः (खांसी की चिकित्सा कर) छर्दिकातः कुरु (वमन की चिकित्सा कर) ॥

कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः ॥५।४।५०॥

कृभ्वस्तियोगे ७।१॥ संपद्यकर्त्तरि ७।१॥ च्विः १।१॥ *स०*—कृ च भू च अस्ति च कृभ्वस्तयः, कृभ्वस्तिभिर्योगः कृभ्वस्तियोगस्तस्मिन्··· द्वन्द्वगर्भतृतीयातत्पुरुषः । संपद्यस्य (श्यना निर्देशः) कर्त्ता संपद्यकर्त्ता तस्मिन्····· षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सम्पूर्वस्य पदधातोः कर्त्तरि वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात्, कृभ्वस्तिभिर्धातुभिर्योगे च्विः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अशुक्लः शुक्लः संपद्यते तं करोति शुक्ली करोति मलिनम् । शुक्ली भवति । शुक्ली स्यात् ॥

भाषार्थः—[*कृभ्वस्तियोगे*] कृ, भू, तथा अस् धातु के योग में [*संपद्यकर्तरि*] सम् पूर्वक पद धातु के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिक

से [*च्विः*] च्वि प्रत्यय होता है ॥ उदाहरण में शुक्ल शब्द 'संपद्यते' क्रिया का कर्त्ता भी है तथा कृ, भू एवं अस् के साथ उसका योग है ही सो च्वि हो गया है ॥ शुक्ल च्वि = शुक्ल व् , *अस्य च्वौ* (७।४।३२) से ईत्व एवं *वेरपृक्तस्य* (६।१।६५) से व् का लोप होकर शुक्ली बना पीछे सु का, अव्यय संज्ञा होकर, लोप हो ही जायेगा ॥ *च्विविधावभूततद्भावग्रहणम्* (*वा०* ५।४।५०) महाभाष्य की इस वार्त्तिक के अनुसार च्वि प्रत्यय अभूततद्भाव अर्थात् जो अभूत था = नहीं था तद्भाव = उसका होना गम्यमान होने पर होता है। जैसे उदाहरण में जो शुक्ल नहीं था वह शुक्ल होता है यह अभूततद्भाव है ॥ *उदा०*—शुक्ली करोति (जो सफेद नहीं उसे सफेद करता है) शुक्ली भवति, शुक्ली स्यात् ॥

यहाँ से '*कृभ्वस्तियोगे*' की अनुवृत्ति ५।४।५७ तक '*सपद्यकर्त्तरि*' की ५।४।५२ तक तथा '*च्विः*' की ५।४।५१ तक जायेगी ॥

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ॥५।४।५१॥

अरु......साम् ६।३॥ लोपः १।१॥ च अ० ॥ *स०*—अरु० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कृभ्वस्तियोगे सपद्यकर्त्तरि च्विः, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात् , प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कृभ्वस्तिभिर्योगे संपद्यकर्त्तरि वर्त्तमानानां अरुस् चक्षुस् चेतस् रहस् रजस् शब्दानामन्तस्य लोपो भवति च्विश्च प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेणैव च्विसिद्धे लोपार्थं पुनर्वचनम् ॥ *उदा०*—अनरुः अरुः संपद्यते तं करोति अरू करोति, अरू भवति, अरू स्यात् । मनस्—उन्मनी करोति, उन्मनी भवति, उन्मनी स्यात् । चक्षुस्—उच्चक्षू करोति, उच्चक्षू भवति, उच्चक्षू स्यात् । चेतस्—विचेती करोति, विचेती भवति, विचेती स्यात् । रहस्—विरही करोति, विरही भवति, विरही स्यात् । रजस्—विरजी करोति, विरजी भवति, विरजी स्यात् ॥

भाषार्थः—संपद्यते के कर्त्ता में वर्त्तमान [*अरुर्म...साम्*] अरुस् मनस् , चक्षुस् , चेतस् , रहस् , रजस् शब्दों के अन्त्य सकार का [*लोपः*] (*अलोन्त्यस्य* १।१।५१) कृ, भू , अस्ति के योग में हो जाता है तथा च्वि प्रत्यय भी होता है ॥

पूर्व सूत्र से ही च्वि प्रत्यय सिद्ध था पुनर्वचन अन्त्य सकार के लोप के लिये है ॥ अरुस् , चक्षुस् को छोड़कर, सर्वत्र सकार लोप करने के

पश्चात् अकारान्त अङ्ग हो जाता है, सो अस्य च्वौ (७।४।३२) से ईत्व हो जायेगा ॥ अरू करोति, चक्षू करोति में च्वौ च (७।४।२६) से दीर्घ हो जायेगा ॥ उदा०—अरू करोति (जो लाल खदिर नहीं उसे लाल खदिर बनाता है) उन्मनी करोति (जो उदास नहीं उसे उदास करता है) उच्चक्षू करोति (जो जागता नहीं उसे जगाता है) विचेती करोति (जिसको चेतना नहीं उसे चेताता है) विरही करोति (जो एकान्त स्थित नहीं उसे एकान्त में करता है) विरजी करोति (जो रजो गुण से रहित उसे रजोगुण युक्त करता है) ॥

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ॥५।४।५२॥

विभाषा १।१॥ साति लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ कार्त्स्न्ये ७।१॥ *अनु०*—कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संपद्यकर्त्तरि वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कृभ्वस्तियोगे कार्त्स्न्ये गम्यमाने सातिः प्रत्ययो भवति विभाषा ॥ *उदा०*—अग्निसाद्भवति शस्त्रम् । पक्षे—अग्नीभवति । उदकसाद्भवति लवणम् । पक्षे—उदकी भवति ॥

भाषार्थः—संपद्यते क्रिया के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कृ, भू, अस्ति के योग में [*कार्त्स्न्ये*] कार्त्स्न्य गम्यमान हो तो [*विभाषा*] विकल्प से [*साति*] साति प्रत्यय होता है । पक्ष में यथाप्राप्त च्वि होगा ॥ कार्त्स्न्य सम्पूर्णता को कहते हैं । अभूतद्भाव का सम्बन्ध यहाँ सर्वत्र जानना चाहिये ॥ *उदा०*—अग्निसाद्भवति (पूरा लोह पिण्ड अग्नि बन जाता है, उदकसाद्भवति लवणम् (पूरा नमक उदक बन जाता है) अग्नी भवति, उदकी भवति ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ५।४।५३ तक तथा '*साति*' की ५।४।५५ तक जायेगी ॥

अभिविधौ संपदा च ॥५।४।५३॥

अभिविधौ ७।१॥ संपदा ३।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—विभाषा, साति, कृभ्वस्तियोगे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अभिविधौ गम्यमाने कृभ्वस्तियोगे, सम्पूर्वात् पदधातुना च योगे विभाषा सातिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अग्निसात् संपद्यते, अग्नि-

साद्भवति, उदकसात् सम्पद्यते उदकसाद्भवति। पक्षे—अग्नी भवति, उदकी भवति ॥

भाषार्थ:—[*अभिविधौ*] अभिविधि = अभिव्याप्ति गम्यमान हो तो कृभ्वस्तियोग में तथा [*संपदा*] सम् पूर्वक पद धातु के योग में [*च*] भी विकल्प से साति प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में च्वि होगा और यह च्वि कृभ्वस्तियोग में ही होगा, न कि 'संपद' के योग में पूर्व सूत्र में कात्स्न्र्य अर्थ में प्रत्यय कहा है और यहाँ अभिविधि में। दोनों में भेद यह है कि जहाँ सम्पूर्ण द्रव्य विकारभाव को प्राप्त हो जाये, वह कात्स्न्र्य होगा। उदकसात्भवति लवणम् का अर्थ होगा नमक पूरा का पूरा जलरूप में परिणत हो गया। अभिविधि में अर्थ होगा जितना भी नमक है वह सब वर्षा में गीला हो जाता है। यहाँ लवण मात्र में अभिव्याप्ति है पूरी तरह उदक होना इष्ट नहीं ॥

यहाँ से '*संपदा*' की अनुवृत्ति ५।४।५५ तक जायेगी ॥

तदधीनवचने ॥५।४।५४॥

तदधीनवचने ७।१॥ *स०*—तस्याधीनं तदधीनं, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ तदधीनस्य वचनम्, तदधीनवचनम् तस्मिन् ····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—संपदा सातिः कृभ्वस्तियोगे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—तत् पदेन स्वामिसामान्यमुच्यते। स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् तदधीनवचने वाच्ये कृभ्वस्तिभिः संपदा च योगे सातिः प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—राजाधीनं करोति = राजसात् करोति, राजसाद्भवति, राजसात् स्यात्। संपदायोगे—राजसात् सम्पद्यते। एवं ब्राह्मणसात् करोति, ब्राह्मणसाद्भवति, ब्राह्मणसात् स्यात्, ब्राह्मणसात् संपद्यते ॥

भाषार्थः—तदधीनवचने में तत् पद से स्वामी सामान्य का ग्रहण है ॥ स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से [*तदधीनवचने*] ईशितव्य अभिधेय होने पर कृभ्वस्तियोग में तथा संपद के योग में साति प्रत्यय होता है ॥ यहाँ से आगे अभूततद्भाव का सम्बन्ध नहीं लगेगा ॥ *उदा०*—राजसात् करोति (राजा के आधीन करता है = राजा उसका स्वामी होता है) ॥

यहाँ से '*तदधीनवचने*' की अनुवृत्ति ५।४।५५ तक जायेगी ॥

देये त्रा च ॥५।४।५५॥

देये ७।१॥ त्रा १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—तदधीनवचने, संपदा, सातिः, कृभ्वस्तियोगे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ देयं = दातव्यम् ॥ *अर्थः*—कृभ्वस्तिभिः संपदा च योगे देये तदधीने वाच्ये त्रा प्रत्ययो भवति सातिश्च ॥ *उदा०*—ब्राह्मणाधीनं देयं करोति = ब्राह्मणत्रा करोति ब्राह्मणसात् करोति। ब्राह्मणत्रा भवति, ब्राह्मणसात् भवति। ब्राह्मणत्रा स्यात्, ब्राह्मणसात् स्यात्। ब्राह्मणत्रा सम्पद्यते, ब्राह्मणसात् सम्पद्यते ॥

भाषार्थः—देने योग्य जो वस्तु वह देय कहलाती है। यहाँ 'देये' पद तदधीनवचने का विशेषण है ॥ [देये] देय तदधीनवचन वाच्य हो तो कृभ्वस्तियोग तथा सम्पदा योग में [त्रा] त्रा [च] तथा साति प्रत्यय हो जाते हैं ॥ देय = देने योग्य जो वस्तु वह तद् = उसके (ब्राह्मण) के आधीन करता है अर्थात् देता है उसे ब्राह्मणत्रा करोति कहेंगे, सो जिसके आधीन किया जाता है (उसके वाचक शब्द से) प्रत्यय होगा ॥

यहाँ से '*त्रा*' की अनुवृत्ति ५।४।५६ तक जायेगी ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥५।४।५६॥

देव·····भ्यः ५।३॥ द्विती·····म्योः ६।२॥ बहुलम् १।१॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—त्रा, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीयासप्तम्यन्तेभ्यः, देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, मर्त्य इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो बहुलं त्रा प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—देवान् गच्छति = देवत्रा गच्छति, देवेषु वसति = देवत्रा वसति। मनुष्यान् गच्छति = मनुष्यत्रा गच्छति, मनुष्येषु वसति = मनुष्यत्रा वसति। पुरुषान् गच्छति = पुरुषत्रा गच्छति, पुरुषेषु वसति = पुरुषत्रा वसति। पुरून् गच्छति = पुरुत्रा गच्छति, पुरुषु वसति = पुरुत्रा वसति। मर्त्यान् गच्छति = मर्त्यत्रा गच्छति। मर्त्येषु वसति = मर्त्यत्रा वसति ॥ बहुलवचनादन्यत्रापि भवति—बहुत्रा जीवतो मनः ॥

भाषार्थः—[*द्वितीयासप्तम्योः*] द्वितीया, तथा सप्तमी विभक्त्यन्त [*देव·····भ्यः*] देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, तथा मर्त्य शब्दों से [*बहुलम्*]

बहुल करके त्रा प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में '*कृभ्वस्तियोगे*' की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं लगता ॥

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ॥५।४।५७॥

अव्यक्तानुकरणात् ५।१॥ द्व्यजवरार्धात् ५।१॥ अनितौ ७।१॥ डाच् १।१॥ *स०*—न व्यक्तमव्यक्तम् । अव्यक्तस्यानुकरणमव्यक्तानुकरणम्, तस्मात् नञ्गर्भषष्ठीतत्पुरुषः । द्वयोरचोः समाहारः द्व्यच्, तद् अवरार्धे यस्य तस्मात् समाहारगर्भबहुव्रीहिः । न इति अनिति तस्मिन् नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—कृभ्वस्तियोगे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः* – अव्यक्तानुकरणात् द्व्यजवरार्धात् प्रातिपदिकात् अनितौ परतः डाच् प्रत्ययो भवति कृभ्वस्तियोगे ॥ *डाचि बहुलं द्वे भवतः* इति विषयसप्तमी, तेन प्रत्ययोत्पत्तेः प्राक् द्विर्वचनम् । द्विर्वचने कृते यस्यावरार्धं द्व्यच् तस्मात् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—पटपटा करोति, पटपटा भवति, पटपटा स्यात् । दमदमा करोति, दमदमा भवति, दमदमा स्यात् ।

भाषार्थः – [*अव्यक्तानुकरणात्*] अव्यक्त शब्द (जिसमें अकारादि वर्ण व्यक्त न हों) के अनुकरण से [*द्व्यजवरार्धात्*] जिसमें अर्धभाग दो अच् वाला हो उससे कृ, भू अस्ति के योग में [*डाच्*] डाच् प्रत्यय होता है यदि [*अनितौ*] इति परे न हो तो ॥ प्रथम भाग पृ० ८१७ परि० १।३।९० में पटपटायति की सिद्धि की है, ठीक उसी क्रम से यहाँ भी पटपटा की सिद्धि होगी, तत्पश्चात् १।२।४६ से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सु आकर तथा सु का, अव्ययसंज्ञा होने से लोप होकर पटपटा बना पटपटा करोति अर्थात् पटत् पटत् आवाज करता है सो यहाँ अव्यक्त शब्द है ही ॥ द्वित्व कर लेने पर प्रत्यय की उत्पत्ति होती है, अतः 'पटत्पटत्' का अर्द्ध भाग 'पटत्' दो अच् वाला है ही सो प्रत्यय हो जाता है ॥

यहाँ से 'डाच्' की अनुवृत्ति ५।४।६७ तक जायेगी ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥५।४।५८॥

कृञः ५।१॥ द्विती···जात् ५।१॥ कृषौ ७।१॥ *स०*—द्विती० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,

परश्च ॥ *अर्थः*—द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज इत्येतेभ्यः शब्देभ्यः कृञो योगे कृषावभिधेयायां डाच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—द्वितीया करोति, तृतीया करोति, शम्बा करोति, बीजा करोति ॥

भाषार्थः—[*द्विती*‥*जात्*] द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज इन प्रातिपदिकों से [*कृञः*] कृञ् धातु के योग में [*कृषौ*] कृषि अभिधेय हो तो डाच् प्रत्यय होता है ॥ सर्वत्र उदाहरण में कृञ् का योग है ही ॥ *उदा०*—द्वितीया करोति (दूसरी बार हल चलाता है) तृतीया करोति (तीसरी बार हल चलाता है) शम्बा करोति (दूसरी बार हल चलाता है) बीजा करोति (बीज बोते हुए हल चलाता है) ॥ द्वितीय + डाच् = द्वितीय् आ = द्वितीया करोति ।

यहाँ से '*कृञः*' की अनुवृत्ति ५।४।६७ तक तथा '*कृषौ*' की ५।४।५९ तक जायेगी ॥

सङ्ख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥५।४।५९॥

सङ्ख्यायाः ५।१॥ च अ० ॥ गुणान्तायाः ५।१॥ *स०*—गुण शब्दोऽन्ते = समीपे यस्याः सा सङ्ख्या गुणान्ता, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कृञः, कृषौ, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गुणान्तायाः सङ्ख्यायाः कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति कृषौ वाच्ये ॥ *उदा०* – द्विगुणा करोति, त्रिगुणा करोति ॥

भाषार्थः—[*गुणान्तायाः*] गुण शब्द अन्त वाले [*सङ्ख्यायाः*] सङ्ख्यावाची शब्द से [*च*] भी कृञ् के योग में कृषि वाच्य हो तो डाच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—द्विगुणा करोति (दो बार जुताई करता है) ॥

समयाच्च यापनायाम् ॥५।४।६०॥

समयात् ५।१॥ च अ० ॥ यापनायाम् ७।१॥ *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यापनायां गम्यमानायां समयशब्दात् कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—समया करोति ॥

भाषार्थः—[*यापनायाम्*] यापना = बिताना गम्यमान हो तो [*समयात्*] समय शब्द से डाच् प्रत्यय होता है कृञ् के योग में ॥ *उदा०*—समया करोति (समय बिता रहा है = काट रहा है) ॥

सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने ।।५।४।६१।।

सपत्रनिष्पत्रात् ५।१।। अतिव्यथने ७।१।। *स०*—सपत्र० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। अतिव्यथनम् = अतिपीडनम् ।। *अर्थः*—सपत्र, निष्पत्र इत्येताभ्यां शब्दाभ्यामतिव्यथने गम्यमाने कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—सपत्रा करोति मृगं व्याधः, निष्पत्रा करोति ।।

भाषार्थः—[*सपत्रनिष्पत्रात्*] सपत्र तथा निष्पत्र शब्दों से [*अतिव्यथने*] अतिपीडन गम्यमान हो तो कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।। *उदा०*—सपत्रा करोति मृगं व्याधः (बाण के पुच्छ भाग पर लगे परों सहित मृग के शरीर में बाण को प्रविष्ट करता है) निष्पत्रा करोति (मृग को इतने वेग से बाण से बींधता है कि शर पत्र सहित दूसरी ओर से निकल जाता है) ।।

निष्कुलान्निष्कोषणे ।।५।४।६२।।

निष्कुलात् ५।१।। निष्कोषणे ७।१।। *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—निष्कोषणे वर्त्तमानात् निष्कुलशब्दात् कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—निष्कुला करोति पशून् ।।

भाषार्थः—[*निष्कोषणे*] निष्कोषण अर्थ में वर्त्तमान [*निष्कुलात्*] निष्कुल शब्द से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।। निष्कोषण अन्दर स्थित अवयवों के बाहर निकालने को कहते हैं ।। *उदा०*—निष्कुला करोति पशून् (पशुओं को इस तरह मारता है कि उसके आंत आदि अवयव बाहर निकल आते हैं) ।।

सुखप्रियादानुलोम्ये ।।५।४।६३।।

सुखप्रियात् ५।१।। आनुलोम्ये ७।१।। *स०*—सुख० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—आनुलोम्ये वर्त्तमानाभ्यां सुख प्रिय इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ।। *उदा०*—सुखा करोति, प्रिया करोति ।।

भाषार्थः—[*आनुलोम्ये*] अनुकूलता अर्थ में वर्त्तमान [*सुखप्रियात्*] सुख और प्रिय शब्दों से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।।

उदा०—सुखा करोति (स्वामी आदि के चित्त को प्राप्त करता है) प्रिया करोति (प्रिय करता है) ॥

दुःखात् प्रातिलोम्ये ॥५।४।६४॥

दुःखात् ५।१॥ प्रातिलोम्ये ७।१॥ अनु०—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—दुखशब्दात् कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति प्रातिलोम्ये गम्यमाने ॥ *उदा०*—दुखा करोति ॥

भाषार्थः –[*दुःखात्*] दुख शब्द से कृञ् के योग में [*प्रातिलोम्ये*] प्रतिकूलता गम्यमान हो तो डाच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—दुखा करोति (स्वामी आदि के चित्त को पीडा पहुँचाता है) ॥

शूलात् पाके ॥५।४।६५॥

शूलात् ५।१॥ पाके ७।१॥ *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पाके विषये शूलशब्दात् कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—शूला करोति मांसम् । शूलेन पचतीत्यर्थः ॥

भाषार्थः—[*पाके*] पकाना विषय हो तो [*शूलात्*] शूल शब्द से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—शूला करोति (शूल = लोहे की सलाई में लगाकर मांस पकाता है) ॥

सत्यादशपथे ॥५।४।६६॥

सत्यात् ५।१॥ अशपथे ७।१॥ *स०*—न शपथः अशपथस्तस्मिन्······ नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अशपथे वाच्ये सत्यशब्दात् डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे ॥ *उदा०*—सत्या करोति वणिक् भाण्डम् ॥

भाषार्थः—[*सत्यात्*] सत्य शब्द से [*अशपथे*] शपथ वाच्य न हो तो कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ॥ शपथ अर्थ का वाचक भी सत्य शब्द होता है सो उसका प्रतिषेध कर दिया ॥ *उदा०*—सत्या करोति वणिक् भाण्डम् (बर्तन मुझे खरीदना है ऐसा बनिया सत्य कहता है) ॥

मद्रात् परिवापणे ॥५।४।६७॥

मद्रात् ५।१॥ परिवापणे ७।१॥ अनु०—कृञः, डाच्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ परिवापणं मुण्डनम् ॥ *अर्थः*—मद्रशब्दात् परिवापणे कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—मद्रा करोति ॥

भाषार्थः—मद्र शब्द मङ्गल पर्यायवाची तथा परिवाप मुण्डन को कहते हैं ॥ [*मद्रात्*] मद्र शब्द से [*परिवापणे*] मुण्डन वाच्य हो तो कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—मद्रा करोति (शुभ मुण्डन को करता है) ॥

समासान्ताः ॥५।४।६८॥

समासान्ताः १।३॥ *स०*—समासस्य अन्तः समासान्तस्ते समासान्ताः, (प्रत्ययाः) षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अवयववाच्यत्रान्तशब्दः ॥ *अनु०*—तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अधिकारोऽयमापादपरिसमाप्तेः । इतोऽग्रे ये प्रत्यया विहितास्ते समासस्यावयवा भवन्तीति वेदितव्यम् ॥ *उदा०*—अव्ययीभावे प्रयोजनम्—उपराजम्, अधिराजम् । द्विगुसमासे—द्विपुरी, त्रिपुरी । द्वन्द्वसमासे—कोशनिषदिनी, स्रक्त्वचिनी । तत्पुरुषसमासे—विधुरः, प्रधुरः । बहुव्रीहिसमासे—उच्चैर्धुरः, नीचैर्धुरः ।

भाषार्थः—यह अधिकार सूत्र है, यहाँ से आगे पाद की समाप्ति पर्यन्त जो जो प्रत्यय विधान करेंगे [*समासान्ताः*] वे सब समास के अवयव, एकदेश होंगे ॥ अन्त शब्द यहाँ अवयव का पर्यायवाची है ॥ सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें तथा वहीं समास के अवयय होने का प्रयोजन समझें ॥

न पूजनात् ॥५।४।६९॥

न अ० ॥ पूजनात् ५।१॥ *अनु०*—समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूजनवचनात् प्रातिपदिकाद् उत्तरा ये शब्दास्तेभ्यः समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति ॥ *उदा०*—शोभनः राजा सुराजा, अतिशयितः राजा अतिराजा, सुगौः, अतिगौः ॥

भाषार्थः—[*पूजनात्*] पूजनवाची प्रातिपदिक से समासान्त (समासान्त अधिकार में कहे) प्रत्यय [न] नहीं होते ॥ *राजाहः सखिभ्यः०* (५।४।९१) *गोरतद्धितलुकि* (५।४।९२) से राजन् अन्त वाले एवं गौ अन्त वाले शब्दों से टच् प्रत्यय कहा है, सो वह टच् प्रत्यय पूजनवाची 'सु' तथा 'अति' से उत्तर वर्तमान राजन् और गौ शब्द से नहीं हुआ इससे अन्यत्र होगा ॥ उदा०— सुराजा (अच्छा राजा) अतिराजा (अच्छा राजा) सुगौः (अच्छी गौ) अतिगौः (अच्छी गौ) ॥ *स्वती पूजायाम्* इस वार्त्तिक से अति पूजार्थक भी है ॥

यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति ५।४।७२ तक जायेगी ॥

किमः क्षेपे ॥५।४।७०॥

किमः ५।१॥ क्षेपे ७।१॥ *अनु०*—न, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—क्षेपे वर्त्तमानो यः किंशब्दस्तस्मात् परेभ्यः समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति ॥ *उदा०*—किंराजा यो न रक्षति, किंसखा योऽभिद्रुह्यति, किंगौर्यो न वहति ॥

भाषार्थः—[*क्षेपे*] क्षेप = निन्दा में वर्त्तमान [*किमः*] किं शब्द से समासान्त प्रत्यय नहीं होते ॥ *राजाहः०* (५।४।९१) *गोरतद्धि०* (५।४।९२) से टच् प्राप्त था, नहीं हुआ ॥ किंराजा आदि में *किं क्षेपे* (२।१।६३) से समास हुआ है ॥

नञस्तत्पुरुषात् ॥५।४।७१॥

नञः ५।१॥ तत्पुरुषात् ५।१॥ *अनु०*—न, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नञः परे ये शब्दास्तदन्तात् तत्पुरुषात् समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति ॥ *उदा०*—अराजा, असखा, अगौः ॥

भाषार्थः—[*नञस्तत्पुरुषात्*] नञ् तत्पुरुष समास शब्दों से उत्तर जो राजादि शब्द तदन्त से समासान्त प्रत्यय नहीं होता ॥ पूर्ववत् उदाहरण में टच् प्राप्त था, नहीं हुआ ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ५।४।७२ तक जायेगी ॥

पथो विभाषा ॥५।४।७२॥

पथः ५।१॥ विभाषा १।१॥ *अनु०*—नञस्तत्पुरुषात्, न, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—नञः परो यः पथिन्शब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषात् समासान्तः प्रत्ययो विभाषा न भवति॥ *उदा०*—अपथम्, अपन्थाः॥

भाषार्थः—नञ् से उत्तर जो [*पथः*] पथिन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त प्रत्यय [*विभाषा*] विकल्प से नहीं होते॥ पूर्व सूत्र से नित्य निषेध प्राप्त होता था, उसका विकल्प से विधान किया है। अपथम् में *ऋक्पूरब्धू:०* से 'अ' प्रत्यय होकर 'अपथिन् अ' रहा। *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग का लोप होकर 'अपथ् अ सु' रहा। *अपथं नपुंसकम्* (२।४।३०) से नपुंसकलिङ्ग होने से सु को अम् (७।१।२४) होकर अपथम् बना॥ अपन्थाः में अ प्रत्यय नहीं हुआ है, इसकी सिद्धि में विशेष कार्य प्रथम भाग पृ० ७३३ परि० १।१।५५ के पन्थाः की सिद्धि में देखें॥

बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणात् ॥५।४।७३॥

बहुव्रीहौ ७।१॥ सङ्ख्येये ७।१॥ डच् १।१॥ अबहुगणात् ५।१॥ *स०*—बहुश्च गणश्च बहुगण, न बहुगणम् अबहुगणं, तस्मात्..... द्वन्द्वगर्भनञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सङ्ख्येये यो बहुव्रीहिर्वर्त्तते तस्मादबहुगणान्तात् प्रातिपदिकात् डच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—उपदशाः, उपविंशाः, उपत्रिंशाः, आसन्नदशाः, अदूरदशाः, अधिकदशाः, द्वित्राः, त्रिचतुराः, द्विदशाः॥

भाषार्थः—[*सङ्ख्येये*] सङ्ख्येय में वर्त्तमान [*बहुव्रीहौ*] बहुव्रीहि समास जो [*अबहुगणान्तात्*] बहु, गण शब्द अन्त में न हों उससे समासान्त [*डच्*] डच् प्रत्यय होता है॥ समासान्त डच् प्रत्यय को चित् करने का फल चितः (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर का बोध करना ही है, नहीं तो *बहुव्रीहौ०* (६।२।१) से पूर्वपद प्रकृति स्वर ही होता॥ सिद्धि सारी प्रथम भाग पृ० ८४५ परि० २।२।२५ में देखें॥

ऋक्पूरब्धू:पथामानक्षे ॥५।४।७४॥

ऋक्पूरब्धू:पथाम् ६।३॥ अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देश: ॥ अनक्षे ७।१॥ स०—ऋक् च पूर् च अप् च धुर् च पन्थाश्च ऋक्‥न्थानस्तेषां‥ इतरेतरद्वन्द्व: । अनक्षे इत्यत्र नञ्तत्पुरुष: ॥ अनु०—समासान्ता:, तद्धिता:, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—ऋक्, पूर्, अप्, धुर्, पथिन् इत्येवमन्तानां समासानाम् अ: प्रत्ययो भवति, अक्षसम्बन्धिनी या धूस्तदन्तस्य न भवति ॥ उदा०—न ऋचोऽस्य सन्तीति अनृच: । बह्वः ऋचोऽस्य सन्तीति बह्वृच: । अर्द्धा ऋक् अस्यास्तीति अर्द्धर्च: । पुर—ललाटपुरम्, नान्दीपुरम् । अप्—द्वीपम्, अन्तरीपम् समीपम् । धुर्—राज्ञ: धू: = राजधुरा, महाधुरा । पथिन्—जलपथ: ॥

भाषार्थ:—[ऋक्‥‥‥थाम्] ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, पथिन् ये शब्द अन्त में हैं जिस समास के तदन्त से समासान्त [अ] अ प्रत्यय होता है, [अनक्षे] यदि वह धुर् अक्ष सम्बन्धी न हो तो ॥ अनक्षे में (सम्बन्ध) षष्ठी के अर्थ में व्यत्यय से सप्तमी हुई है । चूंकि धुर् शब्द ही अक्ष अर्थ वाला होता है, अन्य ऋक् आदि नहीं, अत: सामर्थ्य से धुर् शब्द के साथ ही अनक्षे निषेध का सम्बन्ध लगता है, अन्य शब्दों के साथ नहीं । अक्ष सम्बन्धी धुर् होने पर अ प्रत्यय नहीं होगा । अक्ष धुरे का वाचक है[1] ॥ नञ् ऋच् अ, *तस्मान्नुडचि* (६।३।७२) से नुट् होकर अनृच: बह्वृच: आदि बना । ललाटस्य पुरम्, ललाटपुरम् (नगर विशेष की संज्ञा) में कोई विशेष नहीं है । द्वीपम् अन्तरीपम् की सिद्धि भाग १ पृ० ७२७ परि० १।१।५३ में की है । राजधुरा में टाप् हो ही जायेगा । महती धुरा महाधुरा में पूर्ववत् सब है, केवल महत् के तकार के स्थान में *आन्महत:समा०* (६।३।४४) से आत्त्व हुआ है । मह आ धुर् अ टाप् = महाधुरा । जलस्य पथ: जलपथ: में पूर्ववत् ही "जल ङस् पथिन् अ" समास इत्यादि तथा *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग का लोप होकर जलपथ: बना है ॥

---

१. नाक्षस्तप्यते भूरि भार: ऋ० १।१६४।१३॥

अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ॥५।४।७५॥

अच् १।१॥ प्रत्यन्ववपूर्वात् ५।१॥ सामलोम्नः ५।१॥ *स०*—प्रतिश्च अनुश्च अवश्च प्रत्यन्ववम्, प्रत्यन्वव पूर्वं यस्य तत् प्रत्यन्ववपूर्वम्, तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः। साम च लोम च सामलोम तस्मात्.....समाहारो द्वन्द्वः॥ *अनु०*—समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—प्रति, अनु, अव इत्येवंपूर्वात् सामान्तात् लोमान्ताच्च प्रातिपदिकाद् अच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—प्रतिसामम्, अनुसामम्, अवसामम्। प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम्॥

भाषार्थः—[*प्रत्यन्ववपूर्वात्*] प्रति, अनु, अव पूर्व वाले जो [*सामलोम्नः*] सामन् और लोमन् प्रातिपदिक उनसे समासान्त [*अच्*] अच् प्रत्यय होता है॥ 'प्रति सामन् अच्' यहाँ पूर्ववत् *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग का लोप होगा, शेष पूर्ववत् ही जानें॥

यहाँ से 'अच्' की अनुवृत्ति ५।४।८७ तक जायेगी॥

अक्ष्णोऽदर्शनात् ॥५।४।७६॥

अक्ष्णः ५।१॥ अदर्शनात् ५।१॥ *स०*—अदर्शनादित्यत्र नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—अच्, समासान्तः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—दर्शनादन्यत्र योऽक्षिशब्दस्तदन्तादच् प्रत्ययो भवति॥ *उदा०*—लवणमक्षि इव लवणाक्षम्, पुष्करमक्षि इव पुष्कराक्षम्॥

भाषार्थः—[*अदर्शनात्*] दर्शन = देखा जाता है जिससे इस विषय से अन्यत्र जो [*अक्ष्णः*] अक्षि शब्द तदन्त से अच् प्रत्यय समासान्त हो जाता है॥ अक्षि शब्द आँख का वाचक है, सो जहाँ मुख्यार्थ वृत्ति से दर्शन अर्थ होगा वहाँ अच् प्रत्यय नहीं होगा। *उपमितं व्याघ्रादिभिः०* (२।१।५५) से लवणाक्षम् आदि में समास हुआ है॥ पूर्ववत् सिद्धि में टि भाग का लोप जानें॥ *उदा०*—लवणाक्षम् पुष्कराक्षम्॥

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः॥५।४।७७॥

अचतुर·····गोष्ठश्वाः १।३॥ स०—अचतुर० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ अनु०—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थ—एते शब्दा अच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः, यथा—अविद्यमानानि चत्वारि यस्य सोऽचतुरः। विगतानि चत्वारि यस्य स विचतुरः। शोभनानि चत्वारि यस्य स सुचतुरः। तत एकादशशब्दा द्वन्द्वास्तथा च—स्त्री च पुमांश्च-स्त्रीपुंसौ, धेनुश्च अनड्वांश्च धेन्वनडुहौ, ऋक् च साम च ऋक्सामे, वाक् च मनश्च वाङ्मनसे[1], अक्षि च भ्रुवौ च अक्षिभ्रुवम्, दाराश्च गावश्च दारगवम्, ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम्, अत्र टिलोपश्च निपात्यते। नक्तं च दिवा च नक्तंदिवम्, अत्र समासोऽपि निपातनादेव भवति, एतौ सप्तम्यर्थवृत्तावव्ययौ शब्दौ। रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवम्, अत्र पूर्वपदस्य मान्तत्वमपि निपात्यते। अहनि च दिवा च अहर्दिवम्। वीप्सार्थोऽत्र विद्यते। अहनि अहनि इत्यर्थः। निपातनाद्ध वीप्सार्थे द्वन्द्वः॥ अतः परमेकोऽव्ययीभावः, तत्र *अव्ययं विभक्ति०* (२।१।६) इति साकल्ये समासः सह रजसा = सरजसमभ्यवहरति, रजोऽप्यपरित्यज्याभ्यवहरतीत्यर्थः, *अव्ययीभावे चाकाले* (६।३।७९) इति सहस्य सभावः। अतः परमेकस्तत्पुरुषः—निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम्। ततः षष्ठीसमासः—पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् (वर्षशतं पुरुषायुषं भवति)। अतः परं द्वौ द्विगू—द्वे आयुषी समाहृते द्व्यायुषम् त्र्यायुषम् *सङ्ख्यापूर्वो०* (२।१।५१) इति समासः। अतः परमेको द्वन्द्वः—ऋक् च यजुश्च ऋग्यजुषम्। अतः परं त्रयः कर्मधारयाः, जातश्चासौ उक्षा च जातोक्षः, महांश्चासौ उक्षा च महोक्षः, वृद्धश्चासौ उक्षा वृद्धोक्षः, *नस्तद्धिते* इति टिलोपो भवत्येव। ततः

---

१. यस्य 'वाङ्मनसी शुद्धे' (मनु०) इत्यत्र *विभाषा समासान्तो भवति* (प० ७३) इति परिभाषयाऽचोऽभावः॥

परमेकोऽव्ययीभावः, शुनः समीपमुपशुनम्, *अव्ययं विभक्ति०* इत्यनेन समीपार्थे समासः, *नस्तद्धिते* इत्यनेन श्वन्‌शब्दस्य टिलोपे प्राप्ते टिलोपाभावः संप्रसारणञ्च निपात्यते। ततः सप्तमीतत्पुरुषः—गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः॥

भाषार्थः—[*अचतु·····श्वाः*] अचतुर, विचतुर, सुचतुर, स्त्रीपुंस, धेन्वनडुह, ऋक्साम, वाङ्मनस्, अक्षिभ्रुव, दारगव, ऊर्वष्ठीव, पदष्ठीव, नक्तंदिव, रात्रिंदिव अहर्दिव, सरजस, निश्श्रेयस, पुरुषायुष द्व्यायुष, त्र्यायुष, ऋग्यजुष जातोक्ष महोक्ष, वृद्धोक्ष, उपशुन तथा गोष्ठश्व शब्द अच् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं॥ इनमें कहाँ अच् प्रत्यय के अतिरिक्त क्या क्या निपातन है, तथा कहाँ क्या क्या समास है यह सब विग्रह प्रदर्शन पूर्वक संस्कृत अंश में ही दिखा दिया है। सुगम होने से भाषार्थ में दुबारा नहीं लिखा है। अन्य कोई विशेष बात इन निपातनों में नहीं है॥

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ॥५।४।७८॥

ब्रह्महस्तिभ्याम् ५।२॥ वर्चसः ५।१॥ *स०*—ब्रह्म० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः, *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—ब्रह्म, हस्ति इत्येताभ्यां परो यो वर्चस्‌शब्दस्तदन्ताद-च् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—ब्रह्मणः वर्चः = ब्रह्मवर्चसम्, हस्तिनः वर्चः = हस्तिवर्चसम्॥

भाषार्थः—[*ब्रह्महस्तिभ्याम्*] ब्रह्म और हस्ति शब्द से उत्तर जो [*वर्चसः*] वर्चस् शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है॥ 'ब्रह्मन् ङस् वर्चस् अच् = ब्रह्म वर्चस् अ सु = ब्रह्मवर्चसम् (ब्राह्मण का तेज) हस्तिवर्चसम् (हाथी का तेज)॥

अवसमन्धेभ्यस्तमसः ॥५।४।७९॥

अवसमन्धेभ्यः ५।३॥ तमसः ५।१॥ *स०*—अवश्च सम् च अन्धश्च अवसमन्धाः तेभ्यः···इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अव सम् अन्ध इत्येतेभ्यः परो यस्तमस् शब्दस्तदन्तादच् प्रत्ययो भवति समा-

सान्तः ॥ उदा०—अवहीनं तमः अवतमसम्, सङ्गतं तमः सन्तमसम्, अन्धं तम अन्धतमसम् ॥

भाषार्थः—[*अवसमन्धेभ्यः*] अव, सम्, अन्ध इन शब्दों से उत्तर [*तमसः*] तमस् शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ॥ अवतमसम् (नष्ट हुआ अन्धकार) में *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से समास हुआ है। सन्तमसम् (सम्यक् छाया हुआ अन्धकार) में भी ऐसा ही जानें। अन्धयतीति अन्धम्, यहाँ णिजन्त से पचादि अच् किया, *णेरनिटि* (६।४।५१) से णिच् का लोप हो ही जायेगा पुनः अन्ध, तमस् का कर्मधारय समास होकर अन्धतमसम् (अत्यन्त गहन अन्धकार जिसमें हाथ को हाथ न सूझे) बना ॥

श्वसोवसीयःश्रेयसः ॥५।४।८०॥

श्वसः ५।१॥ वसीयःश्रेयसः ५।१॥ *स०*—वसी० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—श्वसःशब्दात् परौ यौ वसीयस्, श्रेयस् इत्येतौ शब्दौ तदन्ताद् अच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ उदा०—श्वोवसीयम्, श्वःश्रेयसम् ॥

भाषार्थः—[*श्वसः*] श्वस् शब्द से उत्तर [*वसीयःश्रेयसः*] वसीयस् और श्रेयस् शब्दों से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ॥ श्वो वसीयः = श्वोवसीयसम् ते भूयात् (कल अति प्रशस्त[1] हो) श्वःश्रेयः = श्वःश्रेयसम् (कल कल्याण हो) यहाँ *मयूरव्यंसकादयश्च* (२।२।७१) से समास हुआ है ॥

अन्ववतप्ताद्रहसः ॥५।४।८१॥

अन्ववतप्तात् ५।१॥ रहसः ५।१॥ *स०*—अनुश्च अवश्च तप्तश्च, अन्ववतप्तम् तस्मात्...समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनु, अव, तप्त इत्येतेभ्यः शब्देभ्यः परो यो रहस्शब्दस्तस्मात् समासान्तोऽच्

१. वसुशब्दः प्रशस्तवाची, तत ईयसुन्। श्वशब्द उत्तरपदस्य प्रशंसामाशीर्विषयतामाह, शब्दकल्पद्रुम।

प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अनुगतं रहः, अनुरहसम्, अवगतं रहः अवरहसम्, तप्तञ्च तद् रहसश्च तप्तरहसम् ॥

भाषार्थः—[*अन्ववतप्तात्*] अनु, अव, तथा तप्त शब्द से उत्तर जो [*रहसः*] रहस् शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ॥

कुगतिप्रादयः (२।२।१८) से अनुरहसम् (एकान्त देश को प्राप्त) अवरहसम् (एकान्त देश को प्राप्त) में समास हुआ है। तप्तरहसम् (तप्त-एकान्त स्थान को प्राप्त) में *विशेषणं०* (२।१।५६) से समास हुआ है ॥

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥५।४।८२॥

प्रतेः ५।१॥ उरसः ५।१॥ सप्तमीस्थात् ५।१॥ सप्तम्यां तिष्ठतीति सप्तमीस्थः, सुपि स्थः (३।२।४) इति कः प्रत्ययः ॥ *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्रतिशब्दात् परो य उरस्शब्दस्तदन्तादच् प्रत्ययो भवति समासान्तः स चेदुरस्शब्दः सप्तमीस्थो भवति = सप्तम्यां वर्त्तते ॥ *उदा०*—उरसि वर्त्तते = प्रत्युरसम् ॥

भाषार्थः—[*प्रतेः*] प्रति शब्द से उत्तर जो [*उरसः*] उरस् शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है, यदि वह उरस् शब्द [*सप्तमीस्थात्*] सप्तमीस्थ = सप्तमी विभक्ति के अर्थ वाला हो ॥ प्रति सु उरस् ङि अच् = प्रत्युरसम् (हृदय में वर्त्तमान) ॥

अनुगवमायामे ॥५।४।८३॥

अनुगवम् १।१॥ आयामे ७।१॥ *अनु०*—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनुगवमित्यच् प्रत्ययान्तं निपात्यत आयामेऽभिधेये ॥ *उदा०*—अनुगवं यानम् ॥

भाषार्थः—[*अनुगवम्*] अनुगव शब्द अच् प्रत्ययान्त [*आयामे*] आयाम = लम्बाई अभिधेय होने पर निपातन किया जाता है ॥

अनुगु यहाँ *यस्य चायामः* (२।१।१५) से समास होकर गो को *ओर्गुणः* (६।४।१४६) से वान्तादेश होकर अनुगवम् (यानम्) बना है ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ।।५।४।८४।।

द्विस्तावा १।१।। त्रिस्तावा १।१।। वेदिः १।१।। *अनु*०—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—द्विस्तावा त्रिस्तावा इति निपात्यते वेदिश्चेदभिधेया भवति । द्विस्तावती, त्रिस्तावती इत्येताभ्यां शब्दाभ्याम् अच् प्रत्ययः टिलोपः समासश्च निपात्यते । भस्याढे तद्धित इति च ङीपो निवृत्तिः । द्विस्तावा वेदिः, त्रिस्तावा वेदिः ।।

भाषार्थः—[*द्विस्तावा त्रिस्तावा*] द्विस्तावा, त्रिस्तावा ये शब्द [*वेदिः*] वेदि (यज्ञ की वेदि) अभिधेय हो तो निपातन किये जाते हैं ।।

द्विः तावत्, त्रिः तावत् शब्दों से अच् प्रत्यय तावत् के टि भाग का लोप एवं समास भी निपातन से किया जाता है ।।

यज्ञ में जितनी वेदि होती है, विकृति याग में यदि उससे दुगनी या तिगुनी वेदि बनाई जाये, तो उसे द्विस्तावा वेदिः, त्रिस्तावा वेदिः कहेंगे ।।

उपसर्गादध्वनः ।।५।४।८५।।

उपसर्गात् ५।१।। अध्वनः ५।१।। *अनु*०—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उपसर्गात् परो योऽध्वन् शब्दस्तदन्तादच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ।। *उदा*०—प्रगतोऽध्वानं = प्राध्वो रथः, प्राध्वं शकटम्, निरध्वम् प्रत्यध्वम् ।।

भाषार्थः—[*उपसर्गात्*] उपसर्ग से उत्तर जो [*अध्वनः*] अध्वन् शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।।

प्र अध्वन् अच् ६।४।१४४ से टि भाग का लोप होकर प्राध्व् अ सु = प्राध्वः बना ।। *उदा*०—प्राध्वो रथः (रथ) निरध्वम् (मार्ग से निकला हुआ) ।।

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ।।५।४।८६।।

तत्पुरुषस्य ६।१।। अङ्गुलेः ६।१।। सङ्ख्याव्ययादेः, ६।१।। *स*०—सङ्ख्या च अव्ययञ्च सङ्ख्याव्ययम्, सङ्ख्याव्ययमादिर्यस्य स सङ्ख्या-

व्ययादिस्तस्य ···द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ अनु०—अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्याव्ययादेः अङ्गुलिशब्दान्तस्य तत्पुरुषस्य अच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ उदा०—द्वे अङ्गुलीप्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्, त्र्यङ्गुलम् । अव्ययादेः—निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम्, अत्यङ्गुलम् ॥

भाषार्थः—[*सङ्ख्याव्ययादे*] सङ्ख्या, तथा अव्यय आदि में हैं जिस [*अङ्गुलेः*] अङ्गुलि शब्दान्त [*तत्पुरुषस्य*] तत्पुरुष (समास) के तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से '*तत्पुरुषस्य*' की अनुवृत्ति ५।४।१०५ तक तथा '*सङ्ख्याव्ययादेः*' की अनुवृत्ति ५।४।८८ तक जायेगी ॥

अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ॥५।४।८७॥

अहःसर्वै·····ण्यात् ५।१॥ च अ० ॥ रात्रेः ५।१॥ *स०*—अहः० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—तत्पुरुषस्य, सङ्ख्याव्ययादेः, अच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अहन्, सर्व, एकदेश, सङ्ख्यात, पुण्य सङ्ख्या, अव्यय इत्येतेभ्यः परो यो रात्रिशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाद् अच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ उदा०—अहश्च रात्रिश्च—अहोरात्रः, सर्वरात्रः । एकदेशे—पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः, अपररात्रः । सङ्ख्याता रात्रिः सङ्ख्यातरात्रः, पुण्या रात्रिः पुण्यरात्रः । सङ्ख्याव्ययादेः—द्वे रात्री समाहृते द्विरात्रः, त्रिरात्रः । अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः, नीरात्रः ॥

भाषार्थः—[*अहः···ण्यात्*] अहर्, सर्व, एकदेश, (वाचक शब्द) सङ्ख्यात तथा पुण्य इन शब्दों से उत्तर तथा सङ्ख्या और अव्यय से उत्तर [च] भी जो [*रात्रेः*] रात्रि शब्द, तदन्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ॥

अहन् और रात्रि का यहाँ द्वन्द्व समास ही अभीष्ट है न कि तत्पुरुष ॥ एकदेश शब्द से सूत्र में एकदेशवाची शब्द लिया है ॥ अहन् रात्रि अच् यहाँ यस्येति लोप एवं र् *अहनो रुविधौ०* (८।२।६८) वार्तिक से न् को रु *हशि* च (६।१।११०) से उत्वादि होकर अहोरात्रः बना है ॥ द्विरात्रः त्रिरात्रः की सिद्धि भाग १ पृ० ८४६ परि० २।४।२९ में देखें ॥

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥५।४।८८॥

अह्नः ६।१॥ अह्नः १।१॥ एतेभ्यः ५।३॥ अनु०—तत्पुरुषस्य सङ्ख्याव्ययादेः, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—एतेभ्यः = सङ्ख्याव्ययेभ्यः सर्वादिभ्य उत्तरस्याहन् इत्येतस्य समासान्तोऽह्न इत्ययमादेशो भवति तत्पुरुषे समासे ॥ *उदा०*—द्वयोरह्नोर्भवः द्व्यह्नः, त्र्यह्नः, । अव्ययात्—अहरतिक्रान्तः अत्यह्नः, निरह्नः । सर्वाह्नः, पूर्वाह्नः, अपराह्नः, सङ्ख्याताह्नः ॥

भाषार्थः—एतेभ्यः से पूर्वोक्त सङ्ख्याव्ययादेः तथा 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्यात्' का ग्रहण है ॥ [*एतेभ्यः*] सङ्ख्यावाची अव्ययवाची तथा सर्व, एकदेश, सङ्ख्यात और पुण्य शब्द से उत्तर [*अह्नः*] अहन् शब्द के स्थान में समासान्त [*अहनः*] अह्न आदेश होता है तत्पुरुष समास में ॥

सामर्थ्य से अहन् शब्द अहन् शब्द से उत्तर नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों शब्द ही दिन अर्थ के वाचक हैं अतः अहन् से उत्तर अहन् का उदाहरण नहीं बन सकता । पुण्य शब्द से उत्तर अहन् का भी ५।४।९० सूत्र में प्रतिषेध करेंगे, अतः उसका उदाहरण भी नहीं बन सकता ॥

यहाँ से '*अह्नोऽह्नः*' की अनुवृत्ति ५।४।९० तक जायेगी ॥

न सङ्ख्यादेः समाहारे ॥५।४।८९॥

न अ० ॥ सङ्ख्यादेः ५।१॥ समाहारे ७।१॥ *अनु०*—अह्नोऽह्नः तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यादेः समाहारे वर्त्तमानस्य तत्पुरुषस्याहर् शब्दस्याह्नादेशो न भवति ॥ पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥ *उदा०*—द्वे अहनी समाहृते द्व्यहः त्र्यहः ॥

भाषार्थः—[*संख्यादेः*] सङ्ख्या आदि वाले [*समाहारे*] समाहार में वर्त्तमान तत्पुरुष समास में अहर् शब्द को अह्न आदेश [*न*] नहीं होता ॥ पूर्व सूत्र से तत्पुरुष समास में अहर् को अह्न आदेश प्राप्त था,

समाहार में वर्त्तमान तत्पुरुष में यहाँ निषेध कर दिया। सिद्धि भाग १ पृ० ७०२ परि० १।१।२९ में देखें॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति ५।४।६० तक जायेगी॥

उत्तमैकाभ्यां च ॥५।४।९०॥

उत्तमैकाभ्याम् ५।२॥ च अ०॥ *स०*—उत्तमै० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—न अह्नोऽह्न, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—उत्तम, एक इत्येताभ्यां परस्याहः शब्दस्याह्नादेशो न भवति तत्पुरुषे समासे॥ अत्र उत्तमशब्दोऽन्त्यवाची, प्रकृतं पुण्यशब्दमाचष्टे॥ *उदा०*—पुण्यम् अहः पुण्याहः, एकम् अहः एकाहः॥

भाषार्थः—[*उत्तमैकाभ्याम्*] उत्तम और एक शब्दों से परे [च] भी तत्पुरुष समास में अहर् शब्द को अह्न आदेश नहीं होता॥५।४।८८ से प्राप्त था निषेध कर दिया॥ उत्तम शब्द यहाँ अन्त्य (अन्त में होने वाले)का वाची है, सो प्रकरणस्थ *अहः सर्वै०* में पुण्य शब्द अन्त में आता है, अतः उत्तम शब्द से पुण्य शब्द का ही निर्देश है। पाणिनि जी ने वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिये साफ-साफ पुण्य शब्द न रखकर उत्तम शब्द ही सूत्र में रखा है॥[1] पुण्याहः में *विशेषणं विशे०* (२।१।५६) से समास होगा, तथा एकाहः में *पूर्वकालैकसर्व०* (२।१।४८) से होगा॥

राजाहःसखिभ्यष्टच् ॥५।४।९१॥

राजाहःसखिभ्यः ५।३॥ टच् १।१॥ *स०*—राजा च अहश्च सखा च राजाहःसखायस्तेभ्यः.......इतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—राजन्, अहन्, सखि इत्येवमन्तात् तत्पुरुषात् टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥

---

१. कई व्याख्याता उपोत्तम (पुण्य से पूर्ववर्त्ती)से संख्यात शब्द का ग्रहण करने के लिए उत्तम शब्द का निर्देश मानते हैं यथा—संख्याताहः। हमारे विचार में लोक में उत्तमाहः' का प्रयोग होने से (द्र० हैम लिङ्गा०) उत्तम शब्द से स्वरूप और तत्पर्यायभूत पुण्य शब्द का निर्देश जानना चाहिए॥

उदा०—महान् चासौ राजा च महाराजः, मद्रराजः। परमम् अहः परमाहः, उत्तमम् अहः उत्तमाहः। राज्ञः सखा राजसखः, ब्राह्मणसखः॥

भाषार्थः—[*राजाहःसखिभ्यः*] राजन्, अहन्, सखि ये शब्द अन्त वाले तत्पुरुष समास से समासान्त [टच्] टच् प्रत्यय होता है॥ महत् सु राजन् सु, *आन्महतः०* (६।३।४४) से महत् के न् को आत्व तथा टच् होकर मह आ राजन् टच् रहा। टि भाग का लोप (६।४।१४४) होकर महाराज् अ सु = महाराजः बना। टच् प्रत्यय होने पर महाराज शब्द अकारान्त हो गया नकारान्त नहीं रहा सो इसके रूप पुरुष शब्द के समान चलेंगे, राजन् के समान नहीं, इसी प्रकार सर्वत्र टच् करने से यही लाभ हुआ ऐसा समझें॥ राजसखः में षष्ठीतत्पुरुष समास है। पूर्ववत् समासादि होकर 'राजसखि टच् सु' रहा, यस्येति लोप होकर राजसख् अ सु = राजसखः बना॥

यहाँ से 'टच्' की अनुवृत्ति ५।४।११२ तक जायेगी॥

गोरतद्धितलुकि ॥५।४।९२॥

गोः ५।१॥ अतद्धितलुकि ७।१॥ *स०*—तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक्, षष्ठीतत्पुरुषः। न तद्धितलुक् अतद्धितलुक् तस्मिन् ···· नञ्तत्पुरुषः॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—गोशब्दान्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः, स चेत् तत्पुरुषस्तद्धितलुकि न भवति॥ *उदा०*—परमश्चासौ गौश्च परमगवः, उत्तमगवः, पञ्चगवम्, दशगवम्॥

भाषार्थः—[*गोः*]गो शब्दान्त तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, यदि वह तत्पुरुष [*अतद्धितलुकि*] तद्धित लुक् विषयक न हो अर्थात् तद्धित प्रत्यय का लुक् न हुआ हो तो॥

परम सु गो सु यहाँ *तद्धितार्थो०* (२।१।५०) से समास तथा टच् होकर परमगो टच्, *एचोयवायावः* (६।१।७५) लगकर परमगवः (उत्तम गाय) बना॥

अग्राख्यायामुरसः ॥५।४।९३॥

अग्राख्यायाम् ७।१॥ उरसः ५।१॥ *स०*—अग्रस्य प्रधानस्य आख्या अग्राख्या तस्यां·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उरःशब्दान्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः स चेदुरोऽग्राख्यायां भवति ॥ *उदा०*—अश्वानाम् उरः अश्वोरसम्, हस्त्युरसम् ॥

भाषार्थः—[*अग्राख्यायाम्*] अग्र = प्रधान की आख्या में वर्त्तमान [*उरसः*] उरस् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ शरीर के अवयवों में उर (छाती) एक प्रधान अङ्ग है उसी प्रकार अन्य जो सजातीयों में प्रधान हो वह भी उरः कहाता है। *उदा०*—अश्वोरसम् (अश्वों में प्रधान श्रेष्ठ)[1] हस्त्युरसम् (हाथियों में प्रधान श्रेष्ठ) ॥

अनोश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः ॥५।४।९४॥

अनो·····साम् ६।३॥ जातिसंज्ञयोः ७।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनस्, अश्मन्, अयस्, सरस् इत्येवमन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः जातौ संज्ञायां च विषये ॥ *उदा०*—जातौ—उपगतं अनः, उपानसम्, अमृतः अश्म अमृताश्म, कालायसम् मण्डूकस्य रसं मण्डूकरसम्। संज्ञायाम्—महत् अनः महानसम्, पिण्डम् अश्म पिण्डाश्म, लोहितायसम जलस्य सरः जलसरसम् ॥

भाषार्थः—[*अनो·····साम्*] अनस्, अश्मन्, अयस्, सरस् ये शब्द अन्त में हों जिस तत्पुरुष समास के, तदन्त से [*जातिसंज्ञयोः*] जाति तथा संज्ञा विषय में समासान्त, टच् प्रत्यय होता है ॥

उपानसम् में *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से समास हुआ है। उप-अनस् टच् सु = उपानसम् (जाति विशेष)। महानसम् (पाकशाला)में

---

१. रावणार्जुनीय काव्य मे इस सूत्र के प्रसङ्ग में 'अश्वोरसम्, हस्त्युरसम् पद सैन्य के विशेषणभूत है वह विचारणीय है ॥

भी *सन्महत्परमो०* (२।१।६०)से समास होगा। अमृताश्म (जाति विशेष) एवं पिण्डाश्म (संज्ञा विशेष) में भी *विशेषणं०*(२।१।५६) से समास हुआ है॥ कालायसम् (लोह जाति) लोहितायसम् (ताम्र की संज्ञा) में कुछ विशेष नहीं है। मण्डूकसरसम् (अधिक मेढकों वाला तालाब) जलस-रसम् (प्रभूत जल वाला तालाब) यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है॥

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥५।४।९५॥

ग्रामकौटाभ्याम् ५।२॥ च अ०॥ तक्ष्णः ५।१॥ *स०*—ग्राम० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—ग्राम, कौट इत्येताभ्यां परो यस्तक्षन्शब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषात् टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—ग्रामस्य तक्षा ग्रामतक्षः। कुट्यां कूटे पर्वते वा भवः कौटः, कौटस्य तक्षा कौटतक्षः॥

भाषार्थः—[*ग्रामकौटाभ्याम्*] ग्राम तथा कौट शब्दों से उत्तर जो [*तक्ष्णः*] तक्षन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से [च] भी समासान्त टच् प्रत्यय होता है॥ पूर्ववत् टि भाग (६।४।१४४) का लोप होकर ग्रामतक्षः आदि बनेंगे॥ *उदा०*—ग्रामतक्षः (गांव का बढ़ई) कौटतक्षः (स्वतन्त्र बढ़ई अथवा पहाड़ का बढ़ई)॥

अतेः शुनः ॥५।४।९६॥

अतेः ५।१॥ शुनः ५।१॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अतिशब्दात् परो यः श्वन्शब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—अतिक्रान्तः श्वानम् अतिश्वो वराहः, अतिश्वः सेवकः॥

भाषार्थः—[*अतेः*] अति शब्द से उत्तर जो [*शुनः*] श्वन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है॥ *उदा०*—अतिश्वो वराहः (तेज भागने वाला सुवर) अतिश्वः सेवकः (अच्छा स्वामिभक्त नौकर)॥

यहाँ से '*शुनः*' की अनुवृत्ति ५।४।९७ तक जायेगी॥

उपमानादप्राणिषु ।।५।४।९७।।

उपमानात् ५।१।। अप्राणिषु ७।३।। *स०*—अप्रा० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ।। *अनु०*—शुनः, टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उपमानवाची यः श्वन् शब्दोऽप्राणिषु वर्त्तते तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ।। *उदा०*—आकर्षः श्वा इव आकर्षश्वः, फलकश्वः ।।

भाषार्थः—[*उपमानात*] उपमानवाची जो श्वन् शब्द [*अप्राणिषु*] प्राणिविशेष का वाचक न हो तो (अर्थात् कुत्ते का वाचक न हो तो) तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है।। उदाहरण में *उपमितं व्याघ्रा०* (२।१।५५) से समास होगा ।। *उदा०*—आकर्षः श्वा इव (खलिहान गत काष्ठ के समान) फलकश्वः (ढाल के समान) ।।

यहाँ से '*उपमानात्*' की अनुवृत्ति ५।४।९८ तक जायेगी ।।

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ।।५।४।९८।।

उत्तरमृगपूर्वात् ५।१।। च अ० ।। सक्थ्नः ५।१।। *स०*—उत्तर० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। *अनु०*—उपमानात्, टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ।। *अर्थः*—उत्तर, मृग, पूर्व इत्येतेभ्यः उपमानाच्च परो यः सक्थिशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ।। *उदा०*—उत्तरं सक्थ्नः उत्तरसक्थम्, मृगस्य सक्थि मृगसक्थम्, पूर्वं सक्थ्नः पूर्वसक्थम् ।। उपमानात्—फलकमिव सक्थि = फलकसक्थम् ।।

भाषार्थः—[*उत्तरमृगपूर्वात्*] उत्तर, मृग, पूर्व तथा उपमानवाची शब्दों से उत्तर [*च*] भी जो [*सक्थ्नः*] सक्थि शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ।। उत्तरसक्थम् (उरुका उत्तर भाग) पूर्वसक्थम् (उरुका पूर्व भाग) में पूर्वापर० (२।१।५७) से समास होगा । 'उत्तरसक्थि टच् सु' यहाँ यस्येति लोप होकर उत्तरसक्थम् बना । *उपमानानि०* (२।१।५४) से समास होकर फलकसक्थम् (फलक के समान चौड़ी उरु) में समास हुआ है ।।

नावो द्विगोः ॥५।४।९९॥

नावः ५।१॥ द्विगोः ५।१॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—नौशब्दान्तात् द्विगुसंज्ञकात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ द्वे नावौ समाहृते द्विनावम्, त्रिनावम्, द्विनावधनः, पञ्च नावः प्रिया यस्य पञ्चनावप्रियः॥

भाषार्थः—[*नावः*] नौ शब्द अन्त वाले [*द्विगोः*] द्विगु संज्ञक तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है॥ द्विनावधनः की सिद्धि भाग १ पृ० ८४२ परि० २।१।५० के पञ्चगवधनः के समान जानें॥ द्विनावम् में कोई विशेष नहीं है॥

यहाँ से '*नावः*' की अनुवृत्ति ५।४।१०० तक तथा '*द्विगोः*' की ५।४।१०१ तक जायेगी॥

अर्द्धाच्च ॥५।४।१००॥

अर्द्धात् ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—नावो द्विगोः, टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अर्द्धशब्दात् परो यो नौशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—अर्द्धं नावः = अर्द्धनावम्॥

भाषार्थः—[*अर्द्धात्*] अर्द्ध शब्द से उत्तर [च] भी जो नौ शब्द तदन्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय समासान्त हो जाता है॥ अर्द्धं नपुंसकम् (२।२।२) से अर्द्धनावम् (नौका का आधा) में समास हुआ है॥

यहाँ से '*अर्द्धात्*' की अनुवृत्ति ५।४।१०१ तक जायेगी॥

खार्याः प्राचाम् ॥५।४।१०१॥

खार्याः ५।१॥ प्राचाम् ६।३॥ *अनु०*—द्विगोः, अर्द्धात्, टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—खारीशब्दान्तात् द्विगुसंज्ञकात् तत्पुरुषादर्द्धशब्दाच्च परो यः खारीशब्दस्तदन्ताच्च टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः प्राचामाचार्याणां

मतेन ॥ उदा०—द्वे खार्यौ समाहृते द्विखारम्, द्विखारि। त्रिखारम्, त्रिखारि। अर्द्धं खार्याः = अर्द्धखारम्, अर्द्धखारि ॥

भाषार्थः—[*खार्याः*] खारी शब्दान्त द्विगुसंज्ञक तत्पुरुष से तथा अर्द्ध शब्द से उत्तर जो खारी शब्द तदन्त से टच् प्रत्यय समासान्त होता है, [*प्राचाम्*] प्राचीन आचार्यों के मत में ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में टच् होगा तो द्विखारम् आदि तथा पाणिनि मुनि के मत में नहीं होगा तो द्विखारि आदि प्रयोग बनेंगे, इस प्रकार दो पक्ष बनेंगे ॥ 'द्विखारि टच् सु' यस्येति लोप होकर द्विखारम् बना ॥ उदा०—द्विखारम् (दो खारी) द्विखारि, अर्द्धखारम् (आधी खारी) अर्द्धखारि ॥

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥५।४।१०२॥

द्वित्रिभ्याम् ५।३॥ अञ्जलेः ५।१॥ स०—द्विश्च त्रिश्च द्वित्री, ताभ्याम्.....इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वित्रिभ्यां परो योऽञ्जलिशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ उदा०—द्वे अञ्जली समाहृतौ द्व्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलम् ॥

भाषार्थः—[*द्वित्रिभ्याम्*] द्वि, त्रि से उत्तर जो [*अञ्जलेः*] अञ्जलि शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ *तद्धितार्थोत्त०* (२।१।५०) से पूर्ववत् समासादि कार्य जानें ॥ उदा०—द्व्यञ्जलम् (दो अञ्जलियाँ) त्र्यञ्जलम् ॥

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ॥५।४।१०३॥

अनसन्तात् ५।१॥ नपुंसकात् ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ स०—अन् च अश्च अनसौ, इत्येतौ अन्ते यस्य स अनसन्तस्तस्मात्.....द्वन्द्वगर्भ-बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अनन्तादसन्ताच्च नपुंसकलिङ्गात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तश्छन्दसि विषये ॥ उदा०—अनन्तात्—हस्तिचर्मे जुहोति ऋषभचर्मे जुहोति। असन्तात्—देवच्छन्दसानि, मनुष्यच्छन्दसानि ॥

भाषार्थः—[*नपुंसकात्*] नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान [*अनसन्तात्*] अनन्त तथा असन्त जो तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय होता है [*छन्दसि*] वेद विषय में ॥

हस्तिनः चर्म = हस्तिचर्म, तस्मिन् 'हस्तिचर्मे जुहोति' यहाँ पूर्ववत् चर्मन् के टि भाग का लोप जानें, टच् होने पर अकारान्त शब्द हो जाने से धनम् के समान रूप चलेंगे, ऊपर के सभी उदाहरणों में ऐसा जानें ॥

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ॥५।४।१०४॥

ब्रह्मणः ५।१॥ जानपदाख्यायाम् ७।१॥ *स०*—जानपदस्याख्या जानपदाख्या, तस्यां·····षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ब्रह्मन्शब्दान्तात् तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तो, जानपदाख्यायां ॥ *उदा०*—सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा = सुराष्ट्रब्रह्मः, अवन्तिब्रह्मः ॥

भाषार्थः—[*ब्रह्मणः*] ब्रह्मन् शब्दान्त तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, [*जानपदाख्यायाम्*] यदि समास के द्वारा ब्रह्मन् शब्द जानपद = जनपद में होने वाले की आख्या वाला हो तो ॥ पूर्ववत् टि लोप उदाहरणों में होगा ॥ *उदा०*—सुराष्ट्रब्रह्मः (सुराष्ट्र जनपद में होने वाला जो ब्रह्मा) अवन्तिब्रह्मः (अवन्ती जनपद में होने वाला ब्रह्मा) ॥

यहाँ से '*ब्रह्मणः*' की अनुवृत्ति ५।४।१०५ तक जायेगी ॥

कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ॥५।४।१०५॥

कुमहद्भ्याम् ५।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—कुश्च महत् च, कुमहान्तौ ताभ्याम्·····इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—ब्रह्मणः, टच्, तत्पुरुषस्य, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कु, महत् इत्येताभ्यां परो यो ब्रह्मन् शब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाद् विकल्पेन टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—कुत्सितो ब्रह्मा कुब्रह्मः, पक्षे कुब्रह्मा । महाब्रह्मः, महाब्रह्मा ॥

भाषार्थः—[*कुमहद्भ्याम्*] कु तथा महत् शब्द से परे जो ब्रह्मन् शब्द, तदन्त तत्पुरुष से [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से समासान्त टच

प्रत्यय होता है ॥ कुब्रह्मः में *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) तथा महाब्रह्मः में *विशेषण वि०* (२।१।५६) से समास हुआ है। जब टच् नहीं होगा तो कुब्रह्मा, महाब्रह्मा रूप बनेंगे सो नकारान्त के समान रूप चलेंगे, तथा टच् पक्ष में पूर्ववत् अकारान्त के समान ही रूप जाने ॥

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ॥५।४।१०६॥

द्वन्द्वात् ५।१॥ चुदषहान्तात् ५।१॥ समाहारे ७।१॥ *स०* – चुश्च दश्च षश्च हश्च, चुदषहम्, चुदषहम् अन्ते यस्य तत् चुदषहान्तम् तस्मात् द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—चवर्गान्तात्, दकारान्तात्, षकारान्तात् हकारान्ताच्च समाहारे वर्त्तमानात् द्वन्द्वाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—चवर्गान्तात्—वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्, स्रक् च त्वक् च स्रक्त्वचम्। श्रीस्रजम्, इडूर्जम्, वागूर्जम्। दकारान्तात्—समिद्दृषदम्, संपद्विपदम्। षकारान्तात्—वाग्विप्रुषम्। हकारान्तात्—छत्रोपानहम्, धेनुगोदुहम् ॥

भाषार्थः—[*चुदषहान्तात्*] चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त हकारान्त जो [*समाहारे द्वन्द्वात्*] समाहार द्वन्द्व में वर्त्तमान शब्द तदन्त से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचा) श्रीस्रजम् (श्री और माला) इडूर्जम् (वाणी और ऊर्ज) वागूर्जम् (वाणी और ऊर्ज) समिद्दृषदम् (समिधा और पत्थर) वाग्विप्रुषम् (वाणी और वेद) छत्रोपानहम् (छत्र और जूते) ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ॥५।४।१०७॥

अव्ययीभावे ७।१॥ शरत्प्रभृतिभ्यः ५।३॥ *स०*—शरत् प्रभृतिर्येषां ते शरत्प्रभृतयस्तेभ्यः...बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—शरत्प्रभृतिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽव्ययीभावे समासे टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—शरदः समीपम् उपशरदम्। शरदं प्रति प्रतिशरदम्। उपविपाशम्। प्रतिविपाशम् ॥

भाषार्थः—[*अव्ययीभावे*] अव्ययीभाव समास में [*शरत्प्रभृतिभ्यः*] शरदादि प्रातिपदिकों से समासान्त टच् प्रत्यय होता है॥ उपशरदम् (शरद् ऋतु के समीप) उपविपाशम् (विपाश नदी के समीप) में *अव्ययं वि०* (२।१।६) से समीपार्थ में समास, तथा प्रतिशरदम् (शरद् को अभिमुख करके) प्रतिविपाशम् में *लक्षणेनाभि०* (२।१।१३) से समास हुआ है॥

यहाँ से '*अव्ययीभावे*' की अनुवृत्ति ५।४।११२ तक जायेगी॥

अनश्च ॥५।४।१०८॥

अनः ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अनन्ताद-व्ययीभावाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—राज्ञः समीपम् उपराजम् अध्यात्मम् प्रत्यात्मम्॥

भाषार्थः—अव्ययीभाव समास में [*अनः*] अनन्त प्रातिपदिक उससे [*च*] भी समासान्त टच् प्रत्यय होता है॥ *नस्तद्धिते* से पूर्ववत् टि भाग का लोप होकर उपराजम् आदि प्रयोग बनेंगे॥

यहाँ से '*अनः*' की अनुवृत्ति ५।४।१०९ तक जायेगी॥

नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥५।४।१०९॥

नपुंसकात् ५।१॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *अनु०*—अनः, अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अन्नन्तं यन्नपुंसकं तदन्तादव्ययीभावाद् विकल्पेन टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः॥ *उदा०*—प्रतिचर्मम्, प्रतिचर्म। उपचर्मम्, उपचर्म॥

भाषार्थः—[*नपुंसकात्*] नपुंसक लिङ्ग में वर्त्तमान जो अनन्त अव्ययीभाव, तदन्त से समासान्त टच् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है॥ टच् पक्ष में टि भाग (६।४।१४४) का पूर्ववत् लोप होकर अकारान्त धन शब्द के समान रूप चलेंगे। जब टच् नहीं होगा, तो नकारान्त नामन् आदि के समान रूप जानें॥

यहाँ से '*अन्यतरस्याम्*' की अनुवृत्ति ५।४।११२ तक जायेगी॥

नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥५।४।११०॥

नदीपौ·····भ्यः ५।३॥ स०—नदी० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नदी पौर्णमासी आग्रहायणी इत्येवमन्तादव्ययीभावादन्यतरस्यां टच् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—नद्याः समीपम् उपनदम् उपनदि, उपपौर्णमासम् उपपौर्णमासि, उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि ॥

भाषार्थः—[*नदी····णीभ्यः*] नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी ये शब्द अन्त में हों जिस अव्ययीभाव समास में तदन्त से विकल्प करके समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ जब टच् नहीं होगा तो नदी आदि के ईकार को *गोस्त्रियोरुप०* (१।२।४८) से ह्रस्व हो जायेगा, टच् पक्ष में तो *यस्येति* च से लोप हीं हो जायेगा ॥

झयः ॥५।४।१११॥

झयः ५।१॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ झय इति प्रत्याहारग्रहणम् ॥ *अर्थः*—झयन्तादव्ययीभावाद् विकल्पेन टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—उपसमिधम्, उपसमित् । उपदृषदम् उपदृषत् ॥

भाषार्थः—[*झयः*] झयन्त अव्ययीभाव समास से विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ झय् से यहाँ प्रत्याहार का ग्रहण है ॥ उपसमिध् टच् सु = उपसमिध् अ अम् = उपसमिधम् ॥ जब टच् नहीं हुआ तो ध् को जश्त्व (८।२।३९) चर्त्व (८।४।५५) होकर उपसमित् बना है ॥

गिरेश्च सेनकस्य ॥५।४।११२॥

गिरेः ५।१॥ च अ० ॥ सेनकस्य ६।१॥ *अनु०*—अन्यतरस्याम्, अव्ययीभावे, टच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—गिरिशब्दान्तादव्ययीभावाट्टच् प्रत्ययो

विकल्पेन भवति समासान्तः सेनकस्याचार्यस्य मतेन॥ उदा०—अन्तगिरम् अन्तर्गिरि, उपगिरम् उपगिरि॥

भाषार्थः—[*गिरेः*] गिरि शब्दान्त अव्ययीभाव समास से [च] भी समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है [*सेनकस्य*] सेनक आचार्य के मत में॥

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ॥५।४।११३॥

बहुव्रीहौ ७।१॥ सक्थ्यक्ष्णोः ६।२॥ स्वाङ्गात् ५।१॥ षच् १।१॥ *स०*—सक्थ्य० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—स्वाङ्गवाची यः सक्थिशब्दोऽक्षिशब्दश्च तदन्तात् षच् प्रत्ययो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे॥ उदा०—दीर्घं सक्थि यस्य स दीर्घसक्थः, विशाले अक्षिणी यस्य स विशालाक्षः, कल्याणाक्षः, लोहिताक्षः॥

भाषार्थः—[*स्वाङ्गात्*] स्वाङ्गवाची जो [*सक्थ्यक्ष्णोः*] सक्थि तथा अक्षि शब्द तदन्त से समासान्त [षच्] षच् प्रत्यय होता है, [*बहुव्रीहौ*] बहुव्रीहि समास में॥ *अनेकमन्य०* (२।२।२४) से सर्वत्र समास होगा। शेष यस्येति लोप आदि पूर्ववत् होंगे।

यहाँ से '*बहुव्रीहौ*' की अनुवृत्ति ५।४।१६० तक तथा 'षच्' की ५।४।११४ तक जायेगी॥

अङ्गुलेर्दारुणि ॥५।४।११४॥

अङ्गुलेः ५।१॥ दारुणि ७।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, षच्, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अङ्गुलिशब्दान्तात् बहुव्रीहेः षच् प्रत्ययो भवति समासान्तो दारुणि वाच्ये॥ उदा०—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य = द्व्यङ्गुलं दारु, त्र्यङ्गुलम् दारु, पञ्चाङ्गुलम्॥

भाषार्थः—[*अङ्गुलेः*] अङ्गुलि शब्दान्त बहुव्रीहि समास से षच् प्रत्यय समासान्त हो जाता है [*दारुणि*] दारु = लकड़ी वाच्य हो तो॥ उदा०—द्व्यङ्गुलं दारु (दो अङ्गुल की लकड़ी)॥

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ॥५।४।११५॥

द्वित्रिभ्याम् ५।२॥ ष लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ मूर्ध्नः ५।१॥ *स०*—द्वित्रि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्वित्रिभ्यां परो यो मूर्धन् शब्दस्तदन्तात् बहुव्रीहेः षः प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—द्वौ मूर्धानौ यस्य स द्विमूर्धः, त्रिमूर्धः ॥

भाषार्थः—[*द्वित्रिभ्याम्*] द्वि त्रि से उत्तर जो [*मूर्ध्नः*] मूर्धन् शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त [*ष*] ष प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् टि भाग का लोप होकर द्विमूर्धः (दो सिर वाला) त्रिमूर्धः बनेंगे ॥

अप्पूरणीप्रमाण्योः ॥५।४।११६॥

अप् १।१॥ पूरणीप्रमाण्योः ६।२॥ *स०*—पूरणी० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूरणीत्यनेन पूरणप्रत्ययान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दाः गृह्यन्ते । पूरण्यन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेः समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—कल्याणी पञ्चमी आसां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः, कल्याणीदशमा रात्रयः । प्रमाणी—स्त्री प्रमाणी एषां, ताः स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः ॥

भाषार्थः—पूरणी से यहाँ पूरण प्रत्ययान्त (डट्, मट् आदि ५।२।४८,४९) स्त्रीलिङ्गवाची शब्द लिये गये हैं, तथा प्रमाणी से स्वरूप का ही ग्रहण है ॥ [*पूरणीप्रमाण्योः*] पूरणी अन्त वाले अर्थात् पूरण प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग शब्द तथा प्रमाणी अन्त वाले, बहुव्रीहि समास से समासान्त [*अप्*] अप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—कल्याणीपञ्चमा रात्रयः स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः (ऐसे परिवार जिनमें स्त्री भार्या की प्रधानता हो) ॥

यहाँ से '*अप्*' की अनुवृत्ति ५।४।११७ तक जायेगी ॥

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥५।४।११७॥

अन्तर्बहिर्भ्याम् ५।२॥ च अ० ॥ लोम्नः ५।१॥ *स०*—अन्तश्च बहिश्च, अन्तर्बहिसौ ताभ्याम्.... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अप्, बहु-

व्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—अन्तर्, बहिस् इत्येताभ्यां परो यो लोमन् शब्दस्तदन्तात् बहुव्रीहेः समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—अन्तर्गतानि लोमान्यस्याः अन्तर्लोमः प्रावारः, बहिर्लोमः पटः ॥

भाषार्थः—[*अन्तर्बहिर्भ्याम्*] अन्तर्, बहिस् इन शब्दों से उत्तर [*च*] भी जो [*लोम्नः*] लोमन् शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय होता है ॥ अन्तर्लोमः (जिसके लोम अन्तर को हैं अर्थात् सूक्ष्म हैं) बहिर्लोमः पटः (जिसके लोम बाहर को हैं अर्थात् बड़े हैं) में पूर्ववत् टि भाग (६।४।१४४) का लोप जानें। टि भाग का लोप हो जाने पर अकारान्त शब्द के हो जाने से पुरुष के समान सारे रूप पूर्ववत् होंगे ॥

अच् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥५।४।११८॥

अच् १।१॥ नासिकायाः ६।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ नसम् १।१॥ च अ० ॥ अस्थूलात् ५।१॥ *स०*—अस्थूलादित्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नासिकान्तात् बहुव्रीहेः समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति नासिका-शब्दस्य च स्थाने नस् आदेशो भवति संज्ञायां विषये, न चेत् स्थूल-शब्दात् परा नासिका भवति ॥ *उदा०*—द्रुरिव नासिकाऽस्य द्रुणसः, वद्ध्रीणसः ॥

भाषार्थः—[*नासिकायाः*] नासिका शब्दान्त बहुव्रीहि समास से समासान्त [*अच्*] अच् प्रत्यय होता है [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में, तथा नासिका शब्द के स्थान में [*नसम्*] नस् आदेश [*च*] भी हो जाता है, यदि [*अस्थूलात्*] स्थूल शब्द से उत्तर नासिका शब्द न हो तो ॥ द्रुणसः आदि में नस् के न् को ण् *पूर्वपदात् संज्ञायामगः* (८।४।३) से हुआ है ॥ *उदा०* —द्रुणसः (लम्बी नाक वाला) वद्ध्रीणसः ॥

यहाँ से '*अच्*' की अनुवृत्ति ५।४।१२१ तक तथा '*नासिकायाः नसं*' की ५।४।११९ तक जायेगी ॥

उपसर्गाच्च ॥५।४।११९॥

उपसर्गात् ५।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—अच्, नासिकायाः नसं चास्थूलात् बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—उपसर्गात् परो यो नासिकाशब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेरच् प्रत्ययो भवति, नासिकाशब्दस्य च स्थाने नस् आदेशो भवति॥ *उदा०*—उन्नता नासिकाऽस्य उन्नसः, प्रणसः॥

भाषार्थः—[*उपसर्गात्*] उपसर्ग से उत्तर [च] भी जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय होता है, तथा नासिका को नस् आदेश भी हो जाता है॥ *उपसर्गादनोत्परः* (८।४।२७) से प्रणसः में णत्व हुआ है॥ *उदा०*—उन्नसः (जिसकी नासिका उन्नत है) प्रणसः (जिसकी नासिका अच्छी है)॥

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपद-प्रोष्ठपदाः ॥५।४।१२०॥

सुप्रा·····पदाः १।३॥ *स०*—सुप्रात० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—अच्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरस्र, एणीपद, अजपद, प्रोष्ठपद इत्येते बहुव्रीहिसमासाः शब्दा अच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते॥ *उदा०*—शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः, टिलोपश्च निपात्यतेऽत्र। शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः, शोभनं दिवाऽस्य सुदिवः, शारेरिव कुक्षिरस्य शारिकुक्षः, चतस्रोऽश्रयो यस्य स चतुरश्रः, एण्या इव पादौ अस्य स एणीपदः, अजस्येव पादावस्य अजपदः, प्रोष्ठ इव पादावस्य प्रोष्ठपदः॥

भाषार्थः—[*सुप्रा···पदाः*] सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद, प्रोष्ठपद बहुव्रीहि समास वाले ये शब्द अच् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं॥ सुप्रातः में प्रातर् के टि भाग का लोप भी निपातन से समझना चाहिये। शेष शब्दों के विग्रह ऊपर दिखा ही दिये हैं, सबमें निपातन से अच् प्रत्यय ही जानें॥ *उदा०*—सुप्रातः (अच्छा है प्रातः काल जिसका) सुश्वः (अच्छा है कल जिसका) सुदिवः (अच्छा है दिन जिसका) शारिकुक्षः (मैना के समान कुक्षि वाला) चतुरश्रः (चार कोने वाला) एणीपदः (हिरनी के समान जिसके पैर हैं) अजपदः (बकरी के समान जिसके पैर हैं) प्रोष्ठपदः (गौ के समान जिसके पैर हैं)॥

नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥५।४।१२१॥

नञ्दुःसुभ्यः ५।३॥ हलिसक्थ्योः ६।२॥ अन्यतरस्याम् ७।१॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अच् बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नञ्, दुस्, सु इत्येतेभ्यः परौ यौ हलि, सक्थि इत्येतौ शब्दौ तदन्तात् बहुव्रीहेरच् प्रत्ययो विकल्पेन भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—अविद्यमाना हलिरस्य अहलः, अहलिः। दुर्हलः दुर्हलिः। सुहलः सुहलिः। अविद्यमानं सक्थ्यस्य असक्थः असक्थिः। दुःसक्थः दुःसक्थिः। सुसक्थः सुसक्थिः ॥

भाषार्थः—[*नञ्दुःसुभ्यः*] नञ्, दुस्, सु इनसे उत्तर जो [*हलिसक्थ्योः*] हलि तथा सक्थि शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय [*अन्यतरस्याम्*] विकल्प से होता है॥ टच् पक्ष में पूर्ववत् यस्येति लोप होकर अहलः आदि प्रयोग बनेंगे जब टच् न होगा तो अहलिः आदि बनेंगे ॥

यहाँ से '*नञ्दुःसुभ्यः*' की अनुवृत्ति ५।४।१२२ तक जायेगी ॥

नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥५।४।१२२॥

नित्यम् १।१॥ असिच् १।१॥ प्रजामेधयोः ६।२॥ *स०*—प्रजा च मेधा च प्रजामेधे, तयोः.... इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—नञ्दुःसुभ्यः बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नञ्, दुस्, सु इत्येतेभ्यः परौ यौ प्रजामेधाशब्दौ तदन्तात् बहुव्रीहेः नित्यमसिच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—अविद्यमाना प्रजाऽस्य, अप्रजाः दुष्प्रजाः, सुप्रजाः। अविद्यमाना मेधाऽस्य अमेधाः, दुर्मेधाः सुमेधाः ॥

भाषार्थः—नञ्, दुस्, सु इनसे उत्तर जो [*प्रजामेधयोः*] प्रजा तथा मेधा शब्द तदन्त बहुव्रीहि से [*नित्यम्*] नित्य ही [*असिच्*] असिच् प्रत्यय समासान्त होता है ॥

नञ् प्रजा+असिच्=अप्रजा अस् यस्येति लोप होकर अप्रज् अस् सु=अप्रजस् सु यहाँ *अत्वसन्तस्य चाधातोः* (६।४।१४) से दीर्घ होकर तथा हल्ङ्यादि लोप होकर अप्रजास्=अप्रजाः बना। इसी प्रकार

सब उदाहरणों में जानें ॥ *उदा०*—अप्रजाः (बिना प्रजा वाला) दुष्प्रजाः (खराब प्रजा वाला) सुप्रजाः (अच्छी प्रजा वाला) अमेधाः (बिना बुद्धि वाला) दुर्मेधाः (खराब बुद्धि वाला) सुमेधाः (अच्छी बुद्धि वाला) ॥

यहाँ से '*असिच्*' की अनुवृत्ति ५।४।१२३ तक जायेगी ॥

बहुप्रजाश्छन्दसि ॥५।४।१२३॥

बहुप्रजाः १।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—असिच्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—छन्दसि विषये बहुप्रजा इति निपात्यते असिच्प्रत्ययान्तः ॥ *उदा०*—बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२) ॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [*बहुप्रजाः*] बहुप्रजास् शब्द असिच् प्रत्ययान्त बहुव्रीहि समास में निपातन किया जाता है ॥

धर्मादनिच् केवलात् ॥५।४।१२४॥

धर्मात् ५।१॥ अनिच् १।१॥ केवलात् ५।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—केवलात् पूर्वपदात् यो धर्मशब्दस्तदन्तात् बहुव्रीहेरनिच् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—कल्याणो धर्मोऽस्य, कल्याणधर्मा, प्रियधर्मा ॥

भाषार्थः—[*केवलात्*] केवल [*धर्मात्*] धर्म शब्द से अर्थात् केवल पूर्वपद ही जिस धर्म शब्द के पूर्व में हो और कोई पूर्वपद के अतिरिक्त पद न हो तो तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त [*अनिच्*] अनिच् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् धर्मन् के टि भाग का लोप होकर कल्याणधर्म् अनिच् सु = कल्याणधर्मन् स् *सर्वनाम०* (६।४।८) से दीर्घ तथा हल्ङ्यादि लोप एवं *नलोपः०* (८।२।७) से नकार लोप होकर कल्याणधर्मा (कल्याण है धर्म जिसका) बना ॥

यहाँ से '*अनिच्*' की अनुवृत्ति ५।४।१२६ तक जायेगी ॥

जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ॥५।४।१२५॥

जम्भा १।१॥ सुहरि······भ्यः ५।३॥ *स०*—सुहरित० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—अनिच्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः,

ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बहुव्रीहौ समासे सु, हरित, तृण, सोम इत्येतेभ्य उत्तरजम्भा इति अनिच्प्रत्ययान्तं कृतसमासान्तं निपात्यते। जम्भ शब्दोऽभ्यवहार्यवाची दन्तवाची च ॥ *उदा०*—शोभनो जम्भोऽस्य, सुजम्भा देवदत्तः, हरितजम्भा, तृणजम्भा, सोमजम्भा ॥

भाषार्थः—बहुव्रीहि समास में [*सुहरिततृणसोमेभ्यः*] सु, हरित, तृण, सोम इनसे उत्तर, [*जम्भा*] जम्भा शब्द कृतसमासान्त अर्थात् जम्भशब्द से अनिच् करके निपातन किया है ॥ पूर्ववत् जम्भ से अनिच् होकर यस्येति लोप दीर्घ (६।४।८) नकार लोप होकर जम्भा बना है ॥

जम्भा शब्द खाने पीने का वाचक एवं दन्तवाचक भी है सो उदाहरणों में दोनों तरह से अर्थ लगेंगे ॥ *उदा०*—सुजम्भा (अच्छे हैं दाँत जिसके) हरितजम्भा (हरे हैं दाँत जिसके) तृणजम्भा (तृण के समान हैं दाँत जिसके) सोमजम्भा (चन्द्रमा के समान उज्वल हैं दाँत जिसके) ॥

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥५।४।१२६॥

दक्षिणेर्मा १।१॥ लुब्धयोगे ७।१॥ *स०*—लुब्धेन योगः लुब्धयोगस्तस्मिन्‌ ˙˙षष्ठीतत्पुरुषः ॥ *अनु०*—अनिच्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः ॥ ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—बहुव्रीहौ समासे लुब्धयोगे दक्षिणेर्मा अनिच्प्रत्ययान्तं निपात्यते ॥ दक्षिणमीर्ममस्य दक्षिणेर्मा मृगः। ईर्मं व्रणमुच्यते ॥

भाषार्थः—बहुव्रीहि समास में [*लुब्धयोगे*] लुब्ध (व्याध, शिकारी) का योग = सम्बन्ध होने पर [*दक्षिणेर्मा*] दक्षिणेर्मा यह शब्द अनिच् प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है ॥ ईर्म घाव को कहते हैं। पूर्ववत् दीर्घ, नलोप होकर सिद्धि जानें। दक्षिण भाग में जिस मृग के घाव कर दिया है व्याध ने उस मृग को दक्षिणेर्मा मृगः कहेंगे ॥

इच् कर्मव्यतिहारे ॥५।४।१२७॥

इच् १।१॥ कर्मव्यतिहारे ७।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कर्मव्यतिहारे

यो बहुव्रीहिस्तस्मादिच् प्रत्ययो भवति ॥ *तत्र तेनेदमिति सरूपे* (२।२।२७) इत्ययं बहुव्रीहिर्गृह्यते ॥ *उदा०*—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि, कचाकचि। मुसलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं मुसलामुसलि, दण्डादण्डि ॥

भाषार्थः—[*कर्मव्यतिहारे*] कर्मव्यतिहार में जो बहुव्रीहि समास तदन्त से समासान्त [*इच्*] इच् प्रत्यय होता है ॥ *तत्र तेनेदमिति०* से जो बहुव्रीहि समास किया जाता है, वह यहाँ कर्मव्यतिहार शब्द से लिया गया है ॥ *अन्येषामपि०* (६।३।१३५) से केशाकेशि आदि के पूर्वपद को दीर्घ हुआ है ॥

यहाँ से '*इच्*' की अनुवृत्ति ५।४।१२८ तक जायेगी ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥५।४।१२८॥

द्विदण्डयादिभ्यः ४।३॥ च अ० ॥ *स०*—द्विदण्डि आदिर्येषां ते द्विदण्ड्यादयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—इच्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—द्विदण्ड्यादयः शब्दा इच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ *उदा०*—द्वाभ्यां दण्डाभ्यां प्रहरति यः स द्विदण्डि, द्विमुसलि ॥

भाषार्थः—[*द्विदण्डयादिभ्यः*] द्विदण्डि आदि शब्द [च] भी इच् प्रत्ययान्त गण में जैसे पठित हैं वैसे ही साधु समझने चाहिये ॥ *उदा०*—द्विदण्डि (दो डण्डों को लेकर जो मारता है) द्विमुसलि ॥

प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः ॥५।४।१२९॥

प्रसम्भ्याम् ५।२॥ जानुनः ६।१ ज्ञुः १।१॥ *स०*—प्रश्च सम् च प्रसमौ ताभ्यां······इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—प्र सम् इत्येताभ्यामुत्तरस्य जानु शब्दस्य ज्ञुरादेशो भवति समासान्तः बहुव्रीहौ समासे ॥ *उदा०*—प्रकृष्टे जानुनी अस्य प्रज्ञुः, संहते जानुनी अस्य संज्ञुः ॥

भाषार्थः—बहुव्रीहि समास में [*प्रसम्भ्याम्*] प्र, सम् से उत्तर जो [*जानुनः*] जानु शब्द उसको समासान्त [*ज्ञुः*] ज्ञु आदेश होता है ॥

उदा०—प्रज्ञुः (अच्छी हैं जङ्घाएं जिसकी) संज्ञुः (अच्छी हैं जङ्घाएं जिसकी) ॥

यहाँ से 'जानुनोर्ज्ञुः' की अनुवृत्ति ५।४।१३० तक जायेगी ॥

उर्ध्वाद् विभाषा ॥५।४।१३०॥

ऊर्ध्वाद् ५।१॥ विभाषा १।१॥ अनु०—जानुनः ज्ञुः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऊर्ध्वशब्दादुत्तरस्य जानुशब्दस्य विभाषा ज्ञुरादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे ॥ उदा०—ऊर्ध्वे जानुनी अस्य ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः ॥

भाषार्थः—[*ऊर्ध्वात्*] ऊर्ध्व शब्द से उत्तर जो जानु शब्द, उसको [*विभाषा*] विकल्प से ज्ञु आदेश समासान्त होता है, बहुव्रीहि समास में ॥ यह आदेश विभाषा है ॥

ऊधसोऽनङ् ॥५।४।१३१॥

ऊधसः ६।१॥ अनङ् १।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, ॥ अर्थः—ऊधः शब्दान्तस्य बहुव्रीहेः समासान्तोऽनङादेशो भवति ॥ उदा०—कुण्डमिव ऊधोऽस्याः सा कुण्डोध्नी, घटोध्नी ॥

भाषार्थः—[*ऊधसः*] ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त, [*अनङ्*] अनङ् आदेश होता है ॥ परि० ४।१।२५ में पूरी सिद्धि देखें ॥

यहाँ से '*अनङ्*' की अनुवृत्ति ५।४।१३२ तक जायेगी ॥

धनुषश्च ॥५।४।१३२॥

धनुषः ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—अनङ्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—धनुः शब्दान्तस्य बहुव्रीहेः समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति ॥ *उदा०*—शार्ङ्गधनुरस्य शार्ङ्गधन्वा गाण्डीवधन्वा, पुष्पधन्वा, अधिज्यधन्वा ॥

भाषार्थ—[धनुषः] धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को [च] भी अनङ् आदेश समासान्त होता है ॥ पूर्ववत् *ङिच्च* (१।१।५२) से अन्त्य अल्

ष् के स्थान में अनङ् होकर शार्ङ्गधनु अनङ् = शार्ङ्गधन्वन् सु रहा दीर्घ नकारलोपादि होकर शार्ङ्गधन्वा (सींग का बना हुआ धनुष है जिसका) गाण्डीवधन्वा (गाण्डीव है धनुष जिसका) बना ॥

यहाँ से 'धनुषः' की अनुवृत्ति ५।४।१३३ तक जायेगी ॥

वा संज्ञायाम् ॥५।४।१३३॥

वा अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—धनुषः, अनङ्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये धनुः शब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङ् आदेशो वा भवति समासान्तः ॥ पूर्वेण नित्यः प्राप्तो विकल्प्यते ॥ *उदा०*—शतं धनुर्यस्य शतधनुः शतधन्वा, दृढं धनुर्यस्य दृढधनुः, दृढधन्वा ॥

भाषार्थः—[*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को [*वा*] विकल्प से समासान्त अनङ् आदेश होता है ॥ पूर्व सूत्र से नित्य अनङ् प्राप्त था संज्ञा विषय में विकल्प कर दिया। अनङ् पक्ष में पूर्ववत् शतधन्वा (सौ हैं धनुष जिसके) दृढ़धन्वा बनेगा, जब अनङ् न हुआ, तो शतधनुः दृढधनुः बना, इसमें कुछ भी विशेष नहीं है ॥

जायाया निङ् ॥५।४।१३४॥

जायायाः ६।१॥ निङ् १।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—जायाशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्निङ् आदेशो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—युवतिर्जाया यस्य स युवजानिः, वृद्धजानिः ॥

भाषार्थः—[*जायायाः*] जाया शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त [*निङ्*] निङ् आदेश होता है ॥ 'युवति सु जाया सु' पूर्ववत् समास एवं निङ् अन्त्य अल् (१।१।५२) को होकर युवतिजाय् निङ् रहा। *स्त्रियाः पुंवद्भाषित०* (६।३।३२) से युवति को पुंवद्भाव होने से पुलिङ्ग के समान युवन् रूप रह गया। युवन् जाय् नि, *लोपो व्योर्वलि* (६।१।६४) से य लोप एवं नकारलोप (८।२।७) होकर युवजानि सु = युवजानिः (युवती है स्त्री जिसकी) बना ॥

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ॥५।४।१३५॥

गन्धस्य ६।१॥ इत् १।१॥ उत्पूति···भ्यः ५।३॥ *स०*—उत्० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—उत्, पूति, सु, सुरभि इत्येतेभ्य उत्तरस्य गन्धशब्दस्येकारादेशो भवति समासान्तः, बहुव्रीहौ समासे॥ *उदा०*—उद्गतो गन्धोऽस्य उद्गन्धिः, पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः॥

भाषार्थः—[*उत्पूतिसुसुरभिभ्यः*] उत्, पूति, सु, सुरभि इन शब्दों से उत्तर [*गन्धस्य*] गन्ध शब्द को बहुव्रीहि समास में समासान्त [*इत्*] इकारादेश होता है॥ *अलोन्त्यस्य* (१।१।५१) से ध के अ के स्थान में इ होकर उद्गन्धिः आदि रूप बनेंगे॥ *उदा०*—उद्गन्धिः (उठी हुई है गन्ध जिसकी), पूतिगन्धिः (बुरी है गन्ध जिसकी), सुगन्धिः (अच्छी गन्ध वाला), सुरभिगन्धिः (अच्छी गन्ध वाला)॥

यहाँ से '*गन्धस्य इत्*' की अनुवृत्ति ५।४।१३७ तक जायेगी॥

अल्पाख्यायाम् ॥५।४।१३६॥

अल्पाख्यायाम् ७।१॥ *स०*—अल्पस्य आख्या अल्पाख्या, तस्यां··· ···षष्ठीतत्पुरुषः॥ *अनु०*—गन्धस्य, इत्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—अल्पाख्यायां यो गन्धशब्दस्तस्येकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे॥ *उदा०*—सूपोऽल्पोऽस्मिन् भोजने सूपगन्धि भोजनम्, घृतगन्धि॥

भाषार्थः—[*अल्पाख्यायाम्*] अल्प=थोड़े की आख्या होने पर, बहुव्रीहि समास में गन्ध शब्द को समासान्त इकारादेश हो जाता है॥ उदाहरण में गन्ध शब्द अल्प का पर्यायवाची है॥ सूपगन्धि (जिस भोजन में थोड़ी दाल है) आदि में स्वमोर्नपुंसकात् (७।१।२३) से सु का लुक् हुआ है॥

उपमानाच्च ॥५।४।१३७॥

उपमानात् ५।१॥ च अ०॥ *अनु०*—गन्धस्य, इत्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—

उपमानात् परो यो गन्धशब्दस्तस्येकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे ॥ *उदा०*—पद्मस्य इव गन्धोऽस्य, पद्मगन्धिः, उत्पलगन्धिः करीषगन्धिः ॥

भाषार्थः—[*उपमानात्*] उपमानवाची शब्दों से उत्तर जो गन्ध शब्द उसको [च] भी समासान्त इकारादेश हो जाता है बहुव्रीहि समास में ॥

यहाँ से '*उपमानात्*' की अनुवृत्ति ५।४।१३८ तक जायेगी ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥५।४।१३८॥

पादस्य ६।१॥ लोपः १।१॥ अहस्त्यादिभ्यः ५।३॥ *स०*—हस्ति आदिर्येषां ते हस्त्यादयः, न हस्त्यादयः अहस्त्यादयस्तेभ्यः……बहुव्रीहि-गर्भनञ्तत्पुरुषः ॥ *अनु०*—उपमानात्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उपमानवाचकात् हस्त्या-दिवर्जितात् परस्य पादशब्दस्य लोपो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे ॥ उदा०—व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात् सिंहपात् ॥

भाषार्थः—उपमानवाचक [*अहस्त्यादिभ्यः*] अहस्त्यादियों से उत्तर, (हस्त्यादियों को छोड़कर और किसी शब्द से उत्तर) जो [*पादस्य*] पाद शब्द उसका समासान्त [*लोपः*] लोप हो जाता है ॥ *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) से पाद के अन्त अकार का ही लोप होगा सो हलन्त शब्दों के समान सब रूप चलेंगे ॥

यहाँ से '*पादस्य लोपः*' की अनुवृत्ति ५।४।१४० तक जायेगी ॥

कुम्भपदीषु च ॥५।४।१३९॥

कुम्भपदीषु ७।३॥ च अ० ॥ पादस्य लोपः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—कुम्भपद्यादिषु गणपठितेषु शब्देषु पादस्य लोपो भवति, कृतसमासान्ता एव इमे निपात्यन्ते ॥ *उदा०*—कुम्भ इव पादावस्याः कुम्भपदी, शतपदी ॥

भाषार्थः—कुम्भपदी आदि शब्द कृतसमासान्त अर्थात् पाद शब्द का लोप किये हुये जैसे गण में पढ़े हैं, वैसे ही साधु समझने चाहियें

सूत्रार्थ यों होगा कि—[*कुम्भपदीषु*] कुम्भपदी आदि शब्दों में [च] भी पाद शब्द का (अन्त्य अकार का) लोप निपातन किया जाता है, अर्थात् समुदाय रूप से ये शब्द साधु समझने चाहिये ॥ *पादोऽन्यतरस्याम्* (४।१।८)से ङीप् होकर 'कुम्भपाद् ङीप् सु' रहा। *पादः पत्* (६।४।१३०) से पाद् को पद् आदेश होकर कुम्भपद् ई सु = कुम्भपदी (हाथी के सिर के समान पैर हैं जिसके) बना। इसी प्रकार सब में जानें ॥

सङ्ख्यासुपूर्वस्य ॥५।४।१४०॥

सङ्ख्यासुपूर्वस्य ६।१॥ *स०*—सङ्ख्या च सुश्च सङ्ख्यासुवौ, तौ पूर्वौ यस्य स सङ्ख्यासुपूर्वस्तस्य······द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—पादस्य लोपः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च बहुव्रीहेः पादशब्दान्तस्य लोपो भवति समासान्तः ॥ *उदा*—द्वौ पादावस्य द्विपात् त्रिपात्। शोभनौ पादावस्य सुपात् ॥

भाषार्थः—[*सङ्ख्यासुपूर्वस्य*]सङ्ख्या पूर्व वाले तथा सु पूर्व वाले पाद शब्द का समासान्त (अन्त्य का) लोप होता है, बहुव्रीहि समास में ॥

यहाँ से '*सङ्ख्यासुपूर्वस्य*' की अनुवृत्ति।५।४।१४१ तक जायेगी ॥

वयसि दन्तस्य दतृ ॥५।४।१४१॥

वयसि ७।१॥ दन्तस्य ६।१॥ दतृ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ *अनु०*—सङ्ख्यासुपूर्वस्य, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सङ्ख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च बहुव्रीहेः यो दन्तशब्दस्तस्य समासान्तो दतृ इत्ययमादेशो भवति वयसि गम्यमाने ॥ *उदा०*—द्वौ दन्तावस्य द्विदन्, त्रिदन्, चतुर्दन्। शोभना दन्ता अस्य समस्ता जाताः सुदन् कुमारः ॥

भाषार्थः—सङ्ख्या पूर्व वाले एवं सुपूर्व वाले [*दन्तस्य*] दन्त शब्द को समासान्त [*दतृ*] दतृ आदेश होता है [*वयसि*] अवस्था गम्यमान होने पर बहुव्रीहि समास में ॥ *अनेकाल्०* (१।१।५१) से सारे दन्त के स्थान में दतृ आदेश होगा ॥ दतृ में ऋकार अनुबन्ध उगित् कार्य अर्थात्

उगिदचां सर्व० (७।१।७०) से नुम् करने के लिये है। द्विदन्त् सु संयोगान्त लोप हल्ङ्याादि लोप होकर द्विदन् (दो हैं दांत जिसके) बना। इसी प्रकार सब में जानें॥ यहाँ 'द्विदन्' से दो दाँत का हो गया है, ऐसी अवस्था की प्रतीति हो रही है॥

यहाँ से '*दन्तस्य दतृ*' की अनुवृत्ति ५।४।१४५ तक जायेगी॥

छन्दसि च ॥५।४।१४२॥

छन्दसि ७।१॥ च अ०॥ *अनु०*—दन्तस्य, दतृ, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—छन्दसि च विषये दन्तशब्दस्य दतृ इत्ययमादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे॥ *उदा०*—पत्रदन्तमालभेत, उभयदत आलभते॥

भाषार्थः—[*छन्दसि*] वेद विषय में [च] भी दन्त शब्द को दतृ आदेश समासान्त बहुव्रीहि समास में हो जाता है॥

स्त्रियां संज्ञायाम् ॥५।४।१४३॥

स्त्रियाम् ७।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ *अनु०*—दन्तस्य, दतृ, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थः*—बहुव्रीहौ समासे स्त्रियां वाच्यायां दन्तशब्दस्य स्थाने दतृ आदेशो भवति, संज्ञायां विषये॥ *उदा०*—अय इव दन्ता अस्या अयोदती, फालदती॥

भाषार्थः—बहुव्रीहि समास में अन्यपदार्थ यदि [*स्त्रियाम्*] स्त्री वाच्य हो तो दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश हो जाता है [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में॥ उदाहरणों में *उगितश्च* (४।१।६) से ङीप् होगा॥ *उदा०*—अयोदती (लोहे के समान कठोर दाँत वाली) फालदती (हल के फाल के समान तीक्ष्ण दाँत वाली)॥

विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥५।४।१४४॥

विभाषा १।१॥ श्यावारोकाभ्याम् ५।२॥ *स०*—श्यावा० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः॥ *अनु०*—दन्तस्य दतृ, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च॥ *अर्थ*.—श्याव अरोक इत्येताभ्यां परस्य दन्तशब्दस्य विकल्पेन 'दतृ' आदेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे॥

उदा०—श्यावा दन्ता यस्य स श्यावदन्, श्यावदन्तः, अरोका निर्दीप्ता दन्ता यस्य स अरोकदन्, अरोकदन्तः ॥

भाषार्थः—[*श्यावारोकाभ्याम्*] श्याव, अरोक इनसे उत्तर दन्त शब्द को [*विभाषा*] विकल्प से समासान्त दतृ आदेश होता है बहुव्रीहि समास में ॥ रोक दीप्ति को कहते हैं सो अरोक का अर्थ निर्दीप्ति होगा। उदा०—श्यावदन् (पीले दाँत वाला) श्यावदन्तः, अरोकदन् (मैले दाँत वाला) अरोकदन् ॥

यहाँ से '*विभाषा*' की अनुवृत्ति ५।४।१४५ तक जायेगी ॥

अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥५।४।१४५॥

अग्रान्त······भ्यः ५।३॥ च अ० ॥ *स०*—अग्र शब्द अन्ते यस्य स अग्रान्तः, बहुव्रीहिः। अग्रान्तश्च शुद्धश्च शुभ्रश्च वृषश्च वराहश्च, अग्रा·· राहास्तेभ्यः···इतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—विभाषा, दन्तस्य दतृ, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*— अग्रान्त, शुद्ध, शुभ्र, वृष, वराह इत्येतेभ्य उत्तरस्य दन्तस्य स्थाने विभाषा 'दतृ' आदेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे ॥ *उदा०*— कुड्मलस्याग्रं कुड्मलाग्रं, कुड्मलाग्राणीव दन्ता यस्य स कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः। शुद्धदन् शुद्धदन्तः। शुभ्रदन् शुभ्रदन्तः। वृषदन्, वृषदन्तः। वराहदन्, वराहदन्तः ॥

भाषार्थः—[*अग्रान्त···भ्यः*]अग्र शब्द अन्त में है जिसके, तथा शुद्ध शुभ्र वृष, वराह इनसे उत्तर[*च*]भी जो दन्त शब्द उसको विकल्प से दतृ आदेश समासान्त होता है, बहुव्रीहि समास में ॥ उदा०—कुड्मलाग्रदन् (कली के समान खिले हुये दाँत वाला) कुड्मलाग्रदन्तः, शुद्धदन् (स्वच्छ दाँत वाला) शुद्धदन्तः, वृषदन् (बैल के समान दाँत वाला) वृषदन्तः, वराहदन् (सुअर के समान दाँत वाला) वराहदन्तः ॥

ककुदस्यावस्थायां लोपः ॥५।४।१४६॥

ककुदस्य ६।१॥ अवस्थायाम् ७।१॥ लोपः १।१॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*— ककुदशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्लोपो भवति अवस्थायां गम्यमानायाम् ॥

उदा०—असंजातं ककुदमस्य असञ्जातककुत् (बाल इत्यर्थः) पूर्णककुत् (मध्यवया इत्यर्थः) उन्नतककुत् (वृद्धवया इत्यर्थः) स्थूलककुत् (बलवान् इत्यर्थः) यष्टिककुत् (नातिस्थूलो नातिकृश इत्यर्थः) ॥

भाषार्थः—[*ककुदस्य*] बहुव्रीहि समास में ककुद शब्दान्त का [*लोपः*] समासान्त, लोप होता है [*अवस्थायाम्*] अवस्था गम्यमान होने पर ॥ *अलोऽन्त्यस्य* (१।१।५१) से अन्त्य अल् 'द' के अ का ही लोप होगा, सो हलन्त शब्दों के समान रूप चलेंगे ॥ बैल के कन्धे का ऊपरी भाग जो थोड़ा ऊपर उठा हुआ होता है, उसे ककुद कहते हैं। यह ककुद जितना ही उन्नत होता है उतना ही बैल की स्वस्थता का चिह्न होता है। जिसके अभी ककुद उत्पन्न नहीं हुआ अर्थात् अभी बछड़ा ही है उसे असञ्जातककुत् कहेंगे। जिसका ककुद बढ़कर पूर्ण हो चुका है, अर्थात् यौवन काल में है उसे पूर्णककुत् कहेंगे ॥ इस प्रकार इन शब्दों से अवस्था की स्पष्ट प्रतीति हा रही है ॥

यहाँ से '*लोपः*' की अनुवृत्ति ५।४।१४६ तक जायेगी ॥

त्रिककुत् पर्वते ॥५।४।१४७॥

त्रिककुत् १।१॥ पर्वते ७।१॥ *अनु०*—लोपः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—त्रिककुदिति निपात्यते कृतान्त्यलोपः बहुव्रीहौ समासे पर्वतेऽभिधेये ॥ त्रीणि ककुदान्यस्य त्रिककुत् पर्वतः ॥

भाषार्थः—[*पर्वते*] पर्वत को कहना हो तो बहुव्रीहि समास में [*त्रिककुत्*] त्रिककुत् शब्द निपातन किया जाता है। त्रिककुत् में अन्त्य अकार का लोप ही निपातन से किया गया है ॥ तीन शृङ्गों वाला पर्वत त्रिककुत् पर्वतः कहा जायेगा ॥

उद्विभ्यां काकुदस्य ॥५।४।१४८॥

उद्विभ्याम् ५।२॥ काकुदस्य ६।१॥ *स०*—उद्वि० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—लोपः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उत् वि इत्येताभ्यां परो यो काकुद शब्दस्तस्य

लोपो भवति समासान्तः बहुव्रीहौ समासे ॥ उदा०—उद्गतं काकुदमस्य उत्काकुत्, विकाकुत् ॥

भाषार्थः—[*उद्विभ्याम्*] उत्, तथा वि से उत्तर [*काकुदस्य*] काकुद शब्द का (अन्त्य का) समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में ॥ काकुद तालु को कहते हैं ॥ *उदा०*—उत्काकुत् (जिसका उठा हुआ तालु है) विकाकुत् (जिसका तालुस्थान ठीक नहीं है) ॥

यहाँ से '*काकुदस्य*' की अनुवृत्ति ५।४।१४९ तक जायेगी ॥

पूर्णाद्विभाषा ॥५।४।१४९॥

पूर्णात् ५।१॥ विभाषा १।१॥ *अनु०*—काकुदस्य, लोपः, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—पूर्णशब्दात् परस्य काकुदशब्दस्य विभाषा लोपो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे ॥ *उदा०*—पूर्णं काकुदमस्य स पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ॥

भाषार्थः—[*पूर्णात्*] पूर्ण शब्द से उत्तर काकुद का (अन्त्य का) [*विभाषा*] विकल्प से समासान्त लोप होता है, बहुव्रीहि समास में ॥

सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ॥५।४।१५०॥

सुहृद्दुर्हृदौ १।२॥ मित्रामित्रयोः ७।२॥ *स०*—उभयत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—सुहृद्, दुर्हृद् इति निपात्यते यथासङ्ख्यं मित्रामित्रयोर्वाच्ययोः समासान्तः। सुहृद् इत्यत्र सुशब्दात् परस्य हृदयशब्दस्य हृद् आदेशो निपात्यते, एवं दुर्हृद् इत्यत्र दुर् शब्दात् परस्य हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते ॥

भाषार्थः—[*सुहृद्दुर्हृदौ*] सुहृद् तथा दुर्हृद् शब्द निपातन किये जाते हैं समासान्त यथासंख्य करके [*मित्रामित्रयोः*] मित्र तथा अमित्र वाच्य हो तो ॥

सुशब्द से उत्तर हृदय को हृद् आदेश मित्र वाच्य होने पर निपातन किया तो शोभनं हृदयमस्य सुहृद् (मित्र) बना ॥ इसी प्रकार

दुर् शब्द से उत्तर हृदय को हृद् आदेश अमित्र वाच्य होने पर निपातन किया तो बना—दुष्टं हृदयमस्य दुर्हृद् (अमित्र, शत्रु) ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् ॥५।४।१५१॥

उरःप्रभृतिभ्यः ५।३॥ कप् १।१॥ स०—उरःप्रभृतयो येषां ते उरः-प्रभृतयस्तेभ्यः······बहुव्रीहिः ॥ *अनु०*—बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—उरःप्रभृत्य-न्ताद् बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—व्यूढम् उरो यस्य स व्यूढोरस्कः, प्रियसर्पिष्कः, अवमुक्तोपानत्कः ॥

भाषार्थः—[*उरःप्रभृतिभ्यः*] उरस् इत्यादि (गण पठित) अन्त वाले शब्दों से बहुव्रीहि समास में [*कप्*] कप् प्रत्यय होता है ॥ *उदा०*—व्यूढोरस्कः, प्रियसर्पिष्कः (प्रिय है घी जिसको) अवमुक्तोपानत्कः (उतार दिये हैं जूते जिसने) ॥

यहाँ से '*कप्*' की अनुवृत्ति ५।४।१६० तक जायेगी ॥

इनः स्त्रियाम् ॥५।४।१५२॥

इनः ५।१॥ स्त्रियाम् ७।१॥ *अनु०*—कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्त्रियां विषय इन्नन्ताद् बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—बहवो दण्डिनो यस्यां शालायां स बहुदण्डिका शाला, बहुच्छत्रिका, बहुस्वामिका नगरी ॥

भाषार्थः—[*इनः*] इन् अन्त वाले बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय समासान्त होता है [*स्त्रियाम्*] स्त्रीलिङ्ग विषय में ॥

अत इनिठनौ (५।२।११५) से इनि करके बहुदण्डिन् रहा, पुनः कप् तथा नकारलोप, टाप् एवं *प्रत्ययस्थात् कात्०* (७।३।४४) से इत्व करके बहुदण्डिका (बहुत से दण्डी हैं जिस शाला में) बहुच्छत्रिका आदि बनेंगे ॥

नद्यृतश्च ॥५।४।१५३॥

नद्यृतः ५।१॥ च अ० ॥ स०—नदी च ऋत् च नद्यृत् तस्मात्······समाहारो द्वन्द्वः ॥ *अनु०*—कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्या-

प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—नद्यन्ताद् ऋकारान्ताच्च बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो भवति समासान्तः ॥ *उदा०*—बह्व्यः कुमार्योऽस्मिन् देशे बहुकुमारीको देशः, बहुब्रह्मबन्धूकः । ऋतः—बहवः कर्त्तारो यस्मिन् प्रासादे बहुकर्तृको प्रासादः ॥

भाषार्थः—[*नद्यृतः*]नदीसंज्ञक (१।४।३, ६) तथा ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से [च] भी समासान्त कप् प्रत्यय होता है ॥ कुमारी की नदी संज्ञा १।४।३ से है ही । 'बह्वी जस्, कुमारी जस् कप्' पूर्ववत् समास इत्यादि तथा *स्त्रियाः पुंवद्०* (६।३।३२) से बह्वी को पुंवद्भाव होकर बहु ऐसा रूप रहा, तब बहुकुमारी कप् सु=बहुकुमारीकः बना ॥ इसी प्रकार औरों में भी जानें ॥

शेषाद्विभाषा ॥५।४।१५४॥

शेषात् ५।१॥ विभाषा १।१॥ *अनु०*—कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—यस्माद् बहुव्रीहेः समासान्तो न विहितः स शेषः, तस्मात् शेषाद् विभाषा कप् प्रत्ययो भवति ॥ *उदा०*—बह्व्यः खट्वा यस्मिन् स बहुखट्वको देशः, बहुखट्वाकः बहुखट्वः । बहुमालकः बहुमालाकः बहुमालः । बहुवीणकः बहुवीणाकः बहुवीणः ॥

भाषार्थः—[*शेषात्*]जिस बहुव्रीहि (समास वाले शब्द) से समासान्त (प्रत्यय) नहीं विधान किया है, वह शब्द यहाँ शेष शब्द से कहा गया है, उससे [*विभाषा*] विकल्प करके कप् प्रत्यय होता है ॥

आपोऽन्यतरस्याम् (७।४।१५) से कप् परे रहते आबन्त अङ्ग को विकल्प से ह्रस्व भी कहा है सो ह्रस्व पक्ष में बहुखट्वकः (बहुत खाटें हैं जिस नगरी में) जब ह्रस्व न हुआ तो, बहुखट्वाकः ये दो रूप कप् पक्ष में बनेंगे । जब प्रकृत सूत्र से कप् न हुआ तो *गोस्त्रियोरुप०* (१।२।४८) से ह्रस्व होकर बहुखट्वः बना इस प्रकार कुल तीन रूप बनें । इसी प्रकार सब में जानें ॥

न संज्ञायाम् ॥५।४।१५५॥

न अ० ॥ संज्ञायाम ७।१॥ *अनु०*—कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—संज्ञायां विषये

बहुव्रीहौ समासे कप् प्रत्ययो न भवति। पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—विश्वे देवा यस्य विश्वदेवः, विश्वयशाः ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से जो प्राप्ति थी, उसका यहाँ प्रतिषेध किया है॥ [*संज्ञायाम्*] संज्ञा विषय में बहुव्रीहि समास में कप् प्रत्यय [*न*] नहीं होता है ॥ विश्वदेव, विश्वयशस् इन बहुव्रीहि शब्दों से किसी समासान्त (प्रत्यय) का विधान नहीं है अतः इनसे शेष होने के कारण पूर्व सूत्र से कप् प्राप्त था निषेध कर दिया। विश्वयशाः में पूर्ववत् 'विश्वयशस् सु' यहाँ *अत्वसन्तस्य*० (६।४।१४) से दीर्घ तथा हल्ङ्यादि लोप होकर विश्वयशाः बना ॥

यहाँ से '*न*' की अनुवृत्ति ५।४।१६० तक जायेगी ॥

ईयसश्च ॥५।४।१५६॥

ईयसः ५।१॥ च अ० ॥ *अनु*०—न, कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ईयसन्तात् बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो न भवति समासान्तः ॥ *उदा*०—बह्वः श्रेयांसो यस्य स बहुश्रेयान्, बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ॥

भाषार्थः—[*ईयसः*]ईयस् = ईयसुन् अन्तवाले बहुव्रीहि समास से[*च*] भी कप् प्रत्यय नहीं होता ॥ ऊपर के जिस किसी भी सूत्र से जो कप् प्राप्त था सब का प्रतिषेध कर दिया है। बहुश्रेयान् में शेषाद्विभाषा से कप् प्राप्त था उसका प्रतिषेध है, तथा बहुश्रेयसी में *नद्यृतश्च* से नदी लक्षण कप् प्राप्त था उसका प्रतिषेध है। *प्रशस्यस्य श्रः* (५।३।६०) से प्रशस्य को श्र आदेश तथा *द्विवचनवि*० (५।३।५७) से ईयसुन् प्रत्यय होकर श्रेयान् शब्द बना है। शेष पूर्ववत् जाने ॥

वन्दिते भ्रातुः ॥५।४।१५७॥

वन्दिते ७।१॥ भ्रातुः ५।१॥ *अनु*०—न, कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—वन्दितेऽर्थे यो भ्रातृशब्दो वर्त्तते तदन्तात् बहुव्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति। वन्दितः स्तुतः पूजित इत्युच्यते ॥ *उदा*०—शोभनो भ्राताऽस्य सुभ्राता ॥

भाषार्थः--[*वन्दिते*] वन्दित अर्थ में वर्त्तमान जो [*भ्रातुः*] भ्रातृ शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता ॥ वन्दित = स्तुत = पूजित को कहते हैं ॥ *नद्यृतश्च* से ऋकारान्त मानकर कप् प्राप्त था, निषेध कर दिया है ॥ *उदा०*—सुभ्राता (जिसका प्रशंसनीय पूज्य भाई हो वह) ॥

ऋतश्छन्दसि ॥५।४।१५८॥

ऋतः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ *अनु०*—न, कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—ऋवर्णान्ताद् बहुव्रीहेः छन्दसि विषये समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—हता माताऽस्य हतमाता, हतपिता, हतस्वसा, सुहोता ॥

भाषार्थः—[*ऋतः*] ऋवर्णान्त बहुव्रीहि से [*छन्दसि*] वेद विषय में समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता ॥ पूर्ववत् नद्यृतश्च से प्राप्त कप् का निषेध है ॥

नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥५।४।१५९॥

नाडीतन्त्र्योः ६।२॥ स्वाङ्गे ७।१॥ *स०*—नाडी० इत्यत्रेतरेतरद्वन्द्वः ॥ *अनु०*—न, कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—स्वाङ्गे यौ नाडी, तन्त्री इत्येतौ शब्दौ तदन्तात् बहुव्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति ॥ *उदा०*—बह्व्यो नाड्यो यस्य स बहुनाडिः कायः, बह्व्यो तन्त्र्यो यस्यां ग्रीवायां सा बहुतन्त्री ग्रीवा ॥

भाषार्थः—[*स्वाङ्गे*] स्वाङ्ग (अपना अङ्ग) में वर्त्तमान जो [*नाडीतन्त्र्योः*] नाडी तथा तन्त्री शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता ॥ तन्त्री शब्द यहाँ धमनी का वाचक है ॥ *नद्यृतश्च* से नदी लक्षण जो कप् प्राप्त था उसी का निषेध है ॥

बह्वी जस्, नाडी जस् यहाँ सब पूर्ववत् ही हुआ है केवल *स्त्रियाः पुंव०* (६।३।३२) से बह्वी को पुंवद्भाव होकर बहुनाडि (बहुत सी नाडियाँ है जिस शरीर में) बहुतन्त्री (बहुत सी धमनी हैं जिस ग्रीवा में) बना है, यही विशेष है ॥

निष्प्रवाणिश्च ॥५।४।१६०॥

निष्प्रवाणिः १।१॥ च अ० ॥ *अनु०*—न, कप्, बहुव्रीहौ, समासान्ताः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च ॥ *अर्थः*—निष्प्रवाणिरिति निपात्यते । नद्यृतश्चेत्यनेन नदीलक्षणे कपि प्राप्ते तस्य प्रतिषेधो निपात्यते ॥ प्रोयतेऽस्यामिति प्रवाणी, निर्गता प्रवाणी अस्य निष्प्रवाणिः ॥

भाषार्थः—[*निष्प्रवाणिः*] निष्प्रवाणि इस शब्द में [च] भी *नद्यृतश्च* से नदी लक्षण कप् की जो प्राप्ति थी, उसी का यहाँ निपातन से निषेध किया जाता है ॥

प्रवाणी जुलाहे की शलाका, जिससे कपड़ा बुना जाता है कहते हैं। जिस कपड़े से प्रवाणी हटा दी गई है अर्थात्[1] जो कपड़ा बुना जा चुका है उसे निष्प्रवाणि. पटः (नवीन कपड़ा) कहेंगे ॥ *गोस्त्रियोरुपस०* (१।२।४८) से प्रवाणी को ह्रस्व हुआ है ॥

॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञपण्डितब्रह्मदत्तजिज्ञासु-
विरचिते अष्टाध्यायी भाष्ये (प्रथमावृत्तौ)
पञ्चमोऽध्यायःसमाप्तः ॥



१. प्रवाणी उस कङ्घी को कहते हैं, जिसे सूत के बीच मे लगाकर कपड़ा बुना जाता है। कपड़ा बुने जाने पर उसे अलग कर दिया जाता है ॥

परिशिष्टम्

परि० स्वौजसमौट्० (४।१।२)

कुमारी (*अविवाहित कन्या*)

कुमार — *अर्थवदधातुर०*, (१।२।४५) *वयसि प्रथमे* (४।१।२०) *प्रत्ययः परश्च* से ङीप् प्रत्यय होकर,

कुमार ङीप् = ई, *यस्येति च* (६।४।१४८)

कुमार ई — *ङ्याप्प्रातिपदिकात्*, *स्वौजसमौट्छष्टा० सुपः* (१।४।१०२) *विभक्तिश्च* (१।४।१०३) *प्रातिपदिकार्थ०* (२।३।४६) *द्व्येकयोर्द्विवचनै०* (१।४।२२)

कुमारी सु — *उपदेशेऽजनु०* (१।३।२) *तस्य लोपः अदर्शनं लोपः* (१।१।५९)

कुमारी स् — *अपृक्त एकाल् प्रत्ययः* (१।२।४१) *ऊकालोऽज्झस्व०* (१।२।२७) *हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सु०* (६।१।६६)

कुमारी — बना।

—:o:—

कुमार्यौ

पूर्ववत् कुमारी औ, आकर *प्रथमयोः पूर्वसवर्णः* (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त हुआ तो *दीर्घाज्जसि च* (६।१।१०१) से निषेध हो गया, तब *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश होकर कुमार्यौ रूप बना॥ *कुमार्यः* में भी 'कुमारी जस्' आकर इसी प्रकार पूर्वसवर्ण दीर्घ निषेध (६।१।१०१) होकर कुमार्यः बना॥ 'कुमारी अम्' *अमि पूर्वः* (६।१।१०३) लगकर कुमारीम् बना। कुमारी औट् पूर्ववत् कुमार्यौ (दो कुमारियों को) बना। कुमारी शस् *प्रथमयोः पूर्व०* (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर कुमारीस् रुत्व विसर्ग होकर कुमारीः बन गया। कुमार्या में कुमारी टा, आकर *इकोयणचि* (६।१।७४) लगकर

कुमार्याः बना । कुमारी भ्याम् = कुमारीभ्याम्, कोई नया सूत्र नहीं लगा । कुमारी भिस् = कुमारीभिः बना ।

—:०:—

कुमार्यै (*कुमारी के लिये*)

कुमारी ङे पूर्ववत् होकर, *यू स्त्र्याख्यौ नदी* (१।४।३) से कुमारी की नदी संज्ञा होकर *आण्नद्याः* (७।३।११२) से आट् आगम, *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५)

कुमारी आ ए, *आटश्च* (६।१।८७) से वृद्धि होकर

कुमारी ऐ *इको यणचि* (६।१।७४)

कुमार्यै बना ।

कुमारीभ्याम् कुमारीभ्यः पूर्ववत् बनेंगे ।

कुमार्याःमें कुमारी ङसि, पूर्ववत् आकर, कुमार्यै के समान ही सब सूत्र लगकर कुमारी अस् रहा, कुमारी आ अस् *आटश्च* से वृद्धि तथा यणादेश होकर, कुमार्याः बन गया ।

ङस् में भी पूर्ववत् कुमार्याः ही बना । कुमार्योः में कुमारी ओस् आकर इको यणचि से यणादेश तथा रुत्व विसर्ग होकर कुमार्योः बना कुमारीणाम् में कुमारी आम् आकर, *यू स्त्र्याख्यौ०* (१।४।३) से नदी संज्ञा होकर *ह्रस्वनद्यापो नुट्* (७।१।५४) *आद्यन्तौ टकितौ* (१।१।४५) से नुट् आगम आदि में हुआ तो कुमारी नुट् आम् = कुमारी नाम्, बना। अब *अटकुप्वाङ्०* (८।४।२) से *णत्व होकर* कुमारीणाम् बन गया ।

—:०:—

कुमार्याम्

कुमारी ङि, पूर्ववत् होकर, *यू स्त्र्याख्यौ०* (१।४।३) *आण्नद्याः* (७।३।११२)

कुमारी आट् ङि, *ङेराम्नद्याम्नीभ्यः* (७।३।११६)

कुमारी आ आम्, *आटश्च*, (६।१।८७) *इको यणचि* (६।१।७४) कुमार्याम् बना।

कुमारीषु में कुमारी सुप् आकर *आदेशप्रत्य०* (८।३।५९) से षत्व हो गया। 'हे कुमारि' यहाँ सम्बोधन में *सम्बोधने च* (२।३।४७) से वही प्रथमा विभक्ति होकर 'कुमारी सु' आया। *अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः* (७।३।१०७) से ह्रस्व और *एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः* (६।१।६७) से सु के स् का लोप होकर कुमारि बना। हे कुमार्यौ हे कुमार्यः प्रथमा विभक्ति के समान जानें कुछ भी विशेष नहीं।

इसी प्रकार सातों विभक्तियों में गौरी तथा शार्ङ्गरवी के रूप जानें॥

खट्वा

खट्वा सु　पूर्ववत् होकर *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) से पूर्ववत् सु लोप होकर खट्वा बना।

खट्वा औ　यहाँ *औङ आपः* (७।१।१८) से औ को शी आदेश होकर, खट्वा शी = ई रहा। *आद् गुणः* (६।१।८४) से गुण होकर 'खट्वे' बन गया।

खट्वा जस्　*प्रथमयोः०* (६।१।६८) तथा रुत्व विसर्ग होकर खट्वाः बना।

खट्वा अम्　*अमि पूर्वः* (६।१।१०३) लगकर खट्वाम् बना। पूर्ववत् खट्वे खट्वाः जानें।

खट्वा टा　यहाँ *आङि चापः* (७।३।१०५) से खट्वा के आ को एत्व होकर खट्वे आ रहा, *एचोऽयवायावः* (६।१।७५) से अय् होकर खट्वया बना। खट्वाभ्याम् खट्वाभिः में कुछ विशेष नहीं है।

खट्वायै में खट्वा ङे आकर, *याडापः* (७।३।११३) से याट् आगम होकर 'खट्वा याट् ङे' रहा, *वृद्धिरेचि* (६।१।८५) लगकर खट्वायै बन गया। भ्याम् भ्यस् के रूप पूर्व जैसे हैं। खट्वा ङसि यहाँ भी पूर्ववत् याट् आगम होकर खट्वायास् = खट्वायाः बना।

ङस् में भी खटवाया: बनेगा। खट्वा ओस् यहाँ *आङि चापः* से पूर्ववत् एत्व तथा अयादेश होकर खट्वयोः बन गया। खट्वानाम् में *ह्रस्वनद्यापो०* (७।१।५४) से पूर्ववत् नुट् आगम हुआ है। खट्वा ङि यहाँ पूर्ववत् *ङेराम्नद्या०* से ङि को आम् तथा याट् आगम ७।३।११३ से होकर खट्वायाम् बन गया॥

खट्वयोः खट्वासु पूर्ववत् जानें। सम्बोधन में खट्वा को सु परे रहते *सम्बुद्धौ च* (७।३।१०६) से एत्व तथा *एङ्ह्रस्वात्०* (६।१।६७) से सम्बुद्धिलोप होकर हे खट्वे बना। शेष हे खट्वे, हे खट्वाः प्रथमा विभक्ति के समान जानें।

इसी प्रकार बहुराजा तथा कारीषगन्ध्या के सप्त विभक्तियों में रूप जानें। दृषद् दृषदौ दृषदः आदि में कहीं कुछ भी विशेष नहीं, सब वे ही सूत्र लगकर, दृषद् औ = दृषदौ, दृषद् जस् = दृषदः आदि बनते जायेंगे दृषद् सु यहाँ *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६) से स् लोप हो ही जायेगा तथा *वावसाने* (८।४।५५) से द् को त् विकल्प सेहुआ है।

इसी प्रकार सरित् मरुत् वाच् आदि सैकड़ों हलन्त शब्दों की सिद्धि इन्हीं सूत्रों को लगाकर की जा सकती है। कितना सुगम उपाय है॥

—:०:—

परि० ऋन्नेभ्यो ङीप् (४।१।५)

कर्त्री (करने वाली)

डुकृञ्	*भूवादयो०* (१।३।१) *धातोः*, *ण्वुल्तृचौ* (३।१।१३३) *प्रत्ययः*, *परश्च*
कृ तृच्	*आर्धधातुकं०* (३।४।११४) *सार्वधातुका०* (७।३।८४) *अदेङ् गुणः* (१।१।२)
कर्तृ	*कृत्तद्धितसमासाश्च*, (१।२।४६) *ऋन्नेभ्यो ङीप्* से ऋकारान्त होने से ङीप् होकर
कर्तृ ङीप्	अनुबन्ध लोप तथा *इको यणचि* (६।१।७४) से यणादेश
कर्त्री	*ङ्याप्प्रातिपदिकात्* *स्वौजसमौट्०* पूर्ववत् सब सूत्र लगकर
कर्त्री सु	*हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)
कर्त्री	

इसी प्रकार हृञ् धातु से तृच् आकर हर्तृ, पुनः ङीप् होकर हर्त्री (हरण करने वाली) बना है ॥

———

दण्डोऽस्या अस्तीति=दण्डिनी (दण्ड धारण करने वाली)

दण्ड　　*अर्थवदधातु० अत इनिठनौ* (५।२।११५) *प्रत्ययः परश्च*

दण्ड इनि = दण्डिन्, ऋन्नेभ्यो ङीप् से नकारान्त होने से ङीप् आया

दण्डिन् ङीप् पूर्ववत् सु आकर लोप होकर

दण्डिनी　　बना

इसी प्रकार छत्रिणी (छत्र धारण करने वाली) समझें।

—:०:—

परि० उगितश्च (४।१।६)

भवती

भा	*भूवादयो० भातेर्डवतुप्* (उणा०१।६३) से डवतुप् प्रत्यय होकर
भा डवतुप्	अनुबन्ध लोप होकर *डित्करणसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः*
भा अवत्	(*वा०* ६।४।१४३) इस वार्त्तिक से टि भाग का लोप हुआ
भ् अवत्	*कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) *उगितश्च* से ङीप् डवतुप् के उगित् होने से हो गया
भवत् ङीप्	*ङ्याप्प्रा०* पूर्ववत् सु आकर *हल्ङ्याब्भ्यो०* से लोप हो गया
भवती	

अतिभवती भी इसी प्रकार जानें ॥

———

पचन्ती (*पकाती हुई*))

पच् शप् शतृ = पच् अ अत् बनकर शप्श्यनोर्नित्यम् (७।१।८१) से नुम् आगम होकर पच् अ अन्त् बना। *अतो गुणे* (६.१।९४) लगकर

पचन्त् बना। शतृ के उगित् होने से प्रकृत सूत्र से ङीप् होकर पचन्ती बन गया॥ इसी प्रकार यजन्ती की सिद्धि जानें।

—:०:—

परि० पादोऽन्यत० (४।१।८)

द्विपदी (दो पदों वाली)

द्वि औ पाद सु, *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१)

द्विपाद *सङ्ख्यासुपूर्वस्य* (५।४।१४०)

द्विपाद् *ङ्याप्प्रातिपदि० पादोऽन्यतरस्याम्*

द्विपाद् ङीप् = ई, *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२६) *पादः पत्* (६।४।१३०)

द्विपद् ई *ङ्याप्प्राति०* पूर्ववत् सु आकर, *हल्ङ्याब्भ्यो०* से लोप होकर द्विपदी

जब ङीप् नहीं हुआ तो पूर्ववत् सब होकर, द्विपात् बना, ङीप् न आने से भ संज्ञा नहीं हुई अतः *पादः पत्* से पत् आदेश नहीं हुआ यही विशेष है। *खरि च* (८।४।५४) से द् को त् हो गया है। चतुष्पदी में पूर्ववत् ही सब हुआ है केवल चतुर् पाद इस अवस्था में रुत्व विसर्ग होकर चतुः पाद, *विसर्जनीयस्य सः* (८।३।३४) से चतुस्पाद, तथा *नित्यं समासेऽनुत्तरपद०* (८।३।४५) से षत्व होकर चतुष्पाद् पूर्ववत् सब होकर चतुष्पदी बना है॥

—:०:—

परि० न षट्स्वस्रा० (४।१।१०)

पञ्च ब्राह्मण्यः (पाँच ब्राह्मणी)

पञ्चन् *अर्थवदधातु०* (१।२।४५) *ष्णान्ता षट्* (१।१।२३) *ऋन्नेभ्यो ङीप्* से नकारान्त होने से ङीप् प्रत्यय प्राप्त था, तो *न षट्स्वस्रादिभ्यः* से निषेध हो गया तब पूर्ववत् जस् आकर

पञ्चन् जस्

षड्भ्यो लुक् (७।१।२२) *न लोपः प्राति०* (८।२।७)

पञ्च स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में अब पुनः नकार लोप हो जाने पर *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४) से स्त्री प्रत्यय टाप् पाया तब उसका भी पुनः *न षट्स्वस्रादिभ्यः* से ही लोप हो गया तो

पञ्च ब्राह्मण्यः, ऐसा ही रहा।

इसी प्रकार सप्त आदि में समझें॥

स्वसा (बहिन)

स्वसृ पूर्ववत् ऋकारान्त होने से *ऋन्नेभ्यो ङीप्* से ङीप् पाया उसका प्रकृत सूत्र से निषेध हो गया। आगे पूर्ववत् सब सूत्र लगकर सु आया

स्वसृ सु ऋदुशनस्० (७।१।९४) *ङिच्च* (१।१।५२)

स्वसनङ् = स्वसन् सु, *सर्वनामस्थाने०* (६।४।८) *हल्ङ्याब्भ्यो०*, *न-लोपः* (८।२।७)

स्वसा बन गया।

इसी प्रकार दुहितृ से दुहिता (लड़की) ननान्दृ से ननान्दा यातृ से याता (देवरानी) में भी समझें॥

—:०:—

परि० मनः (४।१।११)

दामा

दा *भूवादयो० धातोः* (३।१।९१) *आतो मनिन्क्वनिब्व०* (३।२।७४)

दा मनिन् = मन्, *ऋन्नेभ्यो०* से ङीप् प्राप्त हुआ जिसका *मनः* से निषेध

दामन् पूर्ववत् सु आकर उपधा दीर्घत्व (६।४।८) तथा सु लोप, नकार लोप होकर

दामा बना

पा धातु से इसी प्रकार पामन् बनकर पामा बना। सीमन् शब्द से सीमा भी इसी प्रकार समझें॥

—:o:—

परि० टिड्ढाणञ्० (४।१।१५)

सुपर्णाया अपत्यं स्त्री = **सौपर्णेयी** (*सुपर्णा की सन्तान*)

सुपर्णा ङस् *अर्थवदधातु० तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *स्त्रीभ्यो ढक्* (४।१।१२०)

सुपर्णा ङस् ढ, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) तथा अङ्ग संज्ञा होकर, *आयनेयीनीयियः०* (७।१।२)

सुपर्णा एय् अ *यचि भम्* (१।४।१८) *यस्येति च* (६।४।१४८) *टिड्ढाणञ्०* से ढ प्रत्ययान्त होने से सौपर्णेय से ङीप् हो गया।

सुपर्ण् एय ङीप्, *यस्येति च, तद्धितेष्व०* (७।२।११७)

सौपर्ण् एय् ङीप्, पूर्ववत् सु आकर

सौपर्णेय् ई सुँ, *हल्ङ्याब्भ्यो०* (६।१।६६)

सौपर्णेयी बना।

विनतायाः अपत्यं स्त्री वैनतेयी (विनता की लड़की) भी इसी प्रकार जानें कुम्भकार शब्द अण् प्रत्ययान्त है जिसकी सिद्धि *कर्मण्यण्* (३।२।१) में दिखा आये हैं अतः प्रकृत सूत्र से ङीप् होकर कुम्भकारी (कुम्हारिन) नगरकारी (नगर बनाने वाली) औपगवी (उपगु की लड़की) बनेगा। उत्सस्यापत्यं स्त्री उदपानस्यापत्यं स्त्री, औत्सी (उत्स की लड़की) औदपानी भी पूर्ववत् समझें। उत्स तथा उदपान शब्दों से *उत्सादिभ्योऽञ्* (४।१।८६) से अञ् प्रत्यय हुआ है अतः औत्स औदपान अञन्त शब्द हैं सो ङीप् हो गया॥

उरुः प्रमाणमस्याः, जानुः प्रमाणमस्याः ऐसा विग्रह करके उरु तथा जानु शब्द से *प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्०* (५।२।३७) से द्वयसच् प्रत्यय हो गया तो उरुद्वयस् जानुद्वयस् रहा ङीप् होकर उरुद्वयसी (जङ्घा तक) जानुद्वयसी बन गया॥ इसी प्रकार *प्रमाणे द्वयसच्०* से ही दघ्नच् तथा मात्रच् प्रत्यय होकर उरुदघ्नी जानुदघ्नी उरुमात्री जानुमात्री भी बनेगा॥

पञ्च अवयवा अस्याः ऐसा विग्रह करके पञ्चन् शब्द से *संख्याया अव-यवे०* (५।२।४२) से तयप् होकर पञ्चतय बना, ङीप् करके पञ्चतयी (पाँच अवयवों वाली बना, यस्येति लोप सर्वत्र हो ही जायेगा॥ अक्षैर्दीव्यति आक्षिकी, (अक्षों से जो खेलता है) शलाकाभिर्दीव्यति शालाकिकी, यहाँ अक्ष तथा शलाका शब्द से *तेन दीव्यति खनति०* (४।४।२) से ठक् प्रत्यय होकर अक्ष भिस् ठक् शलाका भिस् ठक्' इस अवस्था में सुपो धातु० (२।४।७१) ठस्येकः (७।३।५०) यस्येति लोप तथा *किति* च (७।२।११८) से वृद्धि होकर, आक्षिक् इक, शलाक् इक' बना ङीप् होकर आक्षिकी शालाकिकी बन गया॥ लावणिकी (लवण बेचने वाली) में लवणं पण्यमस्याः ऐसा विग्रह करके लवण शब्द से *लवणाट्ठञ्* (४।४।५२) से ठञ् होकर लवण सु ठञ् रहा, पूर्ववत् सब होकर ङीप् होकर लावणिकी बन गया॥ *त्यदादिषु दृशो०* (३।२।६०) से कञ् प्रत्यय होकर यादृश तादृश शब्द से ङीप् होकर यादृशी तादृशी बना है॥ इत्वरी जित्वरी आदि में *इण्नशजि०* (३।२।१६३) से क्वरप् हुआ है सो ङीप् हो गया॥

परि० यञश्च (४।१।१६)

गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री = **गार्गी** (*गर्ग गोत्र में उत्पन्न लड़की*)

गर्ग	*गर्गादिभ्यो यञ्*, (४।१।१०५) *तस्यापत्यम्*, *अपत्यं पौत्रप्रभृति०* (४।१।१६२)
गर्ग ङस् यञ्	सुपो धातु० (२।४।७१) पूर्ववत् वृद्धि यस्येति लोप होकर
गार्ग् य्	*यञश्च* (४।१।१६) से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् होकर
गार्ग्य ङीप्=ई,	*यस्येति* च (६।४।१४८) होकर
गार्ग्य् ई	*हलस्तद्धितस्य* (६।४।१५०) से यकार लोप होकर *तद्धिताः* (४।१।७६) कृत्तद्धितस० (२।१।४६)
गार्ग् ई	पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर सु का लोप हो गया
गार्गी	बना।

इसी प्रकार वात्सी की सिद्धि जानें॥

—:०:—

परि० अपरिमाणबिस्ता० (४।१।२२)

पञ्चभिरश्वैः क्रीता = **पञ्चाश्वा** (*पाँच अश्वों से खरीदी हुई वस्तु*)

पञ्चन् भिस् अश्व भिस् , *तद्धितार्थोत्तरपद०* (२।१।५०) *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१)

पञ्चन्अश्व *नलोपः प्राति०* (८।२।७) *कृत्तद्धितसमासाश्च* (१।२।४६) *तेन क्रीतम्* (५।१।३६) *प्रत्ययः परश्च*

पञ्चाश्व ठक् *सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः*(२।१।५१)*अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुग०*(५।१।२८)

पञ्चाश्व अब इस पञ्चाश्व प्रातिपदिक में तद्धित का लुक् हुआ है द्विगु संज्ञक भी है, सो स्त्रीत्व विवक्षित होने पर *द्विगोः* (४।१।२१) से जो ङीप् प्राप्त था, उसका *अपरिमाणबिस्ता०* से अपरिमाणवाची मानकर निषेध हो गया तो *अजाद्यतष्टाप्* (४।१।४) से टाप् हो गया,

पञ्चाश्व टाप् सु, सु का लोप *हल्ङ्याब्भ्यो०* से हो ही जायेगा सो सवर्ण दीर्घ होकर

पञ्चाश्वा बना।

इसी प्रकार दशाश्वा में भी समझें॥

द्वे वर्षे भूते ऐसा विग्रह करके द्विवर्षा (जो दो वर्ष की है) त्रिवर्षा बना है। द्वि औ वर्ष औ इस अवस्था में *तमधीष्टो भृतो भूतो०* (५।१।७९) से ठक् प्रत्यय हो गया है, जिसका *चित्तवति नित्यम्* (५।१।८८) से लुक् हो गया, अब पूर्ववत् ही स्त्रीत्व विवक्षा में जो ङीप् प्राप्त था, उसका अपरिमाणवाची प्रातिपदिक मानकर निषेध हो गया तो टाप् होकर द्विवर्षा त्रिवर्षा बना गया॥

द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता = **द्विशता** (*दो सौ से खरीदी हुई वस्तु*)

द्वि भ्याम् शत भ्याम् , पञ्चाश्वा के समान समासादि सब होकर

द्विशत *शताच्चेति वक्तव्यम्* इस वार्त्तिक से यत् प्रत्यय होकर (वा० ५।१।२५)

द्विशत यत् *अध्यर्धपूर्वद्विगो०* (५।१।२८) से पूर्ववत् लुक् होकर

द्विशत अब पूर्ववत् *द्विगोः* से ङीप् प्राप्त उसका *अपरिमाणबिस्ता०*

से निषेध हुआ, टाप् तथा सब कुछ पूर्ववत् होकर द्विशता, त्रिशता, बना ।

इसी प्रकार द्वौ बिस्तौ पचति द्विबिस्ता यहाँ "द्वि औ बिस्ता औ" इस अवस्था में *सम्भवत्यवहरति०* (५।१।५१) से ठक् हुआ, उसका पूर्ववत् *अध्यर्ध०* (५।१।२८) से लुक् होकर शेष सब पूर्ववत् होकर द्विबिस्ता त्रिबिस्ता बना ।। द्वौ आचितौ पचति द्व्याचिता (५० मन पकाता है) में भी *द्विगोष्ठश्च* (५।१।५३) से ठन् हुआ है जिसका पूर्ववत् ही लुक् होकर तथा शेष सब कार्य भी पूर्ववत् होकर द्व्याचिता त्र्याचिता बना है ।। द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता द्विकम्बल्या में पञ्चाश्वा के समान ही तेन क्रीतम् से ठक् आकर उसी के समान सब कार्य हुये ।।

—:०:—

परि० बहुव्रीहेरू० (४।१।२५)

कुण्डमिव ऊधोऽस्या = **कुण्डोध्नी** (*कुण्ड के समान जिसका आयन है*)

कुण्ड सु ऊधस् सु *अनेकमन्य०* (२।२।२४) *सुपो धातु०* (२।४।७१)

कुण्डऊधस् *आद् गुणः* (६।१।८४) *ऊधसोऽनङ्* (५।४।१३१) *ङिच्च* (१।१।५२)

कुण्डोध अनङ् = *अतो गुणे* (६।१।९४) *तद्धिताः* (४।१।७६)

कुण्डोधन् *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) अब यह अन्नन्त प्रातिपदिक है सो अनो बहुव्रीहेः से ङीप् का निषेध तथा *डाबुभाभ्या०* से पक्ष में डाप् पाया, तो उन दोनों का अपवाद *बहुव्रीहेरूधसो ङीष्* से ङीष् हो गया ।

कुण्डोधन् ङीष् अब यहाँ *बहुव्रीहौ प्रकृत्या०* (६।२।१) से पूर्वपद को प्रकृति स्वर पाया, *सतिशिष्टस्वरो बलीयान्* यह परिभाषा लगकर फिर ङीष् का स्वर *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) हुआ ।

कुण्डोधन् ई *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *अल्लोपोनः* (६।४।१३४)

कुण्डोध्न् ई *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* (६।१।१५२)

कुण्डोध्नी सु ऐसा स्वर रहा अब पूर्ववत् सु आकर उसका लोप हो गया कुण्डोध्नी बना।

इसी प्रकार घटोध्नी में समझें। ङीप् तथा ङीष् में यहीं भेद है कि ङीष् का स्वर *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से आद्युदात्त होता है, तथा ङीप् का स्वर *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।४) से अनुदात्त होता है॥

—:०:—

परि० सङ्ख्याव्य० (४।१।२६)

द्वे ऊधसी यस्याः सा = द्व्यूध्नी (दो ऊधस् वाली)

द्वि औ ऊधस् औ, पूर्ववत् समासादि सब होकर,

द्वि ऊधन् *बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्व०* (६।२।१) से पूर्वपद प्रकृति स्वर पाया तो *फिषोऽन्तोदात्तः* (*फिट्* १) से जो द्वि उदात्त था वही रहा, शेष *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* से निघात होकर

द्वि ऊधन् *इको यणचि* (६।१।७४) *उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो०* (८।२।४) से अब अनुदात्त को स्वरित हुआ

द्व्यूधन् अब *सङ्ख्याव्ययादेर्ङीप्* से ङीप् हुआ

द्व्यूधन् ङीप्=ई, *अनुदात्तौ सुप्पितौ* (३।१।४) *अल्लोपोनः* (६।४।१३४)

द्व्यूध्न् ई शेष सब पूर्ववत् होकर

द्व्यूध्नी

इसी प्रकार त्रीणि ऊधांसि यस्याः सा त्र्यूध्नी भी बनेगा॥ अतिगतमूधो यस्या अत्यूध्नी में *निपाता आद्युदात्ताः* (*फि०* ६६) से अति का अ उदात्त है, शेष सब निघात हो ही जायेगा। *उदात्तादनुदा०* (८।४।६५) से 'ऊ' को स्वरित हो जायेगा॥ सिद्धि पूर्ववत् है। निर्गतमूधो यस्याः निरूध्नी (जिसका उधस् नहीं रहा) भी इसी प्रकार जानें। यहाँ हमने ङीप्, ङीष् का भेद जनाने के लिये स्वर की सिद्धि कर दी है ङीष् उदात्त तथा ङीप् अनुदात्त रहेगा यही भेद सर्वत्र पाठक समझें॥

—:०:—

परि० अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा (४।१।५३)

जग्धः (खाया हुआ)

अद् भूवादयो० धातोः निष्ठा, (३।२।१०२) प्रत्ययः, परश्च क्तक्तवतू० (१।१।२५)
अद् क्त अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति (२।४।३६)
जग्ध् त झषस्तथोर्धोऽधः (८।२।४०)
जग्ध् ध झरो झरि सवर्णे (८।४।६४) से ध् का लोप तथा पूर्ववत् रु
जग् ध् इत्यादि आकर
जग्धः बना।

अब शाङ्गं इव जग्धो यस्याः ऐसा विग्रह करके शाङ्गजग्धी बना। *अनेकमन्यपदार्थे* (२।२।२४) से समास होकर *अस्वाङ्गपूर्व०* से ङीष् हो गया, जब ङीष् नहीं हुआ तो टाप् हो गया है, शाङ्गजग्ध आदि शब्द *जातिकालसुखा०* (६।२।१६९) से अन्तोदात्त हैं॥

पलाण्डुः भक्षितः यया सा पलाण्डुभक्षिती (जिसके द्वारा प्याज खाई गई) यहाँ भी पूर्ववत् समासादि समझें। भक्ष धातु चुरादि गण की है सो *सत्या०.....चुरादिभ्यो णिच्* (३।१।२५) से णिच् होकर 'क्त' में भक्षितः रूप बना है, शेष पूर्ववत् है॥

सुरा पीता यया सा सुरापीती (जिसके द्वारा शराब पी ली गई है) यहाँ पा धातु से क्त में *घुमास्थागा०* (६।४।६६) से ईत्व होकर पीत शब्द बना, पश्चात् सुरा शब्द के साथ पूर्ववत् समासादि करके सुरापीती बन गया है॥

—:०:—

परि० वाहः (४।१।६१)

दित्यं वहतीति = दित्यौही

दित्य अम् वह, पूर्ववत् कुम्भकारः की सिद्धि के समान सब समासादि कार्य होकर *वहश्च* (३।२।६४) से ण्वि प्रत्यय आया
दित्यवह् ण्वि = व्, अनुबन्ध लोप होकर 'व्' बचा, पुनः व् का भी *वेरपृक्तस्य* (६।१।६५) से लोप होकर,

दित्यवह् *प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्* (१।१।६१) से प्रत्यय लक्षण कार्य मानकर, *अत उपधायाः* (७।२।११६) से वृद्धि हुई

दित्यवाह् *कृत्तद्धितसमा०* (१।२।४६) *ङ्याप्प्रातिपदिकात्* , *वाहः*

दित्यवाह् ङीष्, *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *वाह ऊठ्* (६।४।१३२) से वकार को ऊठ् सम्प्रसारण संज्ञक होकर

दित्य ऊठ् ह् ई, *एत्येधत्यूठ्सु* (६।१।८६) से पूर्वपर को वृद्धि एकादेश होकर

दित्यौही सु पूर्ववत् सु आकर हल्ङ्याब्भ्यो० से लोप होकर

दित्यौही बना।

इसी प्रकार प्रष्ठं वहति *प्रष्ठौही* बनेगा ॥

—:०:—

परि० इतो मनुष्यजातेः (४।१।६५)

अवन्ती

अवन्ति ङस् *अर्थवदधातुर०* *ङ्याप्प्राति०* *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) *वृद्धेत्कोसलाजादा०* (४।१।१६९)

अवन्ति ङस् ञ्यङ्, *सुपो धातुप्राति०* (२।४।७१) *ते तद्राजाः* (४।१।१७२)

अवन्ति य से ञ्यङ् की तद्राज संज्ञा हो गयी, तो *स्त्रियामवन्तिकुन्ति* (४।१।१७४) से तद्राज संज्ञक 'य' का लुक् हो गया, तब *इतो मनुष्यजातेः* से ङीष् होकर,

अवन्ति ङीष् = ई, *यस्येति च* (६।४।१४८) तथा पूर्ववत् सु आकर उसका

अवन्त् ई लोप होकर

अवन्ती बना।

इसी प्रकार कुन्ती में समझें ॥

दक्षस्यापत्यं दाक्षिः (दक्ष की सन्तान) यहाँ भी दक्ष शब्द से *अत इञ्* (४।१।९५) से इञ् तथा वृद्धि आदि होकर दाक्षि बना, अब ङीष् तथा यस्येति लोप होकर दाक्षी प्लाक्षी बन गया, शेष स्वाद्युत्पत्ति आदि पूर्ववत् ही होंगे ॥

—:०:—

परि० यङश्चाप् (४।१।७४)

आम्बष्ठ्या

आम्बष्ठ ङस्, पूर्ववत् *वृद्धेत्कोसला०* (४।१।१६९) से वृद्ध होने से ञ्यङ् प्रत्यय होकर
आम्बष्ठ ङस् ञ्यङ्, *यस्येति च* (६।४।१४८) *वृद्धिर्यस्याचामा०* (१।१।७२)
आम्बष्ठ्य　यङन्त होने से यङश्चाप् से चाप् होकर
आम्बष्ठ्य चाप् = आ, *अकः सवर्णे०* (६।१।९७) तथा सु आकर उसका पूर्ववत् लोप होकर
आम्बष्ठ्या　बना।

इसी प्रकार सौवीर से *सौवीर्या* समझें॥

कारीषगन्ध्या

करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य ऐसा विग्रह करके
करीष सु गन्ध सु गन्ध सु, यहाँ *सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य०* (वा० २।२।२४) से समास तथा उत्तरपद का लोप हो गया सुपो धातु० (२।४।७१) से विभक्ति लोप होकर
करीषगन्ध　*उपमानाच्च* (५।४।१३७) से इत् होकर
करीषगन्धि　बना, अब करीषगन्धेरपत्यं ऐसा विग्रह करके *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) से अण् होकर
करीषगन्धि ङस् अण्, सुपो धातु० (२।४।७१) *यस्येति* च (६।४।१४८)
करीषगन्ध् अ, *तद्धितेष्वचामादेः* (७।२।११७) से वृद्धि हुई
कारीषगन्ध् अ, अब यह कारीषगन्ध शब्द अणन्त है तथा *संयोगे गुरु* (१।४।११) से उपोत्तम[1] गुरु संज्ञक भी है, सो *अणिञोरनार्ष०* (४।१।७८) से ष्यङ् आदेश (अण् को) हुआ,
कारीषगन्ध् ष्यङ्, अनुबन्ध लोप होकर
कारीषगन्ध्य　*यङश्चाप्* से अब यङन्त होने से चाप् हुआ

---

१. उपोत्तम क्या है, इसकी व्याख्या, *अणिञोरनार्ष०* (४।१।७८) पर ही देखें॥

कारीषगन्ध्य चाप् = आ, *अकः सवर्णे दीर्घः* (६।१।९७) शेष पूर्ववत् होकर कारीषगन्ध्या बना।

इसी प्रकार वराह, बालाक शब्दों से, अपत्यार्थ विवक्षा में *अत इञ्* होकर वाराहि बालाकि शब्द बने, अब पूर्ववत् इञन्त शब्द होने से ष्यङ् (४।१।७८) आदेश तथा चाप् प्रत्यय करके वाराह्या बालाक्या बन गया॥

—:०:—

परि० गोत्रेऽलुगचि (४।१।८९)

गार्गीयाः

गर्ग शब्द से *गर्गादिभ्यो यञ्* (४।१।१०५) से यञ् होकर गार्ग्य गोत्रापत्य में बनता है। इसके रूप गार्ग्यः गार्ग्यौ गर्गाः ऐसे चलते हैं सर्वत्र बहुवचन में *यञञोश्च* (२।४।६४) से यञ् का लुक् होता है, सो गार्ग्य शब्द से षष्ठी के बहुवचन में यञ् का लुक् होकर गर्गाणाम् (पुरुषाणाम् के समान बना) छात्राः ऐसा विग्रह करके, अजादि प्रत्यय आगे आयेगा, ऐसी विवक्षा में ही गार्ग्य आम्, यहाँ जो *यञञोश्च* से यञ् का लुक् प्राप्त था उसका अलुक् *गोत्रेऽलुगचि* से हो गया, क्योंकि अजादि प्रत्यय आगे आना है। अब वृद्ध संज्ञा (१।१।७२) होने से *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ प्रत्यय होकर "गार्ग्य आम् छ" यह स्थिति बनीं। *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१) से विभक्ति का लुक् होकर गार्ग्य छ रहा। छ को *आयनेयीनी०* (७।१।२) से ईय तथा यस्येति लोप होकर *आपत्यस्य च तद्धिते०* (६।४।१५१) से यकार का लोप होकर गार्ग् ईय = गार्गीय, स्वाद्युत्पत्ति होकर गार्गीयाः बन गया॥ इसी प्रकार वात्सीयाः में जानें॥

आत्रेयीयाः

आत्रेयीयाः यहाँ अत्रेरपत्यानि बहूनि (अत्रि के जो बहुत से अपत्य) ऐसा विग्रह करके 'अत्रि ङस्' इस अवस्था में *इतश्चानिञः* (४।१।१२२) से गोत्रापत्य में ठक् होकर आत्रेयः बना। इसके रूप आत्रेयः आत्रेयौ अत्रयः ऐसे चलते हैं। अर्थात् सर्वत्र बहुत्व विवक्षा में *अत्रिभृगुकुत्स०* (२।४।६५) से ढक् का लुक् होता है॥ अतः अत्रीणां छात्राः ऐसा

विग्रह करके, अजादि प्रत्यय की विवक्षा होने पर, आत्रेय आम् इस अवस्था में जो ढक् का लुक् (२।४।७१) पाया उसका प्रकृत सूत्र ने निषेध कर दिया, तो आत्रेय ही रह गया। अब वृद्ध संज्ञा होकर पूर्ववत् छ होकर आत्रेयीयाः बन गया ॥

खारपायणीयाः

खारपायणीयाः यहाँ खरपस्यापत्यानि बहूनि ऐसा विग्रह करके गोत्रापत्य में *नडादिभ्यः फक्* (४।१।९९) से फक् तथा *किति च* (७।२।११८) से वृद्धि, आयन को णत्वादि होकर खारपायण बना। अब खरपाणां छात्राः यहाँ ऐसा विग्रह करके *यस्कादिभ्यो गोत्रे* (२।४।६३) से जो लुक् प्राप्त हुआ, उसका प्रकृत सूत्र से अजादि प्रत्यय की विवक्षा होने के कारण अलुक् हो गया। पश्चात् पूर्ववत् छ होकर खारपायणीयाः बन गया ॥ सर्वत्र प्रत्यय का अलुक् होने से आदि अच् में वृद्धि बनी रहती है, सो *वृद्धिर्यस्या०* (१।१।७२) से वृद्ध संज्ञा होकर छ प्रत्यय हो जाता है ॥

——:००:——

परि० यूनि लुक् (४।१।९०)

फाण्टाहृतस्य छात्राः **फाण्टाहृताः**

इस उदाहरण में मूल प्रकृति फाण्टाहृत है, उससे फाण्टाहृतस्यापत्यं (फाण्टाहृत की जो सन्तान) ऐसा विग्रह करके गोत्रापत्य में (पौत्रप्रभृति अपत्य में ४।१।१६२) अत इञ् (४।१।९५) से इञ् होकर फाण्टाहृतिः बना। अब *गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्* (४।१।९४) के नियम के कारण गोत्रप्रत्ययान्त फाण्टाहृति शब्द से फाण्टाहृतेरपत्यं युवा ऐसा विग्रह करके युवापत्य में (४।१।१६३) *फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ* (४।१।१५०) से ण प्रत्यय आकर 'फाण्टाहृति ङस् ण' ऐसा बना, तब *सुपो धातुप्रा०* (२।४।७१) तथा यस्येति लोप होकर फाण्टाहृत् अ = फाण्टाहृतः ऐसा युवापत्य में रूप बना। अब पुनः फाण्टाहृतस्य (युवापत्य के) छात्राः, ऐसा विग्रह करके, प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की

विवक्षा की, तो अजादि प्रत्यय आने से पूर्व ही *यूनि लुक्* (४।१।९०) से युवापत्य में आये हुये 'ण' का लुक् हो गया, प्रत्यय का लुक् हो जाने से यस्येति लोप जो अजादि प्रत्यय को मानकर हुआ था वह भी हट गया तो फाण्टाहृति गोत्रापत्य वाला पहले जैसा रूप रह गया तब तस्य छात्राः कहने अर्थ में अजादि प्रत्यय *इञश्च* (४।२।१११) से अण् आकर यस्येति लोप आदि होकर बहुवचन में फाण्टाहृताः बन गया ॥

अचि में विषय सप्तमी मानने के कारण अजादि प्रत्यय आने से पूर्व ही लुक् हो जाता है, तो इञन्त प्रकृति रह जाती है, अतः बाद में इञश्च से इञन्त मानकर अण् हो जाता है ॥

—:o:—

भागवित्ताः

भागवित्तस्यापत्यं, ऐसा विग्रह करके भागवित्त शब्द से गोत्रापत्य में इञ् (४।१।९५) होकर भागवित्तिः (भागवित्त की सन्तान) रूप बना। आगे भागवित्ति शब्द में भागवित्तेरपत्यं युवा ऐसा विग्रह करके युवापत्य में *वृद्धाट्ठक् सौवी०* (४।१।१४८) से ठक् होकर, *ठस्येकः* (७।३।५०) आदि लगकर भागवित्तिकः बन गया, अब पुनः युवप्रत्ययान्त भागवित्तिक शब्द से तस्य छात्राः ऐसा विग्रह करके अजादि प्रत्यय की विवक्षा की तो, अजादि प्रत्यय आने से पूर्व ही प्रकृत सूत्र से युवप्रत्यय ठक् का लुक् हो गया, सो पूर्ववत् इञन्त प्रकृति भागवित्ति रही, अब पूर्ववत् अण् होकर भागवित्ताः बहुवचन में बन गया ॥

तैकायनीयाः यहाँ भी पहले गोत्रापत्य में तिक शब्द से *तिकादिभ्यः फिञ्* (४।१।१५४) से फिञ् होकर आयनादि होकर तैकायनिः बना, पुनः तैकायनेरपत्यं युवा, ऐसा विग्रह करके *फेश्छ च* (४।१।१४९) से छ युवापत्य में लाये तो छ को ईय तथा यस्येति लोप होकर तैकायनीयः युवप्रत्ययान्त रूप बना। अब पुनः तैकायनीय से तस्य छात्राः विग्रह करके अजादि प्रत्यय की विवक्षा की तो युवा प्रत्यय छ का लुक् प्रकृत सूत्र से होकर "तैकायनिः" रूप बच रहा, अब वृद्ध संज्ञक होने से अजादि प्रत्यय *वृद्धाच्छः* (४।२।११३) से छ होकर तैकायनीयाः बन गया ॥

———

गोत्रापत्य में तैकायनिः, युवापत्य में तैकायनीयः तथा तैकायनीय के छात्रों को कहने में तैकायनीयाः बन गया ॥

—:०:—

कापिञ्जलादाः

कापिञ्जलादाः यहाँ भी पूर्ववत् ही कपिञ्जलादस्यापत्यं विग्रह करके, इञ् होकर कापिञ्जलादिः गोत्रापत्य में बना, गोत्रापत्य से पुनः युवापत्य में *कुर्वादिभ्यो ण्यः* (४।१।१५१) से ण्य प्रत्यय होकर कापिञ्जलाद्यः बना। अब कापिञ्जलाद्यस्य छात्राः ऐसा विग्रह करके, अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवप्रत्यय ण्य का लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया, तो कापिञ्जलादिः इञन्त प्रकृति रह गया, अब *इञश्च* (४।२।१११) से अण् होकर कापिञ्जलादाः बन गया ॥

—:०:—

ग्लौचुकायनाः

ग्लौचुकायनाः यहाँ पूर्ववत् ग्लुचुकस्यापत्यं विग्रह करके गोत्रापत्य में *प्राचामवृद्धात् फिन्०* (४।१।१६०) से फिन् आकर फ को आयन इत्यादि होकर ग्लुचुकायनिः बना। अब ग्लुचुकायनेरपत्यं युवा ऐसा विग्रह करके युवापत्य में *तस्यापत्यम्* (४।१।९२) से अण् हुआ तो यस्येति लोप होकर ग्लौचुकायनः बन गया। तस्य छात्राः ऐसा विग्रह करके अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युव प्रत्यय अण् का यूनि लुक् से लुक् हो गया तो ग्लुचुकायनिः प्रकृति बच रही, सो अजादि शैषिक प्रत्यय *प्राग्दीव्यतोऽण्* (४।१।८३) से अण् हो गया तो ग्लौचुकायनाः बन गया। इस प्रकार गोत्रापत्य में ग्लुचुकायनिः, युवापत्य में ग्लौचुकायनाः तथा ग्लौचुकायन के शिष्यों को कहना हो तो भी ग्लौचुकायनाः बना ॥

—:०:—

परि० फक्फिञोर० (४।१।९१)

गार्गीयाः

गर्ग शब्द से गार्ग्य पूर्ववत् गोत्रापत्य में बनकर, पुनः गार्ग्य से युवापत्य में *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से फक् होकर, 'गार्ग्य फक्' फक् को आयनादि होकर गार्ग्यायण युवापत्य में बना। अब युवाप्रत्ययान्त गार्ग्यायण से गार्ग्यायणस्य छात्राः ऐसा विग्रह करके अजादि प्रत्यय की विवक्षा की, तो 'फक्' युवाप्रत्यय का लुक् प्रकृत सूत्र से हो गया तो गार्ग्य प्रकृति बच रही, अव वृद्ध संज्ञा को मानकर अजादि प्रत्यय छ (४।२।११३) हो गया, तो गार्गीयाः परि० ४।१।८६ के समान बन गया। जब युवा प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ तो गार्ग्यायण से छ होकर गार्ग्यायणीयाः बन गया॥ इसी प्रकार लुक् पक्ष में वात्सीयाः अलुक् पक्ष में वात्स्यायनीयाः जानें॥

यास्कीयाः

यस्क शब्द से यस्कस्यापत्यं ऐसा विग्रह करके गोत्रापत्य में *शिवादिभ्योऽण्* (४।१।११२) से अण् होकर, वृद्धि, (७।२।११७) पूर्ववत् होकर यास्कः (यस्क की सन्तान) बना। अब यास्क शब्द से युवापत्य को कहने में *अणो द्व्यचः* (४।१।१५६) से फिञ् तथा फिञ् को आयनादि होकर यास्कायनिः बन गया। अब पुनः यास्कायनेः छात्राः ऐसा विग्रह करके अजादि प्रत्यय की विवक्षा की, तो युवप्रत्यय फिञ् का लुक् *फक्फिञो०* से हो गया, पुनः अजादि प्रत्यय छ होकर यास्कीयाः पूर्ववत् बन गया, जब लुक् नहीं हुआ तो यास्कायनीयाः बन गया॥

गोत्रप्रत्ययान्त से ही *गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्* (४।१।९४) के नियम से युव प्रत्यय की उत्पत्ति होती है, अतः सर्वत्र सिद्धि में पहले गोत्रापत्य दिखाया है, पुनः युवापत्य पश्चात् अजादि प्रत्यय की विवक्षा यही क्रम सर्वत्र है॥

—:०:—

परि० छन्दोब्राह्मणानि० (४।२।६५)

कठाः

'कठेन प्रोक्तम् अधीयते' ऐसा विग्रह करके कठ तृतीयान्त सुबन्त से पहले *कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च* (४।३।१०४) से णिनि प्रत्यय हुआ, और उस णिनि का *कठचरकाल्लुक्* (४।३।१०७) से लुक् हो गया। प्रकृत सूत्र से प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्द के स्वतन्त्र प्रयोग की निवृत्ति होकर तद्विषयता = अध्येतृ वेदितृ विषयता हो गई, सो कठेन प्रोक्तमधीयते ऐसा विग्रह होता है। यहाँ प्रोक्त प्रत्ययान्त से अध्येतृ वेदितृ विषय में स्वतन्त्र प्रत्यय नहीं होता[1]। जैसा कि पणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, पाणिनीयमधीते पाणिनीयाः। बहुवचन में जस् आकर 'कठाः' रूप बन गया। इस प्रकार कठ के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ को जो पढ़ते एवं जानते हैं वे 'कठ' कहायेंगे।

तैत्तिरीयाः

तित्तिरि शब्द से *तित्तिरिवरतन्तु०* (४।३।१०२) से प्रोक्त अर्थ में छण् होकर छ को 'ईय' एवं वृद्धि आदि कार्य होकर 'तैत्तिरीय' बना यहाँ भी पूर्ववत् तद्विषयता हो जाने से अध्येतृ वेदितृ अर्थ में स्वतन्त्र प्रत्यय नहीं होता अण् होकर बहुवचन तैत्तिरीयाः बन गया। इसी प्रकार वारतन्तवीयाः भी बनेगा।

ताण्डिनः

यहाँ ताण्ड्य यञन्त (४।१।१०५) ऋषिवाची शब्द से प्रोक्तार्थ में *कालापिवैशम्पा०* (४।३।१०४) से णिनि प्रत्यय हुआ है। *आपत्यस्य च तद्धिते०* (६।४।१५१) से ताण्ड्य के 'य' का लोप होकर

---

१. न्यासकार ने इस प्रकरण में प्रोक्तप्रत्ययान्त से अध्येतृ वेदितृ विषय में अण् का विधान करके *प्रोक्ताल्लुक्* (४।२।६३)से लुक् किया है वह ठीक नहीं है।

'ताण्डिन्' बना। यहाँ पर भी प्रोक्त प्रत्ययान्त की तद्विषयता पूर्ववत् समझें। बहुवचन में ताण्डिनः बना।

भाल्लविनः

यहाँ भी भाल्लवि इञन्त शब्द से *पुराण* (४।३।१०५)से णिनि होता है एवं तद्विषयता होने से भाल्लविप्रोक्त ग्रन्थ के अध्येता भाल्लविनः कहाते हैं।

—:०:—

शाट्यायनिनः

यहाँ भी गर्गादि यञन्त शाट्य शब्द से *यञिञोश्च* (४।१।१०१) से फक् होकर 'शाट्यायन' बना। पुनः शाट्यायन शब्द से पूर्ववत् णिनि एवं तद्विषता होकर शाट्यायनिनः बन गया है। ऐतरेय शुभ्रादि ढगन्त शब्द से इसी प्रकार सारे कार्य होकर ऐतरेयिणः की सिद्धि जाने॥

—:००:—

अथ पञ्चमाध्यायपरिशिष्टम्

परि० किमिदम्भ्यां वो घः (५।२।४०)

कियान् (कितने)

किम् *अर्थवद०* (१।२।४५) आदि सब सूत्र लगकर

किम् सु *किमिदम्भ्यां वो घः* से वतुप् प्रत्यय तथा वतुप् के व

किम् सु वतुप् को घ होकर, *सुपो धातु०* (२।४।७१)

किम् घतुप् = घत् पूर्ववत् अङ्ग संज्ञा तथा *आयनेयीनी०* (७।१।२) से घ् को इय् होकर

किम् इय् अत् = किम् इयत्, *इदंकिमोरीश्की* (६।३।८८) से किम् को की आदेश होकर

की इयत् *यस्येति* च (६।४।१४८) *तद्धिताः* (४।१।७६)

क् इयत् = कियत्, *कृत्तद्धित०* (१।२।४६)से प्रातिपदिक संज्ञा तथा पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर

कियत् सु　　उगिदचां (७।१।७०) मिदचो० (१।१।४६) सर्वनामस्थाने० (६।४।८) से दीर्घ होकर .
कियान् त् स् हल्ङ्या० (६।१।६६) संयोगान्तस्य लोपः (८।२।२३)
कियान्　　बना।

इसी प्रकार इयान् (इतने) की सिद्धि में इदम् सु वतुप् = इदम् घत् रहा। इदंकिमोरीश्की (६।३।८८) से इदम् के स्थान में ईश् आदेश अनेकाल्शित्० (१।१।५४) लगकर सारे इदम् के स्थान में हुआ, सो ई + घत् यहाँ पूर्ववत् घ् को इय् होकर ई इय् अत्, यस्येति च से ईश् के ई का लोप होकर इयत् रहा। अब पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति नुमागम दीर्घादि होकर इयान् बन गया॥

परि० अञ्चेर्लुक् (५।३।३०)

प्राग् वसति (प्राची दिशा में रहता है)

प्र अञ्चु　　भूवादयो० धातोः, ऋत्विग्दधृक्स्र० (३।२।५९) से क्विन् प्रत्यय होकर
प्र अञ्चु क्विन् अनिदितां हल० (६।४।२४) से अनुनासिक लोप,
प्रअच् क्विन् = व्, वेरपृक्तस्य (६।१।६५) अपृक्त एकाल्प्रत्ययः (१।२।४१)
प्रअच्　　अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम् (वा० ४।१।६) इस वार्त्तिक से ङीप्
प्र अच् ङीप् यचि भम् (१।४।१८) अचः (६।४।१३८) से भसंज्ञक अच् के अ का लोप होकर,
प्र च् ई　　चौ (६।३।१३६) से पूर्वपद प्र को दीर्घ हुआ,
प्राच् ई = प्राची ङ्याप्प्रातिपदिकात् आदि सब पूर्ववत् लगकर ङि विभक्ति आई,
प्राची ङि　　दिग्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी० से अस्ताति प्रत्यय
प्राची ङि अस्ताति सुपो धातुप्रा० (२।४।७१) आदि लगकर
प्राची अस्ताति अब अञ्चेर्लुक् से इसी अस्ताति का लुक् हुआ,
प्राची　　लुक्तद्धितलुकि (१।२।४९) से अस्ताति तद्धित का लुक् होने पर स्त्री प्रत्यय ङीप् का भी लुक् होकर

प्राच् पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर, *तद्धितश्चासर्वविभक्तिः* (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर *अव्ययादाप्सुपः* (२।४।८२) से सु का लोप पद संज्ञा होकर *झलां जशोन्ते* (८।२।३९) से जश्त्व होकर

प्राग् वसति बना।

इसी प्रकार सिद्धि पञ्चम्यन्त वा प्रथमान्त में भी जानना॥

—:०:—

परि० तुश्छन्दसि (५।३।५९)

करिष्ठः

डुकृञ् पूर्ववत् सब होकर, तृन् (३।२।१३५) से तृन् प्रत्यय हुआ

कृ तृ पूर्ववत् *सार्वधातु०* (७।३।८४)से गुण *उरण्रपरः* (१।१।५०)

कर्तृ *तुश्छन्दसि, अतिशायने तमबिष्ठनौ*, से प्रकर्ष विवक्षा में इष्ठन् प्रत्यय आया,

कर्तृ इष्ठन् *तुरिष्ठेमेयस्सु* (६।४।१५४) से इष्ठन परे रहते तृ का लोप हुआ

कर् इष्ठ = करिष्ठ, *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) आदि लगकर पूर्ववत् स्वाद्युत्पत्ति होकर रुत्व विसर्ग

करिष्ठः बना।

———

दोहीयसी

दुह् तृन् पूर्ववत् कार्य होकर, *पुगन्तलघू०* (७।३।८६) से गुण

दोह् तृ *दादेर्धातोर्घः* (८।२।३२) *झषस्तथोर्धोऽधः* (८।२।४०)

दोघ् धृ *ऋन्नेभ्यो ङीप्* (४।१।५) *स्त्रियाम्* (४।१।३)

दोघ् धृ ङीप्=ई, *झलां जश्झशि* (८।४।५२) *इको यणचि* (६।१।७४)

दोग् ध्र् ई = दोग्ध्री, पूर्ववत् इष्ठन् होकर

दोग्ध्री ईयसुन्, पूर्ववत् *तुरिष्ठेमेयस्सु* से तृ (ध्री) लोप, तृ के लोप होने पर, जिस तृ को मानकर ह् को घत्वादि हुये थे वह

भी निमित्त[1] के हट जाने पर हट गये सो 'ह्' ही रहा
दोह् ईयसुन् = ईयस्, पुनः *उगितश्च* (४।१।६) से ङीप् होकर
दोहीयस् ङीप् = ई, पूर्ववत् सु आकर, हल्ङ्यादि लोप हुआ
दोहीयसी　　बना।

—:०:—

परि० अव्यय० (५।३।७१)

एहकि

आङ् पूर्वक इण् धातु के लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है। सिप् को *सेर्ह्यपिच्च* (३।४।८७) से हि तथा शप् का *अदिप्रभृतिभ्यः शपः* (२।४।७२) से लुक् होकर 'आ इ हि' रहा *आद् गुणः* (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर एहि बना। तत्पश्चात् प्रकृत सूत्र से इ से पूर्व अकच् होकर एहकि बना॥ इसी प्रकार अद धातु से अद्धकि में जानें॥

—:०:—

परि० नीतौ च तद्युक्तात् (५।३।७७)

धानकाः

धानकाः—यहाँ धानक में धान्यार्थक धान शब्द से 'क' प्रत्यय हुआ है। कुछ वैयाकरण लाजा = खील वाचक स्त्रीलिङ्ग धाना शब्द से क प्रत्यय मानते हैं। उनके मत में *केऽणः* (७।४।१३) से ह्रस्व हो जाता है। *क्वचित् स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्ते* इस परिभाषानुसार स्वार्थिक प्रत्यय होने पर भी पुँल्लिङ्ग में प्रयोग होता है॥

—:०:—

परि० समासान्ताः (५।४।६८)

राज्ञः समीपम् **उपराजम्** (*राजा के समीप*)
उप सु राजन् ङस् पूर्ववत् उपकुम्भम् के समान समीपार्थ में
अव्ययीभाव समासादि होकर।

---

१. इसमें प्रमाण *निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः* यह वैयाकरणों का प्रसिद्ध वचन है॥

उपराजन् *अनश्च* (५।४।१०८) से समासान्त टच् प्रत्यय होकर

उपराजन् टच् पूर्ववत् सु आकर

उपराजन् अ सु *यचि भम्* (१।४।१८) *भस्य* (६।४।१२९) *नस्तद्धिते* (६।४।१४४) से टि भाग का लोप होकर

उपराज् अ सु, अव्ययीभाव संज्ञा उपराज की तो है ही, किन्तु टच् प्रत्यय के समास के अवयव होने के कारण टच् सहित उपराज अव्ययीभाव कहलाया। अतः *नाव्ययीभावादतो०* (२।४।८३) से अकारान्त अव्ययीभाव मानकर सु को अम् हो गया।

उपराज अम् *अमि पूर्वः* (६।१।१०३) से पूर्वरूप होकर

उपराजम् बना।

राजसु अधिकृत्य अधिराजम् में विभक्त्यर्थ में समास होकर शेष सब कार्य पूर्ववत् हुआ है। टच् को समास का अवयव मानने से पूर्ववत् ही लाभ है॥

द्वे पुरौ समाहृते = द्विपुरी

द्वि औ पुर् औ, *तद्धितार्थोत्तर०* (२।१।५०) से समास तथा २।४।७१ से विभक्ति लुक् होकर,

द्विपुर् *ऋक्पूरब्धूःपथा०* (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय हुआ,

द्विपुर् अ *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) 'अ' के समासान्त अर्थात् द्विपुर् का ही भाग माने जाने से 'द्विपुर् अ' इतना भाग द्विगुसंज्ञक कहाया तो *द्विगोः* (४।१।२१) से अकारान्त द्विगु संज्ञक मानकर ङीप् हुआ,

द्विपुर ङीप् सु, हल्ङ्याादि लोप होकर

द्विपुरी बना।

यदि 'अ' प्रत्यय समास का अवयव न होता, तो द्विपुर् के अकारान्त न होने से ङीप् प्रत्यय न होता।

इसी प्रकार त्रिपुरी में समझें।

कोशश्च निषच्च = कोशनिषदिनी

कोश सु निषत् सु, *चार्थे द्वन्द्वः* (२।२।२६) *सुपो धातु०* (२।४।७१)
कोशनिषद्	*द्वन्द्वाच्चुदषहा०* (५।४।१०६) से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ
कोशनिषद् टच्, टच् के समासान्त होने से 'कोशनिषद् अ' इतना भाग द्वन्द्व संज्ञक हुआ, सो अकारान्त द्वन्द्व संज्ञक मानकर *द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्०* (५।२।१२८) से इनि प्रत्यय हो गया
कोशनिषद् इनि = इन् *कृत्तद्धित०* (१।२।४६) *ऋन्नेभ्यो ङीप्* (४।१।५)
कोशनिषदिन् ङीप् = ई सु, पूर्ववत् होकर
कोशनिषदिनी बना।

इसी प्रकार स्रक् च त्वक् च *स्रक्त्वचिनी* में भी जानें॥

विगता धूर्यस्य = विधुरः

वि सु धुर् सु	बहुव्रीहि समास करके *सुपो धातु०* (२।४।७१)
विधुर्	*ऋक्पूरब्धूः०* (५।४।७४) से अ प्रत्यय होकर
विधुर् अ	अ के समासान्त होने से 'विधुर् अ' इतना भाग बहुव्रीहि संज्ञक हुआ, तो *बहुव्रीहौ प्र०* (६।२।१) से पूर्वपद प्रकृतिस्वर प्राप्त हुआ, सो *निपाता आद्युदात्ताः* (फिट् ७९) से 'वि' उदात्त हुआ, आगे *अनुदात्तं पदमेकवर्जम्* (६।१।१५२) से शेष निघात तथा *उदात्तादनुदा०* (८।४।६५) से स्वरित होकर एकश्रुति कार्य हुआ।
विधुंरः	बना।

यदि यह 'अ' प्रत्यय समासान्त न होता तो *आद्युदात्तश्च* (३।१।३) से अ प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर होता, उसके सतिशिष्ट होने से विधुर

में उसका ही होता। अब समास का ही भाग हो जाने से प्रत्यय का पृथक् स्वर नहीं लगा॥

इसी प्रकार प्रगता धूर्यस्य, प्रधुरः में जानें॥

उच्चैर्धूरस्य = उच्चैर्धुरः यहाँ भी पूर्ववत् बहुव्रीहि समास होकर, अ प्रत्यय समासान्त (५।४।६८) हुआ, सो समास का अवयव होने से *बहुव्रीहौ प्रकृत्या०* (६।२।१) से पूर्वपदप्रकृति स्वर होने के कारण *फिषोऽन्तोदात्तः* (फिट् १) से ऐकार उदात्त हुआ, शेष पूर्ववत् जानें।

यदि अ प्रत्यय समासान्त न होता तो वह प्रत्यय स्वर से उदात्त होता और उसी का स्वर प्रधान होता। अब बहुव्रीहि का ही भाग माना जाने से ऐसा नहीं हुआ॥

—:०:—

परि० तत्पुरुषस्या० (५।४।८६)

द्व्यङ्गुलम् (दो अङ्गुल)

द्वे चामू अङ्गुली च ऐसा विग्रह करके पहले द्वि तथा अङ्गुलि शब्द का कर्मधारय तत्पुरुष (१।२।४२) समास किया। तत्पश्चात् द्व्यङ्गुल शब्द से द्व्यङ्गुली प्रमाणमस्य ऐसा विग्रह करके *प्रमाणे द्वयसज्०* (५।२।३७) से मात्रच् प्रत्यय हुआ, 'द्व्यङ्गुलि मात्रच्' इस अवस्था में *प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्*(वा० ५।२।३७) इस वार्त्तिक से मात्रच् का लोप हो गया, तब प्रकृत सूत्र से अच् प्रत्यय होकर *यस्येति च* (६।४।१४८) से अङ्गुलि के इकार का लोप होकर द्व्यङ्गुल् अच् सु = द्व्यङ्गुलम् बना॥ त्र्यङ्गुलम् आदि भी इसी प्रकार जानें। निरङ्गुलम् (जिसके उँगली नहीं है) अत्यङ्गुलम् (जिसकी अधिक उँगली हैं) में समास *कुगतिप्रादयः* (२।२।१८) से होकर शेष इसी प्रकार सब में जानें॥



सिद्धि-प्रदर्शित उदाहरणों की सूची

प्रथम भाग परिशिष्टान्तर्गत

हमने सिद्धि में दो प्रकार रखे हैं, प्रथम तो वे हैं, जिनकी हमने मुख्य रूप से सिद्धि प्रदर्शित की है, तथा दूसरे प्रकार में हमने तत्सदृश जो उदाहरण हैं, उनको 'इसी प्रकार इनकी सिद्धि जानें' ऐसा निर्देश कर दिया है। इस सिद्धि सूची में दोनों प्रकार के उदाहरण हमने सङ्गृहीत कर दिये हैं। भेद करने के लिए जिनकी गौण रूप से सिद्धि है उन उदाहरणों पर हमने गोल (०) चिह्न रख दिया है—

—:o:—

द्वितीय भाग परिशिष्टान्तर्गत

सिद्धि प्रदर्शित उदाहरणों की सूची



श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर

का

सुन्दर सस्ता और प्रामाणिक प्रकाशन

ऋषि दयानन्द कृत—यजुर्वेदभाष्यविवरण

यह ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य के प्रथम १० अध्यायों का संशोधित द्वितीय संस्करण है। इसे महर्षि के हस्तलेखों से मिलान करके तैयार किया गया है। साथ ही आर्यसमाज, वेदों के महान् प्रकाण्ड विद्वान् श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत विवरण है। देवता, छन्द, पदपाठ, स्वर प्रक्रिया, आर्ष प्रमाणों से ऋषि भाष्य की पुष्टि, एवं सायण-महीधर भाष्यों की त्रुटियों का दिग्दर्शन इस ग्रन्थ की विशेषताएँ हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में १२० पृष्ठ की भूमिका है, जिसमें उपर्युक्त वेद-विषयों का गम्भीर और ओजपूर्ण विवेचन है। ग्रन्थ ३२ पौण्ड के २२ × ३६ = १६ पेजी स्पेशल रिम पेपर पर नाना प्रकार के सुन्दर टाइपों में छापा गया है। संशोधित परिवर्धित द्वितीय संस्करण मूल्य लागत मात्र १६

महर्षि यास्ककृत निरुक्त हिन्दीभाष्यसहित

व्याख्याता — श्री पं० भगवद्दत्त जी

आर्यसमाज के प्रौढ़ वैदिक विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्तजी इस भाष्य के लेखक हैं। इस भाष्य में निरुक्त की अनेक ग्रन्थियों को बड़े उत्तम ढंग से खोला गया है। राष्ट्र भाषा के माध्यम से निरुक्त के ऊपर यह अपूर्व कार्य हुआ है। यह सुन्दर तथा दृढ़ कागज पर लगभग ४०० पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। मूल्य १५-००

अष्टाध्यायी-भाष्य

लेखक — श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु

अष्टाध्यायी की यह व्याख्या ऋषि दयानन्द-निर्दिष्ट प्रथमावृत्ति में पठितव्य सम्पूर्ण अङ्गों पर प्रकाश डालती है। श्री जिज्ञासुजी ने

पाणिनीय व्याकरण का अध्यापन ऋषि-निर्दिष्ट प्रणाली से ही जीवन भर किया। ४५ वर्ष के सुदीर्घ काल के अध्यापन सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर यह अत्यन्त सरल व्याख्या लिखी गई है। इस व्याख्या में क्रमशः सूत्र के पदच्छेद-विभक्ति-समास-अनुवृत्ति-अर्थ-उदाहरण पहले संस्कृत में लिखे हैं। तत्पश्चात् हिन्दी में उनका स्पष्टीकरण किया गया है। उदाहरणों की साधनिका अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। इस अद्भुत ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से अष्टाध्यायी-क्रम से पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन अध्यापन सर्वथा सुगम हो गया है।

प्रथम भाग मूल्य १२–०० द्वितीय भाग १०–०० तृतीयभाग १९६६ के अन्त तक प्रकाशित होगा।

श्रीमद् वाल्मीकि-रामायण हिन्दी अनुवाद सहित

श्रीमद् वाल्मीकि-रामायण का हिन्दी अनुवाद, जो क्रमशः वेदवाणी में प्रकाशित हो रहा है, अब पृथक् पुस्तकाकार में भी सुलभ है। यह पुस्तक २८ पौण्ड के बढ़िया कागज पर सुन्दर टाइप में मुद्रित है। वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त श्लोकों वा श्लोकांशों को भिन्न टाइप में छापा गया है तथा उन पर प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० अखिलानन्दजी झरिया ने संक्षिप्त टिप्पणियाँ दी हैं। हिन्दी अनुवाद के पढ़ने से उपर्युक्त पण्डितजी के रामायण विषयक अगाध पाण्डित्य एवं व्यापक दृष्टि का पता सहज ही लग जाता है। यह पुस्तक रामायण के विषय में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। एक बार अवश्य पढ़ें।

अयोध्याकाण्ड—३–५०   अरण्य–किष्किन्धाकाण्ड—४–५०

ट्रस्ट के अन्य प्रकाशन

१	ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्मचरित्र	००–५०
२, ३	ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—परिशिष्टसहित सम्पादक पं० भगवद्दत्तजी बी० ए०	७–७५
४	उरु ज्योति अर्थात् वैदिक अध्यात्म सुधा लेखक डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल	३–००